http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

मोक्ष – शास्त्र प्रवचन

भाग 2

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मंदिर

मोक्षशास्त्र प्रवचन

प्रथम व द्वितीय भाग

Lucky Tea Centre
33 Kamala Nehru Marg
Freeganj Ujjain (M.P.)

प्रवक्ता:— अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

संपादक—
सुमेरचंद जैन
१५, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर

प्रकाशक:—
सुमेरचन्द जैन
प्रधानमंत्री भा० वर्णी जैनसाहित्य मंदिर
मुजफ्फरनगर

प्रथम संस्करण १०००]
सन् १९७७

[लागत बिना जिल्द १६) ४०
जिल्दका पृथक् १)५० रु०

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस मोक्षशास्त्र ग्रन्थ में द्वितीय सूत्र में जो कहा गया था कि तत्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इसीके संबंधमें तबसे चर्चा चली आ रही है। अब यहां यह जिज्ञासा हो रही कि वह तत्व क्या है जिस तत्त्वसे निर्णय किये गए पदार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इस तत्त्वकी बात अब इस चतुर्थ सूत्रमें कही जा रही है। जीवाजीवाश्रवबंधसंवर निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम्

मोक्षशास्त्र प्रवचनः द्वितीय भाग

आचार्य संतोंकी वाणीमें निश्चयव्यवहार समन्वयकी झलक—जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष ये ७ तत्त्व हैं पहिले इस बातपर ही दृष्टि दीजिये कि आचार्योंकी नीति निश्चय व्यवहारात्मक रही। प्रतिपादन रीति देखिये प्रथम सूत्र कहा गया सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः तो इसही सूत्रमें मोक्षमार्गः निश्चय वचन है और सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र णि व्यवहारवचन है। ये हैं तीन और है बहुवचन। जो तीन है, बहुवचन है वह तो व्यवहार हुआ। और, जो एकत्वको लेकर एक वचनमें प्रयोग है-मोक्षमार्गः वह निश्चय का प्रतीक हुआ। फिर द्वितीय सूत्र कहा गया तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, यहां तत्त्वार्थश्रद्धानं है व्यवहारवचन, सम्यग्दर्शनं है निश्चयवचन। प्रयोजनभूत अर्थोंका श्रद्धान करना, एक तो यह विवरण किया, कैसा श्रद्धान जो कि ज्ञान से विशेष सम्बन्ध रखता है उस माध्यमसे वर्णन किया वह व्यवहार वचन हुआ। और, सम्यग्दर्शन जो लक्ष्यभूत है वह निश्चय प्रतीक हैं। तृतीय सूत्रमें कहा गया, तन्निसर्गा दधिगमाद्वा तत् निसर्गात् अधिगमाद्वा इसमें तत् शब्द है निश्चय प्रतीक, निसर्गाद् अधिगमद्वा यह है व्यवहार प्रतीक। तत् एक संकेत है, एक वचन है, लक्ष्यको दिखाने वाला है, और निसर्गसे अधिगमसे उत्पन्न होता है इस प्रकारका विश्लेषण, हेतुका वर्णन यह सब व्यवहारनय है, तो अब इस चतुर्थ सूत्रमें भी देखिये जीवाजीवाश्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षाः यह है व्यवहार वचन और तत्त्वं यह है निश्चयवचन। ये ७ हैं, संख्या है अनेक है, सो बहुवचन है। यह व्यवहारवचन हुआ तत्त्वं एक वचन है, लक्ष्यको दिखानेमें समर्थ है, अथवा एकत्वका अभिप्राय लिए हुए है अतः हुआ निश्चयवचन। अब सूत्रोर्थ क्या हुआ जीव-अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष ये सब तत्त्व हैं एक वचनसे तत्त्वका जुड़ान बनेगा

तत्त्वका तथ्य—बात यहां यह है कि तत्त्व तो जो है सो है। वह क्या है? एक है; इस रूपमें भी नहीं कहा जायगा" किन्तु अनुभवमें नजरमें जो आया सो तत्त्व। इसके सम्बन्धमें समयसारके एक कलसमें बताया है कि इस शुद्ध तत्त्का साक्षात् दर्शन कराने वाला शुद्धनय है अर्थात् दर्शन तो होता है अनुभवमें, जहां शुद्धनय भी नहीं रहता, लेकिन उस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनुभवसे पहिले शुद्धनयका उपयोग था, इसलिए कहा जाता कि शुद्धनयसे शुद्ध तत्त्वका निश्चय होता अनुभव निश्चयनयसे न होगा। अनुभव तो अशुद्धनय, शुद्धनय, निश्चयनय, व्यवहारनय सब नयोंका परिहार करके एक निर्विकल्प स्थितिमें होगा, लेकिन उसके नजदीक क्या था ? वह शुद्धनय था विकल्प। तो उस शुद्धनयकी बात कही जा रही है। आत्मस्वभावं परभावभिन्नमापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकं, विलीनसंकल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युठेति। अर्थात् शुद्धनय आत्मस्वभावसे प्रकाशित करता हुआ उदित होता है। कैसा है वह आत्मस्वभाव ? परभाव भिन्न है, परपदार्थोंसे निराला है, परिपूर्ण है, सनातन है, एक है इतने भी विकल्पसे परे है। देखिये हम आप सबकी शान्तिके लिए, सदाके लिए संकटोंसे छूटनेके लिए कोई यदि तत्त्व है, विवेक है निधि है तो यह सम्यग्ज्ञान है। वैभवबंधन तो कलंक है, कीचड़ है, मलिनताका हेतुभूत है, जिसका आश्रय करके क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक कषाये जागृत होती हैं। भला, बताओ इस आत्माका इस ज्ञानस्वभावी ? जीवतत्त्वका क्या लेनदेन है इन बाहरी पदार्थसे। मोटे रूपसे न साथ लाये न साथ ले जायगें। और मोटे रूपसे जब तक यह है तबतक इसके कारण शान्ति नहीं प्राप्त हो रही। अनेक परेशानियां हैं। राज्यकी, बन्धुओंकी, कुटुम्बियोंकी, समाजकी, और भी अनेक परेशानियां हो रही हैं, जिनका आश्रय करके यह उपयोग अपने स्रोतसे चिगकर विकल्पमें, विचारमें, बाह्य अर्थमें चल रहा है। एक बार तो उसकी उपेक्षा कर। कोई भी परपदार्थ मुझे न चाहिए। यहां तो परसे विमुख हो लो। यहां से उठनेके बाद घर जोवोगे, दूकान जावोगे, परिस्थिति होगी ! काम पड़ेगा। बना लेना, वे विकल्प पर यहाँ एक धर्मका अमृत पीनेके उद्देश्यसे आप लोग बैठे हैं। सदाके लिए निःसंकट होनेके उद्देश्यसे आप लोग बैठे ही हैं, नहीं तो यहां आने और बैठनेकी क्या आवश्यकता थी ? यहां क्या कोई धन बट रहा क्या लेसेंस मिल रहा, क्या कोई पासपोर्ट मिल रहा, एक विशुद्ध अभिप्रायसे आप लोग बैठे हैं ना कि मेरेको वह तत्त्व मिले जिसका ज्ञान करनेसे, जिस तत्त्वको प्राप्त कर लेनेसे मेरे सारे संकट सदाके लिए छूट जायें

स्वरुपतः स्वयंकी संकटहीनता व स्वयंको गलतीसे संकटी बननेका चित्रण—देखिये—हम आप सब संकटहीन है, संकट कुछ नहीं है। किसी पर चीजसे संकट आ ही नहीं सकता। धन से संकट आयगा क्या ? धनका तो मेरेमें प्रवेश ही नहीं फिर संकट कहां से आयगा ? क्या कुटुम्बसे संकट आयगा, क्या भाई बंधु से संकट आयगा ? इस ज्ञानस्वरुप चैतन्यमात्र इस आत्मतत्त्वाओं किसी भी पुद्गलसे संकट आयगा क्या ? उसका सम्बन्ध हीन हो पाता। तो क्या किसी जीवसे संकट आयगा ? जीव जीव का तो सम्बन्ध सदा असम्भव है। देखो-जीव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का तो सम्बंध सदा असम्भव है देखो-जीव और पुद्गल का तो सम्बंध हो जाता है। सम्पर्क हो गया, बन्धन हो गया, मगर एक जीवका दूसरे जीवके साथ तो कभी बन्धन न हुआ न हो सकेगा। शरीर से बन्धन हो गया, कर्म से बन्धन हो गया, पुद्गलका तो बन्धन हो गया, निमित्त नैमित्तिकभाव बन गया, मगर इस जीवका दूसरे जीवके साथ कभी भी न तो निमित्त नैमित्तिक भाव बन सका और न बन्धन बन सका। पर कितनी भूल पड़ी है इस ज्ञान नेत्र पर कि जितना आकर्षित यह पुद्गल पर नहीं होता उतना आकर्षित यह परजीवों पर होता है। सो यह भी एक उपचार वचन है। पर वस्तुमें तो कोई लगाव नहीं रख सकता। तो बाह्य पदार्थ से मेरेमें कोई विपत्ति नहीं है तब फिर यह विपत्ति आयी तो कैसे आयी। मैंने अपने उपयोगमें ही अपने उपयोगकी ही कोई वृत्ति बनाकर एक संकट मोल लिया है। अच्छा तो ऐसा संकट क्या अकारण है? अनादिसे है क्या? स्वभाव रुप है क्या? नहीं नहीं, इसमें निमित्त कारण तो जरुर है। पर, निमित्त कारण की भी बात देखिये निमित्तकारण क्या है? कर्मविपाक। जो पहिले बांधे हुए कर्महैं वे कर्म जब उदय अवस्थामें आते हैं तो वे कर्मविपाक पर पदार्थ, बाह्य उपाधि वह निमित्त है। होता क्या है तब, कि ये कर्म, ये प्रकृतियां विपाक-समयमें स्वयंमेंअपना अनुराग फैलाती है चूंकि उनमें अनुराग बंध था ना? जब उदयमें आया तब स्थिति हो रही है पूरी, उस कालमें कर्मकी प्रकृतिका अनुराग बना। जैसे किकिसी चूनाके डगलामें मानो एक महीनेकी स्थिति है वह अपने ठीक स्वरुपमें अपनी सत्तामें बिना गड़बड़ किये जैसे वह एक महीना रह सकता है, एक महीनेके बाद वह फूल जायगा। उसमें उमाड़ आ जायगा, उसके भीतर में रहने वाले अनुराग वह खिसने लगेगा, इसी तरह बंधे हुए जो हमारे कर्म हैं वे कर्म अब खिल रहे हैं। कौन खिल रहा? कर्म खिल खिला रहे? कर्म। कर्ममें तो यह हालत हो रही और साथही यह क्या हालत हो रही? उपयोगमें सब झलका। हमको पता नहीं पड़ता कियह झलका। जैसे दर्पणके आगे अंधेराआ जाय तो अंधेरा झलकता तो है, पर पता तो नहीं। वह वैसाही पता है। तो फिर इस उपयोग ने क्या किया? झलकके ही समय झलकके ही साथ इस उपयोगने उसको ग्रहण किया? झलक के ही साथ इस उपयोगने उसको ग्रहण किया। माना अपने रुपसे अपने में हुआ और आत्माका स्वरुप है प्रतिभासमात्र, चैतन्यमात्र उपयोग तत्व। जो है उसे न समझनेके कारण बाह्यको अपभा लियाकि यह मैं हूँ, यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह एक इतना बड़ा पाप है, महापाप है, मिथ्यात्व मोह महापाप है कि जिस पापका मुकाबला करनेवाला कोई पाप नहीं हो सकता। मोह पाप को रखते हुए धर्म न हो पायगा। स्व और परका सही प्रतिभास किए बिना, सही परिचय किए बिना, सही जानकारी किए बिना बतलाओ क्या धर्म मिल जायगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपूर्व अवसर न खो देनेका अनुरोध—ओह, था कोई महान सौभाग्य जो एक सत्य-स्वरुपका दर्शन कराने वाले एक जैनदर्शनकी परम्परामें हम आपने जन्म पाया, अब ऐसा दुर्लभ जन्म पाकर काम वही करें जो अनादि काल से अनेक भवों में अब तक करते आये हैं, तो इसके पाने और न पाने का क्या अर्थ रहा ? बराबर रहा। यहां बाह्य पदार्थों का लगाव रखकर कौन सा आनन्द पाना चाहते सो तो बताओ ? अगर खाने पीने और स्वाद लेने का आनन्द पाना चाहते हैं तो मनुष्यभव पाकर तो खानेपीने स्वाद लेने का आनन्द तो पशुपक्षी कीड़ा मकोड़ा आदिक सबको आ रहा है। यदि मनुष्योंको यहां लड्डू, पेड़ा, हलुआ वगैरह मजेदार लग रहे हैं तो इन गाय, भैंस, बैल वगैरह पशुओं को हरीघास वगैरह कम मजेदार नहीं लग रहे हैं। उन्हें घास मजेदार ही मालूम होती है सो यह कोई खास बात तोन प्राप्तकी। ऐसा इन्द्रिय सुख चाहिये था तो पशु बनकर घास खाकर भीपा लेता। किसलिए मनुष्य हुए ? कौनसा आनन्द पाने के लिए इस मनुष्यभव का निर्णय किया है सो तो बताओ ? अच्छा, एक धनी और परिग्रह वाले बहुत धनिक ऊँचे आदमी कहलानेके लिएना, इन बाह्यपदार्थोंसे, इन पुद्गलोंके ढेरोंसे अगर इनका मौज पानेके लिए करते हैं तो देखो जिसकी जितनी बुद्धि विकसित हुई है, जितनी बुद्धिमें मनुष्य हुए हैं वे अपनी बुद्धिमें पाये हुए परिग्रहको काफी मानते हैं और उसे सारभूत मानते हैं। यह एक प्राकृतिक बात है। जंगलमें रहने वाले मील जब आपसमें बात करते हैं और किसी राजाकी चर्चा करने लगे तो वे यही तो कहेंगेकि राजा बड़ा सुखी है, क्या कहना राजाके सुखका वह तो रोज गुड़ ही गुड़ खाता होगा। अब देखिये उन मीलोंकी बुद्धि उत्कृष्ट पदार्थमें गुड़ तक ही सीमित है। तो वे उत्कृष्ट पदार्थमें वे गुड़ तक ही संतुष्ट रहते है, लेकिन भीतर तथा इन चींटा चींटियोंके पास क्या परिग्रह नहीं रहता ? अरे होता है परिग्रह, कुछ जोड़कर भी रखते हैं, कुछ अपना समझकर भी रखते हैं। चैतके महीनेमें ये चीटांचीटी अपनी चोंचमें अनाज लालाकर अपने बिलोंमें संग्रह करते है। देखा खलियानमें उनकी इतनी ही बुद्धि है, वे उसीको उत्कृष्ट मानते हैं। यहां लाख दो लाख करोड़ हो गया, उसको उत्कृष्ट मानते हैं। चक्रवर्ती इतने से विशेष वैभवको उत्कृष्ट मानता है। तो यह यों अपने माननेकी बात है। परिग्रहका मौज जेसे मनुष्य लेते हैं वंसे ही पशु पक्षी भी लेते हैं। कौनसी बड़ी बात आप करते हैं सो तो बताओ ? कुटुम्बका राग, लड़के बच्चे खेलें, कूदें उनका राग उनका मजा। यह मजा क्या गाय भैंस वगैरह पशु नहीं पाते ? उनका मजा देखें। आपने बच्चेको देखकर वे कितना सुन्दर आवाजमें बोलते हैं। जब बछड़ा गायके पास आता है तो गाय जीभसे अपने बच्चोंको चाटती है, क्या वह मोज नहीं लेती ? अगर कुटुम्बका

Reprint any errors at vidyasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मौज लेना मनुष्योंका उद्देश्य है तो क्या ऐसा मौज पशुपक्षियोंको नहीं मिलता ? कोई भी मौज बता दो। आप कहेंगे--बड़े अधिकारी बनते हैं उसका बड़ा मौज होता है। देखो सब बुद्धिसे सीमित चीज चलती है। गाय भैंसका जहां जत्था होता है उनमें प्रकृत्या ही कोई भी बैल उनमें अपनेको राजा अनुभव कर लेता है। जो बलवान है। जिसकी चलती है, जिससे और गाय, बैल, भैंस डरते हैं वह तो अपनेमें गौरव अनुभव करता है ना। उनकी भाषामें जो बातचीत होती है उनकी आज्ञाका पालन भी वे गाय, भैंस आदि करते हैं। खूब निगाहसे परख लो। सारी बात हो रही वैसी उन पशुपक्षियोंमें जो मनुष्योंमें होती है। है अपनी अपनी बुद्धिकी बात। तो संसारका कौनसा मौज ऐसा है कि जिसके पानेके लिए यह मनुष्यभव समझा ? कुछ नहीं है। चाहिये तो यह कि अपनेमें मनुष्यका नाता ही मत लगाओ। मत समझो कि मैं मनुष्य हूँ और मनुष्यका जो आवरण है वहां से और खिचकर भीतर आवो, मैं मनुष्य नहीं हूँ यह ध्यानमें लावो।

अन्तरमें रहस्य समझे बिना धर्ममें प्रगतिकी अशक्यता—देखो दो बातें हैं। एक तो है मानवधर्म और एक है आत्मधर्म। आत्मधर्मकी बात कह रहे हैं जिससे कि यह आत्मा संसारके दुःखोंसे छूटकर मुक्ति पा सके। सदाके लिए दुःखोंसे दूरसे दूरहो सकें। और मानवधर्म ? मानवधर्मभी अच्छा है। जो मानव नहीं बन सकता वह आत्मधर्मका पात्रभी कैसे बने ? पहिले तो यही बात है कि इन्सानमें इन्सानियत होनी चाहिये। कोई जरा--जरा सी बातमें लड़ बैठे अपशब्द बोलें खुदगर्जी बहुत हो, स्वार्थ हो, किसी दूसरेका उपकार नहीं कर सकें। मानो नहा धोकर आये मन्दिर जा रहे हैं और रास्तेमें कोई जीवजन्तु किसी जगह गंदले पानीमें फंस गया है. बड़ा दुःखी हो रहा है, उसेतो देखते जायें और कहते जायें देखो यह कैसे दुःखी हो रहा और बस आगे चलते जायें, क्योंकि अगर इसको छू लेंगें तो अशुद्ध हो जायेंगें, अभी मन्दिर जाना है। याने मानवधर्म क्या बतलाता है ? तुम्हें देर हो जायगी, तुम चार पूजा करते थे, तीन ही कर लेना, फिर बादमें नहा लेना। और जो तड़फ रहा है पशुपक्षी या कोईभी जीव जों तुमसे सहायता चाह रहा है तो उसका उपकार करदो। देखो जिसने जीवस्वरूपसे नाता मान रखा हो वही तो ऐसीकरूणा कर सकेगा। याने अपने सुखके लिए कितना अपनेको अपने अन्दरमें आना है ? इसका अन्दाज करते जाइये। मानवधर्म का भी सही पालन करनेके लिए कुछ तो अन्दर में आना पड़ेगा, अन्यथा सही न बनेगा। अभिमान से करेंगें और भावसे करेंगे किसी खुदगर्जीसे किसी कपटसे या किसी अन्यभावसे करेंगे। कुछ अन्दरमें आना पड़ेगा तब मानवधर्म सहेगा, और अतीव अन्तरमें आना पड़ेगा तब आत्मधर्म बनेगा। तो आत्माके धर्मकी बात कह रहे हैं। हाँ

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसके लिए अपना यह जीवन है, इसका निर्णय करना है। हिम्मत बनावो। देखो कई जगह ऐसा कहते हैं कि धर्मके लिए आओ, धर्मयज्ञ करना है तो अपने प्यारेकी बलि दो। तो देखो आपको प्रिय हैं रागद्वेष मोह और उनका विषय बन रहे हैं घर कुटुम्ब आदिक तो आपको इस रागद्वेष मोहकी बलि देनी पड़ेगी। यहाँ कोई बहुत बड़ा ऊँचा काम होता है तो उस ऊँचे कामको करनेके लिए आप बड़ा प्रोग्राम करते, बड़ा खर्च करते, बड़ा परिश्रम करते। जैसे कोई बड़ा फर्म या मिल वगैरह खोलना हो तो आज ही जमीन ली तो क्या तभीसे लाभ मिल जायगा। उसको तैयार होनेमें, उसके चलनेमें काफी समय लग जाता है। कई वर्षोंतक आप उसकी आमदनीके लिए बड़ी धीरता रखते हैं। कहीं। उसी समयसे तो लाभ नहीं मिलने लगता। तो ऐसेही आत्मकल्याणके मार्गमें इस जीवनमें कुछ धीरता तो रखो इस तत्त्वज्ञानके मार्गमें तो लगना चाहिये। तो एक निर्णय बनायें कि मेरा जीवन है केवल आत्मतत्त्वका ज्ञान, श्रद्धान और आचरण बनानेके लिए। बाकी काम तो भव-भवमें किए।

कर्म और नोकर्मसे छुटकारा पानेकी रीति—भैया इस शरीर से सम्बंध है अतएव इस शरीरको मनाये रखने के लिए कुछ जरुरी हो गया। कुछ अगर यह बिगड़ गया, कोई इन्द्रियां बिगड़ गई, कुछ और हो गया तो संक्लेशका अवसर न आ सके इसलिए इस दुष्ट को मनाने के लिए कुछ काम करते जाइये, क्योंकि दुष्टसे फस गए हैं, चिरकालसे फसे हैं। अब इस दुष्टसे हम इसकी दुष्टता जानकर व्यवहार करें। याने मेरे सारे कष्टोंका कारणभूत यह मेरा शरीर है। कुछ ऊपरकी बात कह रहे हैं। अन्दरमें कर्म हैं निमित्तभूत, तो ऐसा समझ करके चाहें कि इसकी तो अभी हत्याकर दी जाय, जैसे कहते कि अभी खंजर चला दो, क्योंकि यह शरीर दुष्ट है, तो क्या ऐसा करनेसे शरीर का पिण्ड छूट जायगा? अरे जायगें तो और नया शरीर मिलेगा। छूटेगा तो नहीं। जिस शरीरमें इस जीवको इतना मोह बन रहा है वह शरीर देखो सारे कष्टोंका एक साधन है या नहीं? भूख प्यास, ठंड गर्मी आदिक की बाधायें, मान अपमान, संयोग वियोग आदिक की बाधायें ये सब क्लेश शरीर न हो तो क्या हो जायेंगे? जितनी भी बुराई समझी जाती है, जितनी भी लोगों को अशान्ति होती है उस सबमें भीतरमें साधन है तो यह शरीर साधन है। तो इस शरीरसे अलग होने की बात चित्त में आनी चाहिए। शरीर को सजाने, इतर फुलेल लगाने, खूब बढ़िया बढ़िया श्रंगार करने के लिए चित्त न डुलाईये। चित्तमें यह बात आनी चाहिये कि मेरा कब वह समय आये कि इस शरीरसे मेरे को मुक्ति प्राप्त हो। तो यह बात कैसे मिले? इस शरीर से छुटकारा कैसे मिले? कर्मोंसे छुटकारा कैसे बने? बाह्य दृष्टि करनेसे नहीं, किन्तु अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

को ज्ञानमात्र, उपयोगमात्र, स्वच्छतामात्र, प्रतिभासमात्र समझनेसे, अनुभवने से यह बात स्वयं सहज अपने आप हो जायगी। जैसे गीली धोतीमें धूल चिपट गई हो तो उसकी गीलाई समाप्त होनेपर अर्थात धोतीके सूख जानेपर धूल अपने आप झड़ जायगी ? ऐसे ही इस जीव ने गीलाई बना रखी है, काहेकी गीलाई ? राग द्वेष मोहकी गीलाई । तो जीवमें राग द्वेष मोहकी गीलाई । तो जीवमें राग द्वेष मोहकी गीलाई आगई है। उससे कर्म चिपट गये अब इस कर्मधूलको झड़ानेके लिए, कर्म दूर करने के लिए मोह राग द्वेषादिक विकार ही करते करते जायें तो इससे वह कर्म चिपटन दूर न होगी। अरे इस रागद्वेष मोहादिक की गीलाई को सूखने दो, ये सब सूखने पर कर्मधूलकण अपने आप ही समाप्त हो जायेंगे । रागकी गिलाई भी सूखने दो और द्वेषकी गिलाई भी सूखने दो। द्वेषकी गिलाई भी कैसी सो जरा देखो—किसीको किसीसे दुश्मनी हो तो वह कहता है कि यह मेरा शत्रु है। अहो, उसे कैसा अपना बना रहा है। कहता है कि मेरा दुश्मन। अहा एक बार ऐसा वह कह ही लेता है। भले ही उस द्वेषमें गीलाई बसी हुई है। रुक्षता है, विद्वेष है मगर भीतरमें वह लगाव बसा हुआ है। यह मेरा दुश्मन। प्यारसे तो बोल रहा, मेरा दुश्मन, वह अपना लगाव तो कर रहा है। देखो मूलमें उसने कैसा लगाव लगाया है और चल रहा है द्वेष। मोह रागद्वेष इन तीनोंमें गीलाई भरी है। उससे कर्मधूल चिपट रही है उसको दूर करना है।

आत्महितकी भावना होनेपर मोक्षमार्गमें उमंगकी दृष्टि—देखो आत्महितकी बात अगर चित्तमें आ गई है तो उसके पक्ष नहीं रहता। उसको हठ नहीं रहता। उसमें तो यह ही भाव रहता है कि किसप्रकारसे मैं इन कर्म और शरीरके बन्धनों से मुक्त हो जाऊँ ? और-जब उस मार्गमें चलता हैं और जब इसे देखने लगता हैं भीतरमें, उसको नजर आने लगता है कि यह है ज्ञानस्वरूप। यह हूँ मैं। यह है ज्ञानमात्र। और, ऊसपर दृष्टि होती है, उसपर उपयोग जमता है तो ऐसी स्थितिमें उसे बड़ा विश्वास होती है, दृष्टि होत्ती है, ओह यह ही मुक्तिका मार्ग है, मुक्ति मेरे निकट ही है। जैसे कोई मुसाफिर किसी गांवको जा रहा है और जाते जाते उसका गांव निकट हो तो आ रहा है। उसका गांव निकट ही तो आता जा रहा है उसका मार्ग ध्यानमें है तो वह कितनी गम्भीरता से चलता है। लो अब तो आया अपना धाम। और जैसे-जैसे वह निकट आता जाता है वैसे ही वैसे उसे और उमंग बढ़ती है। ठीक यही बात मोक्षमार्गमें चलने वाले ज्ञानियोंकी होती है। ज्ञानी जीवने समझा कि यह है मार्ग। यह ही तो है मोक्षमार्ग क्या कि ज्ञानमात्र इस निज तत्त्वका श्रद्धान करना, उपयोग होना, उसपर दृष्टि होना, उस और रहना, उसमें तृप्त रहना, यही है मोक्षमार्ग। यह ही किया भगवानने। ऐसी दशा पाई वह दशा बाहर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है। उसको अपने आपमें सन्देह नहीं है। यह हो तो है मुक्ति, कहाँ बाहर है। देखो दूरीकी भी समझ अनेक दृष्टियोंसे होती है। एक समझ ऐसी होती कि चाहे कितनी ही दूर हो, निकट लगती है। दर्पणमें बहुत दूर रखी हुई चीजका जब प्रतिबिम्ब पड़ता है तो बड़ी सूक्ष्मदृष्टिसे देखें तो वहां भी आप केवल दर्पण दर्पणको देखकर पहिचान जायेंगेकि जिसकी यह झलक है वह इतनी दूर है। बहुत गहरी दृष्टिसे देखें तो यह पहिचान सकते, केवल दर्पणको देखकरकि इस दर्पणमें जिसकी झलक आ रही वह चीज कितनी दूर रखी है। बहुत दूर रखी होनेपर भी आपके लिए तो बिल्कुल निकट है। दो दृष्टियां आयेंगी। निकट की भी दृष्टि है और दूरकी भी दृष्टि है। कोई समझ ऐसी होती है। जो ज्ञानीके लिए यह मोक्षकी दूरी भी इतनी निकट है कि उसमें लम्बापन नहीं दिखता है। चाहे वह कई भवोंके बाद हो, लेकिन जिसने आत्मतत्त्वका दर्शन किया, मोक्षमार्गपर जिसका विश्वास है, जो मोक्षके पथमें चल रहा है उसे कितनी ही देरमें मुक्ति हो, मगर देखता है कि यह है मुक्ति जैसे लोग कहते हैं ना मानो अहमदाबादसे कलोल जाना है तो किसीने पूछा भाई कलोल कितनी दूर है ? तो वह कहता है कि बस यही तो है कलोल। तो क्या है ? जिसके ज्ञानमें साफ स्पष्ट झलक रहा–यह ही तो है सामने। कहाँ दूर है ? अरे जिसकी ओर मुख किया वह पास है और जिउकी ओर पीठ किया वह दूर है। बुन्देलखण्डके कई व्यापारी सांवर नामक ग्राममें नमक खरीदने गए। वे व्यापारी थे समरिया ग्रामके। तो जब वे नमक खरीदकर वहांसे लौटे कोई मील दो मील ही गए रहोंगे कि वहां उनमें साथियोंमें से किसीने पूछा कि सिमरिया ग्राम कितनी दूर है ? तो था तो तो मानो २०० मील दूर पर अभी ८९८मील दूर है सिमरिया, पर वह बोल उठा–साँवर दूर सिमरिया नीरी नीरीका अर्थ है नजदीक। याने जिसकी ओर पीठ है वह तो दूर हो गया और जिसकी ओर मुख किए हैं वह नजदीक है। तो ऐसे ही समझिये कि जब हमारा नुख मुक्तिकी ओर है याने मुक्तिकी ओर जब हम चल रहें हैं तो हमारे लिए तो वह मुक्ति निकट है, दूर कहां है। यह बात किसकी कही जा रही ? गपोड़ा मारने वालोकी नहीं कही जा रही किन्तु भीतरमें जिसके आत्मतत्त्वका निर्णय है, जो अन्तः देखता है, समझता है उसकी बात कही जा रही है

अन्तस्तत्त्व दर्शीकी वृत्ति—अन्तस्तत्त्व दर्शीको स्पष्ट समझ है कि जो यहां बीत रहा है यह सब कर्मकी लीला है। में तो ज्ञानस्वरूप हूँ। मेरा तो काम जाननमात्रका है। हुआ क्या ? कर्ममें तो कर्मकी लीला है और उस ही साथमें झलक और ज्ञान चल रहा है इसलिए संसार चल रहा है। देखो–तीन तरहके बिकारी जीव होते हैं। एकतो आशक्ति–पूर्वक झलके हुए विकारको ग्रहण करने वाला दूसरा है अनाशक्त झलके विकारको ग्रहण

Report Errors and Suggestions at dharmdarshan@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करने वाला और तीसरा विकारी है वह विकार की झलक तो है, पर ग्रहण नही करता। विकार तीनोंमें है जो लोग ऐसा कहते हैं कि विकार ग्रहण करे तो विकार है और ग्रहण न करे तो विकार नही, सो बात नहीं। यह उपयोग स्वरूप है, जिस कालमें कर्मविकार आया वह विकार झलके बिना नहीं रह सकता। झलके, पर कोई उस झलकको, उस विकार को क्या अनाशक्ति से ग्रहण करता है ? वह तो बुद्धि पूर्वक उसमें लगता और उसको आशक्ति से लेता है तो यह समझ लीजिये कि आशक्ति से विकार को ग्रहण करने वाला तो हुआ। पहिला गुणस्थान, दूसरा गुणस्थान, तीसरा गुणस्थान वाला जीव, उसमें भी कमी बेसी लगेगी और अनाशक्ति से ग्रहण करने वाला है चौथा, ५वां, ६ठवां गुणस्थान वाला जीव वह भी ग्रहण करता है, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायें आती। अपने-अपने दर्जे में तीव्र मन्द की बात जाने, पर ७वें गुणस्थान से लेकर १०वें गुणस्थान तक वहां तो विकार झलकता है, उपाधि है, विकार है, मगर उनको ग्रहण नही करता। वहां भी कुछ और भेद है यों भेद प्रभेद करेंगे तो बहुत कक्षायें रखनी पड़ेगी। तो यहां यह समझ लो कि हम क्या गल्ती कर रहे। हम गल्ती यह कर रहे कि विकारों को ग्रहण कर रहे, अपना रहे। यह ही मैं हूँ ऐसा समझते। कषाय करते हुए समझते हैं कि मैं ऐसी कषाय न करूं, लोभ न करूं तो मेरा जीवन क्या ? तो इस तरह हम अपने आपमें देखें कि मेरा अपराध तो यह है कि मैं उस झलके हुये विकार को ग्रहण करता हूँ, अपनाता हूँ, उनको ग्रहण न करूँ, उन्हें न अपनाऊं, सिर्फ उनका जानन देखनहार रहूँ तो इसमें मेरी विजय होगी।

ध्रुव तत्त्वके आश्रयसे मनका स्थैर्य व विलय—हम चाहते हैं कि हमारा मन स्थिर हो लेकिन करते क्या हैं ? अस्थिर विषय का ध्यान। देखिये दोनों ओर से गल्ती हो गई। मन भी अस्थिर है और जिसका ध्यान किया गया वह भी अस्थिर है तो जहां दोनों ओरसे त्रुटि हो वहां मनकी स्थिरता की आशा कैसे की जा सकती है ? सर्वप्रथम जबकि मन की ओर भी अस्थिरता की त्रुटि नहीं बन रही तो कम से कम इतना तो करें कि विषय स्थिर तत्त्वको बनायें। मन भी स्थिर होगा और स्थिर तत्त्वका विषय करें तो सम्यक्त्व भी होगा। वास्तविक तत्त्व क्या है जो दृष्टि में आये तो नियमसे सम्यक्त्व हो ? उसकी ओर किसी भव्य जीव की दृष्टि होती है। यों दिलको सुहावनी लगने वाली बातें दिलका रोग दूर नही कर सकतीं। दिल ही जहां शान्त हो जाये, ऐसी स्थिति, ऐसी तपश्चर्या में कोई लगे तो उसे सन्तोष और शान्ति मिल सकेगी। जैसे रागके वचन रागको शान्त नहीं कर सकते ऐसे ही दिलपसंद बातें दिलके रोगको नही मिटा सकती और करना क्या चाहिये, जो आत्मार्थी पुरुष है, जिसको केवल एक यह ही प्रयोजन रह गया कि मेरे आत्माका तो उद्धार हो, मुक्ति हो,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जन्ममरण के संकटोंसे छुटकारा हो उसको एक बहुत बड़े तपश्चरणमें चलना होगा और वह तपश्चरण है दिल की आशा, दिलको लुभावनी बातें, इन सबकी बलि करनी होगी। कोई सोचे कि मेरेमें बुद्धि नहीं, प्रतिभा नहीं, हम नहीं समझ सकते हैं आत्मा के उस गम्भीर गहरे अंतस्तत्त्व को तो उसका कहना एक प्रमाद भरा है जो आर्थिक कमाईके धंधोंमें बड़ी चतुराई रख सकता, जो दूसरों से छल करनेमें बड़ी-बड़ी कला बना सकता, उसमें क्या यह क्षयोपशम नहीं है कि वह अपने आत्माके सीधे सादे सरल भोले अंतस्तत्त्वका दर्शन कर सके, पर रुचि नहीं है। जब तक निकट भव्यता न हो, जिसका होनहार ठीक नहीं है उसे नहीं होती है आत्मतत्त्वकी रुचि, तो ऐसी रुचि जिसको नहीं है मत हो, पर स्वयं एक अपनी-अपनी बात तो निश्चित बनालें कि मेरेको और कुछ न चाहिये। केवल यही चाहिये कि मेरा आत्मा आत्मा में तृप्त हो, सन्तुष्ट हो और आत्माके असली इस आराम को मैं अभी कभी-कभी पा सकूं, उसके अतिरिक्त और जो कुछ हैं परिस्थिति वश लगना तो पड़ता है, लेकिन हैं सब उसके लिये बेकार। उनसे मेरे आत्मा का सुधार नहीं। तो ऐसे आत्मतत्त्व की परीक्षा के लिये अगर तन, मन, धन, वचन सर्वस्व न्यौछावर होता हो तो हो, मगर पालें आत्मा के अंतस्तत्त्वको तो समझो कि मुफ्त ही पाया। कुछ खोया नहीं। बिनाशीक चीज थी वह भी खोया नहीं गया। यहां न रहा और जगह रहा अथवा यों न बर्ता और तरह बर्ता, पर यह सब आन्तरिक लाभ मुफ्त ही तो प्राप्त हुआ। तो इससे तीव्र आस्था होना चाहिये कि मेरे को तो अपने आपका वास्तविक सहजस्वरूप ही ज्ञान में लाऊं। अवश्य आयेगा ज्ञानमें। कुछ थोड़ा उद्यम करना होगा। जो ज्ञानी पुरुष हों आत्मार्थी हों उनका कुछ प्रसाद पाना होगा।

तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिये आत्मविभवका सदुपयोग—बड़े बड़े संतभी कुन्दकुन्द-स्वामी भी उनके भक्त अमृत चन्द्र सूरि जहां यह बात बतलाते हैं कि आत्माका अधिकार पानेके लिए कुछ वैभव चाहिए ना ? तो वे वैभव चार किस्मके होते हैं एक तो वैभव है—शब्द ब्रह्मका बहुत ज्ञान हो, श्रद्धान हो। जिसके प्रथम बात में ही गल्ती हो वह आगेके वैभवको नहीं प्राप्त कर सकता। जिसे वीतराग जिनेन्द्र देव की वाणीमें सप्ततत्त्वका दिग्दर्शन युक्ति-पूर्ण जंचा जिसमें जराभी सन्देह नहीं ऐसे वाणी परम्परा से जो कुछ कहते चले आये स्वर्ग नरककी बात तिरेसठ शलाकाके पुरुषोंके चारित्रकी बात, उन सबको झूठ बोलनेका प्रयोजन क्या था ? उन वीतराग ऋषीसंतोंको ? ज्ञानी पुरुष जिन्होंने सप्ततत्त्वका वर्णन और अपने आपके भीतर सप्ततत्त्वका घटन, दिग्दर्शन किया है मेल खाता है जो प्रभुने बताया सो मुझमें आया, जो मुझमें अनुभूत हुआ वही इस ग्रन्थमें मिल रहा ऐसा जिन्होंने मेल बना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिया। उनके लिए जिनेन्द्र वाणीमें जितना जो कुछ कहा, गया है उनमें अनास्थाकी रंचभी गुंजाइश नहीं होती। जिनको सप्ततत्त्वकी श्रद्धा हुई है, वह प्रभुकी वाणीको असत्य कहनेके लिए जिह्वा नहीं उठाता। तो आत्माका अधिकार पानेके लिए पहिला वैभव है समस्त ब्रह्मकी उपासना, आगमज्ञान। दूसरा वैभव यह है कि ऐसी प्रतिभा जगेकि समस्त विपक्षकी युक्तियोंको दूर कर सके, अर्थात् दार्शनिक शास्त्रका भी बहुत अधिक मंथन किया गया हो। यह एक वैभव है आत्मापर सही अधिकार पानेका। तीसरा वैभव है-गुरुचरण सेवा इतनी की होकि उनके प्रसादसे उनके संकेतसे या सहज ही सेवा करतेमें एक उस तत्त्वज्ञानकी झलक बन जाय जिसे कहते हैं गुरुचरणप्रसाद पाया, और जो शुद्ध आत्मतत्त्वका अनुशासन मिलता है एक वह। जैसे कोई आदमी अपने आप कुछ चीज सीखे और कोई उसी चोज़को किसी गुरुसे सीखे तो उन दोनोंकी शिक्षाओंमें अन्तर देखते हैं इसीतरह अपने आप अध्ययन करके, अपने आप पढ़ करके, अपने आप बाँच बुंचकर जो ज्ञान पाया जाता है एक वह ज्ञान और दूसरा जो आगमवेत्ता है, जो युक्तियोंसे परख चुका है, अनुभवसे समझ चुका है ऐसे गुरुकी परम्परासे पाये ज्ञान तो इन दोनों ज्ञानोंमें ऐसाही अन्तर है। तो आत्माधिकार पाने वालेका तीसरा वैभव है गुरुचरण प्रसादसे पाया हुआ तत्त्वानुशासन और चौथा वैभव है अपने आपमें उसको ऐसा घटित करना, ऐसा अपने आपके भीतर समझना कि निरन्तर आनन्द झरे और उस आनन्दका जो सम्वेदन उस सम्वेदनसे जो एक पुष्टता होती है वह वैभव अनुपम वैभव है। तो इस वैभवमें हम प्रवेश करें, इसके अधिकारी बनें, ऐसा हमारा यत्न हो। जो बात जिस विधिसे होती है वह बात उस विधिसे हुआ करती है। संसारमें रुलनेका विधान है पर द्रव्यों की अपनायत करना तो मुक्तिका विधान है अपने सहज स्वरूपमें आत्माकी प्रतीति करना, यदि अनात्मतत्त्वमें आत्मश्रद्धा करनेसे संसार होता, जन्म-मरण होता और होना चाहिए तो सहज आत्मतत्त्वमें आत्मत्वकी श्रद्धा करने पर मुक्ति क्यों न होगी ? होनी पड़ेगी

शुद्धनयके अवलम्बनसे उपलब्ध ध्रुव अन्तस्तत्त्वके आश्रयसे उपयोगकी स्थिरता— भैया प्रयत्न करना ऐसे तत्त्वज्ञान की ऐसे उस तत्त्वको विषय लेनेकी कि जो स्थिर है, ध्रुव है और अपनेसे कभी अलग नहीं होता। जो ध्रुव हो और अपने आपमें सहज बना हुआ हो उसको उपयोगमें लें तो मनको स्थिर होना पड़ेगा। मनको स्थिर करना अतीव यह ऊंची बात नहीं, पर मनका काम ही न रहे यह है ऊंची बात। तो चित्तकी अस्थिरतासे अधिक महत्त्व है चित्तकी स्थिरता और चित्तकी स्थिरतासे अधिक महत्त्व है चित्तसे अलग हट जानेका। तो ऐसे उस तत्त्वमें दृष्टि जाय तो जैसे प्रभु प्रभु बन गए वैसे ही यहाँ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी कर्म दूर होकर प्रभुता मिलेगी। वह तत्त्व क्या है? उसको ही समझाया गया है शुद्धनय से। शुद्धनय कहते हैं ऐसे ज्ञानसे कि जिस ज्ञानमें केवल एक अभेद अखण्ड अवक्तव्य वचनातीत अंतस्तत्त्व विषयमें हो। जिसके बारेमें अगर जोर लगाकर किसीको समझायें तो यह कहते बनता कि वह तो जो है सो है। इससे अधिक बात तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव भी नहीं कह सके। उन्होंने यही कहाकि वह शुद्ध आत्मतत्त्व न तो प्रमत्त है न अप्रमत्त है किन्तु यह ज्ञायकभाव है। ऐसा ऋषि जन कहते है। और, वह क्या है? जो है सो है। जो ज्ञान हो सो है। ये शब्द कुन्दकुन्द प्रभुके हैं, क्योंकि उसके बारेमें कुछभी कथन करना, कुछभी बात बोलना भेद किए बिना नहीं होता। और, भेदमें वह यथार्थ वस्तु आती नहीं। तो हम अपने बहुत-बहुत चीजें परखी, जानी, लेकिन ऐसा धनिष्ट, वचनातीत अपने आपमें अन्तः प्रकाशमान सहज स्वरूपका परिचय नहीं किया और इसीलिए संसारमें भटक रहे हैं। तो ध्रुव अंतस्तत्त्वकी दृष्टिसे मन स्थिर होता है और यह मन भी ऊंची स्थिति बनाकर स्वयं भी विलीन हो जाता है।

निरानन्दतत्त्वका आश्रय न कर आनन्दस्वरूप अन्तस्तत्त्वके आश्रयमें आनन्दकी उपलब्धि—हम, चाहते हैं आनन्द, पर उपयोगमें लाते हैं हम आनन्द-रहित वस्तुको। जहाँ विषय आनन्दरहित वस्तु बन रहा हो वहां आनन्दकी आशा करना व्यर्थ है। जगतमें जितने भी पौद्गालिक अचेतन पदार्थ हैं वे सब आनन्दरहित हैं। उनको हम दिलमें बसाते, उपयोगमें रखते हैं और आशा करते हैं कि आनन्द मिले। गलत नहीं बताया गया, आनन्द-रहित वस्तुमें दृष्टि गड़ाकर कोई आनन्द पाले तो कोई तुक नहीं है इसका। तो जब हम आनन्द पानेके अभिलाषी हैं तो हमें परखना चाहिए आनन्दमय अन्तस्तत्त्वको। अपनी बात कठिन लगे और बेकार की बात सरस लगे उसका सुभटपना अधिक समझा जायेगा, क्योंकि ऐसा बल पाना तो भगवानके बशकी भी बात नही है। जो परपदार्थ है जो कभी अपना हो नही सकता उसको पाने की बात, उसको कमाने की बात, उसको भोगने की बात सरल लग रही हो और निज सहज ज्ञानतत्त्वकी बात जिसे कठिन जच रही हो यह तो अज्ञानी है, ज्ञानीकी बात कह रहे हैं यहां केवल। उसे तो समझना चाहिये। क्यों भगवान से बढ़कर चला जाये लोक में कहावत है कि जो बहुत बढ़कर चलता है वह ठोकरे खाता है। जो प्रभुसे भी बढ़-बढ़कर बातें करता हो वह तो ठोकर ही खायेगा यह ही हाल हो रहा है मोही जीवका कि वह प्रभु की चालसे भी आगे बढ़कर अपनी चाल बना रहा है। तो उसका फल यह ही है कि वह चतुर्गतिमें भटकेगा और दुःखी होगा। अपनी आनन्दमय स्थिति पाना है तो आनन्द-रहित वस्तुको हितरूप न मानें किन्तु आनन्दमय जो निजतत्त्व है उसको ही हितरूप मानें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो इसे आनन्दकी स्थितिभी मिल सकती है। अपना सब कुछ हित, अपना सर्व कुछ कल्याण सामने रखा भीतर पड़ा है। केवल एक दृष्टि करनेकी बात है। सब कुछ दृष्टि द्वारा ही साध्य है, और उसकी दृष्टि के लिए विद्याभ्यास चाहिए और कुछ प्रकृति भी सुन्दर चाहिए। नम्रता हो, क्षमाशीलता हो, छल, कपटकी बात न सोचें, उदारता हो, और एक मुक्ति पानेका दृढ़ निर्णय किए हुए हों तो उसके लिए ये सब बातें सुगम हो जाती हैं। आत्मा तो एक कल्पवृक्षको तरह है। जो सोचे सो कर सकता है। जब यह खराब सोचता है तो खराब होता जाता है इसीसे यह अन्दाज बनाओ कि आत्मा कैसा परमेश्वर है कि जैसा चाहे वैसा बन सकता है। खोंटा चाहता है तो खोंटा बन लेता है। यह मनमें नहीं जान पाता कि मैं खोंटा बनूँ, पर खोंटा चाहे तो खोंटा रहेगा, अच्छा चाहे तो अच्छा बन जायगा। सब दृष्टिके द्वारा ही साध्य है। अपनी दृष्टि निर्मल बनायें और भेदनयसे सब चीजें परख परखकर जो अभेद ज्ञान ज्योति है, जिसके कहनेके लिए शब्द नहीं हैं, किन्तु भीतरमें ही ऐसी दृष्टि बनायें, ऐसा ही प्रयोग करें, ऐसा ही अपने आपमें विश्राम पाकर सहज निरख बनायें तो किसी क्षण यह परमात्मतत्त्व दर्शन देता है। वह दर्शन जिसे मिले वह है, भाग्यवान, वह है अमीर, इस ही परमात्मस्वरूपके दर्शन बिना अगर बाहर की सम्पदा कुछ कुछ बात मिलती भी जाय तो उससे इसका कोई सुधार नहीं है।

आत्मतत्वकी परभावविविक्तता—अपने आपमें जो सारभूत तत्व है, जिसका आश्रय करनेसे संसारके समस्त संकट दूर होते हैं, तत्काल भी शान्ति है और आगे सदाकाल शान्ति रहे, एतदर्थ जो अनाद्यनन्त अन्तः प्रकाशमार्ग सहज ज्ञानानन्दस्वरूप है, ऐसा वह परम उपासनीय तत्व ऐसा वह भागवत्स्वरूप अपने आपमें शाश्वत प्रकाश मान है उसकी बात कही जा रही है, उसे जो यर्थायमें निरखे कि वह प्रभुता मेरे पर्यायमें है सो बात नहीं है। जो में हूँ सो सिद्ध हूँ ऐसा मैं नहीं, किन्तु मेरा स्वरूप सिद्धके समान है। वह स्वरूप अपने आपमें अन्तर्निहित है, उसकी बात चल रही है। तो उसका परिचय किस तरहसे होता है ? उसका परिचय होता है शुद्धनयसे और अनुभव होता है शुद्ध नय, अशुद्धनय सभी नयोका परिहार करके, त्याग करके एक स्वयं सहज होने वाली निर्विकल्प दशा से। उस आत्मस्वभावकी बात देखिये-वह कैसा हूँ मैं ? परभावोंसे भिन्न हूँ, मकान आदिक से भिन्न हूँ। शरीरसे भी भिन्न हूँ। यहां तक तो समझनेमें अधिक दिक्कत नहीं पड़ती। अब उसके अन्दर और चलते हैं तो ये कर्म भी मैं नहीं हूँ। जहां यह विषय बनता है आगमद्वारा कुछ युक्ति द्वारा कि कर्म एक मेरेसे भिन्न पदार्थ है तो वह भी भिन्न है। अब उसके अन्दरमें और चले कि जो कषाय विषय इच्छाओंके भाव उत्पन्न होते हैं, यह मैं

Jain Education International

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मतत्त्व उनसे भी निराला है। यह समझने के लिए एक तो परमार्थ स्वभाव दृष्टिके परिचयकी जरूरत है। यहां ये विकार है विषय कषाय। दूसरे यह समझने की जरूरत है कि आत्मामें उठने वाले कषाय अज्ञानपरिणाम क्या हैं कि कर्मोदयमें आये, उनका विपाक हुआ, कर्ममें भी अनुभाग स्फुरण हुआ और उसी समय आत्मामें झलका और ग्रहण हुआ अर्थात् कर्मविपाकका निमित्त पाकर जीवमें विकार अज्ञान परिणाम हुआ। किया इस जीव ने ही। अगर कर्म राग करे, जीवके ज्ञान परिणाम को कर्म अगर करे तो जो ईश्वरवादी हैं वे भी कहते हैं कि ईश्वर ही जगत को बनाता है, सुख दुख देता है और उनकी तकदीर बनाता है, फिर तो उनके कहनेमें और यहां इस कर्मवादीके कहनेमें कोई अन्तर न रहा, पर कर्म तो राग परिणामको नहीं करता, किन्तु कर्मोदयका निमित्त पाकर जीवमें स्वयं राग परिणाम करने की बात बनती है। ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है। तो इस योगको ध्यानमें लेकर जानना चाहिए कि कषायभाव जो है वह परभाव है। परम निमित्त पाकर हुआ है, इसलिए परभाव है। स्वभावसे यह विपरीत है अतएव परभाव है। मैं अन्तस्तत्व तो अपने आपके स्वभावरूप ही हूँ। यह निबद्ध नहीं है, बँधा हुआ नहीं है। अब बँधा है पहिले न था ऐसा मैं नहीं मगर रागादिक परिणाम तो निबद्ध हैं, न थे अब हुए। तो जो बात ऐसी हो कि स्वभावसे विपरीत हो और पहिले न था, अब हुआ हो तो वह नियमसे सहेतुक होता है, अनैमित्तिक नहीं होता है। यह निमित्त नैमित्तिक योग की बात है। वस्तुस्वातंत्र्य तो समझ लीजिए वस्तुस्वरूपको देखकर। वह स्वयं उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त है। उसमें स्वतः अपने आप ही उत्पादव्यय होता जाता है, मगर विकार परिणाम जो होता है कभी भी किसी पदार्थमें वह तो स्वयं उपादान और स्वयं निमित्तसे ही बने तो शाश्वत हो जायगा, तो उसमें निमित्त पर उपाधि है, यह निमित्त उपाधि है, परभाव है, मेरा स्वरूप नहीं है। इन विषय कषायोंसे मैं निराला हूँ। और इसीके प्रसंग में और भी निरखिये विकल्प, विचार, बुद्धि तर्कणा ये सब भी मैं नहीं हूँ क्योंकि ये भी नैमित्तिक हैं। कर्मका क्षयोपशम और उस जाति का राग ये सब जब आते हैं तब ये विकल्प विचारकी स्थितियां बनती हैं, उनसे भी मैं निराला हूँ।

निर्विकल्प आत्मस्वभावकी निरख—हां तो अब ध्यान में आया कि परभावों से मैं भिन्न हूँ, तो कोई कह रहा—हाँ मैं खूब समझ गया। आप यह कहते हैं कि यह आत्मा रागद्वेषादिक विकारभावों से निराला है, तो फिर ये जो ज्ञान उठते हैं हमारे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदिक, तो उस रूप तो मैं होऊंगा ? तो दूसरा विशेषण देते हैं, नहीं नहीं, इस रूप भी मैं नहीं हूँ मैं तो परिपूर्ण हूँ। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तो अधूरे ज्ञान हैं, इस रूप मैं वहीं

Reprinted from www.sahjanandgranth.com

http://www.jainkosh.org

हूँ। ये मेरे स्वरूप नहीं है, किन्तु मैं तो पूर्ण हूँ। इसको सुनकर कोई दूसरा बोला, मैं समझ गया। आप कह रहे हैं कि मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। वही मेरा स्वरूप हुआ, वही स्वभाव हुआ। तो तीसरा विशेषण देकर आचार्यदेव कहते है कि नहीं नहीं, केवल ज्ञानस्वरूप भी मैं नहीं हूँ। लक्षण की बात कह रहे हैं, स्वरूप और स्वभाव की बात कह रहे हैं। जो स्वरूप होता है, जो स्वरूप होता है उसका आदि, मध्य अन्त नही हुआ करता, याने पहिले न था, अब हुआ, ऐसा नहीं, अथवा है और मिट जायगा ऐसा नहीं। तो कहते हैं कि आद्यंतविमुक्तं अर्थात आदि और अन्तसे रहित है ऐसा मैं हूँ अन्तस्तत्व। केवल ज्ञानका अन्त तो न होगा प्रवाहरुपमें लेकिन आदि तो है। किसी दिन केवलज्ञान प्रकट हुआ है तो वह स्वभाव नहीं है। तो कोई चौथा श्रोता बोला, मैं समझ गया। आप यह कह रहे हैं कि मैं एक ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानस्वरुप हूँ, सहज ज्ञानरुप हूँ। तो उसका उत्तर यह है कि हाँ भाई कुछ कुछ समझे तो हो कि मैं एक सहज ज्ञानस्वरुप हूँ। जो अनादि अनन्त है। जिसकी न आदि है न अन्त है, जो ध्रुव है, सनातन है; ऐसा यह मैं ज्ञानस्वरुप हूँ, आप यह कह रहे हैं। हाँ समझ तो गये कि यह कह रहे, लेकिन अभी ठीक नहीं समझे। अरे कैसे नहीं समझे ? यो नहीं समझे कि जब तक आप उस स्वभावको यों सामने रखकर बोलेंगे कि वह एक रुप है, एक स्वरुप है, एक है, तो जिसके विषयमें आपको एक कहने का विकल्प होगा आप उस समय उसका अनुभव नहीं कर पा रहे तो उस एक के विकल्पमें भी अनुभव नहीं होता और अनुभव में जाना गया स्वभाव, आत्मस्वभाव परमार्थ यथार्थ है। तो अन्तमें निर्णय होता है कि संकल्प विकल्प मुक्त। वह आत्मस्वभाव तो संकल्प विकल्प से रहित है। एक है इतना भी जहाँ संकल्प विकल्प नही, किन्तु जब ज्ञानमें ज्ञानस्वभाव ज्ञेय होकर उस ही रुप उपयोगी बन गया है, वहाँ जाना गया कि यह है आत्मस्वभाव। ऐसा यह आत्मस्वभाव है, विलीन संकल्प विकल्प जाल है।

आत्मतत्वके जाननेके यत्नमें जो विस्तार की अटकलें—जिसके आश्रयसे मुक्ति मिलती उस तत्त्वको समझनेके लिए यह सब प्रयास चल रहा है। कैसे समझें उस तत्वको ? मोक्षमार्गका प्रयोजनभूत तत्त्व उसे समझाने के लिए व्यवहारनयसे विवरण करके बताया जा रहा है। तत्व ७ प्रकार के हैं-जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। अच्छा अब एक निर्विकल्प ज्ञानस्वरुप तत्त्वको समझानेके लिए इतना फैलाव क्यों किया जा रहा है ? यों किया जा रहा कि अनादि से जीव फैलाव में ही तो पड़ा हुआ है। कषायभाव हो रहे, कितनी विडम्बनायें हैं। कितनी योनियों में जन्म है। कितनी तरहके फैलाव है। ऐसे फैलावमें सन्तुष्ट रहने वाला ऐसे फैलावमें अपनी विधि बनाने की धुन रखने वाला यह जीव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कैसे समझे ? उसको समझने के लिए प्रयास चल रहा है। तो ये ७ तत्व हैं यह जानें। उनके समझने पर जान लीजिए यह है भूतार्थ परमार्थ ज्ञानस्वरुप। इन ७ के समझनेसे कैसे समझमें आता है ? तो पहिले समझें। जीव किसे कहते हैं ? जिसमें ज्ञान हो, चेतना हो, समझ हो उसे कहते हैं जीव। देखो पहिले तो अपने आपमें यह ही श्रद्धा होनी चाहिये कि मैं जीव हूँ। लोग सोचेंगे कि सभी लोग तो समझते हैं कि मैं जीव हूँ। सभी लोग कहते हैं कि मैं जीव हूँ। उसकी श्रद्धा तो बनी हुई है। कहां मिट्टी। नहीं नहीं, सबको श्रद्धा नहीं हो रही है कि मैं जीव हूँ। कोई कहता है कि पृथ्वी, जल अग्नि, वायु, ये चार तत्व मिल गए तो जीव बन गया। ऐसा कहने वाले पौराणिक दृष्टिसे तो चार्वाक कहलाते हैं, किन्तु ऐसा कहने वाले बहुत संख्याँमें जीव मिलेंगे। क्या है ? मिट्टी, जल, आग और हवा ये चार मिल गए तो जीव बन गया। ऐसा भी तो कहने वाले बहुत व्यक्ति हैं। तो कैसे समझे कि मैं जीव हूँ। जब यह समझों कि मैं जीव नामका पदार्थ अलग स्वतंत्र सत हूँ तब जीव की श्रद्धा कहलाती है। यों कहनेको तो कुछ भी कहिये, कहना पड़ेगा चारके समूहको-पृथ्वी, जल, अग्नि और हवा। ऐसा कहने में उनको मदद किसने दी ? यहां भी देख रहे कि यह शरीर पृथ्वी की तरह है। इसे यों ही बेपरवाह छोड़ दिया जाय तो कुछ दिनोंमें वह मिट्टी रुप बन जाता है बहुत सालकी बात है, एक दिनमें जा रहा था, सुबह शौचसे लौट रहा था तो वहा मैंने अपने मनमें विचारा कि देखो मांस तो छूने लायक होता नही और मांस कच्चा हो तो जीवोत्पति होती। और वह अगर सड़ जाये तो जीवोत्पत्ति होती अब यहां कितने ही मल मूत्रादिक के साथ मांस लण्ड भी पड़े हुए है, यह सब पृथ्वी अशुद्ध है, तो फिर मैं कौनसा ड़ला लेकर हाथ धोऊं ? यह पृथ्वी सब अशुद्ध है। यहां तो पहिले मांस पड़ा था, उसका पृथ्वी में मिलाना हो गया। अनेक जगह टट्टी गोबर आदिक पड़े हुए थे वे पृथ्वी बन गये, तो वे सब पड़े हुए मिट्टी के डले मांस ही तो हैं। मैं कैसे हाथ धोऊं तो धोना ही था, धोये बिना तो चलता नहीं। एक दो दिन बाद मुझे उसका समाधान मिला। जो पदार्थ है वे पड़े रहे और कालान्तर में बहुत समय बाद ये परिवर्तन करके जब मिट्टी रुप बन जाते हैं तो मिट्टी एक पृथ्वी कार्यक बन गई। स्थावरोंमें मांस होता नहीं तो उनमें मांसकी गंध आयगी कहां ? तो समझ में आया तो बात क्या चल रही थी कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारके पिण्डको जीव कहते हैं, इन्हें चार्वाक कहते हैं, जिनके गुरुका नाम वृहस्पति है, याने जो चार्वाक हैं उनके गुरुका नाम है वृहस्पति तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारके पिण्डको जीव कहते हैं। जीव अलग नही है, इसीपर यह सिद्धान्त बना कि जब तक जियो सुखसे जियो, चाहे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर्ज लेना पड़े, उसकी परवाह न करो, पर जियो तो सुख से जियो इस जीवको मरने के बाद फिर आना कहा होता है ?.....

सर्वस्थितियोंमें आत्मश्रद्धासे लाभ की संम्भावना—एक बार ऐसेही गृहस्थावस्था में छोटी उम्रमें कुछ मित्रजन एक चर्चा कर रहे थे। उनमें यह विवाद छिड़ गया कि सुख किसमें है ? जीवकी श्रद्धा करनेमें, धर्म करनेमें, व्रत उपवास आदि करनेमें सुख है या खूब खावो पियो, खूब भोग भोगो। खूब मौज करो, इसमें सुख है ? ये दो पक्ष चले। अब हमने तो यह पक्ष लिया कि जीवकी श्रद्धा करने से शान्ति मिलेगी। उसने यह पक्ष लिया खूब खाओ, पियो, मौज करो, भोग भोगो, खूब यश फैलावो, खूब आराम के साधन जोड़नेसे सुख होता है। बहुत देर तक चर्चा चलते चलते अन्तमें हमने एक यह बात रखी कि देखो सभी जीव सुख शान्ति चाहते है, और कुछ नहीं चाहते। ऐश आराम के साधन भीगकर भी आखिर उनकी चाह क्या है ? सुख शान्ति। दूसरी कोई चाह तो नहीं है। अब यह विचार करलो कि २४ घन्टेकी चर्चा में भी देखलो, जिसने यह ख्याल बनाया है कि धन जोड़ लें, ऐश आराम के साधन जोड़लें, खूब अच्छा खानेपीने में, कुटुम्ब आदिकका वर्द्धन करने में सुखशान्ति है, वे भी यह देखलें कि ऐसा करते हुएमें उनको वास्तव में कुछ चैन मिलता है या नहीं। सुखकी बात छोड़दो, शान्ति, विश्राम, विराम कुछ मिलता है कि नहीं। जैसे शरीर थक जाय और शरीर को यों ही ढीलाढाला छोड़कर पड़जाय, एक विश्राम मिलता है ना, इसी तरह इनसब विषयप्रसंग की बातोंमें पड़कर कभी किसीको विश्राम मिलता है क्या ? नही मिलता। चाहते हैं सुखशान्ति। अच्छा अब ध्यान दीजिए कि मैं जीव हूँ। सबसे निराला हूँ, केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। सबसे निराला हूँ। केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। मेरा काम केवल जाननेका है। इससे कुछ सम्बन्ध नही। यह शरीर न्यारा है। मैं जीव न्यारा हूँ। ऐसे जीवका जब उपयोग करें तो उस समय कुछ शान्ति मिलती है कि नहीं ? चाहे वह बात झूठ हो, जैसे कि विपक्षी ने कहा कि जीव नामकी कोई चीज नहीं है, मानों जीवकी सत्ता मानलें कि मिथ्या है, मिथ्या सही, लेकिन इस मिथ्यापर भी दृष्टि डालते हैं कि मैं सबसे निराला हूँ, ऐसा कोई एक विलक्षण जीव हूँ ऐसी दृष्टि डालते हैं। जरा डालकर देखोतो सही कि कुछ चैन मिलती है कि नहीं ? उसने कहा ? हां कुछ मिलता तो है क्योंकि बाहरके बहुतसे विकल्प हटने से कुछ चैनतो मिलता है ना ? ठीक है। अच्छा मान लिया। मगर इन सांसारिक सुखसाधनोंसे इस भवमें तो मौज मिलता है। ठीक है, इस भवका मोज लूटलिया मगर परभव निकल आया तो क्या करोगे ? तबतो फिर कुछ सुख न पासकोगे। इससे एक जीवतत्त्व की श्रद्धा करो। इस जीव-तत्त्वकी श्रद्धा करनेसे इस भवमें भी सुखसाता रहेगी और परभव भी अच्छा रहेगा। इस

जीव के बारे में तो सबका अनुभव है। जिसे कहते हैं अहँप्रत्ययवेद्य। याने हूँ हूँ इस प्रकार के ज्ञानके द्वारा सबको सभझ है कि मैं हूँ। हूँ के बारेमें किसी को सन्देह नहीं। मैं हूँ। और बाहरमें भी लोग समझते हैं कि यह जीव है। जैसे कोई पुरुष किसी कुत्ता बिल्ली आदिक जानवर के लाठी मारे तो लोग उसे रोकते हैं भाई इस बेचारे को क्यों मारते हो ? और अगर कोई ईंट पत्थर वगैरह में लाठी मारे तो उसे तो कोई नहीं रोकता ! वह तो सींधे चला जाता हैं। कोई यह तो नही कहता कि भाई तुम इस भीट को क्यों मार रहे ? तो सबकी दृष्टिमें यह बात है कि यह जीव नहीं है और यह जीव है। यह सबको श्रद्धा है। तो इतनीभी श्रद्धासे कामन चलेगा। किन्तु एक विशुद्ध जीव याने स्वयं खुद अपने आप जितना है उतना ऐसा जीवस्वरूप ज्ञानमें आयेबिना धर्मके मार्गमें गति नहीं होती।

जीवविस्तार में सहजजीवस्वरूप की खोज—इतना जानें तो यहभी बहुत है कि यह जीव है, पशु जीव है। पक्षी जीव है, कीड़ा मकौड़ा जीव है। जान लिया कि जीव है। इसमें कुछ तो फायदा हुआ, कुछ तो दया का काम चला। कुछ तो तुम्हारा ठीक व्यवहारहुआ। लेकिन सदाके लिए संसार के संकटो से छूटना बने उसका प्रयोजन भूतजो जीवतत्त्वका श्रद्धान है वह अभी पूर्ण नहीं हुआ। कुछ और समझना होंगा ये जो नरक तिर्यंच, मनुत्य, देव आदिक जीव दिखते हैं ये जीव विशुद्ध जीव नहीं बर्थात् स्वयं अपने आप अपनी सत्तासे स्वयं जोकुछ होसकता है वह जीव नहीं। अच्छा जोवके बारेमें यहां जो कहा जा रहा है सो उस विशुद्ध जीवकी बात इन ७ तत्त्वों में अभी नहीं रखी जा रही है। क्यों नहीं रखीजा रही हैं कि ऐसे विशुद्धतत्त्व को अगर इस जीवनामसे लें तो उसका बंधभी नहीं, मोक्षभी नहीं। वहतो स्वभावमात्र है। उसजीवको इन तत्त्वों में जो प्रतिपाद्य है उनको नहीं लिया, किन्तु पर्यायदृष्टि से भी जीव, अजीव, आश्रव, बंध संवर, निर्जरा और मोक्ष इन ७ तत्त्वोंमें लिया गया है, किन्तु इन ७ में द्रव्यदृष्टिसे निहारनेका पौरुष कराया जायगा, और अन्तमें जो एक निष्कर्ष तत्त्व मिलेगा वह है आश्रय के योग्य चीज, जिसके सहारे पुरुष मोक्षमार्गमें चलता है, यहां जीव तत्त्वकी बात कह रहें जीव पदार्थ यह स्वतंत्र सत् है। जैसे अणु-अणु सत् हैं इसीप्रकार जींव भी स्वयं सत् हैं कहीं पृथ्वी आंदिकके मिलनेसे नहीं बना। अगर मिट्टी आदिकके मेलसे यह जीव बना तो जीव नाम का कोई स्वतंत्र सत् नहीं है, और मेल से यह जीव बना तो जीव नामका कोई स्वतंत्र सत् नहीं हैं, और मेल से जीव बन जाय तब तो बड़ी गड़बड़ी हो जायगी। बड़ी मुश्किल पड़ जायगी। कोई अगर मिट्टी की हांडी आग पर चढ़ा दी जाय उसमें पानी भर दिया जाय, उसमें खूब आग जलाकर खिचड़ी पकाई जाय तो देखों वहां मिट्टी भी है, आग भी जल रही है, पानीं भी भरा है, और हवा भी वहां

Report any errors at vkasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

खूब भरी है। तभी तो देखो उस हांडी के ऊपर रखा हुआ ढक्कन उछलता है। तो देखो वहां ये चारों चीजें मौजूद हो गई फिर तो उस रसोईघर में हाथी, घोड़ा, शेर, बाघ आदि अनेकों प्रकारके जीव निकल पड़ने चाहिये। कोई कहेगा कि देखो जैसे एक कोदो नाम का अनाज होता, उस कोदो की रोटियां भी बनाकर खाई जाती है, उसके खाने पर तो कोई हानि नहीं होती पर उस कोदो की विधिपूर्वक शराब बनाली जाय तो उसमें तो बेहोशी पैदा कर देने की शक्ति आ जाती हैं। इसी तरह इस पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में भी एक ऐसी शक्ति है कि यदि वह इस तरह से मिल जाय तो वह जीव बन जाता है। यह दृष्टान्त देते हैं वे गुरु वृहस्पति। लेकिन वे यह तो बतलावें कि वैज्ञानिक भी जानते हैं कि जो मूलमें जिस जिस जाति का तत्त्व है उसमें कितना ही मेल मिलावट हो, कितना ही कुछ हो वह अपनी जातिको छोड़ सकता है क्या ? वह ती अपने स्वरुप में है। तो जीव भी एक चेतता जातिको लिए हुए पदार्थ है। वे पदार्थ कहीं उन्हें मलिन भीं बना सकेंगे क्या ? कोदो में शक्ति चाहे वह व्यक्त हो गई, वह भी अचेतन हैं, वह भी उसी रुप है वह तो ठीक है कि हो गई शराब, पर वहाँ अचेतनसे अचेतन ही हुआ। किसी अचेतनसे चेतन बन जाय यह नहीं हो सकता, क्योंकि जाति भी न्यारी न्यारी है। तो चेतन जाति एक जुदी चीज है। वह चेतना जिसमें पायी जाय उसे कहते हैं जीव। उस जीवका श्रद्धान करना चाहिए। मैं जीव हूँ। उस जीव का ही परिचय कराने के लिए गुणस्थान मार्गणाओं का बहुत वर्णन है। मार्गणाओं की दृष्टि से देखें तो जीव ५ प्रकारके मिलेंगे। नारकी तिर्यंञ्च, मनुष्य, देव और सिद्ध। इन्द्रिय जाति की दृष्टि से बतायेंगे तो कहा जायगा कि जीव छः तरहके मिलेंगे, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पन्चेन्द्रिय और इन्द्रियरहित। यों मार्गणावों द्वारा जीवका परिचयकराया गया है।

धर्मप्रियजनोंका भूल लक्ष्य ज्ञानभाव—उस अँतस्तत्वका परिचय करे जो कि सहज है, सनातन है, शाश्वत है, जिसे निरख करके वेदान्तियोंने एक वेदान्त बनाया। वेदान्त क्या है ? वेद का अन्त है जहाँ उसे कहते हैं वेदान्त। वेद मायने है ज्ञान, हमारा यह ज्ञान, यह विकल्प, यह विचार, वह कहलाता है वेद। ज्ञानका जहाँ अन्त हो गया, समाप्ति हो गई उसे कहते हैं वेदान्त। याने ऐसी एक निर्विकल्प स्थिति; ऐसा एक चैतन्य स्वरुप सत जहां विकल्प विचारका अन्त ही जाता, वह है वेदान्त। शब्द तो सबके अच्छे होते हैं। जितने भी मजहब है उनके जो जो भी शब्द हैं वे उत्तम हैं और तत्वको बताने वाले हैं। जैसे बौद्ध, माने ज्ञान स्वरुप, ज्ञानस्वरुप अँतस्तत्वको माने सो बौद्ध। वेदान्त, जिसमें विकल्प विचारोंका अन्त हो जाय उसे कहते हैं वेदान्त और आज कलके शब्दोंमें जैसे हिन्दू जो हिंसा से दूर रहे उसे

Version 2

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहते हैं हिन्दु । मुसलमान जो ईमान (सच्चाई) पर कायम रहे सो मुसलमान । शब्द किसी के ऐसे नहीं हैं जो धर्म के विरुद्ध अर्थ बताते हों । लेकिन जब कभी कभी पक्ष हो जाय तो क्या उस शब्द के आधार पर कुछ भी दृष्टि जाती ? जैसे जैन—जैन कोई सम्प्रदाय है क्या ? अरे जो राग द्वेषको हटाये उसे कहते हैं जिन और जिनके द्वारा प्रणीत धर्मको जो माने उसे कहते हैं जैन । मायने रागद्वेषको मेटने के लिए जो सत्य मार्ग है उस मार्गको चले उसे कहते हैं जैन । ये गाय बैल भैंस वगैरह भी तो जैन हो सकते । सूकर सिंह बन्दर आदिक भी बहुत से जीव भी तो जैन ही गये थे । उन्हें सम्यग्दर्शन हो गया, वे वीतराग विज्ञानका अनुभव करते थे यथा यथा समय । तो सभी शब्द ले लो वैसा दयाने जो लोकमें सर्वाधिक फैलने वाली वस्तु हो उसे कहते हैं विष्णु । वह है ज्ञान देखो सबसे अधिक फैलने वाला होता है ज्ञान । कैसे ? जरा यहीं बतलाओ दो तरहकी चीजें सामने रख रहे, मोटी और पतली । मोटी बड़ेका नाम है और पतली सुक्ष्मका नाम है । एक बात सामने रख रहे कि बतलाओ मोटीमें पतला समाता है या पतलामें मोटा ? आप लोग तो सोचते होंगे कि क्या जवाब दें । तो इसका उत्तर हमी दे रहे, क्योंकि अधिक समय न लगे । देखो पतलेमें मोटा समा जाता है । जो सूक्ष्म है उसमें बादर समा जाता है । कैसे, तो जरा वैज्ञानिक हिसाब से भी देखो और अपने सिद्धान्तसे भी देखोजैसे जमीन और पानी, इनमें मोटी है जमीन जमीनको अब देखो पानीके बीच जमीन है या जमीनके बीच पानी है, तो आजकलके जो वैज्ञानिक लोग हैं वे भी बता देंगे कि समुद्रके बीचमें ही तो पृथ्वी है, देखो पानी के बीच जमीन है, तो पानीमें जमीन समा गई । पानी पतला है जमीन मोटी है तो पानीमें जमीन समा गई । सिद्धान्तसे भी देखो—जम्बूद्वीपसे दुगुना है लवण समुद्र, कितना दुगुना है, दो लाख योजनाका है ? और दोनों तरफ ४ लाख योजन हो गया । उसका विस्तार देखिये—जिसे कहते हैं वर्ग । तो लवण समुन्द्रमें जम्बूद्वीप समाया हुआ है । सभीद्वीप लेलो तो अन्तमें जो स्वयंभूरमणसमुद्र है उसमें कितना विस्तार है कि उसमें सब असंख्याते द्वीप समा गए । तो पानी अधिक है कि जमीन ? पानी । अच्छा अब पानीको ले, जमीन छोड़ दें, जमीनका मुकदमा निपट गया । अब पानी और हवामें पतला कौन है ? हवा । तो हवा में पानी समा गया । जहाँ पानी है वहां भी हवा है । और पानीके बाहरभी हवा न हो तो पानी कैसे ठहरें ? हवामें पानी समा गया । पानीका मुकदमा मिटा । अब हवाका मुकदमा लो । हवा और आकाश, दोको सामने रखें । हवा पतली है कि आकाश । आकाश तो इतना बड़ा है कि जहा हवा है वहां भी आकाश है और जहां नहीं वहां भी आकाश है । जिसे कहते हैं, अलोकाकाश जहां केवल आकाश ही आकाश हो—जीव पुद्गल धर्म, अधर्म, और काल, ये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कोई द्रव्य न हों उसे भी कहते हैं ना आकाश। तो देखो आकाश बड़ा है ना? आकाशमें हवा समा गई, लो हवा का भी मुकदमा निपटा। अब आकाशका मुकदमा लो। आकाश और ज्ञानमें बतलाओ क्या पतला है? ज्ञान। देखो अब यह विधि बन गई कि जो अधिक जगह फैलता हो वह पतला। तो ज्ञान कितना फैला हुआ है? आकाशसे भी बड़ा ज्ञान है। कैसे कि ज्ञानने लोकको भी जाना। अलोकको भी जाना, समस्त आकाशसे जाना और उस ज्ञानमें अभी इतनी सामर्थ्य है कि ऐसे ऐसे असंख्याते लोक और भी हो तो उनको भी जान ले इतने उतने द्रव्य और भी हो तो उन्हें भी जाने। ज्ञानमें कभी नहीं आती, क्योंकि ज्ञानका काम है कि जो सत् हो उसे जान जाय। सत् जितने हैं उतने जाननेमें आ ही जाते हैं शुद्ध ज्ञाताके। अब उतने ही और भी सत् होते तो उनके जाननेमें क्या ज्ञानमें ढील पड़ जाती कि ऐ सत् अब तुम हमारे ज्ञानमें मत आवो? क्या ऐसी कोई बात आती है कि यहां जगह खाली नहीं है? अरे कितने ही सत् आते, सब उस ज्ञानमें समा जाते। तो देखो सबसे सूक्ष्म हुआ ज्ञान इतना सूक्ष्म है विष्णु है, व्यापक है तो ऐसे विष्णु स्वरूप ज्ञानको माने उसे कहते हैं वेष्णव। और-और भी जो हों सबके अर्थ एक शुद्ध अंतस्तत्वको झलकाने वाले ही मिलते हैं।

कानों-कान जाते-जाते मौलिकता का रूप—तर्कणा करो—जब बहुत पूर्वमें जब धर्मपरंपरा चली होगी तब उसमूलमें प्रायः सब उस अंतस्तत्व के नजदीक ही आये होंगे। जैसे-जैसे वचन का विस्तार बढ़ा वैसे ही वैसे यह बात बढ़ती गई। जैसे कहते हैं ना कभी-कभी अजी हमने सुनाकि आपने ऐसा कहा था। अरे तुमने सुना था तो भाई सुनी बाततो सच्ची नहीं होती जरा उसे देखकर बोलो। अजी बात ऐसी है कि हमने सुना है। अरे सुनी बात हम न मानेंगे। जो देखीबात हो सो सच है। हम सुनी बात न मानेंगे; क्योंकि एकने एकसे कहा, उसने फिर किसी दूसरे से कहा, इतना बदल-बदलकर कहना होता जायेगा। तो १०० कानोंके बाद उसपहुँची बातमें कितनी बदलहो जायेगी। तो हम सुनीबात नहीं मानते। हमतो देखी बात मानते हैं। कोई कहे अजी आप क्या कहते? हमनेतो खुद आंखों देखा। तो कोई यहभी कहेगा कि भाई देखी हुई बात भी तो सही नहीं है। हमतो देखी हुई बातभी झूठ समझते हैं। फिर वैसे सच समझें? जो अनुभवमें उतराहो वह सच है। कैसे सुनीबात झूठ है इसके लिए तो कोई दृष्टांत देनेकी जरूरत नहीं है, इसेतो सब मानते हैं मगर देखी हुई बातभी झूठहो सकती है क्या? हां हो सकती है। एक दृष्टांत लोग एक राजाका पलंग सजानेवाला नौकर था। वह रोज राजाका पलंग सजाया करता था। वह पलंग स्प्रिंगदार था। उसपर हाथधरेंतो झट वह दबजाये। रोज-रोज बिछाते हुए एकदिन उसनौकरके मनमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आया कि देखोहमें यह पलंग बिछाते हुए बहुतदिन हो गए, परन्तु अभीतक हम यह न जान सके कि इसपलंगमें सोने से कितना सुख मिलता है। मनमें आया कि जरा एक–दो मिनट इसपर लेटकर देखेंतो सही। ज्योंहि वह उसपर लेटातो ऊपरसे चद्दर डाललीं। हुआ क्याकि दो-चार मिनट में ही उसे नींद्रा आ गई। सो गया। कुछदेर बादमें रानी आयीतो वहभी रोजकी भांती उसी पलंगपर सोगई। उसे पता न था कि यह नौकर सो रहा है। वहतो उसे राजाही समझरही थी। सो नौकर और रानी दोनो सो रहे थे, राजा आया तो यह दृष्यदेखकर क्रोधसे भरगया। सोचाकि यहकौन मेरी रानीके साथ सो रहा ? शायद मेरी रानी दुराचारिणी है। सोचाकि मैं तलवारसे इनदोनों का सिर अभी उड़ा दूँ। पर ध्यान आया कि अरे विद्वानों ने तो कहा है कि जल्दीमें कोईकार्य न करडालना चाहिए, उसके प्रति कुछ सोचना चाहिए। अब राजाने सर्वप्रथम रानीको जगाया। रानी ने अपने सामने राजाको देखा और पलंगपर पड़े हुए व्यक्ति देखातो वह आश्चर्य से भरगई और बताया कि मैंतो यही समझकर इसपलंगपर सो गईं थी कि आप सो रहे हैं ! बादमें नौकरकों जगायातो वह नौकर भी डरकेमारे कांपरहा था। उसने साराहाल बताया। तब राजाको सहीज्ञान हुआ। तोदेखिये आँखोंदेखी बातभी झूठरही। अनुभवकी बात सही होती है। जैसे एक वन्धया सौतने अपनी सौतके लड़केको लेनेके लिए मुकदमा किया, कहा यहमेरा लड़का है जो पतिका सो मेरा। दोनों कहे मेरा मेरा। तव चतुर निर्णायकने कहा कि ठीक है दोनों का है सो इसके आधे आधे दो टुकड़े तलवार से किए देते हैं सो एक-एक टुकड़ा लेलेना। तलवार वालेको बुलाया। तब पुत्रवती कहती है कि महाराज यह लड़का मेरा नहीं, इसका है इसेही देदो। राजाने अनुभव से समझ लिया कि इस मना करने वाली का ही यह लड़का है। खैरबात यह कह रहे कि कानों कान बात जाते जाते धर्मरूप भी कुछसेकुछ बन सकते। तो मूलमें धर्मआत्मा के सहज स्वभावरूप ही है।

पदार्थके विकृत होनेकी पद्धति—पदार्थ कैसे विकृत होता है और कैसेमुक्त होता है इसकी व्यवस्था सभीमें एकसमान है। जैसे चौकी गंदी हुई तो वहाँ दोबातें ध्यानमें रखनी होंगी कि एक चौकी और एक अचौकी। जो चौकी नहीं है वह सब अचौकी पदार्थ हैं। प्रकृत में जो चौकीसे चिपट सकता है वह अचौकी है चौकीमें अचौकीका आना आश्रव है। चौकीमें अचौकीका बंधना बंध है। चौकीमें नईअचौकी न आयेसोसम्बर है और चौकीमें जो अचौकी आयी है बह झड़े सो निर्जरा है और जब अचौकी बिल्कुल हट जाय, केवल वही चौकी रह जाय जो अपने सहज सत्त्व से हैं इसे कहते हैं मोक्ष प्रत्येक पदार्थमें विकार होनेकी पद्धति एक

Report ans errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

ही है, कि वह किसी परसंगको पाकर विकृत होता है। अपने आप हीं कोई निमित्त अपना ही लेकर विकृत हो जाय तो इसमें पदार्थका स्वरुप नही ठहरता, पदार्थका विकार स्वभाव बन जाता और कभी भी उस विकारसे मुक्त होनेका अवकाश नहीं हो सकता। विकार होनेकी यह ही पद्धति है कि उपादान खुद इस योग्य हो और अनुकूल निमित्ति सन्निधान हो विकार होता है। अनुकूल निमित्त सन्निधान होने पर विकार होता। ऐसा सुनकर यह अर्थ न लेना कि फिर वस्तु परिणमनेमें परतंत्र हो गई। बात भली प्रकार समझना कि एक पदार्थ से अन्य वस्तुका सन्निधान मिला इतनी ही तो बात हुई। और उस कालमें उस पदार्थको तो परिणमना ही था । परिणमें विना कोई पदार्थ रहता तो है नहीं तो अब यह पदार्थ ऐसे ही योग्य उपादानमें था सो विकाररूप परिणम गया। जैसे दर्पण के सामने कोई लाल पीला पदार्थ आया और दर्पण लाल पीला प्रतिबिम्ब रूप हौं गया तो दर्पणको लाल पीला रूप प्रतिबिम्ब रूप परिणमने में परतंत्रता नहीं है अर्थात् परिणमन मात्र उस तरहका जो वह परिणामा वह दर्पण अपने आपके बलसे अपनी शक्तिसे परिणमा पर इतनी बात अवश्य है कि अन्य पर उपाधिका सम्बंध होने पर ही वह परिणमा, पर परिणमनेमें परतंत्र नहीं है। योग ऐसा निमित्त नैमित्तिक है कि परसंगमें ही विकाररूप परिणम सकता है। ऐसे आत्माकी बात यह जीव जो अजीवरूप परिणम रहा, क्रोध, मान, माया, लोभादिका रूप परिणम रहा तो यह ऐसे ही कर्मका सन्निधान पाकर परिणमता है। इस अन्तः रहस्यको जिसने जाना वह एक साक्षात् उस तत्त्वका ज्ञाता बन गया।

उत्तम विवेकः—कौन पदार्थ किस रुप तक परिणम सकता है' इसका विवेक एक बहुत ऊँचा विवेक है। जैसे मिट्टीका घड़ा घड़ा रूप बना तो उसमें निमित्त है कुम्हारका व्यापार, इसीप्रकार जब जीव, क्रोध रूप परिणमा तो वह क्रोध जीव निा गांठकी चीज है क्या ? क्रोध रूप परिणमते हुए कर्म की झलक है। जीव तो ज्ञानमात्र है । वह जानन स्वरूप को रखता है। उसके जाननेमें ही विकार हुआ। जाननेमें ही वह रंग आया। वह रंग कर्मका है। कर्म अचेतन है। वह खुद अनुभव कर सकता नहीं, परन्तु अनुभाग जो भरा पड़ा हुआ था वह अनुभाग फूटा कि वह कर्म ही विकृत हुआ, और ऐसे विकार रूप परिणमते हुए कर्मकी झलक हुई जीवमें । इसने अपने आपमें उस रँगको अपना लिया। न अपनाये तो इसमें व्यक्त विकार रह जाता है। अपनाये, बुद्धिमें ले, उपयोगमें आये तो वह व्यक्त विकार बन गया। तो यह कर्म रेग है, यह मेरा स्वरूप नहीं है, उससे मेरेको कुछ पड़ा नहीं है, मैं तो विविक्त हूँ। निराला हूँ, अब भी निराला हूँ। जीव जीव स्वरूपमें है, कर्म कर्म स्वरूपमें है। पर ऐसा विपाक जब आया तो जीवके उपयोगमें वह रंग बन गया। पानी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में रंग घुल जाय और सारा पानी रंगीला हो जाय। उस रंगे हुए पानीमें, जैसे लाल रंग डाला तो पानी लाल हुआ, उस लाल पानीमें जैसे यह विवेक करना कठिन हो जाता कि पानी तो अपनी एक स्वच्छता मात्र है। इसमें जो रंग है वह पर द्रव्यका रंग है और जल एक ऐसी चीज है कि जिसमें वह रंग इस प्रकार समा गया है। वही रंग, वही पुड़िया किन्हीं और पदार्थोंमें मिला दे तो वहां तो नहीं समाता ऐसे ही जीव एक तो स्वच्छता मात्र है कि यहां कर्मपाक हो तो वह रंग इसमें समा जाय। ऐसा रंग कितना ही समा जाने पर भी आत्मा तो एक जाननमात्र है। उसका तो एक ज्ञान विकल्प बन गया। वह विकल्प भी रंग के सम्बन्धसे बना। कैसी भेद विज्ञानकी सूक्ष्म प्रक्रिया है जिसे कहते हैं सूक्ष्मसंधिमें एक विवेक छैनी को पटक दिया। यह कर्म राग है और यह जीवका एक चित्स्वरूप है, चित्-क्रिया है, ऐसा विवेक करने वाला ज्ञानी पुरुष समझ गया अपने आपके भीतरी स्वरूपको, अब उसे कोई भी बाह्य पदार्थ संक्लेशके हेतुभूत नहीं हो पाते। परिस्थितिवश कुछ भी हो, फिर भी अन्तरात्मा अंतः निराकुल रहते हैं। जो गान गाया जाता है, सम्यग्दृष्टियोंका कि रमते अनेक देवांगनाओंके साथ फिर भी सम्यग्दृष्टि देव उससे हटा हुआ है। और कष्ट पा रहा है अनेक नारकियोंके द्वारा सम्यग्दृष्टि नारकी फिर भी वह अन्तः निराकुल है।

आत्मबोधका अलौकिक प्रतापः—आश्चर्य होता है कि सुकौशल सुकुमाल आदिक मुनीश्वर ऐसे बड़े-बड़े उपद्रवोंके बीच रहकर भी शुक्लध्यानमें आये और उन्होंने ऊर्द्धगति प्राप्त की। क्यों क्षोभ नहीं हुआ? यहां तो एक चींटी भी काटे तो उपयोग उस ओर ही रहता। उसे हटाते है, चैन नही पड़ती और उन्हें स्यालनी खाये, सिंहनी खाये और एक आत्मस्वरूपमें ऐसा अविचलित रहे तो वह किसका प्रताप है? यह सब इस भेद विज्ञानका प्रताप है। जिसको मान लिया कि यह मैं हूँ, मेरा है, उसको उसमें और मेरा में के अलावा अन्य जो कुछ है उसपर कुछ बात पड़े तो उसका क्लेश नहीं मानता। यहां भी तो अनेकों लोग दूसरे का घर जल रहा हो तो कष्ट नहीं मानते, क्योंकि जान रहे कि दूसरेका है। खुदके घरमें कोई बात बन रही हो ईंट भी खिसके तो ख्याल करते हैं कि अरे इसको ठीक करना है। यहाँ भी तो ऐसी ही आदत पड़ी है कि जिसे मान लिया कि यह पराया है, उसका कुछ भी बननेमें यह खेद नहीं मानता और जिसे मान लिया कि यह मेरा है उसमें बिगाड़ होनेपर खेद मानता है। जो बड़े पुरुष होते हैं बड़ा विशाल जिनका प्रताप होता है, जो स्वयं परमेश्वर स्वरूपताको रख रहे वे बिगड़ी हालतमें भी अपनी मूल बात को तो छोड़ते। यहां भी जो ज्ञानी हुआ उसने जाना कि जो चेतना है वह तो हैं मेरा तत्त्व, मेरा स्वरूप और जो कर्मरंग है, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय हैं, विकल्प हैं तरंग हैं, ये मेरे

Report any errors at vyakasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कुछभी नहीं हैं। मेरा बिगाड़ मेरेसे नहीं हो रहा। मेरा बिगाड़ उसपर विषयसे हो रहा। वह विषयमें ही तो आया। उसे। इस मोंहीने दृढ़तासे अपनाया। ज्ञानी जानता है कि मैं तो एक चिन्मात्र हूँ थोड़ा अन्दाज करलो कि ऐसा कोई लक्ष्य रख रहा हो। और उसके घरमें कुछभी कठिन बाधायें आयें, कोई गुजर गया, कोई वियोग हो गया तो उस स्थितिमें ज्ञान ज्ञान रखने वाला दुःखी तो नहीं होता वह जानता है कि परद्रव्य है। परतत्त्व है, परसत्ता है, वह अपने सत्त्वसे अपने आपमें खुदमें हैं, मेरी उससे हानि कुछ नहीं है, और एक अज्ञानी मोही परपदार्थमें आत्मीयताकी इतनी बुद्धि किए हुए है कि किसी दृष्टके गुजर जानेपर वह अपनेको महा दुःखी कर लेता है। वह मानता है कि मेरे लिए तो दशों दिशायें सूनी हो गई। मैं तो नष्ट हो गया। बरबाद हो गया। ज्ञान और अज्ञानका कितना महान अन्तर है।

ज्ञानप्रकाशके प्रयत्नकी शान्तिसाधकता—शान्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिये ज्ञानप्रकाश पानेका। शान्ति का कोई दूसरा उपाय नहीं है। और ज्ञान प्रकाश भी क्या? निजमें इस भेदविज्ञानके बल से केवल एक चित्तप्रकाश मात्र अपने आपको ग्रहण करले, पकड़ ले ऐसा चाहिए ज्ञानप्रकाश। इसीको कहते हैं बोधि–समाधि परिणामविशुद्धि, स्वात्मोपलब्धि। यह इस जीवने अब तक नहीं पाया। उसकी निशानी यह है कि यह अभी तक संसारमें रुलता फिर रहा है। भेद विज्ञान होने पर फिर रुलनेका कोई कारण न रहेगा। निःशंक बात है। जैसे यहां आग पर कोई चीज हो तो जले, पानीमें कोई चीज पड़े तो गल जाय। जैसा अनुकूल उपादान दीखता है वैसा वैसा होता है। यहां कोई शंका नहीं करना, रोटी बेला, तवे पर डाला, आग में डाला, पक गई, वहाँ कोई वह शंका नही करता कि कल तो इस तरहसे रोटी बनी थी, पता नहीं आज उस तरह से बनेगी या नही। कल तो आग से रोटी सिकी थी, पता नहीं आज भी सिकेगी या नहीं। किसीको ऐसी शंका तो नहीं होती। आया समय, बना लिया, बन गई। जो बात जिस विधिसे होने की है उस विधिसे वह होतो ही है, उसमें शंका नहीं। तो जिसकी दृष्टि, जिसका उपयोग इस खुद निज में है, परमार्थशरण स्वभावको छूकर केवल एक अभेदस्वरुप को लेकर जो आत्मप्रतीति करेगा उसको अशान्ति न रहेगी उसे बाधायें न होगी, संसार में वह न रुलेगा जन्म मरण से मुक्त हो जावेगा। जीव की सब अवस्थाओं में सार अवस्था है तो अपने एकत्वमें रत होने की अवस्था है। जो इसके लिए प्रेरणा दे वही मेरा पिता, वही मेरा बन्धु, वही मेरा शरण, और जो इस एकत्व में हटाये, कहीं विकल्प में पहुँचाये ऐसा व्यवहार बनाये तो वह तो मेरा मित्र नहीं, बन्धु नहीं, पिता नही, रक्षक नहीं। वह तो सब एक संसारके खाते में

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही लिया है। कम से कम इतना भी अनुभव हो, ख्यालमें आये कि हम अभी अपने असली कर्त्तव्य से बहुत दूर हैं, हम यहां केवल, सारभूत एक सम्यक्त्व रुप कर्तव्य की ही बात कह रहे। इस कर्तव्य को पालने पर बाकी सब कर्तव्य भेद विज्ञान में आसान हो जाते हैं। जो वास्तविक हूँ, जो खास मैं हूँ, जो सहज हूँ उस रुपका दर्शन होना, उसका अनुभव होना, उसकी प्रतीति होना, उसे ग्रहण कर लेना, यह मैं हूँ। इस दृष्टिमें विपदाका काम नहीं है।

अत्यन्त निर्लेपतामें सम्यक्त्वका अभ्युदय—जैसे किसी गणितका उत्तर थोड़ी गल्ती, कर लेने पर माफ के योग्य नहीं होता, वह तो गलत ही हुआ, ऐसे ही अपने आपमें धर्म पालनकी दिशामें अपने आपको ले जानेके हिसाब में सोड़ी भी गल्ती माफ नहीं होती। जैसे कोई सोचे कि घर में हम हैं, हमारी स्त्री है, दो ही प्राणी हैं, खूब धन है, खूब मौज है। किराया आता है, किसीको सताते नहीं, किसी से बुरा बोलते नहीं, किसीका दिल दुखाते नहीं और हमको अन्य सबसे वैराग्य हो गया, किसी अन्य से हम व्यवहार करते नहीं तो उसमें तो बहुत राग छूट गया, किसी अन्यसे हभ व्यवहार करते नही तोइसमेंतो बहुत राग छूट गया। सबका ही राग छूट गया। सिवाय एक स्त्रीके हमारा और किसी से अनुराग नहीं, ऐसा सोचकर ऐसी कोई धारणा बनायें कि बस हमको तो ९९ प्रतिशत सम्यक्त्व हो गया, याने रुपये में ९९ पैसा सम्यक्त्व हो गया और एक पैसा रह गया सम्यक्त्वमें बाधा देने वाला, क्योंकि मुझे एक ही स्त्री से प्रीति है बाकि से नहीं, तो केवल रुपये में पैसा भर कमी है, अरे ऐसा न होगा। चाहे एक स्त्रीमें प्रीति हो, चाहे उसमें हो चाहे बहुतमें हो, सम्यक्त्वका वहां अंश नहीं है, व्यामोह जहां हो वहां सम्यक्त्व नहीं है। बल्कि यह सम्भव है कि आप अगर एक जीवमें मोह बनाये हैं तो वह मोह आपका प्रबल है अन्य सारे जीवोंको पर मानकर, एक अन्यको अपना माननेका क्या मतलब ? उन्होंने स्वरुपसे अत्यन्त उपेक्षाकी और एक जीवकी पर्यायमें ही मुग्ध हो जाऐ सो और उल्टा प्रबल मोह पड़ता है। माफी नहीं है, यहां तो जैसे सम्यक्त्व की दशा आती हो उस प्रकारसे पूर्णरुपसे उद्यम हो, बात हो तब ही वह सम्यक्त्वकी ज्योति होती है, इतना निरन्तरका अभ्यास न होना ही एक खुद का प्रमाद, खुदका बैरी बन रहा है। जीव करते भी और कुछ नहीं है। हर जगह केवल ज्ञानका अभ्यास बनता रहता हैं ज्ञानमें कुछ न कुछ जानकारी बनी रहती है। हर जगह काम यही करते हैं। इसके अलावा दूसरा व्यापार नहीं करने कोई भी जीव कोई दुसरा व्यापार कर ही नहीं सकता। बस ज्ञानमें व्यापार बनाया, ज्ञानमें कल्पना, ज्ञान की ही बात। न कोई चीज बना सकते हैं न कोई किसी दूसरे का और कुछ कर सकता है। न सुख कर सकता है न दुःख कर सकता है। कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है। केवल एक अपना ज्ञान विकल्प बनाते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हैं। तो हमारे हाथतो कुछ नहीं आता करोड़ भी कमा लिया हो तो भी वहां क्या हाथ आया ? इस जीवमें कौनसी समृद्धि बनी ? कौनसा एक उद्योत पाया ? शान्ति नहीं पाया, कुछ अभ्युदय नहीं भी है। अपनी बात कम आनेका ही नाम कमाना है। जैसे कहते हैं कि हमने खूब कमाया, तो उसका अर्थ है अपनी बात बहुत कम आई। कमाना तो एक हानि है, क्षति है। जैसे कोई अपना बलनष्ट करते हुए खुशी माने तो समझता है वह समृद्धि है और हो रही है क्षति। इसी तरह परद्रव्यके सम्पर्कमें लाभमें, संग्रहमें यह जीव खुश होता है मगर हो रही इसकी हानि

तत्त्वदर्शीकी पावनता;—जिसने तत्त्व देखा उसको सर्वत्र दिखता, जिसने नहीं देखा उसे अनेक यत्न करने पर भी नहीं दिखता। कर्म कैसे हटते हैं, शान्ति कैसे मिलती है। सारी बात तत्त्वदर्शीको बिल्कुल आसान है क्योंकि वह स्वाधीन है, अपने आपकी ही अपनेमें बात है, स्वयंके स्वरूप रूप है। तुमने तो यह उद्यम कियाकि सब जान गए। सच जाननेके सामने इसका शरण और वैभव कुछ है ही नहीं। सारी उन्नति, सार, अभ्युदय, सच समझ जानेमें है। और सारा नुकशान, संसारका रुलना एक असत्यको सत्य समझ लेनेमें है। भीतर के इस भेदविज्ञानकी महिमा भेदविज्ञान अथवा उस भेदविज्ञानके लायक पुरुषही समझ सकता है। जिस तत्त्वके समझने पर छल कपटका कोई काम नहीं रहता। मायाचार का भाव नहीं रहता। कहां मायाचार करना ? प्रसंग ही नहीं रहता। चाहे क्रोध सताये और किसी समय मान कषाय भी सतायें अथवा परिस्थितिवश लोभ भी करना पड़े लेकिन हर परिस्थितियोंमें आन्तरिक माया ज्ञानीके नहीं रहती है। यही कारण है कि इस मायाको शल्य बताया गया है। सरल होओ सबके हितैषी होओ सबको क्षमा करनेका परिणाम रखो। किसीभी जीवसे अपने आपको बड़ा अनुभव मत करो। भले ही कोई पर्यायमें तुच्छ है, हो, हम उसकी पर्यायकी तुच्छताको दृष्टिमें लेकर अपना अनर्थ क्यों करें ? पड़ी है मुझे ? हम सर्वत्र द्रव्यदृष्टि करके, सब जीवोंमें परमात्मस्वरूप निरखकर अपने विचारमें, अपने उपयोगमें उस परमात्मस्वरूपकी आस्था बनायें। जो आत्मार्थी पुरुष है, जिसको आत्मकल्याणकी वाञ्छा है उसके गर्व नहीं रहता। किसके आगे गर्व करना ? जितने जीव हैं सब मेरे स्वरूप के समान हैं। कोई अगर तुच्छ पर्यायमें है, मनुष्य होकर भी कुछ एक हल्की दशामें है तो कर्मका रंग है वह तो हल्का नहीं है। कोई भी जीव हल्का नहीं है अपने चैतन्यस्वरुपमें। किसको गर्व दिखाना ? ज्ञानी पुरुषके मान कषायका भाव नहीं रहता। क्रोध करके किसका बिगाड़ करना ? कौन बिगाड़के योग्य है ? मेरा कोई बिगाड़ करता ही नहीं। मेरा कोई बिगाड़ करने वाला ही नहीं, फिर किसपर क्रोध हो ? कोई करता हो कुछ प्रतिकूल क्रिया तो उसकी मूढ़तासे उसे खुदका बिगाड़ करने वाला समझे। भले ही चाहे वह दूसरा अभिप्राय

Jain Education I

http://sahjanandvarnishastra.org/

में खराब है, लेकिन वह अभिप्रायमें खराब है जो खुद अपने आपके लिए है। जैसा योग है वैसा परिणमन करता है। किसी भी परपदार्थका यत्न मेरा सुधार या बिगाड़ करनेके लिए नहीं होता है। ज्ञानी जीवको किसी पर क्रोध नहीं आता। लोभ कषाय भी वह नहीं रखता। है समीपमें, पुण्योदय है तो उसका उपयोग करनेसे नहीं चूकता। उसका कारण यह है कि उसे एक तो यह श्रद्धा है कि ये बाह्य पदार्थ हैं, मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ, मेरे भावसे ये पदार्थ खिचकर नहीं आये। भले ही पूर्वमें भाव विशुद्ध किया। पुण्यका बंध होनेसे, उदयसे यह योग समागम मिला, फिर भी आत्मा तो केवल भावोंका कर्ता हैं और वह केवल भावों के करनेमें ही समर्थ है। उसको किसीपर क्रोध नहीं होता। कही लोभ कषाय नहीं जगती। ऐसी जिसकी सब कषायें मंद हैं, निरन्तर धुन एक अपने एकत्वगत् चित्स्वरूप चित्क्रिया पर ही रहती है, और हर जगह विवेक करके अपने आपके स्वरूपको समझता रहता है वह पुरुष किसीपर एहसान नहीं कर रहा, है वह अपने आप दुःखोसे मुक्त होने का काम कर रहा है

सहजस्वरूपको अप्रतीघातरूपसे दृष्टिका कर्तव्यः—भैया ! खुदमें ऐसी दृष्टि जगे, अपने आप ऐसी पकड़ बने कि जैसे एक्सरा लेने वाला यंत्र केवल हड्डी की फोटो लेता, खून, मांस, चाम वगैरह को छोड़ देता है ऐसे ही यह मैं उपयोग केवल अपने सहज ज्ञानज्योति स्वरूपकी पकड़ करूं। बाकी सबको छोड़ दूँ। सब अजीब है. सब कर्म रंग हैं, सब बाह्य-पदार्थ हैं, सब बेकारकी चीजे हैं। मेरा तो एक चित्धन चैतन्यरूप चित् है मेरी ऋद्धि है, इस रूप ही मैं हूँ, ऐसी जिसने अपने उपयोगमें पकड़ बनाया बस वही परमपुरुष है। यही एक कल्याणकी बात है। हम आप सब जो कोई भी ऐसी वृत्तिसे रहे और अपने आपके स्वरूप मात्रका ही ग्रहण करे, बाको सब पदार्थोंमें सत्यज्ञान रखें, विमुग्ध न हों, तो अपने कल्याणका पात्र है। और वह बुद्धिमान है। ऐसे ज्ञानस्वरूपकी आराधनाके लिए हमारा तन, मन, धन, वचन सब कुछ न्योछावर हो। विनाशीक चीजका उपयोग करके अगर अविनाशी चीज प्राप्त कर ली तो यह कितना बड़ा भारी लाभ पाया ? बाहरमें जितना जो कुछ होता है हो, उससे अपनेमें कोई विकल्पजाल न उठायें। खुदके लिए तो यह ही निर्णय है कि मैं अपने स्वरूप की ही धुनमें होऊँ, पकड़में होऊँ, शान्ति पाऊँ, कर्म-मुक्त होऊँ। वह ही आवश्यक मेरा काम है, इसके अतिरिक्त मेरा और कोई कृतव्य नहीं है।

जीवकी ज्ञानमें ही कुछ परिणमनेकी शक्यताः—यह जीव ज्ञानस्वरूप है तो ज्ञानका ही काम किया करता है। सर्वत्र यह जाननेका काम करता है, पर जानने की ही ऐसी

Report any errors at vilasand@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विशेषता होती है कि जिस प्रकारका विषय होता है जाननेमें, उस प्रकारका विकल्प उत्पन्न होता है। यह बात जैसे इन बाहरी पदार्थोंके लिए है कि जिस पदार्थको हम जानते हैं उस पदार्थमें का विकल्प उत्पन्न होता है, आकार बनता है। तो यहां तो बाहरी पदार्थोंके साथ एक उपाधिका सम्बंध हैं, किन्तु जब यह ज्ञान अपने आपमें झलकी हुई कर्म परिणतियों को जानता है तो इसमें विभाव रंग होता है और वह एक भाव्यभावक भावको संकरसे दूषित होता है। जानता है। यह सर्वत्र जाननेका ही काम करता है, वस्तुतः पर जाननेके साथ जो रंग आता है, राग होता है वह इतना लिपटा हुआ होता है, ज्ञान की ही एक अद्भुत लीला है कि ज्ञानका स्वरूप हीं सारा रंगीला हो जाता है। जैसे जलमें कोई रंग पड़े तो जल रंगीला हो जाता है, वहां भी भेद मालूम नहीं पड़ता। जो कि साक्षात् भेद है, स्पष्ट समझमें आता है, जलकी परिणति ही नहीं है। रंग रंग तो एक अलग चीज है जो पुड़ियामें रखा हुआ था वही बिखर गया, और जलका सम्बंध पाकर इतना फैल गया कि वह रंग जल की चीज ही नहीं, परिणति ही नहीं है, फिर भी जलका और रंगका भेद जानना मुश्किल हो जाता है। तो यहां जब ज्ञान उस कर्मकी कषायको जानता है, क्रोध, मान, माया, लोभ अनुभाग जब इसमें प्रतिफलित होता है तो यहां तो उस प्रतिविम्बरूप ज्ञान ही परिणम गया। यहां तो यह परिणति ज्ञानकी हो रही और जलमें रंग आया है तो वह रंग परिणति जलकी नहीं हो रही। वहां इतना भेद है स्पष्ट, तो जहां इतना स्पष्ट भेद भी परखमें जिसके नहीं आया उसको अपना ज्ञानस्वभाव और ज्ञानमें आयी हुई रंगीली परिणति इनके भेदको कोई क्या समझे ? कैसा है यह विवेचक कि अपने आपमें अपने ज्ञानस्वभावको उसप्रकार प्रतीतिमें लिए है कि ज्ञानकी ही परिणति जो रंगीली है उस परिणतिसे ही भिन्न समझता है, इसके लिए उदाहरण जल और रंगका उतना उपयुक्त नहीं है, क्योंकि वहां स्पष्ट भेद है। दर्पणका दृष्टान्त अधिक उपयुक्त है। जैसे बाहरी पदार्थ सामने आया तो दर्पणमें प्रतिविम्ब आया। वह प्रतिबिम्ब बाहरी पदार्थकी परिणति नहीं है। वह दर्पणकी परिणति है। दर्पणकी परि-णति होते हुए भी विवेकी पुरुष स्पष्ट जानता है कि यह दर्पणकी परिणति तो भले ही है लेकिन यह प्रतिबिम्ब दर्पणका नहीं है। प्रतिबिम्ब तो बाहरी पदार्थका है और उस प्रतिवि-म्बको बाह्य पदार्थकी ओर ढकेलता है। जानने वाले पुरुष दर्पणको एक स्वच्छ ही अंगीकार करता है, ऐसेही परमार्थ ज्ञानी पुरुष अपने आपके उपयोगमें जो प्रतिविम्ब है, प्रतिफलन है, क्रोधका, मानका, मायाका, लोभका उससे अपने आपको स्पष्ट भिन्न निरखता है और वह यद्यपि प्रतिफलन जीवकी परिणति बनी हैं, जैसेफि प्रतिविम्ब दर्पणकी परिणति बनी है, ज्ञानने जो रूप रखा है, ज्ञानने जो विकल्प किया है, ज्ञानमें जो कुछ भलीमलीनता आयी है उस

http://sahjanandvarnishastra.org/

रूप तो यह उपयोग परिणमा, ऐसी परिणति रहने पर भी ज्ञानी जीव जानता है कि यह मलीनसता ज्ञानकी गाँठकी नहीं है, यह है कर्म उपाधि और वह उसको कर्मकी ओर ढकेलता है। जैसे समझदार पुरुषदर्पणमें आयी हुई छाया को बाह्य पदार्थकी ओर ढकेलते हैं, यह दर्पणका नहीं, यह तो उसका हैं । इसीतरह ज्ञानीपुरुष इस समस्त राग रंगको, इससमस्त कषाय परिणामको कर्मकी ओर ढकेलता हैं। यह तो सब उसका ठाठ है, मेरा नहीं हैं। निमित्त नैमित्तिक भावके परिचयका कितना सदुपयोग ज्ञानी पुरुष करता है कि उसको स्पष्ट विविक्त भिन्न स्वच्छता मात्र अपने आपका स्वरूप अनुभवमें आता है,

अन्तः परिच्छेदसे ज्ञानित्वः—अन्तः स्वभाव व विभावमें जिसने भेद ज्ञात किया उसे ज्ञानी कहते हैं। लौकिक बातोंमें चतुराई आ गई, कोई ढंग आ गया खानेका बोलनेका, व्यवहारका, इज्जतका, किसीप्रकार की चतुराई बन गई या बनाली तो वह ज्ञान नहीं। ज्ञान वही है जो भाग अपने ज्ञानस्वरूपको सबसे निराला अपने ज्ञानमें लें, रस लें, स्वाद लो ऐसा होनेके लिए कितना विरक्त होना चाहिए और कितनी तैयारी होनी चाहिए कि मानो अपना सब कुछ जाना पहिचाना समझा, कमाया, सब कुछ जावो, छिदो भिदो, ले जावो, कुछ भी हो, सब कुछ धूल में मिले, सब कुछ कहीं भी जाव मैं तो अपने आपके अन्तः ज्ञानस्वरूपमें ही सुरक्षित हूँ, ऐसी तैयारी होती है। मुक्षुकी। जो इस संसारसे सदाके लिए यात्रा कर जाने वाला है, उसको संसारकी किसीभी चीजमें मोह नहीं होता। बाहरी चीजमें तो व्यामोह करता ही कोई नहीं है। अपने आपके परिणाममें परिणमनमें, राग रंगमें, अपनी समझमें, अपने विकल्पमें यह जीव व्यामोह किया करता है। परपदार्थमें न तो कोई मोह कर सकता, न राग द्वेष कर सकता, न कोई किसीको चाहता है, न चाह सकता है, न कोई किसीसे प्रेम कर सकता है। न द्वेष कर सकता है। बाह्य पदार्थपर तो इस जीवका कुछ वश चलता ही नहीं है। मोह करता है तो अपने विकल्पसे, राग करता है तो अपने विकल्पसे। द्वेष करके भी द्वेषसे राग तो कर ही रहा है, अन्यथा द्वेषसे अगर द्वेष हो जाता तो उसको फिर कोई उलझन, अशान्ति ही नहीं होती। यह द्वेषसे भी राग करता, रागसे भी राग करता। ऐसा व्यामोह इस जीवके पड़ा है कि अपने आपमें जो इस उपयोग पर्देपर चित्रण हो सकता है उसको ही समझता है कि यह हो मैं सर्वस्व हूँ, उस चित्रणसे निराला अन्तः प्रकाशमान ज्ञान-स्वरूप कुछ है, इसका परिचय नहीं कर पाता। और, फल यह होता है कि सारा जीवन जो दुर्लभतासे मिला है सब अशान्तिमें खो दिया जाता है। यह भी एक कला है, पर उपदेश कुशलता होना, सभी में है, पर इस कलासे तो खतरा है। अपने आपका लाभ नहीं। जो बोले, जो समझावे वह अपने आपको समझाता हुआ बोले। अपने आपमें अनुभव करते हुए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बोले। तो जैसे किसी को परोपदेशका व्यसन होता है तो किसीको सुननेका भी व्यसन होता है। सुनना भी सुनना वही है कि जहां इतनी तैयारी से सुना जाता हो कि जो बात सुनी जा रही है वह एक मार्ग है और उस मार्गसे अपने आपकी इस दृष्टिपगको चलाता है, यहीं चलाता है। बल्कि वक्ता की अपेक्षा श्रोताका दर्जा उत्तम है और उसे हितयत्नका अवकाश बहुत है। उसे अलगसे कुछ नहीं सोचना है, अलगसे कुछ नहीं पहिचानना है, एक शब्दतार के माध्यमसे अपने आपकी दृष्टिको ले जाना है। बड़े आरामसे। जैसे कोई पाये हुए धनमें एक एक पाईका सदुपयोग करनेकी चाह रखता है ऐसे ही ज्ञानीके एक-एक शब्दकों बोलें तो सुने तो उसके सदुपयोगकी धुन रहती है। सदुपयोग बिना मेरा बोलना न जाय, सदुपयोग बिना मेरा सुनना न जाय। और इसी लिए सुनना भी सीमित और बोलना भी सीमित है। उपयोग बने सही उसका ही इसको लाभ हैं और यथार्थ उपयोग इसमें ही है कि अपने आपके उस सहज भाव, पारिणामिक भाव, निरपेक्षभाव रूपमें अपने आपका परिचय हो।

जीवकी अन्य से अशरणताकी बुद्धि से समताका प्रादुर्भाव—इस जीव का मदद करने वाला दूसरा कोई नहीं है। और जिस पर कोई दृष्टि गड़ाता हो, यह पुत्र है, स्त्री है, मां है, कुटुम्ब है, अन्य लोग हैं, उनका उदय जैसा है वैसा होगा लेकिन उनकी दृष्टि करके तो यह अपनी बरबादी करता है और इस दृष्टिसे जिसको माना अपना वह कहलाता है बैरी। जहां एक परमार्थपथका निर्णय कर लिया गया है-मुझे तो परमार्थपथपर चलना है, उसके लिए यह बात स्पष्ट समझमें रहती है कि सब निराले हैं वैसे ही घरमें बसने वाले जीव भी निराले हैं, बल्कि बाहरके निराले अच्छे हैं। उनके कारण उनका विषय बनकर हमें कुछ मलीमसता तो नहीं होती, और जिनमें संग बना, संगम बना उनको विषय करके तो पद-पद पर मलीमसता होती है। यथार्थ बात पहिचानने के बाद गृहस्थ बहुत समय तक संगममें नहीं रह पाता, पर जब तक रहता है तब तक उसकी मलीमसता नहीं रहती। सब ज्ञानका प्रताप है। जहां विशुद्ध ज्ञान जगा वहां कुछ भी बर्ते, कैसे भी हो, उससे मलीमसता नहीं आती। उसको तो सबसे निराला केवल एक निज तत्त्व की ऐसी धुन रहती है कि सदा निर्णय है, किससे क्या सम्बन्ध बनाना ? किसको क्या प्रसन्न करना ? किसको क्या कुछ भी सताना ? जब सर्व जीवोंमें एक परमार्थ स्वरूपकी दृष्टि जगी है, उसको अब अपनी इस बाहरी रूप, बाहरी परिणति, पर्याय शरीरके लिए कुछ भी वाञ्छा नहीं रहती। सुख दुःखको समान मान लेना यह सामान्य तपश्चरण नहीं प्रशंसा निन्दाको समान समझ लेना यह सामान्य उद्यम नहीं। इस समतासे पहिले इस ज्ञानी की ऐसी प्रतीति परिस्थिति रहती है कि निन्दा की अपेक्षा प्रशंसा अधिक भयानक है। अपमानकी अपेक्षा सम्मान अधिक भयानक

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। दुःखकी अपेक्षा सुख अधिक भयानक है। दुःखमें तो एक सत्य प्रसन्नता रहती है परन्तु सुखमें किसीके सत्य प्रसन्नता नहीं रहती है। यह बात अपने अनुभवसे भी परख सकते हैं। कष्ट आते हैं। शारीरिक या अन्य प्रकारके उस समयमें कितनी धीरता, कितनी शूरता, कितनी आत्माकी सम्हाल, कैसा प्रभुकी भक्ति, कैसा बिशुद्ध ध्यान, ऐसा वैभव, ऐसा श्रंगार क्या विषय सुखमें भी किसीको प्राप्त हो सकता है ? जब किसीभी इन्द्रियका सुख भोगा जा रहा हो तो क्या उस समय उसके धीरता एवं वीरता रहती है ? उसका शुद्ध वात्सल्य, प्रभु-भक्ति, आत्माकी सुध, ये सारी बाते ठहरती है क्या ? आनन्द तो एक अपनी ज्ञानवृत्तिके अनुसार होता है। ज्ञानकी जैसी वृत्ति होती है उसप्रकारका उसको आनन्द होता है। बाहरी समागम, बाहरी बातोंसे आनन्दका निर्णय नहीं है। अपना भीतरी प्रकाश, भीतरी ज्ञान, भीतरीवृत्तिके अनुसार आनन्दका निर्णय है। ज्ञानकी विशुद्धता दुःखमें हो, निन्दा में हो, अपमानमें हो, यह बहुत कुछ सम्भव है, पर सम्मानमें, प्रशंसामें अपने आपकी सम्हाल रहे, यह कुछ विशेष शूरबीरोका ही काम है। ऐसे ही कुटुम्ब मित्र परिवारसे बिछुड़ गए, कुछभी कोई पुरुष अपने आपको सम्हाल करले, ज्ञानको सही बनाले, उसकी अपेक्षा उसको वीरता अधिक होती है। जो कुटुम्बके बीच रहकर भी उससे निर्लेप रहता है। सत्य ज्ञानका प्रकाश रहता है कि यह मेरे लिए कुछ नहीं है।

आत्महितमें अन्तस्तत्त्वके निर्णयकी आवश्यकता:—मेरे लिए मात्र मैं हूँ, ऐसी परिणति, अनुभूति, प्रतीति उस संतके रहती है, जिसने परमार्थ तत्त्वकी निरख करली है। वह तत्त्व क्या ? वह जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष इन सातोंसे अलग है। ७ विना नहीं है तो भी ७ से अलग है। और, इसी बातका प्रकाश दिया है संतोंने, आचार्योंने कि ये ७ तो हैं अभूतार्थ और वह आश्रेय तत्त्व है भूतार्थ। सुनकर कुछ हैरानी हो सकती कि क्या मोक्ष भी अभूतार्थ है ? क्या सम्बर और निर्जरा भी अभूतार्थ है ? क्या जीव भी अभूतार्थ है ? आश्रव बंधके बारेमें तो झट समझमें आता है कि यह तो भूतार्थ है, लेकिन जीव, मोक्ष ये भीं अभूतार्थनयसे ही समझ में आते हैं, यह समझनेमें कुछ थोड़ी हैरानी सी होती है, लेकिन यहां परखिये कि क्या अभूतार्थके विषयका आलम्बन करते समय किसीको सम्यक्त्व अनुभूति हुई ? मोक्षको भी पहिचानें। मोक्ष सिद्धशिलामें है। वहां रहते हैं, सिद्धशिलासे कुछ ऊपर कर्मसे छूट गए है। यह ही तो मोक्ष कहलाता है। ऐसे मोक्षका भी कोई वर्णन करे, जानकारी करे, लोकके अन्तमें अपने दिमागको पहुचादें, ज्ञानको पहुचादें, ऐसी स्थितिमें भी निर्विकल्पता आती है क्या ? जितने भी भेद हैं वे समस्त भेद सम्यक्त्व का कारण नहीं हैं, पर भेदसे समझे बिना हम उस अवक्तव्य परमार्थ तत्त्वका परिचय भी नहीं

Gyanmurty eSeva Trust@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

पा सकते ऐसे ही एक समस्या है यह कि जैसे कोई पूछे कि सीढ़ी पकड़नेसे ऊपर चढ़ेंगे या सीढ़ी छोड़नेसे ? तो उसका कोई उत्तर न बन पायगा। सीढ़ी पकड़ने में कोई ऊपर नहीं नहीं चढ़ता और सीढ़ी छोड़नेसे भी कोई ऊपर नहीं चढता। सीढ़ी पकड़कर छोड़ने से ऊपर चढ़ता है। सीढ़ी पकड़े बिना भी ऊपर न आयगा, सीढ़ी छोड़े बिना भी ऊपर न आयगा। ऐसे ही इस परमार्थ पदका रहस्य व्यवहार पाये बिना भी न आयगा, व्यवहार छोड़े बिना भी न आयगा। और, इसमें दिमाग क्यों लगाया जाय ? जैसा होना होगा सो हो जायगा। क्या अनेक बातोंका निर्णय करना आवश्यक है ? श्रेणीके चढ़ने वाले ऋषी संतोंको अप्रयत्न दशा-में ८ वें ९ वें १० वें गुणस्थानमें रहने वाले संतोंको क्या कुछ निर्णय रहता ही है ? मैं इस परिणाममें हूँ, मेरे ये कर्म छिद रहे हैं, मेरी ऐसी स्थिति हो रही है। ये कर्म कट रहे हैं, क्या ऐसी उनकी जानकारी चलती हैं ? खूब अधिक जानकार हो कोई, श्रुतकेवली भी हो जो समस्त द्वादशांग रहस्यको सबको जानते हैं। क्षण--क्षणमें कर्मकी जो दशा होती है उनको समझते हुए भी, श्रेणीमें चढ़ते हुएमें तो विकल्प न करनेसे उनमें उपयोग नहीं उलझता। जानने में आया तो भी ऐसा सामान्य जाननेमें आता कि वह जाननेका जो उपयोग है वहां नहीं विकल्पना बनती। जो जाननेका लो उपयोग चाहते हैं वह नहीं बनता। तो सभी चीजों का निर्णय करना आवश्यक नहीं, किन्तु तत्त्व क्या है, निरपेक्ष भाव क्या है ? पारिणामिक भाव क्या है, इसका निर्णय करना अत्यन्त आवश्यक है। एक इस ही अंतस्तत्त्वका अनुभव किए बिना, जाने बिना सब कुछ जानना भी बेकार है। ऐसी अन्य बातोंके जाननेकी महिमा बतायी जाय, बनाई जाय, समझी जाय तो बहुत बड़े--बड़े वैज्ञानिक लोकमें हैं, क्या हम यह कह सकते है कि वे सही मुक्तिके मार्गमें हैं। तो बात यहां यह समझना कि अनेक बातोंकी जानकारी हमको आवश्यक नहीं, किन्तु अंतस्तत्त्वको जाननेके लिए जो जो भी जानकारियां चाहिए वे सब आवश्यक हैं, और, वे सारी कलायें तो अपने पौरुषके बलपर जीव चाहे तो अपनेमें सहज पा सकता है।

अन्तः पवित्रताका लाभः—उपदेश सुनकर भी उपदेशसे कोई कुछ कर नहीं पाता। जो पाता है तो अपने आपमें अपनी ज्ञानवृत्तिसे सहज पाता है। कोई उपदेशका सहारा लिए बिना भी अपने आपमें ऐसा ज्ञान पौरुष बना सके तो वह भी पा सकता है। आखिर पायेंगे सब सहज ही। बाह्य कारण का तो नाम लेना और एक मार्गमें साधन बनता है, पर सम्यक्त्वकी उत्पत्ति किसी भी बाह्य पदार्थसे नहीं होती। इसीतरह शान्ति भी किसी पदार्थसे नहीं होती, हो लेकिन कहते हैं कि जिसके पास जितना धन हो उसे उतनी ही आकुलता रहती है, तो ऐसे ही समझिये कि जिसके बाह्य पदार्थके विषयमें बहुत ही लगाव-व्यामोह का

version

 http://sahjanandvarnishastra.org/

रंग होना बने वह उतना ही गरीब है। दीन है, कभी कभी परखमें भूल हो सकती है। जैसे कि लोग कहने लगते कि सीता के जाने पर राम इतना विह्वल हुए कि जितना विह्वल यहाँ कोई हो तो उसे पागल कहेंगे, भरत चक्रवर्तीको इतना क्रोध आया था कि उससे बढ़कर प्रचंड और कोई क्रोध नहीं हो सकता। लेकिन जो समर्थ हैं, ज्ञानी हैं उनके क्षोभ भी आये तो वह बहुत बड़े व्यापार को बना देता है। जो असमर्थ है वहाँ बहुत-बहुत सोच करके, तीव्र कषाय करके भी साधारण व्यापार कर पाता है। तो दूसरेकी परख से क्या पड़ी है। खुदमें खुदकी परखसे ही तो काम निकलेंगा। कितना एक संयत मार्गसे चलनेकी आवश्यकता है कि जिसको सिवाय एक आत्महितके चित्तमें किसी प्रकारकी धुन नही होती। तो परखना है अपने आपमें बीती हुई बातको और ऐसा रास्ता निकालना है कि हम भीतरमें कैसा पौरुष बनायें कि हम उस मलीनता से दूर हटें और सदाके लिए पवित्र बन सकें।

बाह्यक्षेत्रस्थ पदार्थोंसे आत्माकी प्रकट भिन्नता—आत्माके भ्रमसे उत्पन्न हुआ दुःख आत्माके भ्रमके नाशसे ही नष्ट होना सम्भव हो सकता है, उसका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। वह भ्रम क्या है ? जो आत्मा अभी अनात्मा है उसमें यह मैं हूँ इस प्रकार की जो प्रतीति हैं यही एक भ्रम है। जितने भी दुख हैं वे इस भ्रमके ऊपर लदे हुए हैं। भ्रम दूर हो जाय तो सारे दुःख खतम हो जायेंगे। कितने भ्रम लगे हुए हैं, परखें और उन भ्रमोंमें अपनेमें कोई बात जची हो तो उस पर खेद लायें, पछतावा करें और उस भ्रमका ध्वँस करने के लिए धुन बनायें। प्रथम तो व्यामोही जीवोंको यह ही भ्रम लगा है कि ये मकान, घर मेरे हैं। यह कितना मोटा भ्रम है। ये जड़ हैं, अचेतन हैं, कोई सँबन्ध नहीं, परक्षेत्रमें हैं। मतलब क्या ? कहां तो यह ज्ञानानन्दमय परमात्मस्वरुप भगवान आत्मा और कहां अत्यन्त विपरीत ये बाह्य पदार्थ, किन्तु जिनको इतना तीव्र भ्रम रहता कि और किसका है ? मेरा हीं तो है यह मकान। और उसकी शोभा देखकर, उसका निर्माण देख कर खुश होना, यह सब बहुत मोटा भ्रम है। इसी तरह धन वैभवका भ्रम। और कुछ पास आये तो देखो कुटुम्बका भ्रम, पक्ष पार्टीका भ्रम, मित्रोंका भ्रम; ये मेरे हीतो हैं, और किसके हैं ? मेरे बहुत आज्ञाकारी हैं, विनयशील हैं और इनका मैं ही तो जिम्मेदार हूँ। ये मेरे से ही तो लगे हैं। उनको निरख निरखकर एक अपने आत्मामें हर्ष होना, लगाव होना, आत्माकी सुध खो देना और उससे ही अपना महत्व आकना, मैं इन्हींसे ही तो महान हूँ। ये न हों तो मेरा महत्व क्या ? फिर तो मैं कुछ नहीं हुं। अपने आपके स्वरुपके कारण अपना महत्व नहीं आकते और इस चेतन परिग्रहके कारण, कुटुम्ब के कारण, मित्रों के कारण अपना महत्व आकना, इन्हीं से तो मैं महान हूँ और उन्हीं के लिए सारे श्रम किए जाते और श्रम करके अपनेमें गर्वका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी अनुभव होता है। जैसे कोई सांड़ किसी धूरेको सींगसे उछाले तो वह अपनी पीठपर ही तो फेकता है। और कुछ कूडा फेकनेके बाद चारों पैर पसारकर, पूछ उठाकर, सिर उठाकर अपनी आँखें उठाकर कैसा गर्वसे अपनी मुद्रा बनाता है। तो जैसे इन बैल साड़ोंकी जरुरत है ऐसे ही यो ही मनुष्यकी करतूत है। बाहरी पदार्थोंको अपनी कल्पनामें उड़ेरकर जोड़कर संग्रह विग्रह करके एक गर्वसे अपने शरीर को तानकर या जो भी मुद्रा बन गई हो, अनेक मुद्रायें होती है, उनमें अपनेको गर्व का अनुभव करता है। पर आत्माकी सुध इन वृत्तियोंमें नहीं बनती। और: कुछ अन्त: चले तो इसको शरीरमें आत्मबुद्धि है। शरीर दुर्बल है मैं दुर्बल हूँ। शरीर मिटे तो मैं मिटता हूँ। शरीर की परिस्थिति देखकर अपने आपकी परि-स्थितिका अनुभव करता है। अरे शरीर अत्यन्त कमजोर है तो रहो, पड़ा है, जहां हैं तहां है। इस शरीरसे मेरा क्या मतलब ? मैं तो इससे निराला एक चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा हूँ। वह जाय तो जाय इस चैतन्यरसका स्वाद लेता हुआ मरे तो वह मरना नहीं, और जो बाहरी पदार्थोंके रसका स्वाद लेता हुआ जिन्दा रहे तो भी मरा हुआ है। तो ऐसे अपने एक अंतस्तत्त्वमें एसी बुद्धि, ऐसी आत्मीयता होना चाहिए। देह प्रकट भिन्न है। जला दिया जाता है। और ज्यादह कुछ सोचना हो देहके बारेमें तो दो बातें सोचिये। प्रथम तो इसमें जो घिनावनापन है क्या वैसा घिनावनापन इस आत्मामें भी है ? अरे मैं आत्मा तो अनन्त आनन्द वाला हूँ। ये नाक, आँख, थूक आदिक क्या मैं हूँ तो देहमें इतनी तीव्र आशक्ति हुई एक तो यह सोचिये कि जैसे तुमने अनेकों शरीर अपने हाथसे जलाये होंगे वहही दृश्य अपने आपके इस शरीरमें लगावों।यहभी किसी दिन ठठरी पर बंधकर जायगा। जला दिया जायगा इस देहमें कोई दम है क्या ? इस देहमें कौन सी सार बात है जिससे मैं इस देहमें इतना आशक्त होऊं।

अन्त:स्थ परतत्त्वोंसे आत्माकी विविक्तता—देहसे और अन्त: चलें तो अन्त: देखा कर्मविपाक। मुझ पर जो कुछ बीत रहा हैं, जो रंग हो रहा है, जो मलीमसता आ रही है वह तो कर्मविपाककी है। यह मैं नही हूँ। मैं तो इनसे निराला चित्तवृतिमात्र हूँ मैं एका चैतन्यस्वरुप हूँ। दर्पणमें प्रतिबिन्ब आया तो वह दर्पणकी चीज नही है। रंगीला हो गय दर्पण, पर वह प्रतिबिम्ब दर्पणकी निजकी जेबकी चोज नहीं है। रंग हो गया। मैं इनसे निराला चैतन्यवृत्ति मात्र हूँ। और, इससे भी अन्त चलेतो मेरेमें जो विचारआते हैं, कल्पनायें उठती हैं, तर्कणायें जगती हैं, ये तर्कणायें, ये ज्ञानवृत्तियां ये कर्मके उदयसे तों नही होती। लेकिन कर्मका जितना क्षयोपशम होता है उतना यह प्रकट होता है तो वहां भी इतनी मली-मसता है कि इन्द्रिय और मनके द्वारसे ही हो सकता है। इसका आत्मपन स्वयं अपने आपमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सहज ही होता। तो क्षयोपशम और कुछ उदय से सभी मिलकर कारण बने है। क्षयोपशम में स्वयं उदय बसा हुआ है। क्षयोपशम मात्र क्षय और उपशसमें नहीं बनता किन्तु उदया-भावी क्षय, उपशम और उदय इनके मेलले क्षयोपशम होता है। तो यद्यपि वह ज्ञानवृत्ति जो प्रकट हुई है वह ज्ञानभावसे हुई, किन्तु उसके साथ उदय भी लगा है इस कारण विचार नैमित्तिक है इन्द्रिय, द्वारा और मन, इनके निमित्तसे प्रकट होता है यह ज्ञान। सो यह विचारात्मक ज्ञान भी पर समझलें, इनमें परतंत्र होकर ही मुझमें बात होती है। ये विचार ये तर्क, ये शक्तियां इनमें भी लोग आत्मबुद्धि करते हैं तब ही तो कोई कुछ समझा रहा हो, उसे दूसरा न मान सकता हो, उससे उल्टा होता हो तो कुछ दुःख मानता है, वक्ता क्योंकि उसके विकल्पमें आत्मबुद्धि है। ओह यह मेरी बात है, ये लोग मेरी बात क्यों नहीं मान जाते कैसे विकल्पमें आशक्ति बुद्धि बनाया है, वह भी शल्य है, भीतर दुःख प्रदान करता है धर्म चर्चा करते-करते भी लोगोंमें आपसमें लड़ाई हो जाती है, जैसे बच्चे लोग खेलते तो हैं बड़े मेलके साथ मगर उनका खेल प्रायः करके बंद (पूरा) तब होता है जबकि उनमें लड़ाई हो जाय और थोड़ी मारपीट हो जाय। तो ऐसे ही यह जीव कब छोड़ता है यह खेल जबकि इसको कोई चोट पहुंचती है। भीतरमें निरखिये ये तर्कणायें, ये विचार, ये विकल्प, ये जान कारी ये मेरे स्वरुप नहीं, मेरा स्वरुप तो इनसे निराला है।

चित्स्वभावकी पहुंचमें यथार्थ विश्राम—अब कहां तक पहुँचना है? चेतनकी जो सहजवृत्ति है, बिना इन्द्रियका सहारा लिए, बिना मनका आश्रय लिए, अपने आप जो इसमें जगती हुई वृत्ति है वह भी मैं नही, किन्तु है वह मेरी शुद्ध वृत्ति तथापि वह भी परिणति है, परिणति नित्य नही, मैं अध्रुव नहीं मैं तो एक ध्रुव शाश्वत चित्पदार्थ हूँ, यहाँ तक जो आ सके उसके लिए पवित्रताका अवसर आता है, पर इसका जो इच्छुक हो, इस अंतस्तत्त्वका जो अभिलाषी हो वह अपनी सब हठोंकी बलि दे देता है, अपनी सब कषायोंकी बलि दे देता है। वह अपनेको लोक दृष्टिमें न कुछ मानता है। मैं कुछ नहीं हूँ। मेरेको तो यहीं एक अध्यात्मरस चाहिये। इस अंतस्तत्त्वके पाये बिना जगतके जीव अब तक संसारमें रुलते चले आये हैं। वही स्थिति हम आप सबकी चली आयी है। अब इससे किनारा करके निज अंत-स्तत्वकी ओर अभिमुख होऊँ तो इसमें ही हम आपका भला है। बाकी सब हठों को त्याग दें, भीतरी विकल्प वासनाओंको त्याग दें। भला बतलाओ, लोग चाहते हैं कि मेरा बहुत से जीवोंमें नाम फैले। तो भाई अच्छी बात है। अगर ऐसा हो जाय तब तो बड़ी ऊँची चीज है, लोक दृष्टिसे, मगर जीव तो अनन्तानन्त हैं। अगर कुछ हजार या लाख लोगोंने कुछ झूठी प्रशंसा करदी तो अभी तो अरबों आदमी तो और भी छूट हुए हैं। उन अरबों आदमियोंमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी वो अपना यश प्रकट करो। प्रकट ही नहीं कर सकते। और मानो कि आजका माना हुआ सारा विश्व भी आपको जान ले, ऐसा हो नहीं सकता। तो भी तो और भी जीव छूटे हुए हैं। पशु पक्षी ये तो मेरे को कुछ भी नहीं समझते। और बांकी जीव तो अनन्तानन्त छूटे। तो फिर इन थोड़ेसे लोगोंमें अपने यशकी अभिलाषा करके अपनेमें मलीमसता क्यों बनायी जा रही है? जीव चहता है कि मेरा सदा काल यश रहे, अरे इस अनादि अनन्त कालके सामने जब अवसर्पिणी उत्सर्पिणी कालकी भी कुछ गिनती नहीं है एक कल्पकालकी भी सारे कालके आगे एक बिन्दु बराबर भी गिनती नहीं है तो सारेकाल में जब यश नहीं हो सकता तो फिर न कुछ बातमें प्रशंसाकी चाह करके अपने को मलीमस क्यो बनाया जाय? तो इन्द्रिय और मनके विषयमें आशक्ति न हो। देहमें बंधा हूँ, कसा हूँ इस नाते से जो कुछ करना पड़ता है सो करो, लेकिन धुन होनी चाहिए कि मेरेमें अपने अन्दर बसे हुए एक सार को एक मक्खनको, एक जिसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती ऐसे अलौकिक तत्त्वको निरखें और इसके निरखने में ही मेरे क्षण व्यतीत हों, इस भावना और पौरूष के अतिरिक्त लोकमें सब कुछ बेकार है।

शान्तस्वरूप शाश्वत सहज अन्तस्तत्त्वके ध्यानकी परमार्थशरणरूपता:—शान्तिका उपाय शान्तिस्वरूपका ध्यान करना है। अशान्त व्यक्तिसे लगाव रखना और वह लगाव मोह रागद्वेषपूरक हो तो उस लगावसे शान्तिकी आशा करना व्यर्थ है। शान्ति चाहते हैं तो शान्त स्वरूपका ही ध्यान करना होगा। अब बाहरमें शान्त स्वरूपका ध्यान हो तो वह कहलाता है व्यवहारशरण और निजमें अन्तः स्वरूपका ध्यान हो, निज शान्तस्वरूपका ध्यान हो तो वह कहलाता है परमार्थशरण पर जो स्वयँ शान्त नहीं, स्वयं मुक्तिके मार्ग का जिसको परिचय नहीं ऐसे लोगोंसे आत्मीयताकी पद्धतिसे दृष्टि लगाना यह तो विपदाका मूल है। वह शान्त-स्वरूप क्या है? निज अखण्ड चैतन्यस्वरूप। उसका ध्यान नहीं है तो है आश्रव बंध। उसका ध्यान है तो होता है सम्बर निर्जरा। कभी उसका ध्यान न भी हो और कभी किया हो ध्यान, उसकी प्रतीति हो तो भी ध्यानका अंश है। तो यह बनी है पर्याय, आश्रव, बंध, संबर, निर्जरा मोक्ष, लेकिन पर्यायका आश्रव करनेसे, पर्याय की उपासना करनेसे शान्ति अथवा मुक्ति प्राप्त नहीं होती जो निज द्रव्य स्वरूप है उसकी उपासना उपासनाका अर्थ है कि उस ही ज्ञान-स्वरूपमें अपने ज्ञानको मग्न कर लेना, वह है शान्तिका साधन। जब यह स्थिति नहीं होती तब क्या क्या गुजरता है इसीका विस्तार है आश्रवके प्रकार और बंधके प्रकार। कोई भी वस्तु हो वह अपने आप सहज स्वरूपमें होती है, अपनी सत्ताके कारण जो मेरा स्वरूप है वह मेरा असली रूप है। मैं भी एक सत् हूँ। तो मेरी सहज सत्ताके कारण जो मेरा स्वरूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है वह मेरा रूप है, वह एकस्वरूप है। अब यह सब जाल कैसे फैला ? जब मूलमें एक रूप हैं। मूलमें मैं एक चैतन्यमात्र हूँ, तो यह जाल कैसे फैला ? उसका कारण तो यही कहा जायगा कि अनादिसे अशुद्ध है, और विकल्प करता चला आया, पर यह हुआ किस ढंगसे ?

अद्वैत अखंड निज आत्माकी विडम्बनामें मूल करतूत ज्ञान ज्ञेयका द्वैतीकरण—मूलमें यह मैं आत्मा एक हूँ, किन्तु इसकी प्रकृति है, इस चैतन्यका स्वभाव है कि सब कुछ इसके प्रतिभासमें आवे। यह कहां जाय ? प्रतिभासमें आया, जानने में आया। जानता यह है। अब यहां होता क्या है कि जैसेही जाना तो जाननेके साथ ही ज्ञान और ज्ञेयमें विविधा हो गई। यह जाना, मैंने जाना। ये दो बातोंके द्वन्द्व हों गए इसमें। काम जाननेका ही हो रहा है भगवानके भी, पर भगवानके द्वन्द्व नहीं होता। यहां हम वहा काम करते हैं और द्वन्द्व हो गया। इसका कारण अशुद्धता हीं कही जाती है। पर जैसे किसीको किसी झगड़ेके जाननेकी इच्छा होती, इससे झगड़ा क्यों हो गया, क्या बात थी, ये तो बड़े मेलसे रहते थे, पड़ोसी आदमी हैं, बड़ा हमदर्द था। ऐसा कोई आश्चर्य करते हैं ना ? क्या बात हो गई ? अरे झगड़ा जाननेकी बड़ी उत्सुकता हो जाती हैं। किसी दूसरेसे क्या लेन देन, कुछ मतलब नहीं, दूसरे गांवके दूसरे मुहल्लेके, घर जाये बिना चैन नहीं पड़ती, क्यों हो गया, झगड़ा ? तो दूसरेके झगड़ेमें जाये बिना चैन नहीं पड़ती। मगर खुदमें जो झगड़ा है उसे जाने बिना क्यों नहीं चैन ली गई ? मुझमें दंद फंद कल्पनायें करके विकल्प करते, जन्ममरण करते, परको अपनाते, परको अपना अपनाकर उनके पीछे विछोहके बड़े क्लेश भी सहते जाते फिर भी अपने असली रास्तेपर नहीं आते। इसका द्वन्द्व किस तरह हो रहा और इतना बड़ा जन्ममरण नाना देहोंका अदलने बदलनेका यह व्यापार क्यों लग रहा इसमें ? तो इसको भली भाँति मूलसे समझना है। आखिर मूलमें पहिली बात क्या गुजरी ? बादमें जो बात निकलती है, जो निकटकी बात है उससे फैसला नहीं होता। जैसे किसी बच्चेने मार दिया किसीको, क्यों मारा ? इसने मुझे मारा।...क्यों इसने मारा ?...इसने गाली दी।...इसने गाली क्यों दी ?...अजी इसने उस इसतरह से अंगुली और जीभ मटकाकर मुझे चिढ़ाया।... अच्छा तो मूलमें जो बात होती है उस परसे ही तो निर्णय होगा। तो मूलमें बात क्या थी ? क्यों झगड़ा हुआ ? उसके मूलसे चलो चाहे शाखाओंसे। मूलसे हीं चलो। हुआ क्या कि इसके जाननेकी आदत है, यह स्वरूप तो कहीं जाता नहीं, पर यह भगवान इतना समर्थ है कि वह सब कुछ जानकार भी द्वन्द्व नहीं लाता। कितना विशुद्ध स्वरूप है इसका। इसीको कहते हैं परमात्मा। जिसका ऐसा विशुद्ध स्वरूप है कि सब कुछ जानकार भी द्वन्द्व नहीं होता। मैंने जाना, यह जाना ऐसा जहां द्वन्द्व नहीं, द्वैतन नहीं, भेद नहीं, उसे कहते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रभु। जो बड़ा होता है उसमें कोई खास गुण भी तो होता है तब वह बड़ा है। तो परमात्मा तीनों लोकोंका अधिपति, शतइन्द्र जिसकी वन्दना करें, गणधर, बड़े-बड़े मुनीन्द्र जिसका स्मरण करें उसमें विशेषता क्या है ? यह विशेशता है कि जाननेका तो स्वभाव है, जान गए सब। सो भैया सूक्ष्मतासे देखो तो यहां सब जाननेकी महिमा नहीं है क्योंकि किसीने थोड़ा जाना, किसीने ज्यादह जाना, भगवानने सब जान लिया, तो जाननेकी महिमा अगर हो तब तो कहना चाहिये कि इनमें भी कुछ महिमा है, उनमें जरा बड़ी हो गई, क्या हो गया, पर महिमा उनकी असलियतमें यह है कि जानकर भी उनमें द्वैत नहीं उत्पन्न होता। तो मूलमें बात यह आयी कि हम जानते हैं समस्त परको और वहां द्वैत करते हैं-मैंने जाना, इसे जाना।

आत्मविडम्बामें द्वितीय करतूत परमें स्व पर का विकल्प—मैंने जाना, इसे जाना जब ऐसा द्वैत बन गया तो जो कुछ जाननेमें आया ऐसी जो ५० चीजे हैं उनमें अब यह द्वैत करने लगा। अभी तो निजमें और परमें द्वैत किया अब यह कर रहा है परमें ही द्वैत। यह भला है, यह बुरा है, अभी जानने से ज्ञान ज्ञेयका भेद कनाया था अब पर ज्ञियो में भेद डाल रहा है कि यह भला है और यह बुरा है कोई समझाये कि तुम्हें क्या पड़ी हैं ? परपदार्थ हैं। क्यों सोचते हो कि यह भला है, यह बुरा है ? अरे वेदोनों ही पर हैं, भिन्न हैं, समझाये भी अथवा न समझाये भी, यहतो अपनी उस हठपर है, उन्हें मानता है कि यह भला है, यह बुरा है ? अरे वे दोनों ही पर हैं, भिन्न हैं, सयझाये भी अथवा न समझायें भी, यह तो अपनी उस हठपर है। उन्हें मानता है कि यह भला है, यह बुरा है। अब जब वहाँ परमें स्व और परका भेद आ गया तब उनमें अन्तर जचने लगा। और, अन्तर जचा इतना कि एक इष्ट हुआ एक अनिष्ट हुआ।

द्वैतबुद्धि का फलः—ज्ञान ज्ञेयका द्वैत होना, परमें इतना जानना, स्वपरका द्वैत होना इष्ट अनिष्टका द्वैत होना इतना भेद करना, इतना अन्तर डालना, इन सब बातोंका आखिर परिणाम क्या है ? तो जब इतनी बातें चल रही है तो वहां क्रिया कारककी बात इसके साथ हुई, इससे यों करना चाहा, मैं इसको यों करूँगा, इष्टमें और तरहका विकल्प, अनिष्टमें और तरहका विकल्प। तो अब जब इसके क्रिया कारक चलने लगे तो उन क्रिया कारकोंसे बना इसका अध्यवसाय। अध्यवसाय ३ प्रकारके होते हैं, एक तो होता है अपनेको अहंरूप माननेका। मैं मनुष्य हूँ, अमुक हूँ, कुलीन हूँ, गांवका मुख्य हूँ, त्यागी हूँ, व्रती हूँ आदि, यों अनेक प्रकारकी बातें भीतरमें आने लगे यह कहलाता है विपच्यमान अध्यवसान। दूसरा है क्रियागर्भ अध्यबसान मैं तो इसको यों कम्र दूँगा, और, तीसरा अध्यवसान वह होता है कि

http://sahjanandvarnishastra.org/

जोकुछ जाने उसमें चतुराई मानना और उसमें आत्मबुद्धि करना, आत्मतत्त्वका विकल्पकरना जहां यह अध्यवसान हो वहां कर्मका आश्रव है। कर्मका बंध है। और जो बंधगया कर्म। जबउसका उदयआता है तो उसके अनुकूल दुःख-सुख भोगनापड़ता है। जन्ममरण करना पड़ता है। जैसेकोई कहीं विपत्ति में फंस जायतो कुछ वहसोचता है—अरे विपत्तिमें फंसगया, कोई मौकामिलेतो फिर इसके फन्देमें न जाऊंगा। तो यहांभी तो देखिए, हमआप कितनी विपत्ति में पड़े है, कितने फन्देमें पड़े है तो इतना तो भावहोना चाहिए कि हमेंतो इसफन्देमें पड़ना नहीं है। बाहरके फन्देमें पड़ना नहीं, ऐसातो बहुतसे लोग सोचसकते हैं। घरमें खडेहों वहाँभी सोच सकते, कहीं मननमिला वहांभी सोच सकते, इसफन्देमें नहीं पड़ना है। जरासा कुछभी बाहरमें काम हो, परोपकार वाला काम हो, उसमेंभी आपत्ति आती है और अपने भीतर जो फन्दे चलरहे है और बड़े सन्तोष के साथ जो बैठते है तो उनकेप्रति क्योंनहीं भाव जगता कि मुझे तो फन्दे में नहीं पड़ना है। फन्दा तो असली यह है। बाहरकी चीजतो जो होती है होने दो, जैसा होता है ठीक है मन, वचन, काय लगा है, उनकी प्रवृत्ति बिना रहा नही जाता, ऐसी वर्तमान स्थिति है बाहरकी बातोंसे लाभ हानि नही। लाभ हानि तो अन्तर के आशयसे है, विपरीत आशय हो तो वहां हानि है, अनुकूल आशय हो क्षायकभाव अन्तस्तत्त्वका, तो लाभ है। यह बात उपदेशसे नहीं बनता, सिखाने से नहीं बनता, बनावटसे नहीं बनता। जिसको बने उसको लाभ है, गुपचुप। वह अपने हितमें है। उसकी परख कुछ नहीं है। दूसरा क्या करें? खुदकी बात खुद में है। परख तो होती है, वह एक अंदाज होता है। हित चाहिये हमें तो हममें ऐसी अनुकूल परख हो कि जो मेरे स्वभावमें फिट बैठे। उससे हमारा हित है।

आस्रवका विधान:—बात मूलमें दो आंयीं जब हम प्रयोजन तत्त्वकी भूमिकामें चलते हैं। जीव और अजीव, जीव चेतन है, अजीव कर्म है, इन कर्मोंका साक्षात् नाता कर्मसे है जीवसे नहीं। लेकिन जीव ऐसा यह बीचमें पड़ा है कि जीवके आदेश बिना ये कर्म दूसरे कर्म से नाता भी नहीं लगा पाते। नवीन कर्मका आश्रव होता है तो उसका आमंत्रण देने वाला उदयमें आया हुआ कर्म है जीव नहीं। जिसे कहते हैं निमित्त। लेकिन उदयमें आने वाले कर्ममें इतनी सामर्थ्य नहीं कि जीवके रागद्वेषका संकेत न मिले तो वह नवीन कर्मोको बुलाकर घरमें रख सके ऐसी सामर्थ्य उदय वाले कर्ममें नहीं है। नवीन कर्म आते हैं उदयमें आये हुए कर्मका निमित्त पाकर, लेकिन उदयमें आने वाले कर्म निमित्त बन जायें ऐसी सामर्थ्य उनको मिलती हैं रागद्वेषका निमित्त पाकर। शास्त्रोंमें ऐसा विश्लेषण करके वर्णन प्रायः आता नहीं हैं, और कहीं आता है तो वहां प्रायः पढ़ने वाले भी गौण रूपसे पढ़कर चल देता

Reprint only papers of jnanpith.asnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। और ऐसा विवरण देनेका कोई अधिक प्रयोजन भी न था, इसीलिए यह ही बात प्रसिद्ध है कि नवीन कर्मके आनेका निमित्त कारण जीवका रागद्वेषभाव है। सीधा यो ही कहा जायगा। अगर किसीने अपने पाल्तू कुत्ते को दूसरे आदमी पर संकेत कर दिया और कुत्तेने बढ़कर उस आदमीको काट लिया, तो इसमें कोई भी आदमी उस कुत्तेमें अपराध नहीं लगाता किन्तु उस आदमीपर लगाता जिसका पाल्तू कुत्ता है। जिसके संकेतपर कुत्तेने हमला किया जज भी निर्णय देता है तो कुत्तेको दण्ड नही देता किन्तु जिसका पाल्तू कुत्ता है उसे दण्ड देता है। इसलिए वह बात प्रसिद्ध है कि इस मनुष्यने उसपर हमला किया। वह तो विचारा आदेश मानने वाला कुत्ता है, पशु है, उसपर अपराध नहीं मढ़ा जाता। तो इसीप्रकार उदयमें आये हुए द्रव्यकर्म तो बेचारे पाल्तू थे, हुकुम मानने वाले। इस जीवने रागद्वेष मोहका छुटकारा दिया तो उन्होंने नवीन कर्मका आश्रव किया। आश्रव हुआ और वे ठहर गए तो उसी को बंध कहते हैं। यहां एक बहुत बड़ी विपत्तिकी घटना चल रही है, यह रात दिन चलती रहती है। निज स्वरूपका ध्यान हो तो वह विपत्ति भी मालूम पड़े। अन्यका विपत्ति भोगते हुए भी विपत्ति मालूम नहीं करना। आश्रव हुआ, बंध हुआ, अब बंधके साथ ही, आश्रवके साथ ही उसमें उसी समय शक्ति निर्णीत हो गई और प्रकृति निर्णीत हो गई। उन परमाणुओंमें ऐसा तुरन्त बटवारा हो जाता निमित्तत्वका कार्माणवर्गणामें कि यह तो इस जीवका ज्ञान घातेंगे। ये कर्म जीवके दर्शनगुणको घातेंगे। ये शरीरबनानेमें काम करेंगे। ये ऊँच नीच व्यवहारमें काम देगें, ये शरीरमें जीवको रोके रखेगे। यह सब प्रकृति बन जाती है। जैसे कोई बेचारा एक आदमी ७–८ बैरियों के बीच पड़ गया हो या जब कोई भी बालक ७–८ बच्चों के बीच पड़ गया हो, जो इसका प्रतिपक्षी हो तो कोई बालक हाथ पकड़ता है, कोई कमर पकड़ता है, कोई आंखें मीच लेता, कोई मुक्के मारता। यों ही कर्मोंमें सब बांट हो गई और सब अपने–अपने हिसाबसे अपने-अपने प्रभावमें रहते हैं और जीव इन ८ कर्मोंके बीच फंसा हुआ दुःखी होता है, बन्धनको प्राप्त होता है। कब होता ? बंध हुए बाद उनका तब उदय आया। जब बहुत दिनों तक किन्हीं पुरुषोंका द्वेषभाव चलता है, तो उनमें एक पुरुष अपनी पार्टीमें सलाह करता है कि देखों इस तरह पीटना है, इस तरह बरबाद करना है तो ऐसे ही उनमें निश्चित हुआ और जब उदयकाल आया तो यह जीव अकेला उन कर्मो के बीच पिटने लगा। पिटा और इसी समय यह जीव रागद्वेष मोह करने लगा, अकड़ गया, बुरे विचार बनने लगे तो और नवीन कर्म और और अधिक–अधिक बैरी बन बनकर इसके बन्धनको करने लगे। होता है सब निमित्त नैमित्तिक भावसे। करने वाला कोई किसी दूसरेका नहीं है। तो किस तरह होता है ? निमित्त नैमित्तिक भावसे। बस इस आपत्तिके बीच फंसा है।

 http://sahjanandvarnishastra.org/

सब कर्मोंमें ऐसा बटवारा है। जन्म होता है, मरण होता है, आयु अपना काम करती है। नाम कर्म अपना काम करता है। दुःखी पड़ा हुआ है। जिस समय उसने अपना होश सम्हाला कि मूलमें यह गल्ती है जिसपर ये सब बातें लदी हैं। ज्ञान ज्ञेयका द्वैत करना। मूलमें यह बात थी। तो ज्ञानीं क्या करता ? ज्ञान ज्ञेयका द्वैत मिटाता।

मात्र सहजभाव लक्षित होनेमें धर्मपालनकी यथार्थता:—ज्ञान ज्ञेयका द्वैत मिट जाना, यह बात जिस ध्यानमें बने उसे उत्तम ध्यान कहते हैं। जैसे ऐसी बात सम्हाली तो उस सम्हाल के प्रसंगमे कमी भी रही आयी, लेकिन सम्हालका संकल्प है, सम्हालकी दृष्टि है। सम्हालका उद्यम है तो उसके बीचभी सम्बर, निर्जरा होती रहती है। होते होते जहां पूर्ण सम्हाल हुई वहां मुक्ति होती है। जीव इस तरह बन्धनमें जकड़ा और इसतरह बन्धनसे मुक्त होता, यह बात अपने भीतरकी जानें तो वह हमारे लिए बहुत बड़े ज्ञानकी बात है। और, दुनिया की सारी बातें तो जानें पर अपने भीतरकी अनुभूतिकी बात न जानें तो वह दुनियावी ज्ञान कुछभी कार्यकारी नहीं है, अन्यथा वह तो बच्चों जैसा ज्ञान है। जैसे बच्चोंको दुनियाका ज्ञान कराया जाता है—अमेरिकामे अमुक अमुक नदी, रूसमें अमुक पहाड़, चीनमें अमुक—अमुक जंगल···यों दुनियाका सारा ज्ञान तो करा दिया गया, पर उनसे पूछा जायकि अच्छा यह बताओ कि तुम्हारे घरके पीछेसे जो नाला निकला है वह कहां से निकला है और कहां गिरा है तो वे बता नहीं सकते। तो इसीतरह हम बाहरी—बाहरी बातोंका बहुत ज्ञान कर लें और अपने निज तत्त्वकी बातकी रुचि न हो, धुन भी न हो, सुहाये भी नहीं, तो बस वह हमारा बाल ज्ञान है। तो बात अपनी मजबूत बनावें। यहां तो अपनी दुकानकी बात मजबूत बनाते, घर मजबूत बनाते, यों बाहरमें तो जो भी काम आप करते हैं वहां मजबूत और ठोस ही करनेका ध्यान रखते है पर अपने अन्दरमें अपने आपका ठोस मजबूत काम करनेका ध्यान भी नहीं रखते। जो बात चलते—चलते भी हो सकती। बैठे-बैठे भी हो सकती, पड़े पड़े भी हो सकती। और बात करते—करते भीं हो सकती। जो इतनी सहज है, स्वाधीन बात है उसकी तो रुचि न जगे और बाहर—बाहरकी अनेक बातोंके ज्ञानकी बात जगे तो हित का मार्ग तो न मिल पायगा। हितका मार्ग तो इसी उपाय से मिलेगा। उसीको आचार्योंने ७ तत्त्वोंके रूपमें बांधा है। करने का काम एक ही है, निज सहजस्वरूपकी दृष्टि और होनेके काम अनेक हैं। अनेक तो काम नहीं होते, लेकिन चूँकि अनेक गल्तीमें पड़े हैं तो उन गल्तियोंको हटाने के काम भी अनेक हो जाते, लेकिन करनेका काम केवल एक है, ऐसी दृष्टि हो, ऐसा आशय हो, ऐसा ध्यान हो, जहां सहजभाव लक्षित हो। लोग बाहरकी बात जान समझकर वहां परख करते है कि यह इसतरह चलता है, यह धर्मात्मा है, यह इसतरह बैठता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, यह ऐसा करता है वह धर्मात्मा है। यद्यपि धर्मात्मा की ऐसी बाह्य प्रवृत्ति चिन्ह तो है मगर वह चिन्ह तो गलत भी हो सकता, सही भी हो सकता। अन्दरमें जिसको अपने उस सहजस्वभावकी दृष्टि है। अन्य कुछ चाहता ही नहीं है, धर्मात्मापन तो वहां है। ऐसा धर्म परमात्मास्वरूप भगवान आत्मा है, जिसका सहजस्वभाव है ज्ञानवृत्ति। उसकी चाह हो, उसकी दृष्टि हो, उसका आलम्बन हो, आश्रय हो वही कहलाता है धर्मपालन। धर्म ही जीवका हितू है, और कुछ जीवका हितु नहीं है।

प्रयोजनभूत ज्ञात तत्वोंमें जीव और अजीवका अर्थ:—जिस तत्वसे निश्चित किए गए पदार्थोंके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं वह तत्व क्या हैं ? उन तत्वोंके सम्बन्धमें यह चतुर्थ सूत्र चल रहा है। वे ७ तत्व हैं। जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष। पहिले इन सातोंका संक्षेपमें स्वरूप सुनो। जीव किसे कहते हैं ? जिसमें चैतना हो उसे जीव कहते हैं। वहां पर्यायप्रधान्य रूपसे जीवको देखना है। यहां युद्ध जीव या भूतार्थ से परिचित किया गया जीव नहीं निरखना हैं, क्योंकि उसके साथ तत्वका सम्बन्ध न बन सकेगा। वह तो एक रूप है, अखण्ड है, अविष्कार है, वन्ध मोक्षकी व्यवस्थासे रहित है इस-लिए यहां जीव कहां है जो सामान्य रूपसे समझनेमें सब जगह लागू हो जाय जीव, जिसमें चेतना हो उसे जीव कहते हैं। अजीव जिसमें चैतना न हो उसे अजीव कहते हैं। चेतनाका अर्थ क्या है ? जीव शब्दसे कुछ भी अनेक अर्थ लगाये जा सकते हैं। जो दश प्राणों से जीवे, सो जीव, लेकिन यह लक्षण संसारी जीवों में ही घटित हो पायगा। मुक्तिमें नहीं, तब कहना जो पहिले जिया हैं, जी रहा अथवा जीयेगा वह सब जीवोंमें साक्षात् घटित होते वह लक्षण है मुख्यता चेतन प्राण करके जीवे सो जीव अर्थात् जिसमें चेतना होंवे सब जीव। अजीव—जिसमें चेतना न ही ऊसे कहते हैं अजीव अजीव में पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये पांचों आ गए, लेकिन प्रकृत में मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत जीवमें क्या लेना ? वे कर्म पौद्गालिक हैं, चेतना रहित हैं

जीव और अजीवके निमित्त नैमित्तिक योगका प्रभाव—कर्मका जीवके साथ कैसा निमित्त नैमित्तिक योग है और निमित्त नैमित्तिक योग होनेपर भी प्रत्येक वस्तु किस प्रकार स्वतंत्र हैं, यह सब मर्म जब विदित हो जाता है तो मोह छूट जाता हैं, जितने भी प्रयास धर्मके लिए करते हैं उसमें उसकी सफलताकी निशानी यह है कि यह देखें कि मोह छूटा कि नहीं छूटा। मोह कहते किसे है ? परवस्तुमें लगाव रखना यह मैं हूँ, यह मेरा है, उससे हित समझना इस प्रकार परवस्तुके साथ जो अपना लगाव है उसे कहते हैं मोह। लोकमें दुःख देने वाला कुछ है तो मोह ही है। सब आक्रन्दमें हैं। सब शान्त हैं, सब सुखी हैं, सब निर्वाध हैं। किसीको कोई प्रकारका कष्ट नही है, क्योंकि सब जीव हैं, स्वतन्त्र हैं, सत् हैं, अपने आप सिद्ध है।

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

यःने निष्पन्न हैं, अपनी परिणति करते हैं, उसे कष्ट क्या ? उसमें किसी बाह्य वस्तुका प्रवेश ही नहीं है तो उपद्रव कहां से आयगा ? लेकिन जो उपयोगमें मोह समाया है, बाह्य वस्तुसे मान लिया कि यह मेरा है, बस इसके आधारपर कष्ट लगे हुए है। क्यों जी, यदि किसी भी परवस्तुको न मानें कि यह मेरी है तो क्या प्राण नष्ट होते हैं ? क्या कोई नुकशान पड़ता है ? हां नुकशान पड़ेगा तो यह पड़ेगा कि दुःखका नाश हो गया। जीव आनन्दमय हैं, सत् परिपूर्ण है, पर मोह जो बन गया कि यह मेरा है, यह मैं हूँ, बस इससे दुःख है। अब यह मोह कैसे बन गया ? तो इसके बारेमें एक वस्तुस्वातंत्र्यका दर्शन कराने वाला निश्चयनयकी ओर का एकान्त करके यह कह देता कि जीवमें जब मोह आना था आ गया, जब राग आना था आ गया तो मात्र यह उत्तर एक सुघटित नहीं है। यह एकान्तसे उत्तर दिया है। अगर मोह ऐसे ही आ गया तो वह जीवका स्वभाव बन बैठेगा। आया तो वह जीवकी परिणतिसे है स्वतंत्र है वस्तु, किसी अन्यकी परिणतिसे नहीं परिणमता है, लेकिन अपनी स्वतंत्रता से ही यह परतंत्र हो रहा है। अपनी स्वतंत्रतासे ही यह विकार करात रहा है, पर स्वयं निमित्त बनकर नहीं कर रहा है। अगर स्वयं निमित्त बनकर यह जीव विकार करे तो सदाकाल विकार रहेगा। ये विकार परभाव हैं, यह कहने की गुंजाइस न रहेगी। होता क्या है कि इस पुद्गलकर्म विपाकका निमित्त पाकर जीव अपने आपमें अपनी परिणतिसे, अपनी स्वतंत्रतासे विकार करता है,

मोहकी अनर्थकारिता;—हां तो प्रकरणमें यह बात कही जा रही है कि मोह दुःख दायी चीज है। मोह जीवको बड़ा सुहावना लगता है। जब स्त्रीपुत्रादिकके प्रति रागभरी दृष्टि जाती है तो लगता कि ये पुत्र कैसे सूहावने हैं, यह स्त्री कैसा आज्ञाकारिणी है, उसे अपने में गौरव अनुभव करता है। यह कितना महान अन्धकारहै। भगवान आत्मा जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दका स्वभाव रखता है ऐसा यह भगवान आत्मा इस वेकार को कलंककी चीजमें मस्त होकर अपने दुर्लभ मानव जीवनके क्षणोंको गंवा दे ती अन्तमें क्या हालत होगीं ? मरना पड़ेगा, बुरी मौत मरेंगे। यह जन्ममरणकी परम्परा रहेगी तो इस जीवका कोई भला नही है। जीवका कल्याग है इसमें कि मोहको जड़से मिटावे। उसमें रंच गुंजाइस न रखें कि मोह छोड़ देंगे तो घरमें न रह पायेंगे। घरमें न रहेंगे तो भूख पियास आदिकका गुजारा कैसे चलेगा ? यह शंका न रखें। मोहको मूलसे मिटाके मोहको मिटानेपर भी हमारे जैसा राग विद्यमान है उसके अनुसार घरमें रह लेंगे और अगर राग मिट जाय तो इसकी फिक्र क्यों पड़ी कि घर मिट जायगा ? घर छोड़कर घरका विकल्प न आये तो घरका छोड़ना बुरा है क्या ? घरका छोड़ना तब विडम्बना है जब कि घर तो छूट

Report any errors at vkasmd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाय, पर घरका विकल्प बना रहे। अगर यह स्थिति आये कि सब कुछ छूटे और विकल्प न रहे तो यह उत्तम चीज है, यह तो भगवान होनेका मार्ग है, लेकिन जब तक घर नहीं छूटता, राग रहता, तब तक घरमें रहना होगा, रहो। मोह छोड़कर भी घरमें रह सकते। यह शंका न रखो कि मोह छोड़ देंगे तो घर भी छूट जायगा। मोह मिट जानेपर इस जीवको जो आनन्द आता है वह अद्भुत और विलक्षण है। मोह केवल घरके मोहको मोह नहीं कहते, मोह कहते हैं अपना जो विकार भाव है उन विकार भावोंको यह मैं हूँ, इससे ही मेरा जीवन है। यह ही मेरा प्राण है। उन विकार भावोंको अपनानेका नाम मोह है। मोह मिटनेपर न घर छूटता, न घर रहता किन्तु क्या छूटता? विकारभावका लगाव छूटता है। मोह छूटनेपर भी घर बना रहता है। सदा तो न रहेगा, मगर जब तक राग है तब तक घर रहता है, मोह छूटनेके मायने है, अपने विकार भावोंमें लगाव छूट गया। तो विकारोंका लगाव छोड़ कर भी ज्ञानी पुरुष घरमें रहता है। उसका तो घरमें रहना और ढंगसे बनता है कि अकुलताभी नहीं है। सारे काम बन रहे हैं और घरमें रह रहे हैं। और देखो घरमें भीं अच्छी तरह रह वह सकता है जिसके मोह नहीं है। आप सोचेंगे कि क्या बात कही जा रही है? देखो जिस पुरुषको मोह है, अपने विकार विकल्पमें लगाव है उसमें मोह है और घरमें रह रहा है तो बात-बात पर उसके साथ झगड़ा ठन जायगा। क्योंकि उसने विकारमें लगाव रखा ना? तो अपनी कषायपर वह अड़ता रहेगा। उसके स्त्री है, पुत्र है, चाचा है, भाई है, सबकी कषायें तो अपनी-अपनी हैं। कभी प्रतिकूल भी होता है तो झगड़ा बना रहेगा। जीवन कष्ट में जायगा। और लोग इसका आदर भी न कर पायेंगे, क्योंकि यह मोही है। वह अपने आदर का पक्ष लेगा तो कुछसे कुछ बात करेगा, जो दूसरेके प्रतिकूल बैठेगी, और निर्मोह गृहस्थ है तो चूँकि उसे अपनी कषायका आग्रह नहीं है, पकड़ नहीं है, और परिस्थिति वश रह रहा है। रहना पड़ेगा, रहना चाहिए, क्योंकि ऐसी परिस्थिति है तो सब बातें उसकी अपने आप सम्हल जायेंगी। अनसुनी कर देगा, उपेक्षा कर देगा, ऐसा उदार चित्त होकर घरमें रहने वालेका आदर विशेष बढ़ता है। तो घरमें रहनेकी भी सुन्दरकला है निर्मोह होकर घरमें रहना। जिसके मोह है वह घरमें रहकर भी आनन्द नहीं पाता। यह भ्रम है कि मोह छोडेंगे तो घर छूट जायगा। मोह और राग दोनों छूटें तो घर छूटता है। अगर ऐसा आपका सुन्दर भवितव्य होनेको हो कि सब छूटे तो उसमें भी पीछे क्यों हटते? जब तक राग नहीं छूटा तब तक घरमें रहो, पर मोह छोड़कर तो रहो। मोह छोड़ने के मायने राग छोड़ना नहीं। राग बात अलग है, मोह बात अलग है, मौह में अंधेरा है और रागमें प्रीति है।

मोहके त्यागमें सर्वत्र हितः—अंधेरा रहते हुए जो प्रीति है उसको लोग राग कह

Version 1.1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देते हैं, अथवा अंधेरा न रहकर भी जो राग है उसे लोग मोह कह देते हैं पर ये दोनों भिन्न-भिन्न चीजे हैं। मोह जुदा है, राग जुदा है। मोह क्या है ? जैसे कोई रईस पुरुष बीमार हो गया तो उसे सुन्दर शय्यासे राग है, डाक्टरसे भी राग है, औषधिसे भी राग है, है कि नहीं है राग ? अगर समयपर औषधि नहीं मिलती तो उसे क्रोध आता कि नहीं ? क्रोध आता है, अगर समयपर डाक्टर नहीं आता तो उसे बुरा लगता-क्यों डाक्टर नही आया ? इसीसमय बुला लावो। तो डाक्टरसे प्रेम है कि नहीं उस रोगीकों ? और औषधिसे भी प्रेम है कि नहीं ? और पलंगसे भी प्रेम है कि नहीं ? आरामसे प्रेम है कि नहीं ? मगर यह तो बतलावो कि उस रोगी डाक्टरसे मोह भी है क्या ? मोह तव कहलाये जब यह श्रद्धा रहे कि ऐसी बात तो मेरे पास जिन्दगी भर रहे। क्या रोगी ऐसा सोचता है ? वह तो यही सोचता कि कब इसका आना टले, और इसका आना टल जाय इसीलिए वह डाक्टर बुला रहा, मुझे औषधि खानी न पड़े इसके लिए वह औषधि खा रहा है, तो उसे औषधिसे मोह है क्या ? उस प्रसंगसे उसे मोह है ? अगर पलंगपर कोई विनोला है, वह गड़ता है तो उसे भी वह हटवाता है। बहुत कोमल गद्दा चाहिये, पर उसे उस गद्दे से मोह है क्या ? अरे वह तो सोचता है कि कब मेरा यह गद्दा छूट जाय और मैं मील दो मीलकी दौड़ लगाऊँ। तो राग होने परभी मोह नहीं है। और भी दृष्टान्त देखिये-एक मुनीम जो किसी बड़े सेठकी किसी कर्ममें काम करता है वह सेठकी सारी सम्पतिका सुन्दर हिसाब किताब रखता है। उस सम्पतिका उसको इतना पता रहता जितना कि मालिकोंभी पता नहीं रहता। मालिककी सम्पत्तिको वह ग्राहकोंसे मेरी मेरी भी कहता, मेरा तुमपर इतना गया, तुम्हारा हमपर इतना आया, यह भी कहता, फिर भी उसके चित्तमें यह बात बसी है कि यह मेरा कुछ नहीं। तो देखिये उस मुनीमको वहां राग है, पर मोह नहीं है। तो इसीतरह से समझियेकि मोह न रहने पर भी राग होता है, उस राग की प्रेरणासे यह घरका काम चलेगा। तो इस मोहको त्याग घरमें रहनेमें आपकी शोभा है, आपका आदर है, आपका श्रंगार है। तो निर्मोह बनकर घरमें रहते हुएमें आपकी घरमें भी शान है, घरका जो कुछ है सो हो रहा है और मोक्षमार्ग भी चल रहा है। निर्मोह होना अपने हाथका काम है, अपने उपयोगका काम है।

निर्मोह होनेके पौरुषका अनुरोध:—निर्मोह होनेके लिए ही यह बात सोचना सीखना है कि निमित्त नैमित्तिक क्या है और वस्तु स्वातंत्र्य क्या हे ? ये दो बातें सीखनी हैं वे बेकार नहीं हैं वे बड़े काम की हैं। मोह मेरा मिटे उसके लिए हमें इन दो बातोंका निर्णय करना होगा। अब इन दो वातोंमें कोई एक का एकान्त करले तो वह मोह नहीं छोड़ सकता। वह इन दोबातों को सही समझे तो उसे मोह छोड़नेकी अपने दिशा मिल जायगी अन्यथा क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दशा होती है ? जैसे कभी पूजा करते हुए भी लोग लड़ने लगते-तुम यहाँ क्यों खड़े हो गए ? यहां तो हम रोज खड़े होकर पूजा करते थे । लो लड़ाई हो गई । तो भाई जो धर्म करता हो, उसके साथ तो लड़ाई होती नहीं कभी । वह तो कभी लड़ेगा ही नहीं । उसके तो क्रोध न आना चाहिये । तो मालूम होता है कि वह शुद्ध भाव से पूजाके लिए नहीं खड़ा था । वह कुछ रुढ़ि से । कुछ कषायके आग्रहसे, मैं जैन हूँ, मैंने व्रत लिया है, मेरा कर्तव्य है, मेरा इसमें शृङ्गार है । उससे लोग मुझे धर्मात्मा कहते है । लोगोमें धर्मात्मपने की प्रसिद्धि है । न जाने कितनी तरह के विकल्प करके वह खड़ा है तो जरा जरा सी बात में उसके क्रोध उमड़ आता है । वह धैर्य नहीं कर सकता और एक सिर्फ ध्येयका पता होना कि मैं बड़े कष्ट में हूँ, संसारमें यह कर्मलीला है । मेरे ऊपर बड़ी आफत है । मैं अपने शुद्ध स्वभाव से च्युत हो जाता हूँ, विकल्पमें रहता हूँ । मैं उन विकल्पोंसे छुटकारा पाने के लिए और एक ऐसा धैर्य पानेके लिए, कर्म लीला कैसे ही प्रकट हो उससे अधीर न होऊंगा । मैं उसके कारण क्षुब्ध न होऊंगा । मैं ज्ञाताद्दष्टा रहूँगा । यह कर्मलीला है । यह मेरा स्वरुप नहीं, मेरा स्वभाव नहीं । मैं तो एक उपयोगस्वरुप शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ । यह भाव करनेके लिए मैं मन्दिरमें आया हूँ और उपयोगकी स्वच्छताका विकास, ऐसा ही परिणाम, ऐसी ही परिस्थिति अरहंत प्रभु की है । तो उस स्वरुपको निरखकर और अपने आपमें उसको भा भा कर स्वभाव दृष्टि करके आत्महित करनेके लिए मैं यहां आया हूँ ऐसा उसका भाव होता तो उसको पद-पद पर लड़ाई की बात नहीं आती । यह तो पूजाकी बात है । और, धर्मचर्चा करते-करते क्रोध आ जाता है तो उसने भी धर्म नहीं किया, तब ही तो क्रोध आया । जो मैं कह रहा हूँ, तो सच है, इसने मेरी बात क्यों न मानी ? इस प्रकारका कषायमें आग्रह करने से वह खेदखिन्न होता है । जहां चल तो रही मीठी मीठी तत्वकी बात, लेकिन उस तत्वके विकल्प में चूंकि आग्रह है, मिथ्यात्व लगा है, विकल्पका लगाव लगा है तो उसके खिलाफ कोई अगर बोलता है तो वह अनमना हो जाता है । क्यों अनमना हो जाता है । संसार के जीव बन्द रहे है । ज्ञाता द्दष्टा होनेका जहां यह उपदेश है कि तुम्हारे स्वयं में, खुदमें होने वाली जो कर्मलीला है और कर्मलीला की झांकी है उसके भी ज्ञाता द्दष्टा रहो । उसमें भी लगाव मत रखो । लेकिन, मोह है ना सो उल्टे चल रहें हैं कि मेरा जो ख्याल है, मेरी जो बात है उसे क्यों नहीं मानते ? उसके विरुद्ध क्यों यह कहते ? ऐसा जो एक प्रकारका विषाद चित्तमें होता है उससे क्रोध जग जाता है तो समझो कि वहां अभी धर्मका मर्म नहीं समझा गया । कोई धर्म करे और दुखी हो ऐसा हो नही सकता ।

धर्मका फल आनन्द—धर्म करने वाला कभी दुःखी हो ही नहीं सकता, लेकिन जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धर्म नहीं है उसको करते हुए में यदि यह सन्तोष हो जाय कि मैं धर्म कर रहा हूँ तो समझो कि वह अभी धर्म में आयाही नहीं है और इसीलिऐ उसे बुःखी होनापड़ता है। किसीके संतान नहीं है, किसीके धन अधिक नहीं है, लेकिन वह धर्मदृष्टि रखता है, धर्म पालरहा है तो उसे दुःख नहीं होता, बल्कि वहतो एक आराम मानरहा है कि मेरेपास अगर कुछ सँतान होतेतो उनमें मैं फँसारहता। मुझे अधिकमौका न मिलता और मैं अपने इस आत्माके ध्यान में चर्चामें अधिक मग्न न होपाता इसिलिए वहतो उसमें अपनेको और अच्छामान रहा है। दुःख कहां होता ? जो धर्म पाल रहा है वहअगर निर्धन है तो भी दुःख नहीं मानता। वहतो सोचता है कि क्याबात है ? खानेपीने की जितनीसुविधा है वहतो है खाएजा लगाकर दो-तीन रुपएका काम करलिया जायेगा। घरके दो–चार आदमियोंके गुजारेके लिए काफी है। अगर धनका अधिक महत्व कोईदेतातो फिर धनके कमहोनेपर वहदुःखी होता। जबधनका वह महत्त्व ही नहीं देता तो फिर धनके रहनेसे वह दुःख ही क्यों मानेगा ? बल्कि वह तो यह समझता है कि अच्छा है कि सुगमतापूर्वक जो आय हुई उसीमें वह अपनी सारी व्यवस्था बनाकर चैनसे रहता है। आत्मध्यानका मौका भी मिलता है। वह दुःख नहीं मानता। तो क्या जिसके पास धन है, जो धर्मपालन कर रहा, क्या वह दुःख मानता है ? अरे वह भी दुःख नहीं मानता। उदयानुसार उसको आय होती है। कोई समस्या सामनें आ गई। कोई धर्मका काम आ गया तो उसे देर नहीं लगती। हटाओ, छोड़ों, क्योंकि उसे आग्रह नहीं है। बाह्य वस्तुमेंतो वह दुःखकैसे मानेगा। दुःख तब होता है जब धनमें आग्रह हो। धनको जिसने समझा कि यही मेरा प्राण है। जैसे १० प्रकार के प्राण मानेगये है मगर ११वाँ प्राण धनको भी मानते हैं ना मोही। तो जो लोग इसधनको अपना प्राण समझते हैं वे धनके कमहोनेपर दुःखीतो होंगे ही। और जो सहीमार्ग में लगा है उसके लिए क्या है ? धनकम हो तो क्या ? अधिक हो तो क्या ? वहतो जानता है कि यहमेरीचीज नही है, यहतो विनाशीक चीज है, मेरेसे अत्यन्त भिन्न है, उसके न रहनेपर मेरी क्याहानी है ? उसके उदारता रहती है। उदारता करनेसे कहींधनकम नहीं होजाता। वहतो उदयानुसार आता है, न जाने किस-किस उपायसे आता है। तो धनकम होनेमें भी दुःखी नहीं होता, सन्तानहीन होनेपरभी दुःखी नहीं होता धर्मपालक महात्मा। बाहरी बातोंसे दुःख नहींहोता। दुःखतो होता है मोहसे, विकार को अपनाने से, विकारका लगावकरने से दुःख होता है। बाह्य बातोंसे दुःख नहीं होता।

अपनी सम्भालमें आत्महित—देखो भैया! अपनी-अपनी सम्हाल करलो तो सबकी सम्हाल हो जायेगी औरयदि दूसरे-दूसरे की सम्हालमें ही लगेरहेतो किसीकी भी सम्हाल न होपायेगी जैसेंकभी देखाहोगा कि रेलगाड़ीमें १०-२० बुढ़ियोंका जत्थाबनकर मथुरा बृन्दावनकी यात्राको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है तो वेसभी बुढ़िया अपने-अपने पास एक-एक पोटलीरखती हैं। जब वे रेलगाड़ीसे उतरती हैं तो सबकीसब बुढ़िया अपनी-अपनी पोटलीकी सम्हाल रखती है। कहीं ऐसानहीं होता कि वे दूसरे-दूसरे की पोटलियोंकी सम्हालमें रहे। यहीकारण है कि वे बुढ़िया अच्छी तरहसे यात्राकर आती हैं। उनकी समानकी कोई गड़बड़ी नहीहोनेपाती। औरयदि उनमें उसजगह इतनी उदारता आजाय कि अपनीं पोटलीकी तो कुछभी फिकर न करे और दूसरों की पोटलीकी बड़ीं फिकर करेंतो इससेतो उनकी पोटलियोंकी सम्हाल न होपायेगी। ठीकयही हालहोता है मिथ्यादृष्टि का। मिथ्यादृष्टि पुरुष अपने जत्थेमें कितनाथोता उदारनेता बनरहा हैं कि वहअपनीतो कुछ फिकरनहीं कररहा, पर दूसरोंकी बड़ी फिकर रखरहा है। ये लड़के ऐसे बनजायें, ये मित्र ऐसे होजायें, अगर ऐसी उदारता कहींउन मथुरा वृन्दाबन जानेवाली बुढ़ियोंमें आजाए तो नजाने उनका क्या-क्या खोजाय। मगर अपनी अपनी सम्हाल रखनेसे उनकीगठरी नहींखोती और वे ढंग से पहुँच जाती हैं इसीतरह धर्मके मामलेमें सबलोग अगर अपने-अपने स्वभावकी, अपने-अपने सामर्थ्यकी, अपने-अपने स्वरूपकी दृष्टिरखें तो समझोंकि जितने हैं वेसब धर्मात्मा हैं। और दूसरे-दूसरे की दृष्टि रखेंतो समझोकि कोई धर्मात्मा नहीं है। मानों १०० आदमी हैं। ऊनमेंसे अगर ९९ लोगोंने यह सोचलिया कि ये ९९ आदमी ज्ञानसीखे पूजाकरें, धर्मात्मा बनेंतो समझोंकि उनमें एकही पुरुष धर्मात्मा बना क्या ? एकभी धर्मात्मा नहीं है। और उन १०० मेंसे अगर दो लोगभी अपनी-अपनी बातसोचते हों तो नम्बर तो आया, दो तो है धर्मात्मा सम्भव है उन दो के सत्संगमें अन्यभी कोईधर्मी बनजावे तो जोयह आदत बनीहुई है कि दूसरे-दूसरे ज्ञानसीखें, ये धर्ममें लगें, येभी लगें, ये ज्ञानमें लगें, ये ऐसा करें, यह आदत छोड़कर स्वयं धर्मकरने लगे, तो धीरे-धीरे वहभी धर्ममें लगजायेगा और जोस्वयंधर्म न करेगा वहकभी धर्ममें न लगपायेगा। इसलिए अपनेआपकी सम्हालकरलें दूसरोंको धर्ममें लगानेके लिए नहीं, किन्तुखुद संसारके संकटोंसे घिरेहुए है तो इनसंकटों से मुक्तिपानेके लिए खुद अपने आपको धर्ममें लगायें तो अपना कल्याण हो जायगा।

आत्मप्रयोग बिना सत्यहितकी असम्भवता—एकबार किसी राजाने अपनेमन्त्रीसे पूछा—मन्त्रिवर सचबताइए कि मेरीसारी प्रजामें सच्चेलोग कितने है ? तो मन्त्रिनेकहा,—महाराज देखनेमें तो आपकी प्रजाके सारेलोग सच्चे हैं मगर अन्तरङ्गमें बिरलेही दो-चार लोग सच्चे होंगे। बाकी सब झूठे है।.....कैसे ? इसका मतलब समझाइगे। तो मन्त्रीने सारीप्रजामें यह घोषणाकरदी कि आजरातको महाराजको ४०-५० मन दूधकी जरूरत है, महाराजका यह आदेश है कि सारीप्रजा अपने-अपने घरसे एक-एक लोटा दूधलाकर राजमहल के अन्दर बने हुए होजमें छोड़जायें। मँत्रीद्वारा महाराजका आदेश सुनकर सारीप्रजाके लोग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपने-अपने घरमें विचार करनेलगे कि अब हमें इस अवसर पर क्या करना चाहिए तो प्रायः करके सभीने अपने-अपने घरोंमें यही विचार किया कि सभी लोगतो दूधलेही जायेंगे एक हमदूध न ले गए, पानीही लिएगएतो उसमें क्या फर्क पड़ेगा। यहसोचकर सभीलोग अपने अपने घरसे पानीसे भराहुआ लोटा लेकर गए और उसहौजमें डालआये। कोई दो–चार लोग दूधभी डालआये। अबजब सबेराहुआ तो उसहौजमें क्या पाया गया कि उसमें साराकासारा पानी भराहुआ था। दूधतो नाममात्र का था मात्र दिखनेमें कुछसफेद रंगका था। वह दृश्य देखकर राजाकी समझमें आगया कि मंत्री ठीकही कहता था। तो ऐसेही समझिए कि प्रायः करके ऐसेही चिन्तन विचारवाले लोग अधिक पाये जाते हैं, कि जो धर्मके नामपर बाहर-बाहर तो दृष्टि रखते हैं, ऐसा होनाचाहिए, यों व्यवस्था करें, ऐसेही यों करें। इसको यों करें, इस तरह प्रभावना होगी, इसतरह प्रताप होगा। मगरयहां जोविकार भावका लगाव बनाया है और उससे जो निरन्तर दुःखी रहा करता है इस दुःखको मेटनेके लिए लिए खुदभी खुदमें कोई प्रयोग किया जारहा है क्या? जो खुदमें प्रयोगकरे वहहै धर्मात्मा, ज्ञानी। और जो बाहर–बाहरकी व्यवस्था में ही धर्ममानकरके सन्तुष्ट रहे उसने धर्म नहींपाया। तो ऐसाधर्म ऐसा निर्मोह भाव आत्मामें आयेतो आत्माका कल्याण है।

वस्तुस्वातंत्र्य और निमित्त नैमित्तिकयोगके परिचयकी मोहध्वंसक्षमता—कैसे मोह हटे, इसके लिए आपको निष्पक्ष सही निमित्त नैमित्तिक योग और वस्तुस्वातंत्र्यकी व्यवस्था समझनी होगी। अच्छा पहले तो उनके एकान्तका स्वरूप देखिये वस्तु स्वातंत्र्यका एकान्त करने का क्या रूपक है कि प्रत्येक पदार्थ सत् है, स्वयं परिणमनशील है। देखो बात सही है पर जैसे एक समुद्रभर पानीमें विषकी एक कणिका भी डाल दी जाय तो वह सारा जल विषैला बन जाता है तो ऐसे ही सही बात सही–सही होने परभी अगर एक भी बात विषभरी हो जाय तो उसका हम लाभ नहीं ले सकते। खैर मानलो कलश भर पानी है, वह लाभ लेने की चीज है मगर विषकी एक कणिका भी मिल जाय तो उससे हम लाभ नहीं उठा पाते। हाँ तो इसमें बात सब सही हैं। वस्तु स्वतंत्र है, सत् है, स्वतः सिद्ध है, परिणमनशील है, अपना उत्पाद अपनी करणशक्तिसे करता है, अपनी परिणमन शक्तिसे करता है, परिणमन करते हुए त्रिकाल रहता, है बात पूर्ण सत्य है। अब असत्यका हिस्सा लें। उसमें जब विकार का पर्याय आनेको होता है तो विकार आता है। इस तरह विकार चलता हुआ चलता जाता है। यह भी सत्य है। मगर वह विकार जब आनेको होता है, इसका जब हम विश्लेषण करने चलते हैं और वहाँ यह कहते हैं कि यह तो अपने आप हुआ। वहां सामने जो हाजिर हो उसे निमित्त कह देते हैं। यह भी ठीक है, किन्तु जब तक को विपरीत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

प्रयोग उल्टा सिद्धान्त बना देता है। लो फिरतो विषकणिका आ गई। कैसे आ गई और कैसे इसका लाभ हटा सो सुनो—यहां तो जब जो विकार आनेको है सो आयेगा ही। जब सामने जो हाजिर हो वह भी कहनेकी क्या जरूरत है? हाजिर हो तो न हो तो, वह तो विकार आयगा ही, स्वभाव है, हम उसे कैसे निवृत करें। उसमें यदि इतना तथ्य जोड़ दिया जाय कि वस्तु स्वतंत्र सत् है, अपने परिणमनसे परिणमती है, परिणमनशक्ति है, अपनी करणशक्तिसे उत्पाद करती हैं, ऐसा उत्पाद करता हुआ यह जीव, ऐसा परिणमन करता हुआ यह जीव जब कर्म विपाकका सन्निधान पाता हैं तो यह अपनी स्वतंत्रतासे, अपने ही विकाससे, अपनीही परिणतिसे विकारभाव क रता हैं। देखो समझनेमें कोई दिक्कत न आयगी। दर्पण सामने हैं और मानलो हाथ सामने हैं तो दर्पणमें छाया आयी हैं तो वह दर्पणकी परिणतिसे आयी हैं। वह दर्पणके प्रदेशमें आयी हैं, बात सही हैं, मगर यह कहना कि दर्पणमें जब छाया आती होती हैं तो उस समय जो सामने हो उसे निमित्त कहते हैं। यह केवल कहनेकी बात रही। निमित्त नैमित्तिकयोग समझमें नहीं आया। हां निमित्त सन्निधान आया, उस समय यद दर्पण अपने आपकी स्वतंत्रतासे अपने आपकी परिणतिसे हाथ की परिणति ग्रहण न करके अपने आपमें छायारूप परिणम गई। स्वतन्त्रता कहां मिटी? निमित्त नैमित्तिक योग सही रहा।

वस्तुस्वातंत्र्य और निमित्तनैमित्तिक योगके परिचयका सदुपयोग—जब हम वस्तु स्वातंत्र्य देखते हैं तबतो हमें यह शिक्षा मिलती है कि वस्तुतो अकेला है, अपने आपमें अपना परिणमन करता है। एक वस्तुका दूसरी वस्तुसे कुछ मतलब नही है। कुछ नहीं करता है। जो कुछ होता है वह इसके करनेसे इसमें अपने आपकी परिणतिसे होता है। निश्चयकी दृष्टिका लाभ हम कैसे उठाते? इस एकको देखें, वहां निमित्तका ख्याल भी न करें। केवल एक द्रव्यको देखें और एक द्रव्यको ही निगाहमें रखें, पर लक्ष्य हट जायगा, निमित्त दृष्टि हट जायगी। स्वभावदृष्टिमें हम झट आवेंगे। यहतो हुआ एक निश्चयदृष्टिसे देखनेका लाभ, जोकि मोह मिटा देगा। अब निमित्त नैमित्तिक योगसे भी देखें, वहां भी मोह मिटानेकी शिक्षा मिलेगी। कैसे? देखो यह बात यहां ऐसी घट रही है कि जीव अनादिसे अशुद्ध है ना? और अनादिसे कर्म सम्बन्धभी चल रहा है ना? यह सबतो एक सन्तान रूपमें चल रहा और जब यह खोंटा भाव बना तो उससे ये नवीनकर्म बंधते हैं और बंधकर उनकी सत्ता हो जाती है तो उस बंधे हुए कर्ममें प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग ये चार चीजे आती हैं, किन्तु उसकी सत्ता पूरी होती है तो उसके अनुभाग खिलता है। कर्ममें ही अनुभागकी स्फुरण होती है कर्ममें कर्मका अनुभाग खुला क्रोध प्रकृति है। तो क्रोध प्रकृतिमें भी क्रोधदशा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पन्न हो गई। अचेतन क्रोध है। वह पर पदार्थ है। उसके क्रोधका अनुभव जीवभी नहीं कर सकता, अचेतन कर्म तो करेगा क्या ? तो अचेतन प्रकृतिमें जो क्रोध परिणाम आया, जो क्रोध अनुभाग आया तो वहां वे अपने आपमें अपने ढंगसे खिल गये। वे एक क्षेत्रावगाह थे। निमित्त नैमित्तिक योग कैसे बनता है कि जैसे वह खिला वैसे ही उपयोगमें भी उसकी झांकी थी झांकी आये बिना नहीं रह सकती। झांकी आयी। दर्पणमें अन्धकारकी झांकी आयी तो वह अपनी स्वच्छता से चिग गया, इसी तरह यह जीव अपने शुद्ध स्वभावसे चिग गया और वह क्रोध, राग आदि विकारों को अपनाने लगा और वह क्रोधी बन गया। अब इसकी परम्परा बन गई कि नवीन कर्मका बन्ध हुआ। उसका जब उदय आयगा तो वहां फिर ऐसी स्थिति होगी। हम आपको आज भी क्षयोपशमलब्धि तो प्राप्त है ही, इसमें सन्देह नहीं। इतना ज्ञानावरणका क्षयोपशम है कि हम तत्त्वज्ञान करलें, विचार करलें, निर्णय करलें और विशुद्धलब्धि भी बनायें तो हो सकती है। और नहीं तो क्षयोपशम प्राप्त होने पर भी विशुद्धि न लाये, लगे रहे रगड़ा में, तो यों भी समय खोया जाता है, फिर विशुद्ध लब्धिका अवसर हम आप लोगों को प्राप्त है। बक्ताओं से सन्देह हो तो ये ग्रन्थ हैं। क्या इनसे बात नहीं सीखी जा सकती है ? देशनालब्धि भी प्राप्त है। अब प्रायोगलब्धि की बात और करणलब्धि की हम कर नहीं पाते। इन तीन लब्धियोकी विशेषता के प्रतापसे ये भी प्राप्त होंगी, मगर जितनी लब्धियां हमें प्राप्त हुई उनका लाभ तो उठा ही लेना चाहिए।

पांच पर्यायतत्त्वोंकी सिद्धिका आधारभूत जीव और अजीवः—मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष, ये ७ तत्त्व हैं। प्रयोजनभूत याने कामके, जिसके समझे बिना काम न बने उसे प्रयोजनभूत कहते हैं। तो इन ७ का लक्षण समझनेपर यह समझ आवेगी ही कि वास्तवमें इन सात तत्वोंका यथार्थ परिचय संसारमें रुलने वाले प्राणियोंको मोक्षमार्गके लिए बड़े कामका हैं। पहिला तत्त्व कहा गया है जीव—जिसमें चेतना पायी जाय उसे जीव कहते हैं। जीव हम आप सब हैं। हम आप सब इस समय दुर्दशामें हैं और चाहिए हमें कोई ऊँची दशा, इतनी तो बात सबके चित्तमें रहती ही है। तो जीव तत्व तो एक प्रधान बात हैं, जिसपर सब कुछ निर्भर है। दूसरा तत्व बताया गया है अजीव। अजीव ५ जातिके होते हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। यहां मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत तत्वकी बात चल रही है, तो ऐसा ज्ञेय प्रयोजनभूत तत्व है कर्म, क्योंकि हम आप जब चेतनामात्र हैं तब वजह क्या है कि नाना विकल्प सुख दुःख जन्ममरण दुर्दशाये चल रही हैं। किसी एककी खोज से कभी खराबी नहीं होती हर जगह देखलो। एक

Report any errors at varnishastra@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो स्वयं, जैसा अपने आप हो, तो एकमें, अकेलेमें कोई विकार नहीं होता। किसी भी वस्तुमें कोई विकार होता है तो यद्यपि विकार तो हुआ उसीमें उसकी परिणतिसे लेकिन किसी पर उपाधि के सन्निधान बिना हो नही सकता। तो कोई पर उपाधि लगी है जीवके साथ, उसका नाम है कर्म। तो कर्मके बारेमें भी पहिले कुछ समझनेकी जरूरत है। इसे ८ वें अध्यायमें बताया ही जायगा, पर साधारणतया यहां यह समझलें कि कर्म एक बहुत सूक्ष्म जातिकी वर्गणायें हैं, जिसकी जाति उपजाति कर्मवर्गणा है, ये कर्मवर्गणायें जीवका दुर्भाव शुभ, अशुभ भावका सन्निधान पाकर, निमित्त पाकर, ये कर्मरूप परिणम जाते हैं। यह सब निमित्त नैमित्तिक योग है। जो बात प्रकृत चल रही है उसमें क्या और क्योंका कोई प्रश्न नहीं उठना। स्वभाव तर्कके विषयभूत नहीं है। कोई स्थूल पदार्थ जीवके साथ चिपके तो वह नहीं हो सकता है विकारका कारण। स्थूल का, मोटेका प्रभाव निमित्त न हो सकेगा कि यह जोव विकार कर सके। जीवके साथ जीव चूँकि अति सूक्ष्म है, तो इसके साथ कोई उपाधि हों तो वह भी सुक्ष्म होगा कोई न कोई। जीव तो अमूर्त सूक्ष्म है, पर अमूर्त सूक्ष्म जीवके साथ लगे, सजातीय साथमें लगे तो उससे विकार नही हो सकता। जल जल इकट्ठा हो जाय तो उससे कहीं गर्मी नहीं आती, जलके विपरीत कोई चीज साथमें हो, अग्नि हो तब विकार आता है। इससे जीवके साथ जीवके विरुद्ध चेतनारहित कोई पदार्थ हो और हो वह सूक्ष्म, ऐसा जो कुछ है वह कार्माणवर्गणा है। तो यह कार्माणवर्गणा जीवके साथ लगी है उसे कहा यहां अजीव।

जीवगणना—थोड़ा कुछ विशेष एक प्रतिभास या पात्रता होनेके लिए इस जीव अजीवकी संख्यापर ध्यान दीजिए। जगतमें जीव कितने हैं ? अनन्तानन्त हैं। देखते ही हैं। कहीं कीड़ाकीड़ी निकल आते हैं तो कितने निकल आते हैं। यह तो एक मोटीसी बात है। और देखो कहीं पानी बरस गया तो हरी घास कितना अपने आप हो जाती है। यह जीव ही तो है, कितनी तरहके बनस्पति हैं, जीव ही तो हैं, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये भी जीव ही तो हैं। और, एक होती है ऐसी बनस्पति जो हरी नहीं है, छूने, खानेमें नहीं आ सकती, उसे कहते हैं साधारण बनस्पति। वे अनन्तानन्त है। जैसे एक किसी दृष्टान्तमें देखो—एक आलूमें असंख्याते निगोद शरीरके पिण्ड रूप कोई जिसे पुलवी कहते हैं ऐसा बड़ा शरीर है, उसके भीतर असंख्याते और शरीरी हैं, उनमें से एक शरीरके आधारमें अनन्त निगोद जीव हैं। अब समझलो कि एक आलूमें कितने निगोद जीव हैं। ऐसे अनन्त स्थावर होनेके कारण आलूको अभक्ष्य बताया है, ऐसे और भी वर्णन हैं पर अभक्ष्यकी बात अगर देखो तो आलूसे अधिक अभक्ष्य गोभी का फूल है। जलेबी, सड़ी भुसी बाजारकी दही, पुरानी रोटियाँ, ऐसी

Version 2.1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

अनेक चीजें हैं जिनमें आलूसे भी अधिक दोष है, पर प्रसिद्धि आलूकी अधिक है, उसकी आफत लोगोंने ज्यादह कर रखी है और उससे अधिक अभक्ष्य जो गोभीके फूल हैं, पुराना अचार है, बाजार का पुराना दही है, बाजारकी सड़ी गली जलेबियां हैं ये तो आलूसे भी अधिक अभक्ष्य हैं, क्योंकि इनमें त्रस जीवका घात होता है, तो उसका दोष अनन्त स्थावर घासके दोषसे अधिक है, पर उसका प्रचार नहीं है। तो यहां बतला रहे हैं कि लोकमें जीव कितने हैं ? अनन्त तो एक आलूमें ही मिल गए। आलूके टुकड़े टुकड़े हो जायें तो एक-एक टुकड़ेमें भी अनन्त जीव हैं। तो ऐसे कितने जीव हैं ? अनन्तानन्त जीव हैं। उनको कुछ स्थूल रूपसे समझना हो तो सब जीवोंमें मनुष्य गतिके जीव सबसे थोड़े है। चारो गतियोंमें मनुष्य गतिके जीव सबसे थोड़े हैं, फिर भी वे अनगिनते हैं, संख्यासे परे हैं। जिनमें पर्याप्त मनुष्य तों २७ या २९ अंकप्रमाण हैं, लब्ध्यपर्याप्त असंख्याते है। उससे असंख्याते जीव नरक गतिमें हैं। उससे भी असंख्याते जीव देवगतिमें हैं और उससे भी असंख्याते जीव त्रस जीव हैं उससे भी अधिक असंख्याते जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पति है, उनसे भी अधिक जीव अनन्तगुने निगोद जीव हैं। हां उनसबसे निगोदसे पहिले जितने कहे गये हैं उनसबसे अनन्तगुने जीव सिद्ध जीव हैं और सिद्ध जीवोंसे अनन्तगुने निगोद जीव हैं।

पुद्गल परमाणुगणना:—अब यहां देखो पुद्गल कितने हैं। एक जीवके सहारे कितने पुद्गल हैं ? पहिले तो यह बात सोचना। एक जीव के आश्रयसे कितने हैं ? जो एक-एक शरीर में ही देख लो। जो शरीर बना हुआ है। इसमें अनन्त परमाणु हैं, फिर इनसे अनन्तगुने परमाणु हैं ऐसे शरीर परमाणु जो अभी शरीर तो नहीं बन पाये, पर शरीर बनने के उम्मीदवार रहते हैं, उन्हें कहते हैं विश्रसोपचय। जो शरीर बनगया उससेभी अधिक परमाणु हैं उस शरीरके कि जो अभी शरीर तो नहीं बना किन्तु शरीर बन सकेगा, शरीर योग्य परमाणु और इससे भी अनन्तगुने हैं तैजसके परमाणु। तैजस शरीर जिसके होनेसे शरीरमें तेज रहता है। और, उससे अनन्तगुणे हैं कर्मवर्गणायें, कर्मपरमाणु तैजस परमाणु से अनन्तगुणे हैं उनसे अनन्तगुणे हैं ऐसी कार्मणवर्गणायें जो अभी कर्मरुपतो नहीं हुए, किन्तु कर्म बँधनेके उम्मीदवार हैं। अब सोच लो कि एक जीवके सहारे कितने परमाणु हो गए। यह एक साधारण बात कही, किन्तु जो दो इन्द्रिय आदि जीव है उसके साथ भाषा बर्गणाके परमाणु और बढ़गए। जो संज्ञीजीव है उसकेसाथ मनोवर्गणाके परमाणु और बढ़गए, जिससे कि मन बनता है। ये तो एक जीवके सहारे वाले परमाणु हैं। और, जीवने जिन्हें छोड़ दिया हैं ऐसे परमाणु बहुत पड़े हैं। और ऐसे भी परमाणु हैं जिन्हें जीव ग्रहण न कर सका, न कर सकेगा। तब समझ लीजिए कि अजीव पुद्गल परमाणुओंकी संख्या कितनी है भैया।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर्मकी बात प्रकृत है यहां। तो ये कर्म हैं। बहुत से लोग तो व्यवहारमें तकदीर, भाग्य, किस्मत यों अनेक शब्दोंमें बोलते हैं, पर किन्हींसे भी पूछो कि तक्दीर क्या चीज होती है। तकदीरमें क्या बात बनती है ? तो वे बतावेंगे ही नही। कहते हैं भाग्य है। कोई अधिकसे अधिक बढ़ गया तो यह कहेगा कि तकदीर एक भाग्यकी रेखा है। उसका कोई प्रमाण भी दे देंगे कि देखो कहीं मरघटमें किसे मरे हुए व्यक्तिकीं खोपड़ी पड़ी हो तो उसमें कोई चीज हो ? रेखायेंतो दीखही जाती हैं, यो उन्हें कह देते हैं कि ये देखो जो रेखायें दिख रही हैं ये तकदीर हैं इनको विधाताने लिख दिया है। यों अनेक प्रकारसे लोग बोलते हैं, पर तकदीर क्या है ? कर्म क्या है ? उसके रग–रगकी बात, निर्जरा की बात, कहां कितने परमाणु हैं, कैसे बँधते हैं, यह सब व्यवस्था जैन शासनमें आपको देखनेको मिल सकेगी। कर्मका बन्ध, कर्मका इतना परिचय अन्यत्र कहीं न मिल पायगा। और, कर्मसब लोग बोलते हैं। तो ऐसी ये कार्माणवर्गणायें जो कर्मरूप हो गई है उनका यह प्रकरण है।

आश्रवकी व्याख्या—आश्रव क्या है ? आश्रव कहते हैं आनेको। जीवमें अजीवका आना सो आश्रव है। इस तत्त्वका विशेष विवरण आगे कहेंगे। अभीतो संक्षेपमें थोड़ा स्व–रूप कह रहे हैं, इसलिए कि यह कहनेका, बतानेका मौका मिले कि तत्त्व ७ ही क्यों कहे गये और इनको इसही क्रमसे क्यों रखा ? इतनी बात थोड़ा कहनेके लिए थोड़ा स्वरूप अभी कह रहे। विशेष आगे कहेंगे—आश्रवका अर्थ है जीवमें अजीवका आना। अच्छा आश्रव शब्द ऐसे आनेको बताता है कि लोगोंको पता न पड़े और आ जाय। वैसे तो आनेको आग–मनभी कह देते, और भी धातु लगाते, पर आश्रवका क्या अर्थ है ? आसमन्तात्स्रवणंइति-आश्रवः याने जो चारों ओरने चू कर आये। जैसेकि पहाड़ोंसे पानी झरता है तो कहींकहींतों यहभी पता नहीं पड़ता कि किधरसे आ रहा है। वहतो चारों ओरसे एक पसीनेके रूपमें चू चू कर आता रहता है। उसमें सही पता नहीं पड़ता कि यह कहांसे आया है, किस विधि से आया है, बस चू गया, स्रवण हो गया, तो इसी प्रकार इस आत्मामें जीवमें सर्वप्रदेशोंमें चारों ओरसे कर्मोका स्रवण होता है। चू आता है जिसको कहते हैं स्रवण। इस तरह कर्म आते हैं। एक आना ऐसा होता है कि बाहर है कोई और वहांसे यहां आ गया, चलकर आ गया, कर्मका ऐसा आना नहीं होता है, किन्तु अभी जो बताया गया कि जितने जीवके साथ कर्म लगे हैं उसमें अनन्त गुने ऐसी कर्मवर्गणायें हैं कि जो अभी कर्मतो नहीं बनीं, पर कर्म बननेकी उम्मीदवार हैं। विश्रसोपचय वहभी जीवकेसाथ ऐसा बन्धन को प्राप्त है कि मरनेके बाद जीव जायगा परभवमें तो जीवके साथ कर्मतो जातेही हैं पर वह विश्रसोपचय भी जीवके साथ जाता है, जो कर्म बननेके उम्मीदवार हैं, ऐसा जोवके साथ एक क्षेत्रावगाह हुआ। तो

http://sahjanandvarnishastra.org/

मामलातो तैयार है। कोईकर्म बाहरसे नहीं आने हैं। उनमें भी तो विस्रसोपचयमें मिलकर आस्रवको प्राप्त होतो है। यहाँ जीवके शुभ अशुभ भाव हो तो उसका निमित्त पाकर वे कार्माणवर्गणायें जो उम्मीदवार हैं वे कर्मरूप परिणम जाती हैं, ऐसा स्रवण (चूना) होगया उसे कहते हैं आश्रव। कैसे आश्रव होता है यह बातभी आगे कहेंगे।

बन्धव्याख्या और संवर निर्जरा मोक्षका निर्देश—इस सूत्रमें तत्त्वोंका बहुत वक्तव्य है वह कई दिवसों तक चल सकेगा। अब यहां बताते हैं कि ७ ही तत्व क्यों हैं? इनको इस क्रमसे क्यों रखा है? इसके लिए थोड़ासा उनका स्वरूप कह रहे हैं। बंध क्या है? जीवमें अजीवका बंध जाना उसको कहते हैं बन्ध। आना और बंधना इसमें अन्तर है। आनातो स्थिरताको सूचित नहीं करता। आनेका अर्थ है आया। दौड़करभी यहांसे निकल जाय उसे भी तो आना ही कहेंगे और ठहरना कहो या बंधना कहो वहां बंधनेमें कुछ समय लगता। कहनेमें समय नहीं लगता। बंधनेमें समय नहीं लगता। तो जो एकही समयकी बात हो तो उसे आता है कहिए और कमसे कम दो समयकी बात हो तो ठहरता है कहिए जैसे एक रेखा खींच दी तो रेखा खींचनेमें एक यूनिट समय लगता है। उसको जितना काल समझलो और उस रेखाको मोड़ा जाय तो उसे दो यूनिट लग जायेंगे। ठहरना अवश्य पड़ेगा। ठहरे बिना मुड़ना नहीं हो सकता। कोई कहे कि अगर गोल गोल खीच दे तो? तो कैसा ही खींचदो मगर वह रेखा कहलायगी मोड़ न कहलायगी। जहां मोड़ आयगा वहां समय अवश्य अधिक लगेगा। तो रेखाकी तरहतो हो गया आना और मोड़की तरह हो गया बंधना, एक बात। दूसरी बात यह समझिये कि आना पहले समयमें हुआ और बँधना वह भी पहले समयमें हुआ। अगर दूसरे समय तक रहे तो बंधना कहलाता है। जैसे कोई आकर ठहर जाय तो यह भी कहा जायगा कि एक समयमें तो आया और इसके बाद ठहरा, आया, तब ठहरना कहलायगा। अगर वह दूसरे समय ठहरता है तो। तो इसी प्रकार बंध और आश्रव होते, ये दोनों एक साथ हैं, मगर बंध संज्ञा कब पड़ती है जबकि वह दूसरे समय ठहरे। यह एक दृष्टांतमें कह रहे हैं। कोई कर्म ऐसा नहीं है जो दो समय को आये, तीन को आये, वह तो असंख्योत समयको और अनन्त समयको आता है, पर बंधकी बात बताई है कि दो समय कम से कम ठहरे तो उसे बंध कहते हैं। कर्म आया, कर्म बंधा, सम्बर क्या है कि अब नये कर्म न आयें, रुक गये, और निर्जरा क्या कि जो पहिले से बंधे हुए कर्म हैं उनका झगड़ना, निकलना सो निर्जरा है, और जबसारे कर्म निकलजाते हैं, झड़ जाते हैं, एकभी अणु नहीं रहते हैं तो उसका नाम है मोक्ष, यों ये ७ तत्त्व हैं।

Report any errors at ulkaand@gmail.com

प्रयोजनभूततत्त्वसंख्याका निर्णय—अब इन ७ तत्त्वोंके बारेमें कुछ विचार कीजिए कि

http://www.jainkosh.org

७ ही तत्त्व क्यों कहे गए ? कम और ज्यादाह भी तो हो सकते हैं। तो इसके विषयमें कोई यदि यह उत्तर दे कि भाई देखो अगर बहुत कम कहते, जिसे कहते हैं संक्षेप (*Short*) कर दिया जाय तो एक भी कह लो। मैं जीव हूँ। प्रयोजन उसीसे है। उसी को देखने की बात है, वह ही तत्व है। तो क्वा इतनेसे कुछ बातें समझी जा सकेंगी ? धर्मस्वरूपका नास-मझ को कुछ समझ बन जायगी। इस कारण संक्षेपसे तो काम नहीं चल सकता। और विस्तार अगर कर देवें तो १०, २०, ५० लाख करोड और अरब भी तो तत्व बताये जा सकते, कि जिनको गिनने बैठे तो समय लगता ही चला जाय। तो क्या विस्तारसे वस्तुको बतानेमें भी काम चल सकेगा ? न चल सकेगा। इसलिएतो न संक्षेपमें हो न विस्तारमें हो, एक मध्यम संख्या लेली; कोई ऐसा कह दे तो यह भी जवाब अभी पूरा सही नही बैठा, क्योंकि मध्यममें ७ ही क्यों लिया ? ६ लें, ५ लें, वे ऐसे बनाये जा सकते हैं। जैसे मान लो जीव, अजीव और बन्ध और मोक्ष। और बढ़ाओ–जीव, अजीव, बन्ध, सम्बर, मोक्ष। बात आ जायगी किसी न किसी ढंगसे पूरी। जीव अजीव, बंध बंध हेतु, मोक्ष, मोक्ष हेतु। यह बोल लो। कितनी प्रकारसे बोला जा सकता है ? ७ ही क्यों रखे गए ? तो इसके विव-रणमें सब समाधान हो जायगा कि मोक्षमार्गमें जो जीव चलना चाहता है उसको ये ७ प्रकार के तत्त्वोंकी श्रद्धा करनी आवश्यक होती है।

अन्यप्रकाराभिमत तत्त्वसंख्यासे मोक्षमार्ग प्रयोजनताकी असिद्धि:—प्रयोजनभूत तत्त्व संख्याके बारेमें और भी चर्चा चलेंगी अभी, पर इससे पहिले एक बात और सुन लीजिए, जिसे अन्य दार्शनिक कह सकते हैं। यह तो अभी जैन सिद्धान्त की ही बात है, पर अन्य दार्शनिक यह कहते हैं कि भाई तत्त्व ७ नहीं हैं। कोई तत्त्व २५ मानते हैं, कीई तत्त्व ७ मानता है कोई तत्त्व दो ही मानता है इस तरह अनेक प्रकारकी संख्यामें तत्त्व मानने वाले अनेक दार्शनिक हैं। जैसे उदाहरणमें लो-एक सांख्य वे २५ तत्त्व मानते हैं और वे इस २५ संख्या को प्रदान करते हैं और इसी पर उनका नाम सांख्य पड़ा है। जो संख्या से लगे रहें उन्हें कहते हैं सांख्य। तो २५ तत्त्व किस प्रकार हैं ? एक तो पुरुष, जिसे आत्मा कहो, ब्रह्म कहो, जीव कहो, चेतना कहो, चेतन कहो, एक तो हुआ पुरुष और इसके बाद प्रकृति जिससे कि महान, अहंकार और फिर ५ शरीरकी इन्द्रियां और ५ कर्मकी इन्द्रियां, ५ ज्ञाने-न्द्रियां होती हैं। ५ ज्ञानेन्द्रियां तो जानते ही हैं–स्पर्शन, रसना घ्राण, चक्षु और कर्ण और ५ कर्मकी इन्द्रियोंको, मन, वचन, काय, तब दो और। तो जहां सो शौच करते वह भी एक कर्मेन्द्रिय मान लीजिए, वहां भी तो कुछ फड़कन होती है, क्रिया होती है और एक जनने-न्द्रिय। इसतरहसे ये ५ कर्मकी इन्द्रियां हैं, एक मन और ५ तन्मात्र। शब्द, स्पर्श, रूप, रस,

Versanti

http://sahjanandvarnishastra.org/

गंध याने जो इन्द्रिय द्वारा जाना जाय और फिर है आकाश और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, ये चार महाभूत इसतरह १५ तत्त्व मानते हैं। देखो-तत्त्व तो कहते हैं प्रयोजनभूतको। पदार्थ-की दृष्टिसे भी देखें तो पदार्थकी जाति उतनी छाटनी चाहिए कि जितनी कमसे कम जातिमें सारे पदार्थ आ जायें, कोई पदार्थ छूटे नहीं और कोई अव्युक्ति न बन जाय, दुबारा न बन जाय। पदार्थोंकी जाति तो वहां लायी जा सकेगी। जैन सिद्धान्तमें पदार्थोंकी जातियां ६ बताई गई हैं--जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। जीवका गुण, जीवका कार्य शेष ५ नहीं कर सकते, पुद्गलका कार्य शेष ५ नहीं कर सकते। धर्म जैसा कार्य, धर्म जैसा स्व-रूप शेष ५ में नहीं है। तब हीं तो ६ जातियां है। और कोई छूटा नहीं है। किन्तु यहां आप विचार करेंगे तो कुछ छूटे मिल जायेंगे। काल द्रव्यका यहां वर्णन ही नहीं है। धर्म अधर्म द्रव्य जिसे आज वैज्ञानिक लोग भी कुछ उसका अंदाज करने लगे है कि कोई एक ऐसी जातिकी तरंग है जो शब्द, वायु, किरण आदिकके चलनेमें सहायक होती है। न हो उस-तरहका कोई धर्म तो ये चल नहीं सकते। तो ऐसे धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य ये तो उसमें आ न सके और कई दुबारा बोले गए। पृथ्वी जल, ये पिण्डरूप हैं ना, रूप, रस. गंध, स्पर्शमय हैं ना। इनको दुबारा कहनेका क्या प्रयोजन ? स्पर्श, रूप, रस, गंध, इनको अलगसे कहनेका क्या प्रयोजन ? जब पृथ्वी, जल, आदिक कहा तो इनमें कुछ तो अधिक हो गए और कुछ छूट गए। इस तरह से द्रव्य जातिमें बात नही आती। और प्रयोजन-भूतकी दृष्टिसे देखे तो देखो भाई दुनियामें पदार्थ बहुत हैं। प्रयोजन तो अपने आपको समझनेके लिये और पर जाननेका है तथा परसे हटाकर स्वको शुद्ध रखनेका है। इसकी सिद्धि इन सात तत्त्वोंसे हो जाती है। जीव तो स्वयं है इसके साथ अजीव बँधा है अभी, यह भी निश्चित हो गया। जीवमें अजीव आया, आस्रव। जीवमें अजीव ठहरा, बंध। जीवमें अजीव न आ सके, संवर। पहिले आये हुए अजीव जीवसे हटने लगें, निर्जरा। और, जीवसे अजीव, पूर्णतया हट जायें सो मोक्ष।

शान्तिधाममें पहुँचनेके लिए प्रयोजनभूत तत्त्वोंकी संख्याका समर्थन--जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये ७ तत्व है, जिनका भली भांतिसे निश्चय किया जाय तो मोह दूर होगा और सम्यक्त्वका लाभ होगा। इसीके विषयमें कुछ दार्शनिक चर्चा चल रही है कि ये तत्व ७ ही क्यों कहे गये। पहली बात तो यह देखिये कि अन्य दार्शनिकोंने नाना सँख्याओं में तत्व माना है, जैसेकि सँख्या मानते हैं २५ तत्व मीमाँखक मानते हैं ७ तत्व अथवा ६ तत्व। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। उन मीमा-सकोंमें जो प्रभाकर है वे मानते हैं, द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, परतंत्रता, शक्ति और

Report any errors at www.sahjanandvarnishastra.org

http://www.jainkosh.org

नियोग यों ८ तत्व तथा जो और नवीन प्रभाकर हैं वे नियोगके स्थानपर सँख्याको तत्व मानते हैं। परतंत्रताकी जगह समवायको मानते हैं। यों नाना प्रकारके तत्वविवादी हैं। उनका समाधान हो इसलिए ७ तत्व कहे। बात ठीक है लेकिन ७ ही तत्व क्यों कहे गए। कम बेसी क्यों नहीं कहे गए ? एक बात यह सामने आती है। तो बात यह है कि इन ७ बातोंके जाने बिना श्रद्धानका मार्ग नहीं मिलता। मैं जीव हूँ, मैं दुःखी हूँ। मुझे दुःख दूर करना है, इतनी बात तो पहले आनी चाहिए ना। हां मैं जीव हूँ, तो क्या मेरे स्वभावसे दुःख लगा है ? अगर स्वभावसे दुःख लगाहै तो उस दुःखमें राजी रहें। फिरतो वह दुःख कभी छूट ही नहीं सकता। तो यह दुःख स्वभावसे नहीं होता है। विभाव परिणतिसे होता है। दूसरेकी परिणतिसे भी नहीं हुआ अन्यथा दूसरेकी परिणति हुई तो दुःखतो वह दूसराही भोगेगा। मैं क्यों भोगूंगा ? तो परिणति मेरे आत्माकी मेरीही है। लेकिन किसी पर उपाधि का निमित्त पाकर यह मुझमें दुःख आया है। और, क्यो आयाहै कि किसी उपाधिके कारण उपाधि आयी है, उपाधि बंध गई है, यह तो मेरी दुर्दशा है। और, यह दुर्दशा मिटे कैसे कि पहले उपाधिका आना दूर हो और पहले बंधे हुए भी कर्म रिवर जायें तो ये सब दुःख दूर हों। दुःख दूर होनेका नाम है मोक्ष। कैसी सही सीधी व्यवस्था है। इससे कम कहनेमें स्पष्टता नहीं आ सकती। इससे अधिक तत्व बढ़ानेमें व्यवस्था नहीं बन सकती। फिर तो कोई कहे कि ७ की जगह ९ करलें, १०० करलें, हजार करलें, लाख करलें, यों कितनेही विकल्प बनाये जा सकते हैं। तो आचार्यदेव जो कुछ बताते हैं, जो उनके द्वारा रचना हुई है वह बड़ी दृढ़ हुई है, बिल्कुल सही हुई है, न कम बचन निकलते हैं न अधिक। तो ऐसे ही मध्यम उत्पत्तिमें इन ७ तत्वोंका वर्णन किया है।

मुक्तिसंभवताकी श्रद्धाकी परमावश्यकता—देखिये सबसे पहले दुःखसे छुटकारा पाने वाले पुरुषको मोक्षका तो श्रद्धान करना ही चाहिए कि हां मेरा मोक्ष हो सकता है। जिसको यह ही श्रद्धा नहीं कि मेरा मोक्ष हो सकता है वह फिर उपायमें लगेगा कैसे ? जो बात असम्भव समझी जाय यह तो कभी हो ही नहीं सकती, तो कैसे उसमें पार पाया जा सकता है ? एक छोटोसी घटना है कि मानो पहले जब महाभारत युद्ध हो रहा था तो उस समय धीर वीर पुरुष बड़े उत्साह से, बड़ी वीरतासे घरसे निकलकर युद्धमें सामिल हो जाते थे, उस समय एक घर ऐसा था कि जिसका पुरुष घरवालीसे (स्त्री से) बड़ी वीरताकी बातें हांकता रहता था, और पुरुषोंमें यह आदत होती है, दूसरी जगह कहां शूरवीरताकी बाते हांके ? और जगहतो वे बातें फैल हो जायेंगी, पर स्त्री के सामने वे बातें बड़ी मुश्किलमें फैल हो पाती हैं। तो वीरताकी बाते वह पुरुष हांकता था। एक बार उसकी स्त्री ने कहा कि देखो इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समय सब लोग देशहितके लिए युद्धमें शामिल हो रहे हैं, तुम वीर पुरुष हो, तुम भी ऐसा करो कि युद्धमें जाओ और अपना फर्ज अदा करो। तो वह पुरुष बोला कि युद्धमें हम जायेंगे और वहां अगर मारे गये तो ? तो स्त्रीने क्या किया कि दरेती में उड़द, मूंग या चने दल दिये। उसमें कुछ दानोंकी दो दालें बन गई, कुछतो यों ही समूचे दाने निकल आये और कुछ चूरा बन गए। अब वह स्त्री कहने लगी देखो जैसे इस दालके दले जानेपर सभी दाल तो चूरा नहीं बनी, कुछ दाने भी तो निकल आये, इसी तरह युद्धमें सभी लोग तो नहीं मर जाते, कुछ रक्षित भी तो रहते हैं, बल्कि युद्ध में बचकर आने वालों की संख्या बहुत रहती है, तो वह पुरुष बोला—अरे हम इन बचे हुए दानोंमें से नहीं हैं, हम तो चूरा वाले नम्बर में हैं। ऐसी श्रद्धा जो रखेगा वह क्या फतेह पायेगा ? जो माने कि मुक्तितो मुनि महाराजकी ही होती है, मुक्ति तो इन पंडितों की ही होगी, ज्ञानियों की ही होगा, हम जैसोंको मुक्ति कहाँ धरी ? हम कहां मुनिव्रत पाल सकेंगे, कहां चरित्र बनेगा। हमारे लिए ये ग्रन्थ नहीं है, ये दूसरेके लिए हैं। जो पहलेसे ही अपना कंधा डालदे उसको मुक्तिका मार्ग कहांसे हो ? अब जरा अर्न्तदृष्टि देकर विचार करें तो ऐसा लगेगा कि मुक्ति सामने है। जैसे कोई गांव जानेवाला पुरुष यह जानता है कि वह गांव तो नाक के आगे रखा है, कहां बाहर है। तो जिसने अर्न्तदृष्टिको है उसेविदित होती है कि मुक्तितो यह है। तो भावका ही तो नाम मोक्ष है।

विकारके दुःख हेतु तत्वका निर्णय होनेपर कष्टका विध्वंस—ज्ञानीने यह निर्णय कर लिया कि मेरे ऊपर जो कुछ विकार बीत रहा है, जिन विकारोंसे हम परेशान होते हैं वे विकार इनसे मेरेको लेन देन क्या ? यहांतो यह घटना बन रही है कि पहिले बांधे हुए कर्म अपने अनुभागमें खिले हैं और यहां झलकते हैं और फिर उनकी यह घटना बन रही है कि नवीन बंधे और बांधे हुए कर्म अपने अनुभागमें खिले हैं और यहां झलकें, फिर उनकी बुद्धिसे कुछ व्यवसाय किया, फिर उनका उपयोग किया और अपना लिया तो इसने यहां यह गलती की है मगर जो झलका है, झलकमें जो आया है, इसपर जो बीत रही है वह तो कर्मका नाच है, कर्मकी लीला है। मैं तो उससे निराला एक उपयोग स्वरूप शुद्ध ज्ञानस्रूप हूँ। यह तो कर्मलीला है, यह बाहरी बातें हैं, ये वेकार बाते हैं। ये भ्रममें रहने वाली, भटकाने वाली जन्म मरणकी परम्परामें रहने वाली बातें हैं। तो इस कर्मलीला में क्यों अपनाऊं ? जिन्हें गैर मानते, जिन्हें दुःखका कारण मानते उनसे कोई प्रीति करता है क्या ? यह झलक, यह लगाव, यह उपयोगका जुड़ाना जब मेरे दुःखके लिए है तो मेरेको नहीं करना जुड़ान। कर्म विपाक आया, नैमित्तिक भाव होकर रहेगा। अब करना क्या है। कर्मविपाक झलका, अब

Reprint any article on this site @gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसको ज्ञेय बनाकर ही हम रह सकें, जाननेके लिए ही रह सके कि है यह, कर्मविपाक है, यह मुझमें झलका है। यह बरबादीका कारण है, अशुचि है, अपवित्र है, दुःखका हेतु है। इससे मेरा लेन देन क्या ? मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ, मेरा व्याप्य व्यापकभाव बनता रहता है तो इस झलक और जुड़ानके साथ बन रहा। उस अचेतन कर्मके साथ मेरा व्याप्यव्यापकभाव भी नहीं है तो उसमें मेरा कर्त्ताकर्मभाव भी नहीं है। मैं अपनेमें राजा हूँ, वह अपनेमें राजा हैं, पर निमित्त नैमित्तिक योग है, हो रहा है यह। हम जो आगे बढ़ते हैं सो दुःखी हो जाते हैं। दुःखका हेतु जब समझ लिया, यह है दुःखका कारण, बाहर कुछ दुःखका कारण नहीं, फिर तो कष्ट होना नहीं।

भ्रम करनेका बेवकूफीमें पद पदपर आपत्तियाँ:—भैया ! आनन्दस्वरूप होकर भी जीव परेशान होते हैं केवल इस भ्रम से कि बाहरसे मेरा कोई सम्बन्ध हैं। इस दुकानसे, इस फर्मसे, इस पार्टीसे, इस गोष्ठीसे, इस कुटुम्बसे मेरा कोई सम्बन्ध है, ऐसी बात भ्रममें रखते तो पद-पदपर दुःखी होना पड़ता है। कोई पुरुष स्त्री थे, तो पुरुषका नाम था बेवकूफ और उसकी स्त्रीका नाम था फजीहत। सो उन दोनोंमें जब चाहे दिनमें लड़ाई हो जाती थी और सामको फिर उनमें सलाह हो जाती थी। एक दिन उनमें जरा ज्यादह लड़ाई हो गई तो फजीहत घर छोड़कर कहीं भाग गई। अब वह बेवकूफ अपने पड़ोसियोंसे पूछता फिरता—भैया तुमने कहीं मेरी फजीहत देखी ? तो वे तो झट समझ गए और तुरन्त साफ उत्तर दे दिया कि हमने तो नही देखा। अब उस पुरुषने एकबार किसी ऐसे आदमीसे भी पूछा जो कि अन्य गांवका था क्या तुमने मेरी फजीहत देखी ? सो वह तो कुछ अर्थ ही न समझ सका। वह पूछ बैठा—भाई आपका नाम क्या है ? तो उस पुरुषने बताया कि मेरा नाम है बेवकूफ।...अरे तुम बेवकूफ होकर फजीहत को कहां बाहर ढूढते फिरते हो ? बेवकूफके लिए तो हर जगह फजीहत हाजिर है। जहां उसने कुछ खोटे बोल बोल दिये, बस उसके लिए सब जगह लात घूँसे हाजिर है। बस यही दशा संसारी जीवोंकी हो रही है कि बेवकूफ बन रहे हैं। कैसे बेवकूफ कि ये बाहरी वैभव अत्यन्त भिन्न हैं। अत्यन्त भिन्न क्षेत्र में हैं, उनको मानते कि ये मेरे हैं। देह जो दिख रहा है यह भी बाहरकी बात है, स्थूल है। अचेतन है, पौद्गालिक है, भिन्न है। उसे मान रहे कि यह मैं हुं, यह मेरा है, और, तो जाने दो, जो कर्मोदय होता हैं, जो कर्मकी दशायें होती हैं वे भी बाहरकी चीजें हैं, पौद्गालिक हैं। उसके विपाककी झलक हुई कि तुरन्त कर्मविपाकको मान लिया कि यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह ही सब कुछ मेरा प्राण है, तो जो इतनी बेवकूफी कर रहा हो उसे तो पद-पदपर क्लेश है। लोग सोचते हैं कि मेरेको बड़ा क्लेश हो रहा। यह क्लेश कैसे दूर हो ? तो क्लेश दूर होनेकी क्या

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

यह विधि है कि बाह्य पदार्थमें हम निग्रह और अनुग्रह करें ? उसमें कुछ सुधार बिगाड़ करें, क्या यह उसकी रीति है ? अरे यह तो बेवकूफी की बात है। भ्रमसे दुःख हुआ और भ्रमको दूर कर दें तो सारे कष्ट दूर हो जायेंगे। तो यह ही तो समझनेकी बात है, धर्मके लिए इस जीवनमें प्रारम्भसे लेकर अब तक बहुत-बहुत श्रम भी करे, काम भी करे, लगे भी रहते हैं, सब कुछ करते हैं फिर भी शान्ति नही मिली, तो भाई कुछ तो सोचो कि हमने वास्तवमें विधिपूर्वक ढंगसे धर्म नही किया तब शान्ति नहीं मिली ?

सविधि धर्म होनेपर अशान्तिकी अनुभ्दवः—यदि हमारी विधि सहित धर्मकी बात बनती तो अशान्तिके दिन हमें देखनेको न मिलते। तो वह विधि क्या है ? यह भेद विज्ञान ? पहिले यहां अन्तरमें भेदविज्ञान करें। दूध और पानी मिले हुए हैं, जिनके भेदविज्ञान होगा कि दूध यह कहलाता, दूधमें दूध है, पानीमें पानी है। दोनो जुदी जुदी चीजें हैं। कोई पुरुष विधिसे यंत्र डालकर कुछ चीज डालकर दूधको अलगभी कर देगा और पानीको अलग कर देगा इसीतरह यह कर्मविपाक, यह कर्म और यह उपयोगकी वृत्ति ये दोनों एक जगह मिले हुए हैं। जो यह भेदविज्ञान करेगा यह तो है कर्मविपाक और यह है वृत्ति उसके उपयोगकी वृत्ति, चिद्वृत्ति, वही तो कर्मविपाकको हटाकर अपने स्वरूपको ग्रहण कर सकेगा। पहिला कार्य क्या ? एक इस भवमें, इस जीवनमें इस बातको मानलें, ठानलें कि मेरेको तो अंतस्तत्त्वका ज्ञान करके हीं रहना है। ये बाहरी बातें मेरे लिए कीचड़ हैं, विकार हैं। बाहरी वैभव मिला तो क्या और गरीब रहे तो क्या ? वैभवकी चिन्ता उसकी शल्य तो बहुतकी जरा गरीबीका आनन्द तो लूटो। क्या धनिकता में ही आनन्द है ? गरीबीमें क्या आनन्द नहा है ? बाहरी पदार्थोंके, परिग्रह के न रहनेसे गरीबी कहें तो ऐसे सबसे बड़े गरीब तो मुनि महाराज हैं, कोई परिग्रह नहीं है, कोई संग नहीं, निर्ग्रन्थ एकाकी हैं, उनका आनन्दका पद है। कितना विशाल आनन्द रहता है। अच्छा-बात यह कह रहे हैं कि सम्यग्ज्ञान साथ है, ज्ञान साथ है तो गरीबीमें भी आनन्द है, अब गृहस्थकी बात ले लो। गरीब है गृहस्थ, मकान अच्छा नहीं है, कहीं चू भी रहा है, कहीं नीचा ऊँचा भी है, रह रहा है, उठ रहा है, बैठ रहा है, यहाँ बैठा वहां बैठा, कुछ भी करे। जिसके यह ध्यान है, यह कर्मलीला है, मैं तो उपयोग स्वरूप ज्ञानमात्र हूँ। वह तो गरीबीमें भी आनन्दले रहा है। कोई भी स्थिति हो, धनी हो तो, गरीब हो तो, कुछ भेद मत समझें कि अन्तर हैं इन दोनोंमें। अन्तर पड़ता है तो ज्ञान और अज्ञानसे ही अन्तर पड़ता है। सम्यग्ज्ञानको सम्हालें, अपनी बातोंको लें और अपने आपका आनन्द लूटें। वैभव मिला है तो उपेक्षाकी कला सीखें, नहीं तो इस जीवन में भी दुःख और परलोकमें भी दुःख। गरीबी है तो क्या हुआ ? धन वैभव तो एक पंक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, इस प्रकार की श्रद्धाकी कला सीखें। धर्मभाव होनेपर सब जगह आनन्द ही आनन्द है।

विकल्पों द्वारा दुःखोंका आमन्त्रण—भैया ! भीतरी दृष्टि करें—किसीको भी कष्ट नहीं। जो भाई बैठे हैं, जो भी लोग हैं एकको भी दुःखनहीं है। अपनेको देखोकि मैं स्वतंत्र अकेला हूँ। भार क्यों लादते हो ? घरमें अगर १० व्यक्ति हैं तो उनके पुण्यनहीं है क्या ? कोई जो ६ महीनेका बच्चा है उस बच्चेके आरामके लिए आपकितना उद्यमकरते हैं ? छोटी सी एक गाड़ीभी लेदेते, उस गाड़ीको चलाने केलिए नौकरभी रखलिया, अच्छी गद्दी भी लगा ली, खिलौनेभी रखदिये और कभी कभी उसबच्चेको हाथमें लेकर देखना चाहतेकि यह थोड़ा मुस्कराता जाय। जरा मैं इसकी मुस्कराहट देखतो लूँ, ऐसीआप प्रतीक्षाकरते हैं याने जिसके खुशहोनेकी मुद्रा देखनेके लिए आपयहां बड़े उत्सुक होते हैं–हमेंयह बतलावो कि पुण्य आपका बड़ा है या उसबच्चेका ? यहांही निर्णयकरके देखलो। जिसकी ओर मुखताकते रहते जिसकी बाटजोहते, जिसकी सेवाकेलिए नौकररखा, बुवा बुलाया, इस बच्चेको दुःखनहोनेपावे, ऐसी औरभी बहुतसी चेष्टायें आप करते हैं तो ऐसीचेष्टा करने वाले बापका पुण्यअधिक हैं या उस ६ महीनेके बच्चेका पुण्य अधिक है ? अरे पुण्यतो उसबच्चेका ही अधिक है। तो जिसका पुण्य बड़ा है उसकीतो आप चिन्ता कर रहे और जिसका पुण्य घट गया ऐसे अपने आपकी कुछभीचिन्तानहीं कररहे। कहते हैं ना—"आये मुठ्ठीबांध मनोहर, हाथ पसारेजाना। दो दिनका यह खेल तमासा, मिट्टी में मिल जाना।" आये मुठ्ठीबांध, इसकाअर्थ क्या है ? कि जब पैदो हुए थे तो पुण्य साथ लायें थे। और हाथ पसारे जायेंगे का अर्थ है, कि मानोंसारा पुण्य बहाकर जायेंगे। तो उस बच्चेकी क्यों सेवाहोती कि उसके पहिले भव का पुण्य है। उसकी ज्यों-ज्यों उम्रबढ़ती है, ज्यों-ज्यों उसमें मायाचार, छल-कपट आदिक विकार आतेजाते हैं, उनका प्रयोग करता है तो उसका वह पुण्य दूर होता है। तो नौबत आजाती है कि उसे हाथपसारे जानापड़ता है।

विभावसे उपयोग न जोड़कर स्वभावमें जुड़ान होनेपर मुक्तिका आश्वासन—भाई बात यह कह रहे है किअपनेको जरा भगवत्त स्वरूपमें देखो। सबशल्य दूरकरो, सबचिन्ता दूरकरो, मैं हूँ, अपना जिम्मेदार हूँ, अपने आपमें हूँ, मेरा सबकुछ मेरेमें है मेरेसे बाहर कुछ नहीं है, सो येभी भले हैं। इनका इनके उदयसे काम चलता। मैं इनका कुछनहीं करता। होने दो, उपेक्षाभाव रखें और आत्मज्ञानसे, तत्त्वज्ञानसे, सम्यक्त्वलाभसे इनसे प्रीतिजगावें, यह है करनेका काम। तो देखिए उसको मुक्ति ऐसीलग रही है कि यहतो है, नियमसे मुक्ति मिलनीही तो है। जहांयह भेदविज्ञान आगया और समझलिया कि मैंतो एक विशुद्ध ज्ञानमात्र चैतन्यमात्र हूँ, चैतन्यकी वृत्ति जगरही है। अब भ्रमसे हटकर निजमें शुद्ध वृत्ति जगायी।

Version-I

http://sahjanandvarnishastra.org/

अब स्वयं के स्वरूप में उपयोग चल रहा है विशुद्ध वृत्ति जगरही है, उपयोगकी वृत्तितो अब नहीं रही। होजाय ऐसी सहज वृत्तितो वह कभी न मिटेगी, अब उपयोग जोड़ने की बातक्या रही ? ऐसी स्थिति पानेकेलिए ज्ञानीका अभ्यास चलरहा है भेद विज्ञान करता है। समझता है, सब स्पष्ट बात, जैसे दर्पण आगे हाथआया तो हाथका रंग हाथमें है कि दर्पणमें ? हाथमें, पर ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है कि दर्पणमें हाथके अनुरूप रंग आ गया। अब दर्पण स्वच्छतासे हटगया। उसमें चेतना नहीं है, नहींतो उसछाया को अपनालेता। उससे अपना लगाव करलेता। अचेतन है, तो अचेतन होनेसे उतनीबात होगई जितनी कि आत्मामें बात हुई कि कर्म विपाक आयातो कर्ममें भी ऊधममचा। पहिले अनुभाग बँधा था, तो अब अनुभाग (विपाक) आया तो जैसे चूनाका डिगला जब तक अच्छा है स्थिति तब तकहै, ठीक है। बादमें वह फूल ही ती गया। वह ही विपाक कहलाता है। तो जब तक अनुभाग खिला उस कालमें निमित्त नैमित्तिक योग है जो चल रहा है। यहां भी उपयोगमें वह बात आयी, वह रंग आया, वह छाया आयी, किन्हीं शब्दोंसे कहो, अनर्थ क्या हुआ ? यहाँ तक ज्ञानी को कोई अनर्थ नहीं है। इसके आगेकी घटनायें पहिला अनर्थ होता कि उपयोग जुड़ा, दूसरा अनर्थ यह होता कि यह उसे अपना मान बैठता। तो भेदविज्ञानमें पुरुषके लाभकी बात देखें कि अब उसको परतत्त्व अपना नहीं रहा। सम्यक्त्व होनेपर भी कुछ काल जो कषाय जगती है बिषयमें उपयोग जोड़नेकी बात है तो वह पुराना संस्कार जो बनाया ना सो ज्ञान होनेपर भी पूर्व भ्रम था और उसका संस्कार है, उसके कारण फिर रागमें लग जाता, याने उपयोगमें जुड़ता। उपयोगमें जुड़नेका कारण है इसका पूर्व संस्कार

व्यवहार और निश्चय दोनों नयोंके परिचयसे लाभ उठानेका स्मरण:—भैया निमित्त नैमित्तिक योगमें जो अनिवार्य है वह तो होकर रहता। तब ही तो देखो—करणानुयोगमें बताया है कि उदयका जब समय आता उस समय उसे नही टाला जा सकता। उदयक्षणसे एक समय पहिले टाल ले जिसको संक्रमण कहते और उससे पहिले जोड़लें अपने विशुद्ध परिणाम को तो परिवर्तन हो जाता जिसे कहेते हैं अपकर्षण अथवा निर्जरणा करता तो आत्मा केवल भाव ही है, इससे आगे और कुछ नहीं करता। एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ व्याप्य व्यापक सम्बन्ध नहीं, कर्ता कर्म सम्बन्ध नहीं, पर निमित्त नैमित्तिक योग प्रत्यक्ष दिखता है। स्वच्छ ज्ञानसे हमें लाभ मिल रहा है। यह कर्मविपाक जो मेरी भूमिकामें आया यह कर्मलीला है, यह मेरा स्वरूप नहीं, ये नैमित्तिक भाव हैं, मेरा स्वरूप तो ज्ञानमात्र है, चेतनामात्र है। मैं जनता हूँ, चेतना र , बस यही मात्र मेरा स्वरूप है। उससे स्वभाव-दर्शनका लाभ भी मिला। जिसका प्रयोग मोहियोंने अधिकाधिक किया है, ये पोद्गलिक हैं।

Rajkumar Jain Vaidya Ayurvedic Pharmacy

http://www.jainkosh.org

मेरे स्वभाव नहीं, मेरे स्वरुप नही, पुद्गल परिणामसे निष्पन्न हैं। मैं तो एक ज्ञानस्वभाव मात्र हूँ। चाहिये क्या ? स्वभावदर्शन। जिसके बिना उद्धार नहीं हो सकता। प्रतीति मात्र, यह मैं ज्ञानमात्र हूँ। ऐसी ही प्रतीति, अनुभवन, आचरण, यह ही तो बात चाहिए, तो इस बातके लिए हमें उस व्यवहारसे भी रास्ता मिल रहा, निश्चयनयसे भी रास्ता मिल रहा। दोनों नय हमें रास्ता दिखाते हैं। निश्चयनय असत्य नहीं, व्यवहारनय असत्य नहीं। असत्य तो उपचार होता हैं। तो जब उपचारकी भाषामें व्यवहारनयको ढाल कर बोलते हैं तो उस व्यवहारको भी हम असत्य कहते हैं पर व्यवहारका जो सत्य विषय है वह असत्य नहीं है, पर उपचारकथन है वह असत्य है। व्यवहारका जो शुद्ध रूप है उस भाषामें बोलें तो क्या असत्य है ? कर्मविपाकका निमित्त पाकर जीवमें उपयोगवृत्ति ऐसी जगी तो उस उपयोगवृत्तिका तो जीवके साथ व्याप्यव्यापकभाव है और उस कर्ममें होने बाले कर्मविपाकका उसके साथ व्याप्य व्यापक भाव है। व्यवहारनय तो एक बड़ा विश्लेषण कराता है। एक का ही ध्यान दिलावे वह तो कहलाता है निश्चय, और जो सब तरहका विश्लेषण करे, स्पष्टीकरण करे उसे कहते हें व्यवहारनय हाँ इस बातको जब हम इस भाषामें बोलने लगेकि कर्मने किया तो यह उपचार कथन हो गया, यह मिथ्या हो गया, एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ व्याप्यव्यापक सम्बन्धनहीं, कर्त्ताकर्म—सम्बन्ध नहीं। उसको बताने वाली भाषा में बोलें तो असत्य हुआ, पर सम्यक् श्रुतज्ञानके अंश हैं ना दोनों। उपचार नहीं है सम्यक् श्रुतज्ञानका अंश। वह तो एक व्यवहार और रूढ़ि, बात और आदत के अनुसार कथन है। उसके बिना तो काम चलता न तो निश्चय और व्यवहार दोनों श्रुतज्ञान के अंश हैं। इसलिए दोनों ही सत्य हैं। असत्य तो वह उपचारकथन है। जैसे देखो-यह मकान मेरा है, यह बात सत्य है कि झूठ ? झूठ है, और, इस मकानको विषय बनाकर मैं ममताभाव कर रहा हूँ, यह बात असत्य है कि सत्य ? यह तो सत्य घटना है, ऐसा ही तो हो रहा है। झूठकी क्या बात है। आपके हितकी बात नहीं है। अगर यह कहा जाय कि मकान मेरा है, तो यह सच ही तो, है अरे भाई सच तो वह है जो भगवान जानते हैं। भगवान यह नहीं जानते कि यह मकान अमुकका है। यदि भगवान इस तरह जान जायें कि यह मकान अमुकका है तो फिर वह मकान उससे कभी छूट ही नहीं सकता। उसकी तो फिर पक्की रजिष्ट्री हो जायगी। चाहे आपकी तहसीलकी रजिष्ट्री फैल हो जाय या दिल्लीसे कोई रजिष्ट्री होती हो वह भी फैल हो जाय, परन्तु भगवान जान जायें तो फिर वह तो पक्की रजिष्ट्री हो जायगी ? वह फिर कभी फैल नहीं हो सकती। तो भैया प्रभुवत् थोड़ा थोड़ा सही सही तो जानो, कल्याण हो जायगा।

टंकोत्कीर्णवत् निश्चल अन्तस्तत्त्वका आश्रय करनेका अनुरोध—भाई आज बड़ी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दुर्लभतासे यह मानव जीवन पाया है तो इसमें पाये हुए साधनोंसे लाभ उठा लेना चाहिए। लाभ उठाना क्या ? स्वभावदर्शन। टंकोत्कीर्णवत् निश्चल ज्ञायक स्वभावका दर्शन। टंकोत्कीर्णवत् निश्चल, वह जो है सो ही है, वह कभी चलित नही होता। जैसे टांकीसे उकेरी गई प्रतिमा जो है सो है, वह कभी चलित नहीं होती, गोबरका, या मिट्टीका या मोमका जो देवता बनाया जाता है वह निश्चल तो नहीं रह पाता। उसे तो जिस चाहे जगहसे मोड़ा जा सकता है, पर टांकीसे उकेरी गई पाषाणकी प्रतिमा निश्चल होती है, वह तो जो है सो है। तो इसीतरह निश्चल है यह मेरा शाश्वत ज्ञायक-स्वरूप। दूसरी बात देखो-टंकोत्कीर्णवत् प्रतिमा की दृष्टिसे हमें क्या बात विदित होती है कि जैसे टांकीसे उकेरी गई प्रतिमाको कारीगरने बनाया नही, यहां वहांसे कोई चीज लाकर उसमें कुछ जोड़ा नहीं। जो मूर्ति कारीगरने प्रकट की है वह तो पहिलेभी उस पाषाणके अन्दर मौजूद थीं। उसे कारीगरने बनाया नहीं है बल्कि उसने तो हटाने हटानेका हीं काम किया है। उस मूर्तिका आवरण करने वाले जो पाषाण खण्ड थे उनको हटाने हटानेका ही काम किया है। वहां कुछ लगानेकी जरूरत नहीं, क्योंकि वह मूर्ति अपने आप परिपूर्ण है। अच्छा अब उन पाषाण खण्डोंको हटानेकी भी विधि देखो सबसे पहिले बड़े छेनी हथौड़ेसे बड़े बड़े पाषाण खण्डोंको कारीगरने हटाया। वहां अधिक सावधानी रखनेकी जरूरत न थी। सावधानी तो रखनी ही थी क्योंकि असावधानी करनेसे तो वह पाषाण टूट जाता, पर विशेष सावधानी रखनेकी जरूरत न थी। उसके बाद उससे छोटे छेनी हथौड़े से उस मूर्तिके आवरक छोटे छोटे पाषाण खण्डों को कुछ अधिक सावधानीसे हटाया। सबसे अन्तमें अत्यन्त छोटे छेनी हथौड़ेसे अत्यन्त बारीकीसे अत्यन्त बारीक पाषाण खण्डोका हटानेका काम कारीगर ने किया। दिन भरमें कोई तोला दो तोला ही पाषाणचूर निकलेगा, जिसे देखकर लोग यह भी कह सकते कि आज तो इस कारीगरने कुछ भी काम नहीं किया। व्यर्थ ही १५) दिनभरके लिया। पर बात ऐसी नहीं है। यह काम तो बड़ा कुशल कारीगर ही कर सकता था। मोटे आवरण हटानेका काम तो कोईभी साधारण कारीगर कर सकता था। तो ऐसे ही यहां भी समझ लीजिए कि परमात्मा बनना है तो जैसे पत्थरमें मूर्ति प्रकट हुई ऐसे ही हमें अपने में परमात्मस्वरूप निकालना है तो परमात्मस्वरूप निकालनेके लिए उसमें कुछ जोडना पड़ेगा क्या ? अरे उसमें कुछभी जोड़नेकी जरूरत नहीं, क्योंकि वह परमात्मतत्त्व तो परिपूर्ण है। जोड़नेकी क्या आवश्यकता ? अच्छा, तो परिपूर्ण है तो उसे निकालें कैसे ? जरा भेद विज्ञानका छेनी हथौड़ा ले लो और जो उस परमात्मस्वरूपका आवरण करने वाले हैं उनको हटाओ। लो विवेक किया। ओह ज्ञानकी छेनी, ज्ञानकी हथौड़ी, ज्ञान ही मारने वाला, इस भेदविज्ञान से पहिले तो बाहरकी चीजें

Report typing errors at vinayak@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हटायी, धन, वैभव, पुत्र, मित्र, शरीर आदिक ये बाहरी चीजें ही तो हैं। जैसे पहिले प्रोग्राममें बड़े पत्थर हटाये गए थे वैसे ही ये बाहरमें मोटेरूपसे दिखने वाली चीजें हटायी गई। अब और भेदविज्ञान करें, कर्मविपाक उससे भेदविज्ञान करें, कर्मका विपाक कर्मका कर्म में है। जो कर्मका विपाक कर्ममें स्वयं खिल रहा है उसका व्याप्यव्यापकभाव कर्म में है, मेरेमें नहीं, यहां भेदविज्ञान हुआ। और, जो कर्म झलके और मुक्ति आगमसे विज्ञात उस कर्मविपाक में उसके नोकर्ममें उपयोगन जुड़े तो वहां भी समझो जिसकी उपेक्षा की, समझो कर्मविपाकको छोड़ दिया। भेदविज्ञान होता है प्रकृत दो तत्त्वोंमें सो उसे भी छोड़ दिया। यद्यपि कर्मविपाक उपयोगमें यों स्थित होता कि ज्ञान विकल्परूप हुआ, मगर इन दोनोंमें एक को ले लिया उस उपयोगकी वृत्तिको, जिसके साथ व्याप्यव्यापक भाव चल रहा है, उस चेतना वृत्तिको, उस झलक को जो एक में हैं टंकोत्कीर्णवत् निश्चल शाश्वत प्रकाशमान, ज्ञायकस्वरूप। अन्तरमें है विकल्प तो भी यह मेरा स्वरूप नहीं, यह कादाचित्क है। नैमित्तिक है, यह मैं नहीं, हटायें उसे। अच्छा अब जरा इसका अभ्यास बनायें तो सही कि में ज्ञानमात्र हूँ। अभ्यास बनायें तो व्यवहार और झूठ हट जाता है। अरे रागसंस्कार बहुत हैं। घरमें रह रहे, दूकान भी है, बच्चे भी हैं, कामकाज भी करते हैं, कितने संस्कार लगे हैं ? ये बाधक हैं, इन्हें हटावो। गृहस्थीको हटाया लो मुनिव्रत हुआ। अब वह किस धुनमें हुआ कि वह जो मेरा टंकोत्कीर्णवत् निश्चल स्वरूप है, जिसकी श्रद्धा करनेसे मुक्ति होती है, उसकी उपासना करने में जो बाधक है उन्हें हटाया हटाया ही गया, ऐसा निर्ग्रन्थ रहें कि शल्यका मौका ही न आये। फिर एक धुनसे हम उस कामको सिद्ध कर सकते,। वहां भी बहुत बाधायें आती। शिष्य हैं, उपदेश दे रहे पूजा बदना होती है, जो कि बाधक है, सहज ही उनके फिर अप्रमत्त दशा होती है। यह बाधा भी हटे। उस आवरणकों भी हटाया और वह परमात्मस्वरूप निकल आया। व्यक्त हो गया। यह विधि है उस परमात्मतत्त्वको पानेके लिए, परमात्मस्वरूपको पाने के लिए।

तत्त्वके सही प्रयोगमें सन्मार्गका लाभ:—जीवादिक ७ तत्त्वोंके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। ये ही ७ तत्त्व हैं जिनका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। यह बात ७ तत्त्वोंके नाम देनेसे स्पष्ट होती है और अन्य प्रकारसे माने गए तत्त्वोंका निराकरण होता है। चाहते तो सभी दार्शनिक सुख शान्ति हैं, पर कुछ तो शान्तिके स्वरूपका निर्णयभी न कर सके और कुछ उनके उपायका निर्णय न कर सके। जैसे नैयायिकजन द्रव्यादिक अनेक पदार्थोंको कहकर संयोग, विभाग, पृथक्त्व आकि अनेक जैसा समझमें आया झट उस तत्वमें डाल-डालकर यहां तक कह देते हैं कि छल निग्रह जाति भी तत्व है। छल निग्रह जातिका अर्थ क्या है कि जैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसीसे बादविवाद कर रहे और बादविवाद में जैसे राजनीति और कूटनीति चलती है ऐसे ही वादीको कोई छल करके कुछसे कुछ अर्थ बताकर उसे चुपकर देवे, ऐसी कला खेलनेका नाम छल आदि तत्त्व है, ऐसा नैयायिक मानते हैं। जैसे कोई नया कम्बल ओढ़कर आया हो और कोई यह कहे कि नवकम्बलोंयं याने यह नवीन कम्बल वाला है। तो दूसरा कह बैठे कि तुम बडे झूठे हो। तुम तो कहते हो कि यह ९ कम्बल वाला है। अरे यह तो एक ही कम्बल वाला है। चूँकि नव के अर्थ दो हैं नया और नौ तो उसने कहा नयेके नामसे और इसने कहा मजाकके रूपमें कहते कि ९ कम्बल वाला कहां आया, यह तो एक ही कम्बल वाला आया। तो ऐसे ही बात-बातमें वहां जिस किसी भी प्रकार हो, चुपकर देना एकमात्र ध्येय हो तो वहां भी छल ही समझो। ऐसा इस शासनके आधुनिक सिद्धान्त दर्शनसे अनभिज्ञोंमें अनेक जगह घटित होता है। जैसे बस्तुस्वातंत्र्य और निमित्त नैमित्तिक भाव दोनोंका यथार्थ श्रद्धान करने वाला ही तो एक मोह मिटाने का रास्ता पा सकता है। अगर उनमें एक एकान्त करलें, निमित्त नैमित्तिकका एकान्त करले कि भाई जो कुछ है वह सब निमित्त ने किया। जीवने राग किया यों निमित्तने किया। तो अब बतलाओं मोह मिटानेका कैसे अवसर मिले? जैसे और लोग मानते—ईश्वरने किया तो कुछ लोगोंने मान लिया कि कर्मने किया। हम विवश हैं। जब कर्मकी कृपा होगी तब हमें सहुलियत मिलेगी। तो इस निमित्त नैमित्तिक भावके एकान्तमें रास्ता तो नहीं मिला। कोई वस्तुस्वरूपका एकान्त खींच ले कि वस्तुमें जब जो पर्याय होंती है वह अपने आप होती है। बाहरमें तो निमित्त वैसे ही कह डालते हैं मुफ्त में। जो सामने हाजिर हो उसे कह देते हैं। सो भैया! निमित्त सन्निधान बिना हो गया राग तो वह स्वभाव हो गया, कैसे छूटे फिर। उसमें भी मोह दूर करनेका ढंग नहीं रहा तो किसी एकान्तमें कोई रास्ता नहीं मिलता और यथार्थ प्रमाणभूत ज्ञान हो कि वस्तु स्वतंत्र सत् है, प्रत्येक पदार्थ अपने आपकी करणशक्तिसे उत्पाद करता रहता है बस उसका तो यह ही काम है कि उत्पाद करता रहे। अब जहां ऐसा निमित्त योग मिला, उपाधि सन्निधानको पाकर यह जीव चूँकि अशुद्ध पहिलेसे था तो योग्य उपाधिको पाकर यह विकाररूप बन गया। जैसे दृष्टान्तमें ले लो कि दर्पणके आगे हाथ किया और उसमें छाया आ गई, वहां कोई यह एकान्त करे कि यह तो हाथकी छाया है, हाथने ही किया, तो जैसे इसमें सही तत्त्वका दर्शन नहीं होता, तो कोई कहता कि दर्पणमें जब छाया आनेको होती है तो हाथ हाजिर हो तो इसमें क्या कह डाला कि दर्पणकी छाया है वहां निमित्त का क्या काम जब छाया होनेको होती है तो हाथ हाजिर हुआ है इसमें २ प्रसंग आते हैं एक तो छाया स्वाभाविकहो जायगी, दूसरे छाया के बनेगी निमित्त हाथकी हाजिरी होगी। नैमित्तिक यों उल्टी बात हो जाती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

है। तो एकान्तमें कोई सिद्धि नहीं होती।

वस्तुस्वातंत्र्य और निमित्तनैमित्तिकयोगकी यथार्थता:—तत्व तो यह है–निमित्त–प्राप्योपादानं स्वप्रभाववत् "याने पर उपाधिका निमित्त पाकर (सन्निधानमें) उपादान अपने ही प्रभाव वाला होता है। वह प्रभाव निमित्तका नहीं है। निमित्तकी कोई भी बात निमित्तके प्रदेशसे बाहर नहीं जा सकती है। द्रव्य हो, क्षेत्र हो, काल हो, भाव हो, प्रभाव हो, कुछ हो, नहीं जा सकता अब देखो यथार्थ बात माननेमें दोनों तरीकोंसे मोह मिटानेका रास्ता मिल जाता है। निश्चयदृष्टि जब की जाय व्यवहारको गौण करें, निश्चयको गौण करें, गौणके मायने यह है कि उस समय दृष्टिमें न लायें मगर सही समझ बनायें हों, और भाई निश्चयदृष्टिसे देखो तो निश्चयदृष्टिसे एकका ही तो देखना होता है। एकका एकमें ही देखना होता है। दूसरेकी न विधि कर सकते, दूसरेका न निषेधकर सकते। दूसरेका तो ख्याल ही नहीं कर सकते। अगर दूसरेका ख्याल किया तो वह निश्चयनय से हट गया। तो जहां एक दृष्टिमें ही चल रहे हो वहां परका ध्यान न होनेसे, उसको आश्रय न मिलनेसे रागादिक भाव दूर हो सकते हैं, उसे स्वभावदर्शन हो जायगा, और जहां निमित्त नैमित्तिक भाव से देखें, यह विकार है, यह कर्मलीला है, पौद्गलिक है, ये सारे भाव, ये सारे विकार पुद्गलकर्मका उदय पाकर उत्पन्न हुए। पुद्गलका विपाक पुद्गलमें पाया जाता, पर चूँकि एक क्षेत्रावगाह है ना तो उपयोगमें झांकी आये बिना रहेगा नही। झांकी हुई सो उसी समय यह शुद्ध स्व–भाव से च्युत हुआ उसी समय यह उसमें जुट गया। उसी समय मोही हुआ तो उसे अपना लिया। ऐसा बिल्कुल स्पष्ट जो संकेत है उसके अनुसार देखें तो यह भावना करनेका खूब अवसर मिला कि यह कर्मलीला है, कर्मविपाक है, इसमें मेरा कुछ नहीं है। मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, अपने उस ज्ञानमात्र स्वभावमें यह ग्रहण करता है।

प्रयोजनको न भूलकर तत्व दर्शनमें लाभः—तत्वकी बात चल रही थी कि मोक्ष-मार्गका प्रयोजनभूत तत्व तो वही हो सकता है जिसमें मोह मिटे, शान्ति मिले। मगर छल निग्रह आदिक करनेमें तो नहीं मिलता। जैसे किसीने कोई निमित्त नैमित्तिक की बात कही तो ऐसा मानने वाले भी भली भांति श्रद्धा किए हुए है कि एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमें कर्तृ कर्मभाव त्रिकाल भी नहीं होता। एकका दूसरेमें कुछ प्रवेश ही नहीं है। तो ना कर्तृ कर्म भाव है, न व्याप्य व्यापक भाव है, और न कुछ लेन देन है, पर है निमित्त नैमित्तिक योग जैसे कि व्यवहारमें रोज-रोज देखते हैं उसी प्रकारकर्म उदयका निमित्त पाकर जीवने अपने रागादिक भाव परिणाममें किया। ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग बताया तो कह बैठे–तो क्या कर्त्ता है कूछ ? या निमित्तका कह दिया यह कहते हो ? तो जाति निग्रहके दोष ऐसे ही तो हैं। कोई

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहे कि वस्तु अपने आपकी शक्तिसे परिणमती है, अन्यकी शक्ति लेकर नहीं परिणमती है, ऐसा कोई वस्तुस्वातंत्र्यका वर्णन करे तो ऐसा जानने वाले पुरुष जो निमित्त नैमित्तिक योग की बात देखता हैं वह एक दृष्टिका वर्णन कर रहा तो उसे कहा तो क्या यह अपने आप यो ही हो गया। वह स्वभाव बन बैठा। अरे हम श्रद्धामें तो लिए हैं कि स्वभाव न बनेगा, क्योंकि उसमें जो कर्मविपाककी झांकी है यहां तक तो यह सहज भी हुआ। अब उपयोग जुड़ा यहां से चली बुद्धि पूर्वकता की बात, बुद्धिपूर्वक उपयोग जुड़ा, अपनाया तब बन्धन है ना। तो किसीप्रकार कुछसे कुछ बात कहना ये नैयायिकोंके तत्व हैं। तो बतलावो-जैसे लोगोंने यह कह दिया कि जो मेरे बेदको माने सो आस्तिक और न माने सो नास्तिक। जो मेरे इस्लाम को माने सो सही और न माने सो काफिर। ऐसे छल निग्रह का दोष बताने वाले सिद्धान्तने मानो यही तो स्पष्ट किया कि जो हमारी बात माने वह सही है और न माने तो वर गलत है। उसे छल करके निग्रह करके किसी भी प्रकारसे चुप कर देना उसीमें नैयायिक सिद्धान्त अपनी विजय मानता है और समझता है कि हम धर्ममें चल रहे हैं, ऐसे ऐसे दर्शन अनेक दार्शनिकोने माना है, भला बतलाओ-जीवादिक ७ तत्त्वोका उपदेश करना हमारी वीतराग परम्परासे जो है वह कितना निर्दोष है, और, और जो पदार्द हैं क्या ? द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव, ये कोई ६ चीजें हैं ? एक ही चीज हैं। द्रव्य-इस द्रव्यमें ही जो शक्ति है उसोका नाम गुण है। द्रव्यकी जो अवस्था है उसका नाम कर्म है। द्रव्यमें सामान्यदृष्टिसे जो निरखे सो सामान्य, विशेष दृष्टिसे निरखे सो विशेष और चूँकि ये गुण कर्मये सब कुछ समझमें आ रहे हैं और उस समझके अनुसार उनकी भेददृष्टि बन गई है तो अब यह नौबत आ गई कि द्रव्य तो भिन्न है, गुण तो भिन्न है, कर्म तो भिन्न है, फिर काम कैसे बनेगा ? ये एक साथ कैसे रहेंगे ? उसके लिए मानना पड़ा समवाय यों विशेष बढ़ाते जावो विकल्पहीं बढ़ेंगे।

मोक्षतत्त्वकी श्रद्धामें मोक्षकी प्रतीक्षा—भैया ? ऐसे प्रसारसे क्या ? कोई मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत तत्त्वकी बात खोजली। वह खोज इस तरह है सीधी कि सब जीवोंको मोक्ष तो बहुत इष्ट है स्कूलमें पढ़ने वाले बच्चोंकी जब छुट्टी होती है, तो देखो अपना बस्ता लेकर कैसा उछलते कूदते हुए अपने घरको भगते हैं। उस समय मानो उन्हें इतनी खुशी होती है कि जितनी खुशी लड्डु खानेमें भी नहीं होती। लड्डु खानेमें क्या है ? आया और खड़े खड़े खा लिया चल दिया, उसमें उसे कोई विशेष खुशी नहीं मालूम होती, पर स्कूलमें छुट्टी की घंटी बजते समय विशेष खुशी मालूम होती है। कोई व्यक्ति ऐसे भी होते कि मानो कभी शास्त्र-सभामें आ गए और वहा बैठे हुए काफी देर हो गई तो वहां वह सोचता है कि अब मैं कैसे

Report any errors at jinkosh@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उठकर जांऊं ? लोग क्या कहेंगे ? कदाचित व्याख्याताने अपने विषयको कुछ और बढ़ा दिया तो वह श्रोता दुःखी होता है। और जब व्याख्यान पूरा हो गया तो उसे कितनी खुशी होती है। यह बात उस व्यक्तिके लिए कहा जो यह सोचता है कि मैं कहां आज शास्त्र सभामें फंस गया ? कब छुट्टी मिले। तो ऐसे ही कोई ज्ञानी पुरुष है और वह घरमें फंसा है। पूजामें जाना है, स्वाध्यायमें जाना है। घरमें स्त्री ने बच्चों ने कोई झंझट लगा दिया तो वह बड़ा दुःखी होता है। वह खूब परिश्रमसे बड़ी जल्दी उनसे छुट्टी लेता है, स्वाध्याय करने जाता है तो जिस समय वह छुट्टी पाता है उस समय वह कितना खुशी मानता है। यो छुट्टीमें प्रसन्नता है। तो भला बतलावो जिसे संसारके संकटोंसे सदाके लिए छुट्टी मिलती हो तो उसकी प्रसन्नताका तो कहना ही क्या है ? कुछ चित्तमें यह बात आयी कि हमें तो इससे छुट्टी पाना है और कुछ ध्यानमें आने लगा कि अब तो कुछ छुट्टी पानेका मौका सा मिल रहा है तो छुट्टी पानेसे पहिले भी उस आनन्दका लोग अनुभव करते हैं। तो मुक्ति सबको इष्ट है। जो मूर्ख है वह भी छुट्टी चाहता है। अब किससे छुट्टी चाहता है उसका ही फर्क है। तो मोक्ष जो है वह दुःखोसे मुक्ति पाने के इच्छुक को अवश्य श्रद्धानके योग्य है। कोई अगर मोक्षकी श्रद्धा नहीं कर रहा तो वर्तमान में कर्मोंसे बंधे हुए अपनेको मोक्षकी अभिलाषा करना बन न सकेगा। वह मोक्षकी बाट कैसे जोहेगा। छहढालामें एक छोटासा तो छन्द कहा मगर वह कितना तर्क पूर्ण है मोक्षके विषयमें उल्टी श्रद्धा। शिवरुप निराकुलता न जोय, मोक्षका स्वरुप, निराकुल स्वरुप, उस मोक्ष की बाट नहीं जोहता। मिथ्या दृष्टि। देखो ज्ञानकी बात कितनी स्पष्ट आ गई। ऐसा मोह है कि वह बाट जोहेगा अगर कोई लडका किसी कामसे बाजार गया उसको वहां से लौटकर आनेमें कुछ देर हो गई तो वह मोही पुरुष उसकी बाट जोहता है, अरे अभी वह क्यों नहीं आया ? मानो किसीको अपने घर आना है तो यह मोही पुरुष उसकी बाट जोहता है कि अरे अभी तक वह क्यों नहीं आया ? तो जैसे मोही पुरुष इस तरहकी बाट जोहते हैं इसी तरह ज्ञानी जीव मोक्षकी बाट जोहता है। मुझे मोक्ष (छुटकारा) कब मिले, बस उसी मोक्षकी ओर ही उसकी धुन लगी रहती है।

मुक्तिप्रोंग्राममें होनहारकी उमंग—साबर दूर सिमरिया नीरी, सँसार पीठ पीछे हो गया क्योंकि उसने मुख कर लिया है मुक्ति की ओर। तो पहिली बात तो यही है कि मोक्षकी श्रद्धा होती है, ज्ञानी पुरुषको मोक्षकी बाट जोहने की बात लगी रहती है। मेरेको मुक्ति मिले "मुझे न है परका पतियारा, मुक्तिका प्रोग्राम हमारा।" एक भजन में लिखा है। तो चल रहा है, जैसे कोई छेड़ता है हाथ पकड़ कर कि अरे ठहरो तो सही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं, नहीं, मेरा दूसरा प्रोग्राम है। इसी तरह से घरमें बालबच्चोंका समागम छेड़ता है तो यह कहता है कि मुझे न है पर का पतियारा, मुक्तिका प्रोगाम हमारा। चला जा रहा है मेरा तो मोक्षका प्रोग्राम है, मुझे मत छेड़ो। और छेड़नेसे तुम्हारा हित भी कुछ नहीं होता। तुम्हारे बीचमें हम रहेंगे तो न हमारा ही लाभ होगा और न तुम्हारा ही लाभ होगा। लाभ तो दोनों की राजीमें है। अब ज्ञानी और अज्ञानी, इन दोका संग कैसे निभेगा? एक जुवामें ऊंट और बकरा जोड़े जायें तो वे कैसे चल सकेंगे? सोचते होंगे कोई भाई ज्ञानी पुरुष घरमें रह रहा है तो उसे तो वहां कुछ भी मौज नहीं है, उसे कुछ सुख नहीं है, सुख तो मोही लोंगोंको है। बच्चे को जब गोदमें लेकर खिलाते हैं तो खूब उडकर उससे प्रेम करते हैं, खूब उछाल उछालकर छातीसे लगाकर बड़ा मौज लूटते हैं, मगर यह सम्यग्दृष्टि पुरुष भले ही बच्चेको अपनी गोदमें लिए है, घरमें बच्चे हैं तो उन्हें खिलायेगा तो है ही, उन्हें प्यारसे भी रखेगा, पर वह सोचता यही है कि ये बच्चे, ये परिजन मेरे से अत्यन्त भिन्न हैं, इनके कर्म न्यारे, इनकी कर्म न्यारे, इनकी परिणति न्यारी। इस कारण ज्ञानी पुरुष उनमें मुग्ध नहीं होता, उनसे विरक्तचित्त रहता है। अब जरा अन्तर तो विचारों कि घरमें रहने वाले ज्ञानी को आनन्द है कि अज्ञानीको। अब सच्चे ढंगसे विचारों। भीतरी प्रसन्नता तो विचारो। ज्ञानी पुरुष को आनन्द है। अच्छे ढंगसे तो ज्ञानी पुरुष ही रह सकता है, उससे किसीसे कभी लड़ाई भी न होगी। वह उपेक्षा कर जायगा। हाँ चलो बाबा, ऐसा ही ठीक। तुम कह रहे सो ठीक। यों ज्ञानी पुरुष सबको वहां स्याद्वादसे घटाता है। पर अज्ञानी जीव को उसकी हठमें जरा भी बाधा हुई तो वह अपनी बातमें अड़ जायगा।

दूसरोंसे हठ करनेमें समयका दुरुपयोग—एक पंचायत बैठी थी। सभी लोग कोई घटनाका हिसाब लगा रहे थे—३० और ३०=६०, होते हैं, तो वहां एक किसान बोला, ३० और ३०=८० होते हैं। वहां बहुत बहुत समझाते परभी उस किसानको ऐसी हठ हो गई कि अगर ३० और ३० मिलकर ८० न होते हो तो हम अपनी ४-६ भैंसे दूध देती है वे सब दे देंगे, अब तो सभी पंच लोग खुश हुए कि अब तो भैंसे मिल ही जायेगी। यह बात उस किसानकी स्त्रीने भी सुन ली। जब किसान घर पहुँचा तो वहां स्त्रीको उदास देखकर पूछा कि तुम क्यों उदास हो? तो स्त्रीने कहा-तुम तो बोल आये हो पंचोंमें कि अगर ३० और ३० मिलकर ८० न होते होंगे तो हम अपनी सभी भैंस दे देंगे सो अब हमें इस बातका दुःख है कि हमारी सभी भैंसे चली जायेंगी। तो वह भाई बोला—अरी तू तो बड़ी बेवकूफ है। जब हम अपने मुखसे यह कहें कि ३० और ३० मिलकर ६० होते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं तभी तो भैंसे जायेंगी। यों तो कोई नहीं ले सकता ? तो भाई हठमें, मोहकी हठमें और आग्रहमें तो चूँकि हठ है, उसकी बात उसके साथ है, मगर बाह्य वस्तुनें क्या आग्रह करना ? कोई धर्मका प्रसंग है, धर्मकी बात चलती है ठीक है, चलने दो। एक ही भाव रखो, जिस तरह हो यह धर्मका काम आगे बढ़े, धर्मकी बात, धर्मकी प्रभावना आगे बढ़े, उस प्रसंगमें कभी यह बात चित्तमें न आनी चाहिए कि चूँकि मैंने कहा इसलिए ऐसा होगा। कोई हठ न करना चाहिए। हमारी अनेकों हठ हों तो भी उन्हें धुला मिला सकते धर्मकी प्रभावनाके आगे। धर्मकी प्रभावना हो यह बड़ी चीज है। यहां हठ करके हमें किसे क्या दिखाना ? यहां मुझे पहिचानने वाला कौन है ? मुझे कोई जानने वाला भी नहीं है। मेरा पहिचाननेहार दूसरा न कोई रे, ज्ञाताकी दृष्टि भली, बुरी नहीं होय रे। जो ज्ञाता है वह सोचता है कि मेरा पहिचानने वाला यहां कोई दूसरा नहीं है। अच्छा रेलगाड़ीमें जा रहे और वहां जान पहिचान वाले लोग मिलते नहीं हैं, किसीने आपको वहां गाली दे दिया या कुछ भला बुरा कह दिया तो वहां तो आप बुरा नहीं मानते। वहां तो आप उसके बड़े नम्र बन जाते हैं और यहां समाजमें या घरमें कोई जरासी बात कह दे तो वह कितना तेज हो जाता। तो यह फर्क किस बातका आया ? समाजके बीचमें अगर किसीने भला बुरा कह दिया तो वहां ऐसा अनुभव करते कि मेरा तो इसने सब कुछ बिगाड़ दिया। यह भ्रम है।

धर्मके प्रवाहमें अपनेको समाकर पावन कर लेनेमें विद्वताका सदुपयोग:—धर्म तो अमिट है। व्यवहार की बात कह रहे कि यह जो धर्मप्रवाह चल रहा है यह क्या मेरा है कुछ ? सब जीवोंको शान्त सुखी होनेका एक प्रवाह चल रहा, परम्परा चल रही। तुम भी उसीमें रह जावो। देखो एक ने बताया अपनी बातचीतमें कि विद्वताका पचाना बहुत कठिन होता है। ऐसा कह रहे तो इससे उसका अर्थ पूछो तो कहा कि अर्थ यह है कि जिसने विद्वता पायी वह धर्म की परम्परामें और आचार्योंके स्वरोंमें अपनी बात रखकर एक अपने अस्तित्वको अलग न जतानेकी बात रहती किसीके चितमें तो उसे कहते हैं विद्वताका पचाना। नही तो बड़ा मुश्किल होता। थोडी भी जानकारी पाये तो ऐसा कहेंगे कि दूसरों को कुछ अटपटी सी बात लगे, कुछ आकर्षण सा हो, फिर उसे नामवरीके लिये अलगसी बात बना देवे। ऐसे ऐसे ही तो होते चले आये हैं। तो देखो विद्वताके पचानेमें उसका खुदका बड़ा लाभ होता। उसे मायाचार न करना पड़ेगा। समझदारका मायाचार ऐसा होता है कि दुनिया जानती है कि यह बड़ा सरल है, कठिन मायाचार ऐसा होता है कि उस मायाचारको कोई पहिचान न सके, पर ऐसा होता नहीं। कोई न कोई पहिचानने वाला जरूर होता है। पास रहने वाले पहिले पहिचान लेते हैं बात छिपती नहीं है लेकिन मायाचार वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि जिसकी बात सर्वसाधारण न समझ सकें। तो क्या है ? अरे भाई अनन्त भवोंमें जन्म-मरण करते-करते आज बड़ी दुर्लभतासे मनुष्यभव पाया है। किसे क्या बताना है कि यह भी कोई है। मत जाने मुझे कोई। मैं तो उसी धर्म परम्परा में उसीमें सम्वत होकर उसीमें रच पचकर, उसीमें एक रस होकर अपनी गुप्त विधिसे गुप्त कल्याण हासिल हो जाय, वही मेरे लिए सर्वसिद्धि है।

कषाय व अहङ्कारको दूरकरनेपर ही धर्मपात्रता:—देखो शिवमय धर्मके पंथपर चलना बहुत कठिन है। अथवा कठिन नहीं है, बहुत सरल है, मगर कितना कठिन बना दिया। सर्व कषायोंमें कठिन एक मान कषाय है कषायोंके हिसाबसे बताया कि नरकगतिमें क्रोध कषायकी प्रबलता है, तिर्यञ्चोंमें मायाकी, देवोमें लोभकी और मनुष्योंमें मानकी प्रबलता है। आप कहेंगे कि देवोंमें लौभ कषायकी तीव्रता कैसे ? उनके पास तो अटूट वैभव है। ऊन्हें कमानेकी व्यापार वगैरह करनेकी कोई जरूरत नहीं है, फिर लौभ कैसे ? तो देखो वे अपने से अधिक ऋद्धिधारी देवको देखकर मन ही मनमें कुढ़ते रहते हैं, जलते रहते हैं तो यह लोभकषाय ही तो हुई। और, मनुष्योंमें देखो, लग तो ऐसा रहा कि मनुष्योंमें लोभ कषाय बड़ी तेज है क्योंकि वे भी बहुत-बहुत परिग्रह जोड़ते हैं। और लोभकरते हैं, धन जोड़ने के लिए करते हैं या अपनें परिवारको बहुत अच्छा बनाना चाहते हैं, जो कुछभी करते हैं ऊस सबके नीचे मान कषायकी आग धधक रही है, जिस दिन उसे जच जायकि बहुत बड़ा धनी होनेमें भी मान नहीं है तो उसे लौभ न सतायगा। खुब देख लें-जो कुछभी करना चाहता यह जीव वह मानकषायके वश होंकर करता है। आत्महत्या भी कर डालता है मानके बश में बड़ी विपत्तियोंके बीच फसते है तो इस मानके बश होकर फसते हैं। तो भाई कुछ बतानें, समझाने, जतानेसे कोई बात स्पष्ट नहीं होती। वह तो उसका उसके साथ है। नहीं तो जैसे कि उर्दू सभ्यतामें कोई संस्कृति आती है व्यवहार करनेकी. कैसे शब्द बोलते हैं कि उनमें विनय ही विनय टपकता है। कुछ शब्द भी अच्छे हैं और कुछ उनकी बोलचाल भो बड़े विनयको सिद्ध करती हैं, साथ ही हाथ, मुहं, कमरकी मुद्रा भी सुहावनी रहती है, पर क्या वहां यह निर्णय कर सकते हैं कि बहः विनय है ही? कहो वह उस प्रकारके विनय युक्त शब्द बोलने वाला यह समझ रहा हो कि इस प्रकारका विनय बर्ताव करनेसे महत्त्व बढ़ता है, प्रतिष्ठा बढ़ेगी, तो वह विनय भी मानका साधन बन गयी। उसने तो ऊस विनय का माध्यम बनाकर अपने चित्तमें गौरवका महत्त्व दिया। जैसे कोई किसीपर बड़ा क्रोध कर रहा हो तो उसे कोई समझता कि भाई क्यों क्रोध करते हो ? इतना नाराज न होओ ? तो वह कहता-अजी हम तो बड़े चैनसे रहते, हमारे कोई कषाय नही है, वह अपने घरमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सुखसे रहे, हमें क्या मतलब ? और बोल रहा गुस्सामें होता है ना ऐसा, तो बतलावो उस शान्ति वाले बचनसे आप क्या निर्णय कर लेंगे कि इसके चित्तमें क्रोध नहीं है ? वह तो जिम्मेदारी उनकी उनके साथ है। उनके क्रोध हो भी सकता है। ऐसी ही मायाचारकी बात है। मायाचारमें भी बड़ी सरलता दिखायेंगे। और, ऐसो दिखायेंगे कि यह तो बच्चेकी तरह है। कुछ जानता नहीं है। मगर सारा ढाँचा, सारी करतूत सब खेलता तो रहता है मगर ऐसा वचन निकलेगा कि लोग जानेंगे कि बहुत सरल है। लोभ रूषायकी बात देख लो। लोभ कषाय में मान लो कहीं कोई बोली हो रही है, कोई बड़ा सम्मान हो रहा है तो वहां झट कह बैठते कि हमारा एक लाख रूपया। देखिये एक लाख रूपयेका त्याग तो कर दिया, मगर चित्तमें यह बात बैठी है कि लोग मेरा सम्मान करेंगे। मेरी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। अब बताइये वहां लोभ छूटा क्या ? नहीं छूटा, धन तो त्यागा, किन्तु एवजमें मानकषाय हैं और यशका लोभ है अगर किसो ऐसी जगह धर्म्मके काममें थोड़ा खर्च किया जा रहा हो, जिसमें कि अधिक नाम जाहिर नहीं होता, एक गुप्तसा काम है जैसे गरीब परिवारका स्थितिकरण करना, गुप्तभंडार देना स्कूलके बच्चोंको इनाम बांटनेका काम समझलो जहां नाम जहिर न हो ऐसा काम, तो वहां कुछ भी धन खर्च करनेका भाव नहीं होता, वहां कुछभी उदारता नहीं बर्तती तो क्या कहा जा सकता है कि उसके लोभ कषाय नहीं है ? तो मतलब यह है कि मनुष्य मान के लिये सब कुछ करना। अहंकार छोड़ तो धर्मपात्रता आवे।

पर्यायकी कीर्तिका विकल्प छोड़कर आत्मस्वरूपकी उपलब्धिके यत्नका अनुरोध:—भैया हित अपने हाथकी बात है। क्यों सोचते हो कि दुनिया हमपर खुश हो जाय ? एक भी उदाहरण ऐसा बतलावो जिसपर सारी दुनिया खुश हुई हो ? तीर्थंकर देवपर भो उनके समयमें सारी दुनिया खुश नहीं हुई। भले अल्पांश फर्क पड़ जाय मगर ऐसा हो नहीं सकता कि दुनियाके सभी लोग आपपर खुश हो जाये। बच्चोंकी किताबमें एक कहानी लिखी है कि कोई बाप बेटा एक घोड़ा लिए हुए किसी गांवको जा रहे थे। बाप तो घोड़ेपर बैठा था और बेटा पैदल जा रहा था। वे एक गांवसे निकले तो उस गांवके लोगों ने कहा देखो यह आदमी कितना बेवकूफ है। हट्टा कट्टा। बाप तो घोड़ेपर बैठा है और बेटेको पैदल चला रहा है। बापने अपने बेटेसे कहा-बेटे तुम घौड़ेपर बैठ जावो, हम पैदल चलेंगे, क्योंकि लोग हमारा नाम धरते हैं। वह बेटा घोड़ेपर बैठ गया और बाप पैदल चलने लगा। जब दूसरे गांवमें पहुंचे तो वहां भी लोगोंने नाम धरना शुरु किया।...यह देखो जवान, हट्टा कट्टा बेटा घौड़ेपर बेठा है और अपने बापको पैदल चला रहा है। अब तो उन दोनोंने बाप बेटाने। सोचा कि ऐसे भी लोग नाम धरते हैं, चलो दोनों ही बैठकर चलें। जब दोनों ही घौड़ेपर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बैठकर जा रहे थे तो तीसरा गांव मिला वहां लोगोंने कहा कि मालूम होता है कि यह घोड़ा मांगे का है। तभी तो ये दोनों हट्टे कट्टे घोड़ेपर लदे हैं। जब फिर भी नाम धराओ तो दोनों पैदल चलने लगे। अब दोनों उस घोड़ेको लगाम पकड़कर पैदल चले जा रहे थे। आगे जब चौथा गांव मिला तो उस गांवके लोग कहने लगे कि ये दोनों कितना बेवकुफ हैं। अरे जब इन्हें पेदल ही जाना था तो साथ में घोड़ा लेकर चलनेकी क्या जरूरत थी? अब बताओ इसके बाद वे दोनें क्या करते? हां यही कर सकते थे कि उस घोड़ेके चारों पेरोको बांधकर उसके बीच लाठी डालकर उसे कंधेमें लादकर ले जाते सो करना मुश्किल भी था। तो सबको प्रसन्न कर सकनेका कोई उपोय है क्या? अपनी ऐसी धुन बनायें कि मेरा आत्मा प्रस न हो। और आत्माकी निर्मलता इसीमें है कि बाहरमें जो आश्रयभूत पदार्थ हैं उन पदार्थोंका व्यामोहैं छोड़ें। ये सब बेकार है, हमारो बरवादीके साधन है। इनसे मेरा हित नहीं होने। मेरा जो सहज निरपेक्ष अन्तः प्रकाश मान ज्ञानस्वरूप है उसको अपनी ज्ञान योग्यताके माफिक बिचारनेकी कोशिश करें और उसका अनुभव करें कि मैं तो यह हूँ और कुछ नहीं हूँ, ऐसा सोचनेमें मेरा हित है। बाकी बाहरकी दृष्टिमें कुछ भी लाभ नही मिल सकता।

वर्तमानबन्धनकी और उससे मुक्त हो सकनेकी श्रद्धा:—जिनका मुक्त हानेकी अभि-लाषा है उनके चित्तमें दो प्रकारकी बाते तों आनी ही चाहिए कि मैं अभी तो बँधा हूँ किन्तु प्रयत्न पौरुष करके मुक्त हो सकता हूँ! मैं बँधा हूँ इसका निर्णय तो आसानी से हो सकता है, कितना मोहमें बँधा हूँ, किस किस रागमें बँधा हूँ, किन-किन चिन्ताओंमें रहा हूँ। ये काई बाहरी चीजें साथ जाती नहीं, मेरी शान्तिमें कारण बनती नहीं अत्यन्त भिन्न हैं, अहितरूप है, फिर भी इनमें कैसा मोह लगा है कैसा राग लगा है, जैसे कहते हैं ना-चोर चोर मोसेरे भाई। इसीतरह जब जगतमें सब मोही जीव बस रहे हैं तो सबका ऐसा सच दिख रहा है कि यह ठीक ही तो है। खूब धन कमाया तो यह ठीक ही तो है, ऐसे मौज से रहे तो ठीक ही तो है, पर मूलमें किसीने नहीं सोचा। किसी बिरले ही पुरूषने सोचा कि इनमें बड़ा दुःख है। जो बाह्य पदार्थोकी ओर ख्याल, रुचि, मोह जाता है इससे यहां भीतर कितनी अशान्ति, कितनी बेचेनी हो जाती है। यह तो एक बहुत बड़ी विपत्ति है, बन्धन है। और, जो जरा १०—५ दिनकी पढ़ाई करके ऐसा सोचेकि मैं तो मुक्त हूँ, मैं तो शुद्ध हूँ, मेरे को क्या रखा है। यह तो शरीर ही बदमाशी करता है इसतरह का जो भाव बना हुआ है, जिसका अपने बन्धनकी श्रद्धा नहीं है कि मैं अभी बँधा हूँ, मैं कष्टमें हूँ, तो वह संकटोंसे मुक्त ही क्या होगा? वह तो जान रहा है कि में सिद्ध हूँ। चौथे गुणस्थानमें बताया है कि अनुभूति होती है। बात तो सच है, स्वानुभूति बिना सम्यक्त्व पैदा हीं हो सकता किन्तु कोई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कोई यही सोचले कि जो स्वानुभव सिद्धमें है वही हममें है, जरा भी यह न सोचे कि सिद्ध का स्वानुभव कितना उत्कृष्ट है। यहां तो हम आपके रागचल रहा है, अबुद्धि पूर्वक है, वे हमारे उपयोगमें नही आते। वह तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। कर्मविपाक हुआ कि यह झांकी हुई। झांकीं हुई कि वहां अबुद्धिपूर्वक राग परिणमन हुआ ? स्वानुभूति में यह विशेषता है कि उपयोग रागको नही ग्रहण करता, झांकी को ग्रहण नहीं करता और अपने विशुद्ध ज्ञानस्वभावको ज्ञानमें लेता है पर अनुभूति तो वह कही जायगी जितना सारा एक यह द्रव्य है, उस द्रव्य में जो गुजर रहा है इस अनुभूतिका नाम अनुभूति है। ज्ञानानुभूतिसे तो यह ज्ञानमें ज्ञानकी अनुभूति कर रहा है। स्वानुभव वाले जो यह कहो कि सिद्धसमान अनुभूति है सो वात नही हैं। आत्मानुभूति भी कहो, ज्ञानाभूति भी कहो मगर सिद्ध समान अनुभूति नही कहा जा सकता। सिद्ध तो राग संस्कार से रहित हैं। वहां तो झांकीं तक नहीं है। "सिद्धमें जैसीनिर्मल अनुभूति है, वैसे हममें है अनुभूतिमें अन्तर नही है हां यह एक समयको होती है वह अनुभव सदाकाल रहता है। अनुभूतिमें अन्तर नहीं है, ऐसा कहकर अपने आपका मन क्यों खुश किया जा रहा है? चतुर्थ गुणस्थानमें जैसी अनुभूति होती है उसमें क्या बल नहीं हैं? ऐसा उत्कृष्ट बल है वहां ऐसा उत्कृष्ट बल है कि भवभवके बांधे हुए कर्म क्षण मात्रमें खिरा सकते हैं ? सही बात, तथ्यकी बात समझने से मोक्ष मार्ग निर्वाध रहती है। तो पहिले तो यह समझे कि मेरेको बन्धन लगा है और यह निर्णय बनायें कि इस बन्धनसे मैं मुक्त भीं हो सकता हूँ।

बन्ध की निबद्धता—देखो बन्धन क्या है ? इस जीव को बन्धन किसी बाह्य पदार्थ से नही हैं, यह उपचारसे बोलते हैं, मिथ्या बोलते हैं कि मेरे मकान से, मेरी स्त्री पुत्रादिक से मेरा बन्धन है, जैसा बोला वैसा यहां हो नहीं रहा है। यहां तो यह हो रहा है कि कर्मविपाकका निमित्त पाकर मुझमें हुआ प्रतिफलन, उसके साथ हुआ शुद्ध स्वभावसे हटना, उसके साथ ही हुआ उसका ग्रहण तो उसके साथ ही हुआ उसका ग्रहण तो उसके साथ ही किया विकल्पमें, ज्ञानमें अपनाने की समझ। बस यह बंध हूँ तो अपने विचारोंसे अपने अपने विकल्पोंसे बंधा हूँ। अन्य किसी बाह्य पदार्थसे नहीं। निमित्त नैमित्तिक सम्बंध है तो इतना ही है कि कर्म विपाक उदयमें आया है और उसका निमित्त पाकर जो कर्ममें रागादिक है, कर्ममें जो प्रकृति है उसकी झांकी हुई और इसमें उसे ग्रहण किया और अपनाया, यह उसने गल्ती की। देखो एक मोटीसी बात हैं जों अनेक बार ध्यानमें लाना है। जीवके विकारके प्रसंग में तीन प्रकारके कारण होते हैं (१) उपादानकरण (२) निमित्त कारण (३) आश्रयभूत कारण। उपादान करण तो यह अशुद्ध जीव है। विकारोका यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपादान है। कर्मको उपादान कारण नहीं कहा। जीवके विभावका उपादान कारण कर्म नहीं हैं, किन्तु जीव स्वयं है। राग होता है दो जगह जैसे दर्पणमें लालरंग का चित्रण आया तो लालिमा दो जगह है, कपड़ेमें भी लालिमा है और दर्पणमें भी लालिमा है। तो चूंकि लालिमा दोनों में है इसलिए भ्रम हो जाता है कि लालिमा तो दर्पण में ही है, कपड़ेमें लालिमा नहीं है। या कपड़ेमें लालिमा है, दर्पणमें नही है, परन्तु ऐसा नहीं है। देखो-लाल रंग दो जगह साफ नजर आयगा, कपड़ा भी लाल है, और दर्पण भी लाल है। कैसे हुआ? तो कोई यों कहता कि दर्पणको जब लाल होना था तो लाल कपड़ा हाजिर हो गया और बात क्या हुई कि जिस समय लाल कपड़ेका सन्निधान पाया, चाहे लाल कपड़ा के सामने दर्पणको लाकर सन्निधान हुआ हो या पहिले से रखा हुआ दर्पण के सामने लाल कपड़ा लाया गया हो कुछ भी किया गया, मगर बात यह है कि उस लाल कपड़ेका सन्निधान पाकर दर्पण अपने आपकी परिणतिसे अपने आपमें लाल बना। तो देखो लाल दो जगह है कि नहीं? है। तो इसी तरह क्रोधादिक विकार कर्ममें भी है और जीवमें भी। अब बतलाओ जैसे कपड़ेमें लालिमा है? अरे दर्पणमें तो स्वच्छता है, पर विकाररूप लाल है। इसीतरह कर्ममें जो क्रोधमें जो, क्रोध, मान, माया, लोभादिक होते हैं वे ही क्या जीवमें भी होते हैं?...नहीं। वे तो अचेतन हैं, जड़ हैं। जैसा अनुभाग बांधा था उस प्रकारसे हैं। इस तरहका नहीं है तो किस तरहका है? उपयोगमें ज्ञानस्वरूप, ज्ञेयरूप, जाननरूप, समझरूप, विकल्परूप इसतरहका है। इसतरहका विकार कर्ममें नहीं है, कर्ममें अचेतन के ढंगका है क्रोध, मान, माया, लोभ, किन्तु जीवमें चेतनके ढंगका है क्रोध, मान, माया, लोभ। तब ही तो उस जीवके क्रोध, मान, माया, लोभादिकको चिदाभास कहा है, चेतन नहीं कहा, जड़ भी नहीं कहा।

धर्मपरम्परामें अपनेको विलीन रखकर हितसंपादनकरनेको संदेशः—देखिये वस्तु-स्वरूपका कितना स्पष्ट कथन है और कैसा मोहको नाश करनेका इसमें मार्ग मिलता है। सीधीसादी बात और उसको फिर तोड़ मरोड़कर रखना यह एक कोई महान अज्ञानभरा संकल्प उठा रखा हो, उसके बिना नहीं हो सकता। अगर सीधे सादे आत्महितकी भावना हो तो उसे एक नवीन बात उत्पन्न करनेकी आवश्यकता नहीं है। जिस परम्परामें समंतभद्र, अकलंक देव तथा विद्यानन्द आदिक आचार्य हुए हैं, और जिन्होने अपने नाम का कोई प्रचार नहीं किया, कोई अलग बात नहीं रखी, दुनियाकी दृष्टिमें मैं कुछ अलगसे अपनी बात रखकर दुनियामें अपना बड़प्पन जताऊँ, ऐसी बात उनके चित्त में न थी, इसे ही तो कहते हैं विद्वताका पचाना। तो अब यहां देखो कर्मविपाक हुआ वह तो है निमित्त और नैमित्तिक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

http://www.jainkosh.org

भावमें क्या हुआ ? वह झलका, झांकी हुई, और झांकी हुई तब उसमें तीव्र अनुभाग और तीव्र विपाक आया। अपने शुद्ध स्वभावसे च्युत हुआ, इसका प्रदेश परिस्पंद हुआ, योग हुआ। तो जीव योग उपयोगका कर्ता है, कर्मका कर्ता नहीं। जीव तो अपने प्रदेश परिस्पंद और उपयोग का कर्ता है, बाह्यका कर्ता नहीं, इसीतरह कर्म तो अपने आपके विपाकका कर्ता है, जीवकी झांकीका कर्ता नहीं, पर ऐसानिमित्त नैमित्तिक योग है कि वह झांकी आयी और उसे ग्रहण किया। देखो आपके ज्ञानमें कितने पदार्थ आ गए। आपका ज्ञान बन रहा है, आप उन सबको जान रहे हैं तो आपका जानना क्या इन पदार्थोंने उत्पन्न किया ? नहीं किया। और, यह सब जाननेमें आ रहा है तो इसका ज्ञेयपना क्या आपके ज्ञानने उत्पन्न किया ? नहीं किया, मगर बात साफ तो दिख रहीं है कि ये पदार्थ विषयभूत हो रहे है और यह मैं जान रहा हूँ तो इसके जाननेमें ये सब पदार्थ आश्रयभूत हैं, विषय भूत हो रहे हैं। जो देखिये असत हैं वे क्यों वहीं ज्ञानमें आते। जो जगतमें है ही नहीं उसका ज्ञान क्यों नही होता ? आप कहेंगे कि अच्छा हम उसका भी ज्ञान करेंगे लो आकाशका फूल, खरगोश के सींग, देखो ये असत हैं उसे भी हम जान गए। अरे सर्वथा असत बात ज्ञानमें नहीं आ रही, खरगोश भी कोई चीज है ओर सींग भी कोई चीज है तब विकल्प बन रहा कि खरगोशके सींग, आकाशके फूल, अगर सींग नामकी चीज दुनियामें कुछ न होती तो शब्द ही न बनता, सींग शब्दका ही ज्ञान न होतां। आकाश भी चीज और फूल भी चीज है। तभी तो ये शब्द हैं।

आत्मस्वातन्त्र्य होनेपर भी औपाधिकभावोंमें परसंगनिमित्तत्वः—प्रत्येक पदार्थ अनादि कालसे स्वतंत्र है वे अपना-अपना परिणमन करते चले जा रहे हैं, किसीकी सत्ता किसी दूसरेके कारण नही है, मगर इस जीवमें जो रागादिक विकार हो रहे हैं उनके कारण यह जीव बड़ा दुःखी है, हम आप बड़े दुःखी हैं। और, जब वह मान लें कि राग तो बिना निमित्त के होता है मेरी करतूत से होता है, इसमें दूसरा कोई निमित्त नहीं है तब फिर रागको छोड़नेका उत्साह हम कहांसे जगायें ? जब राग होना होगा तब हो जायगा, जब मोक्ष होना होगा तब हो जायगा। अरे यहां निमित्त नैमित्तिक बात देखिये-राग हमारो वस्तु नहीं है, राग एक विकार भाव है। यह यों ही नहीं है कि अपने आप बन गया हो है अवश्य केवल जीवकी परिणति, किन्तु स्वयं निमित्त भी हो विकारका सो नही है। पुद्गलकर्मका सन्निधान हुआ विकारकी झांकीहुई और इसने अपना उपयोग बनाया। तुम्हारी रक्षा किसमें है ? कर्मविपाक होता है तो उपयोगसे उसे पकड़ें नही अपनायें नहीं कि यह मैं हूँ तो इसमें तुम्हारी जीत है। अगर कहो कि मेरेमे राग होता ही नहीं है, या किसी निमित्तसे होता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही नहीं है, वह राग मेरे ही कारणसे हुआ, इसमें दूसरे का कोई निमित्त नहीं है तो बात न बनेगी ? और जो थोड़ी बहुत निमित्त की कोई बात छेड़ दे, क्योंकि ग्रन्थोंमें खूब लिखा है। कर्मकाण्ड में इसका बहुत-बहुत वर्णन है, तब यह कहना पड़ता है कि जिस समय विकार आना है उस समय निमित्त सामने खड़ा हो जाता है। जिस समय रोटी सिकनी होगी उस समय आग खड़ी हो जायगी। यों कह बैठेंगे। इसका अर्थ भी क्या है, इसको कहने वाले भी नहीं समझ रहे। तथ्य की बात यह है कि आगका सन्निधान पाकर रोटी पक जायगी। रोटीको आगने नहीं पकाया याने रोटीमें घुसकर नहीं पकाया, आग आगकी जगह हैं। देखो— मानलो एक मन बूँदी बेसनकी आपने घाट ली। बूँदी बन गई। आगका सन्निधान पाकर कड़ाहीका सन्निधान पाकर तेल या घी गरम हुआ। उस तैल या घी का सन्निधान पाकर बेसन की छोटी छोटी बूँदियां पकी, पर देखो आग कड़ाहीमें नहीं घुसी, आग बूँदीमें नहीं घुसी। तो कड़ाहीमें घुसकर आग कर्ता नही बनी, प्रवेश करके आग कर्ता नहीं बनी। कर्ता कर्मभाव एक दूसरेका कतई नहीं है, फिर भी यह तो देखा ही जा रहा हैं कि आगका निमित्त पाकर यह बूँदी पकी। इसमें क्या कोई सन्देह है ? या ऐसा है कि जब बूँदी पकना हुआ तो आग खड़े हुई ? अरे निमित्त नैमित्तिक योग होने पर भी वस्तुस्वातंत्र्य नही मिटता। तो उससे यह शिक्षा मिलती है कि ये रागद्वेषादिक भाव मेरे नहीं हैं ये कर्मका सन्निधान पाकर होते है। जैसे दर्पणमें लाल कपड़ा सामने रखने पर उसमें लालिमा होती है तो लाल तो वह कपड़ा है और दर्पणमें आयी हुई लालिमा दर्पणकी स्वच्छताका विकार हैं। वह लालिमा हट जायगी। किन्तु किसी दर्पणके भीतर खराबी होनेसे उसमें कुछ सफेदी जैसी हो जाती, कुछ सफेदी जैसी हों जाती, उसमें कोई भद्दापन सा आ जाता तो वह तो उसके उपादनमे है, वह कैसे हटेगा। तो यों ही अगर उपादानमें रागादिक विकार इसके ही कारण आ गए हों वह विकार और उसमें कोई पर उपाधि निमित्त नही है। तो वह किसी प्रकार हट नहीं सकता।

स्पष्ट कथनोंको तोड़ मरोड़कर दूसह बनानेवाले प्रियँवदोंका चलन कलयुगका वरदान:—समयसारमें निमित्त नैमित्तिक योगकी बात वहुत बहुत समझाया और रास्ता सही बता दिया कि ये सव पौद्गलिक हैं याने जीव का रंच मात्र भी लेश नहीं रखा, यह क्या निमित्त उपादान की बात नही है। इसमें यह शिक्षा दी है कि ये सब चीजें पौद्गलिक हैं क्योंकि पुद्गल कर्मसे निस्पन्न है। इतना कहकर स्पष्ट मार्ग दिखाया कि है आत्मन् ! तू निशंक होकर ऐसा अनुभव कर कि मैं तो ज्ञानमात्र हूँ। मैं तो उपयोग स्वरूप हूँ। मैं इनका करने वाला नही। मैं करता हूँ तो रागको ही अपनाता हु। यही मेरा कर्तापन है। राग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्या है ? योग और उपयोगकी हीं ए॰ स्थिति । सो यह संसारी योग और उपयोगका ही तो कर्ता बना, पर पदार्थको कर्ता न॰ बनता ? तो परपदार्थ का भी अज्ञानमें कर्ता रहा, परिणमन करने वाला रहा । जहां स्पष्ट भेदविज्ञान है कि मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, यह तो कर्मका नाच है । देखो दर्पण के आगे अगर हाथ तेज हिलावें तो कह सकते कि यह तो हाथका नाच है । दर्पणमें भी हाथ हिल रहा है पर बादमें स्पष्ट बोध होता है कि यह तो हाथका नाच हैं, दर्पणका नहीं, लेकिन नाच दोनों जगह हो रहा, दर्पण में भी नाच हो रहा और हाथमें भी नाच हो रहा मगर दर्पणके नाचका कर्ता दर्पण नहीं । निमित्त नैमित्तिकयोग ऐसा स्पष्ट है कि हाथका सन्निधान पाये तो दर्पणमें भी ऐसे नाचकी परिणति होती है । कहाँ विवाद है ? इतना स्पष्ट वस्तु स्वातंत्र्य, इतना स्पष्ट निमित्त नैमित्तिकभाव जिसकी स्पष्ट समझ करलें तो मुक्तिमें सन्देह नहीं, इतनी समझ हो जाय तो कुछ ही भवोमें मुक्ति हो जायगी । इतना तो स्पष्ट कथन है, पर समाजमें हालत ऐसी हो रही है कि जैसे कोई सौत, (नवीन स्त्री) घरमें आ जाय तो पहिली स्त्रीके बच्चोंकी आफत हो जाती है । उस स्त्रीको उन बच्चोंमें करुणा नहीं होती है । तो जैसे सोतको अपने कुटुम्बके पहिली स्त्रीके बच्चे नहीं सुहाते हैं ऐसे ही समझिये कि कोई दि॰ जैन शासनका अंश प्रकट कर दि॰ जैन समाजमें आजाय और पूर्व संस्कारवश दि॰ जैन साधु संत न सुहाये । जैन समाज सुहावे नहीं, कितनी बरबादी हो जाये, कितने टुकड़े हो जाय, कितना नंगा नाच हो जाय तिस परभी सन्तोष नहीं हो और हृदयमें करुणा नहीं आती कि चलो बहुत बरबादी करली, अब तो खुश हो जायें, मगर सन्तोष नहीं हो तो यह एक दुर्भाग्य ही समझें जो सिद्धान्तमें किसी प्रकार के विवादकी बात नही है। रही थोड़ी बात । गाय अगर अच्छा दूध देती है और लात मारने वाली बन गई वह गाय तो उस दूधके लोभ से या कोई बात के लोभसे या समझ लो कि कुछ ऐसे भी लोग हैं कि मुफ्त आनन्दके लोभसे कुछ त्याग न करना पड़े और समाज में मैं धर्मात्मा कहलाऊं इस लोभसे लातभी सहते जाते और निकट भी बने रहेंगे । किन्तु सोचो तो अगर गाय दूध भी दे, सीधी बन जाय, लात न मारे तो बताओ गायका कुछ बिगाड़ होता है क्या ? बल्कि उससे तो गायकी प्रशँसा ही बढेगी । ऐसी ही स्थिति हम आपकी है । कितना निर्विवाद विषय है, निमित्त उपादान का कितना स्पष्ट कथन है । आचार्यजन जिन शब्दोंमें बोलते आये उन शब्दोंमें बोल बोलकर बात करिये । जैसी नदी में पूर्व (बाढ़) का आना यह नैमित्तिक है ना और पानी बरस जाना निमित्त है, वहां कोई मदारी जैसा खेल करे, कहे कि जिस समय नदीमें पूर आता है उस तेज वर्षा होती है । तो कोई भी बताये क्या समझें सीधा बोलो कि जिस समय तेज वर्षा होती हैं उस समय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नदीमें पूर आ जाता है। इसमें क्या जीभ घिसती है मगर सीधी बात बोलनेसे अपना गौरव कैसे रहेगा ? गौरव तब रहता है जब कोई अनोखो बात हो। अगर सब जैसा ही खेल मदारी दिखाये तो उसके पास कोन जाय ? उसे तो कोई अद्भुत बात दिखाना चाहिए तभी तो लोग जुडेंगे। तो देखो कितना स्पष्ट कथन है, आचार्यदेवकी कितनी परम करुणा है। किसी आचार्यको अपनी विद्वताका प्रसार करते हुए भी गर्व रंचन था, एवजमें किसी की बरबादी नही चाही। आज तो वह गंभीरता कहां।

आश्रयभूतकारणका आश्रयनकर विकारको व्यक्त न बनानेमें लाभ—यहां एक बात बतला रहे थे—विकारके प्रसँगमें कारण ३ है-उपादान, निमित्त और आश्रयभूत। उपादान वह है कि जो विकाररूप परिणम रहा है। रागद्वेषादिकका उपादान जीव है, निमित्त है, कर्मविपाक, जिसका निमित्तपाकर जीव विकारपरिणाम करता है। और आश्रयभूत हैं ये बाह्य पदार्थ। कर्मको छोड़कर जितने भी पदार्थ हैं सब आश्रयभूत है। क्रोध प्रकृतिका उदय हुआ, जीवने बाहरमें नोकर, स्त्री, पुत्रादिकका आश्रय लिया और क्रोध करने लगा, तो, ये बाह्य पदार्थ निमित्तकारण नहीं। जैसे कल बताया था कि नैयायिकों ने तत्त्व माना है छल, निग्रह, जाती, इनको भी तत्व माना है। किसी भी प्रकार दूसरे को चुप कर दिया जाय, इससे धर्म मिलता है, यह नैयायिकों का कथन है, तो इसीतरह आश्रयभूत तो निमित्त कारण है नहीं, मगर उनका निमित्त कारण का नाम दे देकर और बों चुप करना कि देखो भगवान के दर्शन तो किया, पर सम्यक्त्व तो नहीं जगा, इसलिए निमित्त कुछ नहीं होता। अरे भाई भगवान के दर्शन सम्यक्त्वका निमित्त नहीं है। सम्यक्त्वका निमित्त तो प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम है। ग्रन्थों में देखो जहां निमित्त कहा हो उसका अर्थ वाह्य साधन है। जिन विम्बदर्शन सम्यन्दर्शन का निमित्त नहीं है। अच्छा जैसे कल यह बात बतलाया था ना कि एक ने कहा नवकम्वलं, उसका अर्थ था नये कम्बल वाला, मगर दूसरा कहने लगा, अरे तुम बिल्कुल झूठ कहते हो। कहां ९ कम्बल वाला है ? वह तो एक कम्बल वाला है। इसे कहते हैं छल। ये बाह्य पदार्थ आश्रयभूत कारण है, ये निमित्त कारण नहीं है। अब इनका निमित्त नाम धर कर देखो जिन बिम्ब दर्शन किया मगर सम्यक्त्व नहीं हुआ। तो निमित्त कुछ नहीं है। तो कहते हैं छल। जैसाकि नैयायिकों ने माना है। तो बात यह कह रहे हैं भैया स्पष्ट कि निमित्त उपदान में कुछ करता नहीं है, फिर भी विकार भाव नितित्ताका सन्निधान पाये बिना न कभी हुआ, न होता है, न हो सकेगा। और तबही हमारीजीत है कि हम रागद्वेष कोदूर करसकते। अगर ये रागद्वेषादिक भाव स्वभाव से उत्पन्न होते तो इन्हें दूर न कर सकते थे।

Report any errors at vkjsmp@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एकान्त हठ को छोड़कर मध्यस्थ बनकर पक्षातिक्रान्त होने से लाभ—आज कल के वातावरण में व्यवहार का पक्ष और निश्चयका पक्ष चलता है। व्यवहारपक्ष तो यों चलता है कि देखो कर्म ने ही राग किया। वे दो पदार्थ न्यारे न्यारे हैं, सत्ता न्यारी न्यारी हैं। किस की क्रिया कहाँ होती है कौन करता है ? उसका व्यवहार पक्ष ने ध्यान नहीं रखा। और निश्चयपक्ष यह कहता है कि जब दूसरे लोग हैरान करते हैं तो निमित्त की बात कहनी पड़ी, नहीं तो निमित्त नाम लेनेकी क्या जरूरत ? जीव में जब जो होना है वह होता है, जब मिटना होता है तब मिटता है। दूसरा कुछ नहीं करता। हां बात ठीक है, कुछ नहीं करता, पर निमित्त अवश्य है, निमित्त सन्निधान बिना विकार भावकी उत्पत्ति नहीं होती है। कितना स्पष्ट विवेचन है। अच्छा तो व्यवहार पक्ष वाले को जब निश्चयपक्षने बहुत चिढ़ाया तो वे और बढ़कर चले और निश्चयपक्ष वालेको व्यवहारनयने चिढ़ाया तो वे और चिढ़े, ऐसे समयमें अगर कोई मध्यस्थ पुरुष हो और निष्पक्ष ज्ञानकी बात बताता हो, आफत तो उसकी है। न व्यवहारपक्ष वाला उसके प्रति आदर रखेगा और न निश्चयपक्ष वाला। उसको कौन पूछने वाला है ? लेकिन यह जानें कि अगर कोई मध्यस्थ हो, सही कहने वाला हो, वह समस्त जीवोंका माताके समान उपकारी हो सकता है। जैसे मां के चार पूत है और मानो २ पूत कुमार्गमें चले गए, दो पूत ऐसे हैं कि वे जानते हैं कि हमारे घरके ही हैं, क्या परवाह है, सो दो तो गए उस माता के लापरवाह और दो हो गए कुपूत तो अब उस मां पर चारोंकी आफत आयगी। तो मध्यस्थको कौन पूछे ? लेकिन कैसा ही कुपूत हो ? मां का प्रेम चारोंपर एक समान है। कितने ही खराब होनेपर भी सदा करुणा रहती है। अच्छा इसका उपाय बनाती है। तो ऐसे ही आजकल कोई मध्यस्थ रहे, तथ्यकी बात बताये तो दो पूत तो यह कहेंगे कि यह तो हमारे घरमें हैं, क्या परवाह है ? क्या बात अधिक समझना क्या अधिक बात होना। दो मानो अपने एकान्त हठमें चले गए तो वे एक प्रवर्तेंगे क्यों ? आजकी दशा बहुत शोचनीय है, बहुत भयंकर स्थितिमें आज दिगम्बर जैन समाज पड़ा हुआ है, ऐसे समयमें जो उचित बात हो उसपर लोगोंका चुनाव नहीं होता और उसके मनमें नहीं आता कि यह बात ठीक यह निष्पक्ष बात ठीक यह ही सत्य है। चलो। व्यवहारनय से दोनोंको जानकर जो व्यवहारमें मध्यस्थ होता है सो ही सम्यक्त्वका लाभ लेता है। कोई एकान्त से लाभ नहीं ले सकता तो बतलाया था कि आश्रयभूत कारण का नैमित्तिक कार्यके साथ अन्वय व्यतिरेक नहीं है, उसे निमित्त कारण मत कहो। निमित्त कारण तो कर्मकी दशा है। कर्मका उदय विकारका निमित्त, कर्मका उपशम, क्षय, क्षयोपशम आत्माकी विशुद्धिका निमित्त जीव के विकारमें निमित्त कर्म ही हो सकता, दूसरा और

Version-1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कोई पदार्थ किसी निमित्त नहीं होता, वह आश्रयभूत है। जब हम उन्हें पकड़ना चाहते, उन्हें ग्रहण करते हैं, उन्हें उपयोगमें लेते है तब विकार की व्यक्त मुद्रा बनती है। तो यों समझ लिया, निमित्त नैमित्तिक भाव होते हुए भी वस्तु स्वतन्त्र है। आप तो अपना हित निकाल लो, अपना काम निकाल लो। वस्तुस्वातंत्र्य की दृष्टिसे, विमित्त नैमित्तिक योगकी समझसे जो बात आपके भलेके तिए आयी हो वह आपकर लीजिए। भला केवल एक हैं-स्वभावदर्शन ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वको अपने आप समझना, दूसरी बातमें आत्महित नहीं है।

बन्ध तत्त्वकी चिन्तना:—यहां ७ तत्त्वोंके प्रकरणमें यह बात चल रही है कि बंध-तत्व का भी बिश्वास होना चाहिए। जैसे मोक्षतत्वका विश्वास न हो तो मोक्षमार्गमें कैसे लगा जायगा ? इसीतरह बंधतत्वका विश्वास न हो तो मोक्षमार्गमें कैसे लगा जायगा ? मैं तो शुद्ध हूँ, निरञ्जन हूँ, सिद्ध समान हूँ। सिद्ध भगवान अनन्तकाल तक स्वभावमें टिके रहते हैं और हम एक समयको टिक पाये, यह एक कमी रही, बाकी तो सिद्ध जैसा हमारा मामला हो गया। कमी कुछ रही। अरे भाई यह जो अनुभूति हो रही है वह ज्ञानानुभूति हो रही। और सिद्धभगवानमें जो अनुभूति हो रही है वह विरागानुभूति और यहांकी ज्ञाना-नुभूति में अन्तर है। जो रागभाव हमारे आ रहे हैं झांकीमें, जिनका कि स्वानुभूतिके समय उपयोग नही करते वे तो हो ही गए। और एक बात और बिल्कुल छोटी बताये। अगर सिद्ध समान अनुभूति होती एक समयको भी तो एक समयका कर्मबन्ध रुक जाना चाहिए था, पर एक समय भी कर्मबन्ध रुक रहा है क्या ? एक समयको यहां अनुभूति होती नहीं। जब भी अनूभूति होती हैं अन्तर्मुहुर्तको होती है, इसका लोगोंको पता नहीं, इसलिए लोग एक-एक समय चिल्लाते हैं। उपयोग जब भी किसी चीजको ग्रहण करेगा तो वह अन्तर्मुहुर्त से कममें ग्रहण नहीं करेगा, अन्तर्मुहुर्त आधी चुटकी बराबर भी है। अन्तर्मुहुर्त एक सेके-ण्डका हजारवां लाखवां भाग भी है। उपयोग छद्मस्थ अवस्थामें किसी भी पदार्थको एक समयमें ग्रहण नहीं कर सकता। यह जैन सिद्धान्तका नियम है। करणानुयोगका जब कुछभी परिचय नहीं है तो एक एक समय सुन लिया तो वह एक समय एक हुआ। वह बात सामने आयी, अर्न्तमूहूर्तसे कम स्वानुभूति नहीं होती। अर्न्तमूहूर्तसे कममें आप इस भींटको भी नही जान सकते। एक आवलीमें ही असंख्याते समय होते हैं। नीचे पलक गिराते हैं और झट ऊपर ले जाते है तो इसमें कितने समय लगते हैं ? अनगिनते समय। उनमेंसे एक समयकी बात कोई अनुभूतिमें आती है, तो मतलब यह है कि उसीसमय अनुभूति हो रही है, उस समय अगर सिद्ध भगवानकी तरह अनुभूति चलती हो तो उससमय कर्मबन्ध रूकना चाहिए, लेकिन कर्मबन्ध जीवके निरन्तर रहता है। अन्तर जरूर हो जाता है, कर्मबन्ध वहां बिल्कुल

Reproduction any extract without permission

http://www.jainkosh.org

कम हो जाता है। जिस समय स्वानुभूति कर रहा है ज्ञानी पुरुष।

आत्मबोध बिना परबोधका मूल्य क्या:—भैया ऐसा समझो कि जैसे किसी स्कूलमें मास्टर ने विद्यार्थियोंको दुनियाका खूब ज्ञान करा दिया, चीन, जापान, जर्मनी, अमेरिका, इंगलैण्ड, रूस आदि के पहाड़, जंगल, नदियां वगैरहका बहुत-बहुत ज्ञान करा दिया। अब इन्सपेक्टर आया विद्यार्थियोंकी परीक्षा लेने तो पूछा बताओ, तुम्हारे गांवके पाससे जो नाला निकला है वह कहांसे निकला है और कहां गिरा है ? लो सभी विद्यार्थी चुप रह गए। उन्हें यह बात पढ़ाई ही न गई थी। तो इसीतरह आपको सिद्ध पढ़ा दिया, अरहंत पढ़ा दिया, और सब पढा दिया मगर स्वको (अपने आपको) न पढ़ाया कि वह स्व क्या है ? स्वरूप क्या है। जो सुन रखा है वही जानते हैं और आत्माकी बातमें चलें तो ऐसे कहीं ज्ञान होता है क्या ? अपना सही सही स्वरूप जाने, वस्तुका स्वातंत्र्य पहिचानें और विकारोंको जाने कि ये नैमित्तिक हैं। निमित्त नैमित्तिक भाव और वस्तुस्वातंत्र्य इन दोनोंका सही निर्णय किएबिना कोई मार्गपर चलनहीं सकता। तो बंधतत्त्वका श्रद्धान करना जरूरी होगया इसलिए बंधतत्त्वका भी नाम दिया। अभी तक दो चीजें बतायी है ७ तत्त्वोंमें कि मोक्षका क्यों नाम दिया और बन्धका क्यों नाम दिया ? मोक्षका नाम यो दिया कि मोक्षकी श्रद्धा न हो तो फिर मोक्ष लेगा कौन ? बन्धका नाम यों दिया कि बन्धकी श्रद्धा न हो तो उससे छुटकारा पानेके मार्गमें लगा क्यों जायगा। यों दो तत्त्वोंकी सिद्धि अब तक हुई।

बन्ध तत्त्वके श्रद्धानकी आवश्यकताका उपसंहार:—यह संसार सारा दुःखमय है। यहांकी किसी भी स्थितिमें विकल्पोंसे विराम पानेका अवसर नहीं मिलता। विकल्पोसे दुःख है। दुःख की स्थिति अपवित्रता है। अतएव दुःखोंसे छुटकारा हो जानेकी स्थिति अवश्य ही उत्कृष्ट है, पर उस मोक्षको पानेके लिए हमें और क्या क्या श्रद्धान रखना चाहिए जिससे कि मोक्षमार्ग मिले ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र में हमारी प्रगति बने, उनका ज्ञान करना भी आवश्यक है। ये ही ७ तत्त्व यहां कहे जा रहे हैं। मोक्षकी श्रद्धा करने वाले पुरुषको बन्धकी भी क्षद्धा होना आवश्यक है कि जिससे हम छूटना चाहते हैं। तो बन्ध के बिषयमें वर्णन हो चुका, अब बन्धसे अतिरिक्त अन्य तत्त्वकी क्या जरूरत है ? उसके विषयमें कुछ प्रतिपादन चलेगा। बन्धका अर्थ तो इतना ही रहा ना कि यह जीव बन्ध गया, परतन्त्र हो गया, बन्धन में आ गया, अब बन्धनसे मुक्ति कैसे पाये ? एक मोटा सा समाधान है कि बन्धन जिन बातों से हुआ है उन बातोंको न करें। जैसे कोई पुरुष किसीका कर्जदार है तो चाहता तो है कि मैं कर्जसे मुक्त हों जाऊ, पर कर्जा चढ़ता रहे रोज रोज तो क्या वह कर्जसे मुक्त हो जायगा ? नही, इसीतरह बन्धनसे मुक्ति तो चाहे कोई और बन्धनके

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारणों को करते रहें तो बन्धन तो न मिट सकेगा। तो यह बताना बहुत आवश्यक है कि बन्धका कारण क्या है। बन्ध होता क्यों है। इस जीवको ?

आस्रव तत्त्वके श्रद्धानकी आवश्यकता:—बन्धका जो हेतु है उस ही का नाम आश्रव है। कैसे आते हैं कर्म ? कैसे बन्धते हैं उनकी बात आंश्रव तत्त्वमें बतायी गई हैं। आश्रव तत्त्वकी संक्षेपमें बात यह जानें कि जब यह जीव मन. वचन, कायका योग करके मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग रूप भाव होता है तो कर्मका आश्रव होता है, बन्ध होता है। बुरे चालसे चले कोई तो उसकी गिरफ्तारी होती है और कोई अच्छी चालसे चले तो उसके बन्धन तो नहीं होता। बुरे भावसे कोई चले तो कर्मका बन्धन जरूर होगा और शुद्ध भावसे चले तो बन्धन क्यों होगा ? तो वे अशुद्ध भाव, वे खोंटे भाव कौन कौन से हैं ? इसे संक्षेपमें कहो रागद्वेष मोह परिणाम। राग कैसे कि किसी भी परवस्तुमें प्रीति उमड़ जाती, किसी भी परवस्तु के बाबत उमंग उपज जाती। यह भला है, यह अच्छा है, यह मेरेको हितकारी है और देखो यह यहीं बैठे बैठे अपने ही प्रदेशोंमें रहता रहता यह आत्मा अपने भाव भर बनाता है। कर कुछ नहीं सकता बाहर। यही तो अज्ञान अन्धकार है कि मेरा किसी बाहरी पदार्थसे सम्बन्ध नहीं, लेनदेन नहीं कुछ बात नहीं, न कुछ साथ आया, न कुछ साथ जायगा, न इससे कोई मतलब सधता। बाह्य पदार्थ हैं, इन्हें क्यों अपना कुटुम्ब समझें ? क्यों अपना धन समझें ? सब बाहरी पद्रार्थ हैं, और बाहरी पदार्थोंके प्रति उपयोग का लगाना यह महान विपत्ति है। कोई विपत्तिमें पड़नेका काम करे और घबड़ाये तो उसका विपत्तिसे छुटकारा कैसे हो ? वह श्रद्धान लावो कि मुझे तो सर्व विपत्तियोंसे परे आत्मीय आनन्दस्वरूपका दर्शन करना है। कोई व्यक्ति नीरस कटुक चीज को खाता रहता हो तो वह उस चीज को तभी तो छोड़ेगा जब कि उससे बढ़िया रसवाली कोई चीजका स्वाद ले। अन्यथा कैसे छोड़ेगा ? तो ये संसारके समागम नीरस हैं, इनमें हमारा उपयोग जाता है तो हमें दुःख होता है। उन्हें छोड़नेकी बात कही जा रही है मगर छोड़ तब सकेंगे जब कुछ उससे विलक्षण स्वाद वाले आत्मीय आनन्दका दर्शन हो, अनुभव हो, जानकारी हो। जैसे कोई भिखारी कई दिनोकी बासी रोटियां अपनी झोलीमें रखे हुए घूमता है, रोटियां मागता है। उससे कोई कहे कि अरे भिखारी तू इन बासी रोटियोंको फेक दे, मैं तुझे ताजी पूड़ियां लड्डू दूँगा तो वह नही फेकता। एक तो उसे विश्वास नहीं कि पूड़ियां मिलेगी, दूसरे उसने पूड़ी व मिठाई कभी खाया नहीं तो उसे उनकेलिए उमंग कैसे जगे ? तो ऐसेही इस जीवने विषय कषायों का परिचय, अनुभव, सबकुछ खूबकिया, पर किसीभी प्रकार पूर्णरूपसे नहीं, कुछ-कुछ अन्दाजरूप से ही आत्मीय आनन्दकी बात परिचयमें न आयी तो कैसे उन विषय कषायकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बासी रोटियों को फेंक सकेगा ? हैं ये सब विपत्तियों के साधन। कभीभी ज्ञान हो जायकि हां ये सब विपत्ति हैं विडम्बना है तो भी उमंगउठेगीं आत्मीय सम्पदाको जाननेकी। वह छूट सकेगा नहीं।

बाह्य परिकर की असारता के निर्णय का उपकार—भैया ! और अधिक नहींतो इतना तो समझ लें कि हम जिस परभव से आये हैं उसमें बड़े सम्राट भी हुएहों तो भी वहां का सुख आज काम आ रहा है क्या ? कुछभी तो कामनहीं आरहा। और यहांसे मरकर भी किसी अन्य भवमें जाओगे तो यहां का कुछभी भोग साधन आपके किसी काम आयेगा क्या ? अच्छाअब इसही भवकीबात देखलो आपकहेंगे कि इसजीवनमें १०-२०-५० वर्ष जबतक जिंदा रहेंगे तबतकतो मौजलूट लेंगे। तोभाई ऐसासोचना आपका गलत है अरे इसथोड़ेसे जीवनका बाततो आप सोचरहे पर आगेका जो अनन्तका लपड़ाहुआ है उसकेलिए कुछभी नही सोचते। अरे इस १०–२० वर्ष के जीवन के लिए कल्पित मौज के प्रसंगोमें रहना यहतो आपके लिए कलंक है और उस समागम के मौजकी भी बात देखिए कुछ भी मिलता है क्या ? बालबच्चों की करतूतों से आप परेशान हो जाते। और फिरकोई बच्चा जरासुहा गया तो उसे खिलाना पिलाना या उसे समर्थनदेना अन्य बातोंके लिए जो आपका मन भीतर-ही-भीतर बहुत घूमता रहता है तो उस मन के घूमनेमें आपको तकलीफ होती कि नही ? मन नहीं मानता, पर जो इतना मनका घूमना है इसमें कष्ट होता कि नही ? आज इस समागम में कौनसा मौज मिल रहा है इसका भी तो निर्णय कर लो। तो बन्ध के हेतु तो ये रागद्वेष मोहभाव हैं भलाराग हो तो, बुरा राग हो तो, बन्ध के सब कारण हैं।

कर्मकी गिरफ्तारी में आने का कारण मोह राग द्वेष—देखो हाथीको पकड़ने वाले लोग जंगलमें जहां हाथी रहते हैं वहां एकबड़ा गड्ढा खोदते है और उसकेऊपर पतली-पतली बाँस की खंपचे बिछाते है और उसपर जमीन जैसे रंगका कागज बिछाते हैं और उसके ऊपर हथिनी जैसे रंगमें कागजकी एक हथिनी बनाते हैं और कोई १००–५० हाथकी दूरीपर एक हाथी बनाते हैं जो हथिनीकी तरफ मुखकिए तेजीसे चलने जैसी सकलका बनाते हैं। वहां उस जंगलका हाथी आता है पहिलेतो वह उस हथिनीको दूरसे देखता है उसमें उसे रागहोता है, फिर उस दूर बने हुए हाथी को देखकर उससे द्वेष उत्पन्न होता हैं—अरे मेरी इष्ट हथिनी के लिए आ रहा है। यह सोचकर वह जंगलका हाथी और भीं तेजीसे आता है। उस हाथी को न तो गड्ढेका ज्ञानहोता और न उस झूटी हथिनी का। फलयह होता है कि वह हाथी उस गड्ढेमें गिरजाता है। शिकारियों के बन्धनमें आ जाता है। फिरक्या करते हैं यहबात उनकी आगेकी है, जैसे उसे कईदिन भूखा रखकर अशक्त बनादेना, अंकुशसे उसे

Version 1.

http://sahjanandvarnishastra.org/

वश करके बाहर निकाल लेना आदि, पर बात यह बतला रहे कि वह हाथी जो बन्धन में आया सो तीन बातों के कारण आया है पहिले तो उसे अज्ञान था, मोह था, पता ही न था कि यहां गड्ढा है और कुछ थोड़ा बहुत दिमाग लगाता तो जानलेता। देखिये हाथी बड़ा समझदार जानवर होता है। एक जगह की बात है कि किसी तालाब के किनारे खड़ा हुआ एक हाथी पानी पी रहा था, तो पीछे से किसी मोटर वाले ने जान बूझकर हाथी के धक्का मार दिया। तो उस हाथी को वहां ऐसा गुस्सा आया कि उसने झट ड्राइवर को पकड़ना चाहा। ड्राइवर तो झट भागकर निकल गया, फिर उस हाथी ने मोटर के आगे जो एक सफेद डंडासा लगा रहता है उसे सूंढ़ से पकड़कर उठा कर उलट दिया। तो देखिये हाथी जानता तो बहुत कुछ है। तो वह जंगल का हाथी कुछ जानना चाहता तो जान सकता था कि यहाँ जंगल में गड्ढा है, धोखा है, वह धोखेकी हथिनी है, इसमें मैं बँध जाऊँगा, पर मोह था तीव्र इस कारण वह उस ओर दृष्टि भी न कर सकता था। तो अज्ञान भी है, और तीसरे उस हाथी से द्वेष भी है। तो जैसे रागद्वेष मोह के कारण हाथी बँधा ऐसे ही रागद्वेष मोह के कारण यह जीव बँधा फिरता है। यहां एक बात और समझ लीजिए। द्वेष नाम किसका है? जिसको हमने यह समझा कि मेरे इन्द्रिय और मनके विषय में यह बाधा डाल रहा है उसी से द्वेष हो जाता है। जैसे हाथी ने यह समझा कि मेरी हथिनी के समागम में यह हाथी बाधा डालेगा, वह भी झूठ ही था लेकिन समझ तो यह रहा था सच्चा। तो विषय में जो बाधा डाले उससे हो जाता है जीव को द्वेष। तो विषय में सब आ गए ५ इन्द्रिय और मन। तो विषयों में बाधा डाली ऐसी जो कल्पना लगी उससे द्वेष हुआ वस्तुतः कोई भी जीव किसी का विरोधी नहीं है। अपने जीवन में एक बात की परीक्षा करके देख लो, जिसको आप विरोधी समझ रहे हो, जरा उसके पास थोड़ा बैठ जाओ, थोड़ी बात करो तो वह विरोधी भी आपका उतना घनिष्ट मित्र हो जायगा कि जो मित्र से भी बढ़कर हो जायगा यह सोचना भ्रम है कि यह मेरा विरोधी है। अरे जीव—जीव सब एक समान है। यहां तो अपने मन के विषय में बाधक समझा। जिसे एक विरोधी मान लिया।

प्रशस्त कार्य के करने में उमंग की प्रशस्यता:—अच्छा तो यह है कि जो काम करने योग्य है, सब जीवों के भले के लिए जो कुछ बातें करने योग्य है उन्हें करें। जो व्यर्थ की बातें हों याने जिनमें कुछ नुकशान होता हो उन्हें न करना चाहिये। जिनसे कुछ आप का बिगड़ता नहीं उन्हें भी न करना चाहिये। बताओ जिसे आपने अपना विरोधी माना उसके पास कषाय छोड़ कर बैठ जाने में आपका कुछ बिगड़ता है क्या? अरे बिगड़ने की

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो कुछ बात नहीं, लेकिन कषाय की ऐसी वेदना है कि ऐसी हठ करकेआये हैं कि उस कषाय को छोड़ना नहीं चाहते। भला बतलाओ कषाय को छोड़ना नहीं चाहते और चाहते हैं कि मुझे शान्ति मिले तो कैसे शान्ति मिलेगी ? बड़ा तो वही है जो कषाय के छोड़ने में विलम्ब न करे। हठ छोड़ने में विलम्ब न करे। जिसमें सबका भला हो, अपना भला हो ऐसी बात विचारने में करने में विलम्ब न करें। चाहे खुद का बिगाड़ हो जाय। एक बार की ऐसी घटना है कि किसी गांव में कभी ऐसा रिवाज था कि जब कभी कोई पंगत की जाती थी तो वहां स्त्रियां भी पंगत में भोजन करती थीं और भोजन करने के बाद वे अपने-अपने लोटे में एक दो लड्डू पेड़े रख ले जाया करती थी वहां के मुखियाने एक बार पंचायत किया और कहा कि देखो अब ऐसा नियम बना दिया गया है सबके लिए कि पंगत में भोजन करने के बाद कोई भी स्त्री अपने लोटेमें लड्डू पेड़े न चुरा कर ले जावे। जो स्त्री चुरा ले जायगी उससे उचित जुर्माना लिया जायेगा। अब नियम तो बन गया गांव में पर कोई स्त्री बिना चुराये माने नहीं। तो एक बार उस मुखियाने स्वयं अपनी स्त्रीसे कहा-देखो तुम एक काम करो। क्या ? एक लौटेमें दो तीन लड्डू पेड़े रख लावो। रख लायी बह स्त्री। अब उस मुखियाने फिर पँचायतकी और कहाकि देखो यह मेरी स्त्री किसी पंगतसे लड्डू पेड़े चुराकर लायी है इसलिए इसपर ११) जुर्माना किए जा रहे हैं। अब जो भी इस तरह से चोरी करते पकड़ी जायगी उससे ११) जुर्माना लिए जायेंगे देखिये-एक भले कार्यके लिए उसने अपनी स्त्री पर भी जुर्माना लगाना बुरा नहीं समझा। उससे तो और सारी स्त्रियोंका सुधार हो गया। तो भाई भले कामके लिए ये क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक कषाये छोड़े। अच्छे काम करें जिनमें भला हो। और अच्छे काम करके प्रसन्न रहें। तो बन्धके कारण तो ये ही रागद्वेष मोह हैं, इनको ही आश्रव कहते हैं, और, इन रागद्वेष मोह भावोंके होनेपर नवीन कर्मोका आश्रव होता है और बन्ध होता है। आश्रव किस तरह होता है, इसको बड़ी एक सूक्ष्म दृष्टिसे कभी कहेंगे। कुछ समय बाद, इस विषयमें प्रकाश डालेंगे इस सूत्रके विवेचनके बीचमें कि वह आश्रव चीज क्या है ? क्यों होता है, कैसे होता है ? अभी तो यह समझिये कि बन्धका कारण आश्रव है इसलिए बन्ध हेतुका दिखाना जरूरी है किउन आश्रवों को न करें तो बन्ध न होगा। इसतरह बन्धका हेतु आश्रवभाव कहा। तो कितने तत्त्व हुए ? आश्रव,बन्ध और मोक्ष। ठीक है। बन्धका कारण है आश्रव

संवर तत्त्वकी श्रद्धाकी आवश्यकता—मोक्षके कारण भी तो बताने चाहिए कि जिन उपायोंसे चलकर हम मोक्षको प्राप्त करें, क्योंकि आवश्यक है ना ? जब हमें मोक्ष चाहिए तो मोक्षके उपाय समझना आवश्यक है कि नहीं ? तो मोक्षके भी उपाय क्या हैं जिन उपायों

Versions

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर चलकर हम मोक्ष पा सकें ? तो मोक्षके उपाय क्या हैं ? एक साधारण सी बात है। कोई कर्जामें बहुत दब गया, बंध गया तो कर्जसे छूटनेका उपाय क्या है ? उपाय उसके दो हैं—(१) नया कर्जा लेना नहीं (२) पुराने कर्जे को थोड़ा-थोड़ा चुकाते रहना। वह कर्जसे छूट जायगा ना। ठीक यही बात बन्धनकी है। नया बन्ध करना नहीं और जो पहिले बन्ध किए हुए है उसको थोड़ा थोड़ा झड़ाते भी जायें, मौक्ष हो जायेगा। कोई नाव तालाबमें चल रही है। नावमें कोई छेद हो गया, उस छेदसे पानी आने लगा और पानी आनेसे वह नाव वजनदार हुई और डूबने वाली हुई उस नावको डूबनेसे बचानेका क्या उपाय है ? उसमें जो पानी आया उसको मात्र उछाल उछालकर बाहर फेकनेसे काम न चलेगा। पहिले तो उस छिद्रको बन्द करना होगा जिससे पानी आता है। उसमें नया पानी आये नही और फिर जो पानी उस नावसे आ गया है उसे उछालकर निकाल दें, इस तरहसे नाव डूबनेसे बच जायगी। तो इसीतरह जो बन्धके कारण हैं उनको अब आने मत दें, इसको कहते हैं सम्बर और जो पहिले बांधे हुए कर्म है उनको थोड़ा-थोड़ा झड़ा दें इसको कहते हैं निर्जरा। इस तरह जो कोई सम्बर करें, निर्जरा करे उसको मोक्ष होगा ना अवश्य होगा। सम्बर क्या कहलाता है ? इसका विवेचन इसी मोक्षशास्त्रके ९ वे अध्याय में किया जायगा, निर्जराका भी वर्णन इसी अध्यायमें विशेष रूपसे किया जायगा। संक्षेपमें यह समझ लीजिए कि राग-द्वेष मोह परिणाम न करना सो सम्बर। रागद्वेष मोह परिणाम न होनेसे जो कर्मोका आश्रवण नष्ठ होता है उसको कहते हैं सम्बर

निर्जरा तत्त्वकी ज्ञातव्यता व श्रद्धेयता:—पहिले बांधे हुए जो कर्म हैं उनका जो झड़ना होता है उसे कहते हैं निर्जरा। पुद्गल कर्म एक ऐसी फिलास्फी है और उसका ऐसा एक सत्य वर्णन है जैन सिद्धान्तमें कि उसकी समय-समय पर जो हालत होती है वह बताई गयी है, जो लोग ऐसा कहते कि कर्म तो एक उपचार निमित्त है, कहदेवेंपर बुद्धि पर आवरण है जरा कर्मकाण्ड तो पढ़ो, जैन सिद्धान्त का आधा हिस्सा तो है कर्मकाण्ड और आधेमें है बाकी सारा सिद्धान्त। इतनी बड़ी तो है कर्म—फिलास्फी। महाधवल पूरा है, जयधवल पूरा है। तो जिसका इतना बड़ा सिद्धान्त, उसका जानना चूँकि कठिन है, बड़ी बुद्धि लगानी पड़ती है। तो जब समझमें नहीं आता तो जैसे लोमड़ी अगर अंगूर पेड़से पानेमें न आये तो वह इसीसे सन्तोष करतो है कि चलो खट्टे हैं अंगूर इसीतरह कर्मोंकी बात, कर्मकाण्डकी बात उदय उदीरण, सत्ता संक्रमण, उत्कर्ष अपकर्ष, स्थापना निक्षेप, कैसे कैसे होते हैं, कैसी स्थिति कैसा अनुभाग, बहुत बड़ा विषय है। विद्वता तो इसीमें है। छोटी-छोटी बातें कहनेमें कोई विद्वता नहीं। जो कर्म फिलास्फीको बहुत ढंगसे समझ चुका है विद्वता तो वहां है, पर कठिन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है इसलिए कह दिया कि वहां कुछ नहीं है। वह तो परद्रव्य है, अरे ठीक तो है पर जिससे छुटकारा पाना है उसकी विशेष—विशेष बात जानें तो श्रद्धामें मजबूती आयगी। यहां पर द्रव्य तो ये रोटी दाल चावल वगैरह भी हैं। इन्हें आप क्यों नहीं छोड़ देते। नये-नये सिद्धान्त बनाते कि देखो सम्यग्दर्शन होनेके लिए मांस छोड़ने की भी जरूरत नहीं, तो ये परद्रव्य न रहे और कर्म परद्रव्य रहे जो कि आचार्योंका बहुत बड़ा सिद्धान्त है। अरे नहीं समझमें आता तो श्रद्धान तो करो कि कोई तत्त्व तो है। इस विषयमें अधिक बोलना अभी यो प्रासंगिक नहीं कि उसके लिए तैयारी चाहिये सुननेकी और उसको सुननेके लिए कमसे कम और नहीं तो ५ वर्षका अभ्यास चाहिए अध्ययनमें, पढ़नेमें जब इसकी बात बहुत कुछ समझमें नही आती है तो इतनी बात तो जानो कि ऐसे आत्म परिणाम और कर्मदशामें निमित्त नैमित्तिक भाव सम्बन्ध है कि आत्मामें विशुद्धि बढ़े तो बन्धे हुए कर्म जो आगेकी स्थिति वाले हैं उनमें से कितना पहिली स्थिति वालेमें मिल जायें, कितना अगली स्थितिमें मिल जाये। ऐसा उनका स्थिति घात होता, ऐसा उनकी शक्तिका घात होता, ये सारी बातें निर्जराके प्रकरणमें आती हैं। तो मोक्षके उपायमें सम्बर और निर्जरा ये दो उपाय हैं इसलिए इनका कथन करना बहुत आवश्यक है।

पञ्च तत्त्वोंका आधार—उक्त प्रकारसे समझा होगा कि आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष इन ५ तत्त्वोंका जानना कितना आवश्यक है, किसको आवश्यक है? जीवको, तो उसे जीव भी तो समझना चाहिए। तो क्या जीवसे अलग ही ये आश्रव, बन्ध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष हो गए? नही। किसका आश्रव? अजीवका आश्रव। उस अजीवको भी जानना चाहिए किसका बंध? अजीव का बन्ध। किसका सम्बर? अजीवका सम्बर? अजीवका सम्बर, किसकी निर्जरा? अजीवकी निर्जरा। किसका मोक्ष? अजीवका मोक्ष। तो अजीवका मोक्ष हुआ, ईसे कैसे छोड़े? मोक्ष किसका हुआ? जीवका अरे तो क्या कर्मका नहीं हुआ? जीव और कर्म दोनों छूट गए तो छुटकारा तो दोनोंका हो गया। सम्बर, निर्जरा आदिक सभी दोनोंमें हुए। फर्क यह हुआ कि कर्मका निर्जरा होनेपर उस जीवको कोई मजा नहीं आता। दूसरे-इन कर्मोंका यदि मोक्ष हो जाय तो फिर भी वे कर्म बन्ध जाते हैं, क्योंकि कर्मका एक जीवसे तो छुटकारा हो गया। अब कर्ममें स्निग्ध रूक्ष गुण है। कर्मोंका बन्ध स्निग्ध रूक्ष गुणसे होता है। एक परमाणु हो फिर भी उस गुणके कारण वे कर्म बन्ध जायेंगे। जीवका मोक्ष हो गया तो रागद्वेष मोह मिट गए। अब पुनः बन्धन नहीं हो गया, तो रागद्वेष मोह भी न होंगे। ये रागद्वेष जीवके गुण तो हैं नहीं इस-लिए वे मिटते हैं तो सदाके लिए मिट जाते हैं, वे फिर दुबारा नहीं आ सकते इसलिए

जीवका सदाके लिए मोक्ष है, पर कर्मके लिए मोक्ष नहीं होता। कर्मोंका छुटकारा हुआ कि वे संसारमें रह रहे है, किसी दूसरे जीवके साथ चिपक जायेंगे। यों सम्बर: निर्जरा, मोक्षका उपाय ये सब बातें जीव, अजीवके सम्बन्धमें होती हैं इसलिए इन ७ तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यक्त्व कहा गया है।

सात तत्त्वोंका प्रधान—अब इन ७ में से क्रमसे स्वरूप वर्णनकी ओर चलो। जीव तत्त्व। देखो जीवको दो दृष्टियोंसे निहारना (१) निश्चयदृष्टिसे (२) व्यवहारदृष्टि से। निश्चयदृष्टिसे तो यह जीव टँकोत्कीर्णवत् निश्चल एक ज्ञायक स्वभाव, अनादि अनन्त अहेतुक चित्प्रतिभास मात्र है ब्रह्मस्वरूप है, अखण्ड है, अभेद है, जिसको समझानेके लिए कोई वचन नही है फिर भी बोलते तो हैं ना इन शब्दोंसे, जिसकी समझ अनुभव कराता है, वचन नहीं करा सकते। उपदेश नहीं करा सकते। ठीक समझे. पूरे समझे कि हां अब हम समझ गए। जैसे मिठाई की समझ तो चखना करायगा, उपदेश न करा सकेगा। ये रसगुल्ले है, छेनाके बने हैं, इनमें अमुक अमुक चीज पड़ी है, ये बड़े मीठे हैं, यों कोई कितना ही बोलता जाय, कुछ समझ तो जरूर रहा है तभी तो मुखमें पानी आ जाता है, मगर बढ़िया समझ तब बनती है जब कि रसगुल्ले मुखमें रखलें। ऐसे ही इस अन्तस्तत्त्वकी समझ कब बनेगी जब कि सारे विकल्प छूटकर अपने ही ज्ञानमें उस ज्ञानमात्रका अनुभव जगता है, वहां समझमें आता। जब समझमें आता तब बोल नही सकते, और जब बोल रहे हैं तब समझमें नहीं है। बताओ कठिनाई आ गई कि नही जैसे लोग कहते हैं ना कि जो बहुत गर्जता है वह बरसता नहीं। इसे लोग यों भी कहते कि जो बहुत बढ़ बढ़कर बातें करता है वह कर कुछ नहीं सकता। केवल बोलना बोलना है। तो वचन पद्धति तो ऐसी है कि बोलते जावो, उसमें समझ नहीं बैठी है। असली समझ वहां बैठी जब उसका दर्शन हो, अनुभूति हो। तो उसके लिए संकल्प बने, उसके लिए कमर कसकर चलें तो समझ में क्यो न आयगा ? देखो जो फर्म चलाने उसकी व्यवस्था करने आदि की बड़ी कठिन बातें हैं उनको आप आसानी से निपाट ही लेते हैं फिर जो अपने आत्मस्वरूपका ज्ञान करनेका काम है उसमें कोन सी कठिनाई है। वह तो बहुत सरल है, मगर क्या वजह है कि कठिन बात तो सरल बन रही, यह तो उसके बांये हांथका खेल और सरल बात कठिन बन रही है, क्यों ऐसा करते ? अरे बाह्य पदार्थोंके प्रति तो यह चिन्तन करें कि किसी भी पर पदार्थ पर मेरा रंच भी अधिकार नही, मेरा तो मात्र मैं ही हूँ। जरा पुण्यका योग है और मनचाही बात थोड़ी होती रहती है तो उसमें हम समझ लेते हैं कि हां यह मेरे वशकी बात हैं। इसे मैं करता हूँ। और अन्दरमें तो देखो जरा कि यह आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप अपने आपके प्रदेशोंमें ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपना परिणमन करने वाला क्या कर पाता है ? अपना ज्ञान बनाया, अपना आनन्द बनाया, इसके अतिरिक्त बाहर जगतमें कुछ करनेमें समर्थ है क्या ? जैसे ५० मन बोझसे लदी गाड़ी को दो बैल खींच रहे। उसके पीछे दो तीन बच्चे गाड़ी ढकेलते । अब वे यह अभिमान करते है कि मैं इस गाड़ीको चलाता हूँ। जरा गाड़ी कहीं फंस गई तो वे बच्चे बड़ा जोर लगाते, हैरान होते, दुःखी होते—अरे गाड़ी क्यों नहीं चल रही ? अरे क्यों दुःखी होते बच्चो ? जब गाड़ी चल रही थी तब भी तो तुम नहीं चल रहे थे। और जब गाड़ी खड़ी हो गई तब भी तुम नहीं चला सकते। तो इसीतरह जगतमें जितने योगायोग हैं, जो कुछ आ रहा है हव आपका पूर्वकृत पुण्यका उदय है, वैसा समागम मिल गया है, बन रहा क्रोध, चल रहा क्रोध, चल रही कषायें। आप तो केवल अपने आत्मप्रदेश में विकल्पके करने वाले हैं।

विनश्वर अहित भिन्न वैभवकी उपेक्षामें ही लाभ:—भैया ऐसा एक निर्णय बनायें कि मैं अपने आपमें अपनी ही समस्या बनाता रहता हूँ, अपनेको उलझाता रहता हूँ और मैं अपने आपमें अपने आपकोही सुलझा सकूंगा। इन बाहरी पदार्थोंके प्रति उदासीनता लावें। मिला है तो क्या ? और, जितना हमें मिला है यह व्यर्थ है जरूरतसे कई गुना ज्यादह मिला है। ऐसा जरा मनमें सोचोतो सहीकि जरूरतसे ज्यादा मिला है कि नहीं। अगर भली प्रकार सोचें तब तो मालूम पड़ जाय और ऊपरी-ऊपरी सोचोतब तो लगेगा कि जरूरत से ज्यादह कहां मिला ? अभी तो इसमें बहुत कमी है। पर ऐसी बात नहीं है। इसकी अगर परख करना हो तो उन लोगों पर दृष्टि डाल लो जिनके पास आपसे १०० गुना कम है। उनका भी तो जीवन आखिर अच्छी तरह से बीत रहा है। तो जरूरत से ज्यादह है। अब आप यह सोच सोचकर अपने आपको हैरान करते रहते कि अभी तो इतना ही है, अब इतना हो जाय, फिर इतना हो जाय, फिर इतना हो जाय। अरे अपने दिलको इतना हैरान करके फायदा क्या पावेंगे यहां से एक दिन चल बसोगे। और अन्तमें आपको मिलना कुछ है नहीं। तो यह जो इतनी हैरानी बनाया, इतना जो संक्लेश किया उसके फलमें आपको व्यर्थ ही दुःख भोगना पड़ा। हाथ कुछ भी न आया। जैसे एक दृष्टान्त में बताया है कि एक चोर राजाके घुड़सालसे एक घोड़ा चुरा लाया, उसे एक बाजार में ले जाकर खड़ा कर दिया। ग्राहक आये पूछा—घोड़ा बेचोगे ?···कितनेमें दोगे ? ९००) में।···अरे इसमें ९००) की क्या बात ?···अजी इसकी चाल बहुत बढ़िया है। अब था तो कोई ३००) का मगर ९००) कहा तो कौन खरीदे ९००) में सो बहुत से ग्राहक लौट गये। मानलो १० ग्राहक लौट गये। अब एक ११ वां ग्राहक आया। वह भी एक बड़ा पुराना चतुर चोर था। उसने पूछा—भाई घोड़ा बेचोगे ? ···हां हां बेचेंगे।···कितनेमें दोगे !···९००) में। बस आवाज़ से परख लिया कि यह तो

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

घोड़ा चोरीका मालूम होता है। सो कहा···भाई इसमें ६००) की क्या बात है ?···अजी इसकी चाल बड़ी सुन्दर है।···अच्छा मेरा यह हुक्का पकड़ो। मैं इस घोड़ेपर बैठकर इसकी चाल देखूँगा। यदि इसकी चाल पसंद आ गयी तो मैं तुम्हें ६००) ही दूँगा। सो उसने तो मिट्टीका हुक्का अपने हाथमें पकड़ लिया, वह था कौड़ी चवन्नीका (४ आनेका) और वह बूढ़ा ग्राहक घोड़ेपर बैठकर उसे कही का कहीं उड़ा ले गया। वह घोड़े वाला जहां का तहां आवाक सा खड़ा रह गया। उधरसे वही ग्राहक निकले जो पहिले आये थे। पूछा-भाई तुम्हारा घोड़ा बिक गया क्या ?···हाँ बिक गया।···कितनेमें बिक गया ?···जितनेमें लाये थे उतनेमें बिक गया। (याने चोरीमे लाये थे और चोरीमें चला गया।···मुनाफा क्या मिला ?···मुनाफामें मिला यह चार आनेका मिट्टीका हुक्का। तो भाई इन बाहरी चीजोंसे लगाव करके उनके पीछे हैरान मत हो। उनसे लांभ कुछ -भी न मिलेगा। बल्कि उनके फलमें अन्तमें पाप कर्मका बन्ध ही होगा, जिसके कारण संसारकी असह्य यातनायें सहनी पड़ेंगी।

सप्त तत्त्वके कर्मका विलास:—मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इस विषयमें यह जाननेकी इच्छा हुई कि तत्त्व कौन है ? इस चतुर्थ सूत्रका अवतरण हुआ। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष, ये ७ ही क्यों हैं ? इसका विवरण भली प्रकार हो गया, जिसे संक्षेप में यों कह सकते कि हम जीव हैं इसलिए जीव का सही श्रद्धान करना तो जरूरी है। इसका ही तो मोक्ष होना है। जिसको छुटकारा देना है उसका श्रद्धान होना तो आवश्यक है। अच्छा, किससे छुटकारा लेना है ? जिससे छुटकारा लेना है उसका भी ज्ञान चाहिए। वह है अजीव। अच्छा, छुटकारा क्यों लेना है ? हम बँधे हुए हैं, दुःखकी स्थिति है। अपवित्र बात है, कष्टकी चीज है इसलिए बंधसे छुटकारा लेना। तो बन्ध जानना चाहिए। वह बन्ध होता कैसे ? जब बन्धके निदान जाने जायेंगेतब ही तो चिकित्सा बन सकेगी। जैसे कोई वैद्य किसी रोगीकी चिकित्सा करता है तो उसे यह जानना आवश्यक हो जाता है कि राग क्यों हुआ ? निदान क्या है ? फिर उस निदानको वह बन्द कराता और चिकित्सा करता। तो पहिले निदान जानना भी आवश्यक है, यह हुआ आश्रव। उस निदानकी बातको रोके और फिर पहिले बने हुए रोगको दूर करनेकी औषधि करे तब ही तो रोगसे मुक्ति बन सकेगा। जैसे करते ही हैं बात कि जो अभक्ष्यकी चीज है उसे मत खावो, यह तो हो गया सम्बर, और जो औषधि है, पहिलेका जो पेटमें अजीर्ण पड़ा है उसको गलानेके लिए औषधि दी जाती। तो निदान तो हुयी औषधि और सम्बर हुआ अभक्ष्य-परिहार। इसतरह इस जीवको इस संसाररोग से मुक्ति

Report any errors at vkasasc@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मिलती है। इसतरह ७ तत्त्वोंका क्रम बताकर अब जरा इसके स्वरूप पर विचार करें।

जीव—परिचय:—जीव क्या है ? तो देखो जीवका परिचय निश्चयनय और व्यवहारनय दोनोंसे होगा ? निश्चयनयसे तो जीव है एक ज्ञायकस्वरूप अखण्ड चिन्मात्र. जिसको कहनेके लिए शब्द नहीं हैं, फिर भी शब्दोंद्वारा कहा जाता है। शब्द द्वारा कौन समझेगा ? जिसे कुछ अंदाजा है। तो वह तो है निश्चयनय का विषय, अखण्ड, एक चित्स्वरूप, ब्रह्ममात्र और व्यवहारनयका विषय क्या है कि उस ही अखण्ड जीव तत्त्वको भेद करके समझाना सो भी व्यवहार है। देखो व्यवहारकी संतान बहुत बड़ी है और यह समझो कि निश्चय तो बिना संतानका रहता है। जो वास्तविक निश्चय है, परम शुद्ध निश्चय है, अखण्ड है वह तो निःसंतान, अकेला है, और क्यों जी, बच्चाओ संतान वाला होना अच्छा है कि निःसंतान होना अच्छा है ? तो यह तो अपनी-अपनी अलग—अलग बात है। निःसंतान एक अखण्ड अवक्तव्य, जिसका भेद नहीं है। इस प्रकरणमें तो भाई निश्चयनयका आश्रय करके ही सम्यक्त्व बनेगा। व्यवहारनय साधन है और निश्चयनय साक्षात् साधन है। व्यवहारनय साधन हैं। व्यवहारनय है निश्चयका साधन और निश्चयनय है अनुभूतिका साधन। यह अन्तर आया। इसमें विवादकी कहीं जरूरत नहीं है। व्यवहारनय बिना निश्चयनयके विषय का परिज्ञान न कर पायेंगे। निश्चयनयके विषय का ज्ञान करके, निश्चयनयका आश्रय करके रहियेगा। वह तो सम्यक्त्वका साधन बनेगा। भूतार्थनयसे जाने गए जीवादिक ७ तत्त्व सम्यक्त्व के कारण होते हैं, निश्चयसे जानना यह सम्यक्त्व नहीं; किन्तु सम्यक्त्वका कारण है। तो निश्चय से क्या समझा ? एक अखण्ड अभेद ज्ञानस्वरूप अब ऐसे ही कहते रहें निश्चय निश्चय की हीं बात बराबर दुहराते रहें तो किसीके कुछ समझ बनेगी क्या ? कुछ समझ न आयगी, कुछ धर्मकी प्रवृत्ति चलेगी क्या ? नहीं चल सकती। तब व्यवहारनयसे जब भेद करके बताया कि जीवादिक ७ तत्त्व हैं। देखो निश्चय और व्यवहार से अनेक जगह आपेक्षित हो जाते हैं। तब इसकी दो बातें रखी। अखण्ड ज्ञानस्वरूप और जीवादिक ७ तत्त्व। तो इसमें निश्चय कौन है ? अखण्ड ज्ञानस्वरूप। व्यवहारका क्या विषय है ? जीवादिक ७ तत्त्व। क्योंकि वह भेद करके कहा है। तो जीवादिक ७ तत्त्वोंको जाननेपर ही तो जीव तत्त्वका बोध हो पायगा। जो परमार्थका विषयभूत है, जो ७ तत्त्वोंमें रहता हो वह अपनी अखण्डताको नहीं छोड़ता। वह है शुद्ध जीवतत्त्व कहते हैं कि व्यवहार हेय है। अरे व्यवहार हेय है तो निश्चय भी हेय है। अच्छा, तो निश्चय की बात, परमार्थकी बात, अनुभूतिके लिए उद्यम करनेमें निश्चय ही उपादेय है।

Version 1

व्यवहारका अविरोध करके निश्चयका अवलम्बन कर अखण्ड तत्त्वके परिचय की

http://sahjanandvarnishastra.org/

गातिः—निश्चयकी बात समझनेके लिए व्यवहार भी उपादेय है। यह सब तथ्य है। एकान्त ही गड़बड़ करता है। जैसे मन्दिर पर चढ़ेंगे जहां मानो १३ सीढ़ियाँ हैं, तो उस मन्दिरमें आप किस तरह चढ़ पाते हैं सो तो बताओ ? सीढ़ियां पकड़कर चढ़े कि छोड़कर ? मन्दिरके ऊपर आप पहुँचेंगे तो सीढ़ी पकड़कर या छोड़कर किसीने कहा—छोड़कर।...अच्छा ठीक है, लेकिन एक आदमी नीचे खड़ा है और वह कहता है कि सीढ़ी छोड़कर ऊपर चढ़ सकते हैं तो फिर हम तो पहिले से ही छोड़ रहेंगे, चढ़ जायेंगे, तो वह चढ़ जायगा क्या ? नहीं चढ़ सकता। तो एकान्त से यह उत्तर देना कि सीढ़ी छोड़कर ही चढ़ेंगे तो यह उत्तर सही न रहा। तो फिर कोई कोई कहे कि यह सही न रहा तो फिर यह कह लो कि सीढ़ी पकड़ कर ही चढ़ेंगे तो कोई पहिली ही सीढ़ी पर चढ़े और उसे ही पकड़कर वह रह जाय तो क्या वह चढ़ पायगा ? नहीं चढ़ सकता। तो एकान्तमें वह सफलतामें नहीं बढ़ सकता। तो कैसे चढ़ेगा ? पकड़कर छोड़ना, ग्रहण करके छोड़ना, इसतरह से चढ़ेंगे तो ऊपर चढ़ जायेंगे। पहिली सीढ़ीका ग्रहण किया, उसपर चढ़े, फिर दूसरी सीढ़ीको ग्रहण किया, उसे छोड़ा, फिर तीसरी सीढ़ीको ग्रहण किया उसे छोड़ा, इसतरह हर सीढ़ी को ग्रहण करे फिर छोड़े इसतरह से वह ऊपर चढ़ जायगा। तो ऐसे ही समझिये कि जो लोग यह कहते कि व्यवहार तो हेय है, हम तो पहिले से ही छोड़कर रहेंगे, तो क्या वह पार पा सकेगा ? और कोई कहे कि व्यवहार से ही पार होता है तो हम तो व्यवहारको पकड़कर ही रह जायेंगे। हम तो इस व्यवहारको न छोड़ेंगे, तो क्या वह मुक्ति पा लेगा ? नहीं पा सकता। तो उसकी पद्धति यह है कि व्यवहारको ग्रहण करके छोड़ना, उसे छोड़ेंगे तो मिलेगा निश्चयनय, और निश्चयनयको पकड़कर छोड़ेंगे तो मिलेगी अनुभूति। उसके प्रसादसे मुक्ति प्राप्त होती है। तो जीवादिक ७ तत्त्व कहे गए हैं व्यवहारसे और निश्चयसे एक ही तत्त्व है, अखण्ड, एक, अभेद, अवक्तव्य। एक शुद्ध ज्ञायक स्वभाव।

व्यवहारबिना परमार्थको भी अगम्यताः—देखो किसी भी चीजको अगर कहेंगे तो कहनेके साथ ही उसमें भेद हो जाते हैं। करें क्या ? अच्छा उस अखण्ड निश्चयनयके विषय से बतलाओ तो सही, ज्ञायकभाव, अरे तो ज्ञायकभावका क्या अर्थ है ? ज्ञायक मायने जानने वाला, तो यह इसके ज्ञानको ही तो कहा, फिर कैसे वह अखण्ड हो गया ? आत्मा अनन्त गुणात्मक है। उनमें से हमने एक ज्ञानको लिया तो अखण्ड कैसे लिया ? तो भाई कोई चारा नहीं है व्यवहारको छोड़कर निश्चय को बतानेका कोई साधन नहीं है। कुछ तो मुख से बोलना ही पड़ेगा। कुछ बोला तो चलो वह एक धातुका शब्द है, वह एक अर्थको ही बतायेगा और हैं अनेक अर्थ, अनेक स्वरूप, अनेक गुण। तो व्यवहारसे भले ही एक शब्द द्वारा

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust. funding by MoE-IKS

http://www.jainkosh.org

कहा है मगर यह तो सब इस ज्ञानीकी कला है। अपने अभिप्रायमें समग्र वस्तुको लावो। देखिये अभिप्रायकी बड़ी कीमत होती है लोकव्यवहारमें भी अगर मां किसी कारणसे अपने बच्चे को कुछ भला बुरा भी कह दे, पीट दे तो भी उसका अभिप्राय निर्मल ही रहता है। मानों बच्चा छत की मुरेड़ी पर दौड़ रहा हो जहां से जरा भी पैर फिसले तो गिर कर मर जाय। तो उसे वह मां गुस्सा में आकर थप्पड़ भी मारती है और भला बुरा भी कहती है। अब उस मां का अभिप्राय तो उस बच्चे के हितका ही है इसलिए उस मां को कोई बुरा तो नहीं कहता ? अगर कोई दूसरा उस बच्चो के साथ वैसा ही व्यवहार करदे तो लोग उसे बुरा कहेंगे। तो इस अभिप्राय की बड़ी कीमत है तो जिसका प्रमाण का अभिप्राय है वह निश्चयनय की बात को ही एकदम बोले इसमें दोष नहीं है और जिसका प्रमाणका अभिप्राय नही वह निश्चयनय की बात बोले तो वहां दोष है। इसीलिए प्रवचनसार में लिखा है कि जो पुरुष परद्रव्यका प्रतिपादन करने वाले व्यवहारनयका विरोध न करके मध्यस्थ हो और निश्चयका आलम्बन लेकर मोहको दूर करे वह पुरूष उस शुद्ध आत्माको प्राप्त कर सकता है। कितना नपे तुले शब्द हैं एक आध्यात्मिक महर्षि के।

शुद्ध जीवत्व—इस समय ७ तत्वों को बताने वाले व्यवहारनयका विरोध न करके मध्यस्थ होकर आज निश्चयनयकी बात को सुनो। देखिये–भूतार्थका आश्रय करने वाले जीव ही सम्यक्त्व पाते हैं, और भूतार्थ से ही इन ७ तत्वों को जाने तो सम्यक्त्व प्राप्त होता है। ७ तत्वों को जाने अनेक प्रकार से जाने और जानकर उनका मोड़ ऐसा बनाये कि भूतार्थका आश्रय हो जाय। जैसे जब जीव को जाना, ये नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, कीड़े मकोड़े ये जीव हैं, व्यवहार से जाना परद्रव्व उपाधि और उसका सन्निधान पाकर औपाधिक भाव के रूप में समझा, जाना। अब इस ही जीवतत्वको भूतार्थ में ढालकर तो देखिये ये सब जीव क्या हैं मूल में ? एक ज्ञानस्वरूप अखण्ड, एक ज्ञायकस्वरूप। वह ही मूल है। और सब पर्यायों में चलकर भी अपने उस एक मूल चैतन्यभाव को कोई भी नहीं छोड़ सकता। तो इन सबमें भूतार्थ से देखें तो एक ही शुद्ध ज्ञानमात्र शाश्वत अन्तः प्रकाशमान वह जीव है, यह जीवका स्वरूप कह रहे है। देखो वह जीव न तो कषायसहित है और न कषायरहित है। जीवका स्वरूप क्या ? जीवन कषायसहित है और न कषायरहित है, किन्तु ज्ञानमात्र, इसमें भी भेद पड़ गया तो यों सोचो, जो जाना गया सो ही है वह इस समय आपकी जिज्ञासा हो रही हो कि जीव कषायसहित नहीं है, जीवका स्वरूप कषायसहित होना नहीं, यह बात तो ध्यान में आ रही होगी, क्योंकि कषाय अशुचि है, अपवित्र है, और नैमित्तिक है वह स्वरूप नहीं है जीवका। कषायसहित होना जीवका स्वरूप नहीं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर यह कैसे कहा गया कि कषायरहित होना जीवका स्वरूप नहीं, चित में बात आरही होगी। एक बात आपसे यहीं पूछते हैं – बताओ यह चौकी जिसपर कूड़ा पड़ा है, बीट पड़ी है, इसका स्वरूप क्या है ? बीटसहित होना चौकी का स्वरूप है या बीटरहित होना चौकी का स्वरूप है ? कचड़ासहित होना जीवका स्वरूप है या कचड़ा रहित होना जीवका स्वरूप है ? यह बात तो जल्दी कही जा सकती कि बीटसहित होना चौकी का स्वरूप नहीं, लेकिन कचड़ारहित होना भी जीवका स्वरूप नहीं। बीटरहित होना भी चौकी का स्वरूप नहीं। बीटरहित कहकर तो आपने चौकी की कोई बात बतायी क्या ? चौकी की निजकी बात तो कुछ नहीं कही। यह ही तो कहा कि बीट से रहित। चौकी की निजकी मूल काठ की बात तो इस में कुछ नहीं आयी, तो कहां बना चौकी का स्वरूप ? एक बात अब जरा यहां देखिये—कषायसहित होना जीवका स्वरूप नहीं। इसको समझने के लिए ज्यादह कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। पर कषायरहित होना चौकी का स्वरूप है तो कषाय-रहित कहकर आपने जीवकी गाँठकी, मूल की कोई चीज कहा क्या ? जीवकी मूलकी, गांठ की कोई चीज आपने नहीं कहा। आपने तो एक परभाव, कषाय, उससे रहित, यह ही बात कहा, तो जीवका स्वरूप तो बना। पहिली बात तो यह है। दूसरी बात जो शुद्ध तत्व के देखने का अनुरागी है, शुद्ध जीवतत्व के मायने पर्याय की शुद्धिकी बात नहीं कह रहे, किन्तु पर से रहित और निज में तन्मय, उसे कहते हैं शुद्ध (आजका विषय ध्यान से सुनो, जितना बने ध्यान लगाओ) हम उस शुद्ध जीवकी बात कह रहे कि जैसे आप किसी को शुद्ध दूध कहते हैं। किसको ? चाहे जूता पहिनकर दूध दुहा गया हो, चाहे बिना नहाये दुहा गया हो, चाहें बछड़े के चूसे थनों के बिना धोये दुहा गया हो, जिसमें पानी की एक बूंद भी न मिली हो उस दूध को शुद्ध दूध कहते हैं। हम यहां बृतियों के शुद्ध दूध की बात नहीं कह रहे, हम कह रहें पदार्थ की शुद्धि की बात। पदार्थ में कुछ जोड़ा जाय, कुछ तोड़ा जाय, जोड़ तोड़ से रहित का वर्णन शुद्ध बर्णन है। अगर उस दूध में पानी मिल जाय तो वह अशुद्ध हो गया। (द्रव्यदृष्टि से शुद्धि की बात कह रहे हैं)। उस दूध का क्रीम, मक्खन मशीन से निकाल दिया जाय तो वह भी दूध अशुद्ध है क्योंकि उस दूध में पानी जुड़ा तो अशुद्ध, सार निकाल लिया तो अशुद्ध, ऐसे शुद्धकी बात कह रहे हैं, ऐसे शुद्ध जीवको यहां लिखना चाहिए। मगर कुछ नादान लोग जरासी बात सोचकर कहने लगते कि मैं तो सिद्ध शुद्ध हो गया देखते हैं कि कौन सी शुद्धि है। जैसा चाहे काम करना, उसमें बाधा न आये ऐसा शुद्ध मानते हैं तो कहते हैं कि मैं तो सिद्ध समान शुद्ध हूँ। अरे सिद्ध समान शुद्ध हो, मगर उस सिद्धमें जो पर्याय शुद्ध हुई उसके समान शुद्ध नहीं, किन्तु उस सिद्ध में जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

पर्याय शुद्ध हुई उसके समान शुद्ध नहीं, किन्तु उस सिद्ध में जो जीवत्वभाव है द्रव्यदृष्टिकी, उसके माफिक शुद्ध है। तो दृष्टिसे निरखनेकी बात अलग है

निज अन्तःस्वभाव (शुद्ध स्वभाव) के आश्रय से शुद्धताका विकासः—अब एक समस्या आ जाती है कि अशुद्ध पर्यायका आलम्बन लेनेसे तो शुद्धि प्रकट नहीं हो सकती। अशुद्ध पर्याय, रागद्वेषादिक भावोंका सहारा लेनेसे, उसको दृष्टिमें रखनेसे तो शुद्ध पर्याय प्रकट नहीं होती, इतना तो शुद्ध पर्याय प्रकट नहीं होती, इतना तो ठीक है, और शुद्ध अभी हम हैं नहीं, और जो शुद्ध है सिद्ध भगवान, अरहंत भगवान, वह हैं परद्रव्य। वह बहुत दूर रहते हैं, अपने प्रदेशोंमें रहते हैं, उनका आश्रय हमकर सकते नहीं तो शुद्ध होनेका और उपाय क्या रहा ? देखिये तीन बातें सामने आती हैं, मैं वर्तमानमें अशुद्ध हूँ। रागद्वेषादिक होते हैं तो अशुद्धका सहारा लेनेसे शुद्धता न प्रकट होगी। शुद्धमें अभी हुआ नहीं, और, जो शुद्ध है अरहंत सिद्ध वे हैं परद्रव्य। जैसे आप हमसे अलग हैं, मैं आपसे अलग हूँ नारी एक चीज तो न होगी एक द्रव्य तो नहीं है, ऐसे ही अरहंत सिद्ध भी परजीव है, परद्रव्य हैं, उनका आश्रय नहीं लिया जा सकता, क्योंकि एक वस्तु परवस्तु का न कर्ता है और न व्याप्यव्यापक भाव हैं, उससे कोई सम्बंध नहीं बनता। तो कैसे शुद्धि मिले ? यों शुद्धि मिले कि अपने आप में जो द्रव्यदृष्टिकी शुद्धि है उसको ज्ञानमें लेनेका अधिक प्रयास करें। उसके लक्ष्यसे, उसकी दृष्टिसे, उसके आश्रयसे ही शुद्धि प्रकट हो जाती है। उस द्रव्यशुद्धिकी बात कह रहे हैं। वह शुद्ध द्रव्य देखना है। ७ तत्त्वोंकी बात जानो, इन ७ तत्त्वों के परिचयसे बहुत सहारा मिलता, हमें उस शुद्ध भूतार्थ तक ये परिचय पहुचाते हैं।

निश्चयनय व व्यवहारनयका उपकार जीवोंमें सार जीवत्व का प्रकाशः—अच्छा देखिये निश्चयनयके आश्रयका महान उपकार है। है, पर उस व्यवहारनयका उपकार तो समझिये जरा। जैसे कोई मां अपने बच्चेको जिन्दा रखकर खुद मरकर अगर कोई बच्चा जिन्दा रहता है तो मां अपने प्राण दे दे तो मां का उपकार है कि नही ? तो व्यवहारनय ऐसी ही मां है कि निश्चयका मार्ग दिखा कर निश्चयके विषयको जताकर यह व्यवहारनय खुद मर जाता है, तो जो अपना नाश करके और निश्चय और अनुभूतिका मार्ग साफ करा दे उस मर मिटने वाले व्यवहारनयमें कुछ बात नहीं है क्या ? व्यवहारनय सब कुछ काम कराकर निश्चयनय की और ज्ञान कराकर खुद मर मिटता है, फिर रह जाता है निश्चयनय। और, यह निश्चयनय भी जब अनुभूतिका योग्य पात्र बन गया और अनुभूतिमें आने लगा तो निश्चयनय भी मर जाता है। दोनो नयोंसे छुट्टी होती है उस समयसार तत्त्वकी अनुभूतिमें तो क्या कह रहे थे ? हां जीवको देखे, जीवमें जीव याने व्यवहारसे समझें गए जो अनेक प्रकार

Version 2.0

http://sahjanandvarnishastra.org/

के जीव समास, गति इन्द्रिय आदिकसे जो हमने जाना उन जीवोंमें भी जीव तो वह है एक अखण्ड ज्ञायकस्वरूप।

अजीवमें जीवत्वका प्रकाश:—परखिये अजीवमें जीव। अजीव बाहरी चीज हैं ना, अजीव कर्म है ना ? है। और कर्मका निमित्त पाकर जो झांकी हुई है विपाकको, वह भी तो अजीव है। जीवकी परिणति है, मगर भूतार्थका आश्रय कर रहे हैं, वह अजीव, रागद्वेष उठते हैं वे भी अजीव, जो आपके विषय हैं, विवेक उठ रहे हैं, युक्ति चल रही है। तर्क उठ रहे हैं, ये अजीव हैं। अरे तो जीव क्या है ? अरे इस अजीव में भी जीव देखें तो सही। यह जीव नही। जीव तो स्वयं वह है जो स्वयं अपने आपका सत्त्व रखता है। ये विचार विकल्प तर्क युक्तियां, ये हमारे ज्ञान, ये स्वतन्त्र निरपेक्ष अपना सत्त्व रख पाते हैं क्या ? ज्ञानावरणका क्षयोपशम निमित्त है, अन्य-अन्य बातोंका उदय निमित्त हैं। कुछ देखें तो सही, इस अजीवमें भी जीव। अच्छा एक चीज और भी निरख सकते। देखो जिस बातके समझनेसे, निरखनेसे अपनेको कोई हानिकी बात प्राप्त होती हो, वह सब निरखी जा सकती है, एकीभाव स्तोत्रमें यह बताया गया है कि हे भगवन ! हम आपका स्तवन कर रहें हैं और स्तवन करते हुए मानो यह मालूम हो रहा कि मैं तुममें ही प्रविष्ठ हो रहा हूँ। सो यद्यपि यह बात मिथ्या है, मैं तुममें प्रविष्ठ नहीं होता मगर जिस समय मेरा यह भाव बनता है कि मैं तुममें ही प्रविष्ट हो गया हूँ उस समय मेरा हित हो जाता है। तो मिथ्या होने परभी हमारे कल्याणके काम तो आ गई हमारी बात। यद्यपि ऐसा नहीं होता, लेकिन आपमें मैं प्रविष्ट होता हूँ ऐसा जो परिणाम हुआ यह परिणाम एक बड़ा सन्तोष उत्पन्न करता है और एक शान्ति देने वाला है। अच्छा, जरा देखो तो अजीवमें जीव। अब यह दूसरी बात एक इससे पृथक कह रहे। कर्म अजीव हैं ना ? तो उसमें अनुभाग पड़ा है ना ? हां पड़ा है। और जब वे कर्म उदयकाल आता है और उसका अनुभाग खिरता है उस समय ऐसा लगता है कि मानो इस अजीवमें भीं जान आ गई। तो यह सब जान उसका है। यह सब खाता जो जीवमें झलका है क्रोध, मान, माया, लोभ, विकार, कषायें वे सब अजीवकी हैं। कर्मकी हैं। वहां ले जाओ उनको, वहां छोड़ों। और अपनें आपमें विशुद्धि लावों। देखों जीवकी इन सब व्यवहारजीवोंमें रहने वाला शाश्वत एक जीवत्व भाव ज्ञानमात्र ज्ायकभाव। अखण्डभाव देखो बड़ा फर्क पडता है। भेददृष्टिके व अभेददृष्टिके परिणाममें जिससमय आप मानो हलुवा खा रहे हैं तो उससमय आप यदि यह ज्ञान कर रहे हैं कि इसमें इतनी शक्कर पडी है, इतना घी पडा है, खूब सिका है···आदि नाना प्रकारके विकल्प करते हैं तो उससमय आपको विशेष स्वाद नहीं मालूम होता, और जिससमय आप अपनी आंख मींचकर उसके प्रति बिना किसी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

http://www.jainkosh.org

प्रकारके विकल्प किए जब आप एक चित्त होकर डटकर खाते हैं तो उससवय आपको विशेष स्वाद मालूम होता है। तो ऐसी ही बात इस जीव तत्त्व की है। जब हम इस जीव तत्त्वके बारेमें गुणभेद करके, पर्यायभेद करके देखते हैं तब हमें उस जीव तत्त्वका यथार्थ स्वाद नहीं आ पाता। वह अनुभूति नहीं जगती, और जब भेद गुण पर्याय, सबके विकल्प छोड़कर एक सहज भावसे अपने आपमें जो एक शान्ति होती है, परिणति होती है, उसमें उस अखण्ड तत्त्वका पूरा स्वाद कहो, अनुभूति कहो, परिचय कहो, वह सब कुछ हो जाता है। तो उस जीव तत्त्वकी बात कह रहे। जीवमें जीव, अजीवमें जीव, और आंश्रवमें जीव। आजका विषय कुछ कठिन पड़ रहा होगा और कठिन भी नहीं है। क्योंकि बात तो खुदकी है।

निज अन्तस्तत्त्वके सिवाय अन्य सब भावोंकी अशक्यतां—यहां प्रयोजन इतना लेना है कि हमने सबको देखा, सबका सहारा लिया, सबको शरण माना, सबका आश्रय लिया, मगर बाहरमें सबका आश्रय लेनेमें हमको धोखा ही धोखा रहा। पहिले सोचा था कि यह मेरा छोटा बच्चा जो गोदमें है, जिसका मुख देखकर खुश हो रहे थे, सोचा था कि यह बड़ा होगा तो यह मुझे सुख देगा, मुझे बुढ़ापा में यह काम देगा और जब वह बड़ा होगया तो इच्छा कषाय तो सबकी अपनी—अपनी है ना, उसे अपनी फिकर रहेगी कि दूसरेकी। गुरू जी एक घटना सुनाते थे कि एक नदीके किनारे किसी पेड़पर एक बांदरी (बंदरिया) अपने बच्चेको लिए हुए बैठी थी। नदीमें एकाएक ही ऐसी बाढ़ आयी कि वह पेड़ भी पानीसे घिर गया। धीरे—धीरे वह पेड़भी डूबने लगा। वह बांदरी अपने बच्चेको अपने पेटमें चिपकाये हुए थी। देखो दृष्टान्तामें सबसे अधिक मोह बांदरीका दिया जाता है। उसे अपने बच्चेसे इतना मोह होता है कि मरे हुए बच्चेको भी काफी दिनों तक अपने पेटमें चिपकाए रहती हैं। तो उस बांदरीकी बात कह रहे हैं। नदीमें पानी इतना बढ़ गया कि बचनेकी कुछ आशा न रही। तो अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए उस बांदरीने क्या किया कि अपने बच्चेके उस जगह रखकर उसके ऊपर स्वयं खड़ी हो गई। तो यही बात सबके लिए समझों सबको अपनी—अपनी पड़ी है, दूसरेकी किसे पड़ी ? जब वह बेंटा मां की मदद नहीं करता तो वह आशा करने वाली माँ बहुत दुःखी होती। हाय मैंने व्यर्थ ही जिन्दगी गुजारा, अब क्या हो रहा ? उसे ज्ञान हो गया कि हमने तो अपने मोहमें जिन्दगी गुजारा, अपने विकल्प किया, अपने राग किया, अपना मोह किया, अपनेको बरबाद किया। इस बच्चेके पुण्यका उदय था। हम न मिलते तो इसकी सेवाको लिए और कोई मिलता। किसका कौन पालन हार है। मैं तो अपनी ही परिणतियोंको बनाता जाता हूँ। में दूसरेका कोई एहसान नहीं कर पाता। विकार करता हूँ तो अपना, उपकार हूँ तो अपना ही करता, धर्मध्यान करता हुँ तो अपना ही

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

करता। दूसरेके लिए मैं कुछ नहीं करता। ऐसा जो कोई सोचे उसका दुःख दूर हो जायगा। अनेक परका सहारा लिया मगर किसी भी सहारेमें अपने आपको कोई शान्ति प्राप्त नहीं हुई। तब क्या करना ? अरे उस अरहंत का सहारा लें, उस अपने आपमें बस ने वाले, भगवान आत्माका सहारा लें, सहज लेनेसे कर्मकलंक सदाके लिए मिट जायेंगे, मुक्तिका लाभ होगा। तो भाई परमार्थ निश्चयका सहारा लेने वाला तो जरूर ही जगसे पार हो जाता है। अगर निश्चयका सहारा लेने योग्य बनें तो उस निश्चयका सहारा लेने योग्य बनने के लिए यह व्यवहारनय काम करता है। तो व्यवहारनयसे कहे गए इन जीवादिक ७ तत्वोंमें से परमार्थ तथा जीव तत्वको परखनेकी बात है, उसका आश्रय लो। देखो गप्पमें तो कुछ मिलेगा नहीं, याने बोलनें वाला ही गप्पी हो सो बात नहीं, सुनने वाले भी गप्पी हैं। यह ख्याल न करें कि सिर्फ कहने वाला ही गप्पी है, सुनने वालाभी गप्पी है। तो गप्पमें तो कुछ काम बनेगा नहीं। साहस बनाना होगा कि जब मेरेको मेरा शरीर भी कुछ नहीं है तो अन्य बस्तु मेरेको मेरी क्या है ? कुछ भी नहीं है। उस ओरकी उमंग छोड़ें। गृहस्थ हो तो जो सहज होता है अपना कर्त्तव्य करो मगर उसमें मुग्ध मत होवो।

आस्रव तत्वका परिचय:—भूतार्थ विधिसे ७ तत्वोंका निरखना सम्यक्त्वका कारण होता है। इन सात तत्वोमें से भूतार्थ विधिको जोव और अजीवके सम्बन्धमें कहा गया था, आज आश्रवके सम्बन्धमें सुनो। चर्चा चाहे थोड़ी लगे, मगर जितना दिमागी बल है एक चिन्तनका बल, सबको जोड़करके इस बातको सुनो। यह बड़े कामकी बात है। यह जीव कष्ट सहता फिर रहा है। एक बार भी कष्ट से छूटनेकी विधि जान लें, उसकी श्रद्धा हो जाय, फिर इसपर कोई जोर न पड़ेगा। सब बातें सहज आसानीसे होती चली जायेंगी। पर एक बार मार्ग तो देखलें। आश्रव तत्व है बन्धका उपाय, लेकिन बन्धके उपायको सही तौर से अगर जानें तो मोक्षके उपायका मार्ग मिल जाता हैं। आश्रवके मायने है कर्मका आना, कर्मका प्रकट होना। जहां था वहीं कर्मत्वकी झांकी हो गई, दर्शन हो गया, चूकर आ गया, उसका नाम हे आश्रव। आश्रवको हम तीन विधियोंमें देखे। (१) भावश्राव, (२) द्रव्याश्रव (३) उभयाश्रव। भावाश्रवके मायने यह है कि जीव स्वयं तो है स्वच्छ ज्ञानस्वरूप, ज्ञानानन्दमय पवित्र, ऐसी शक्ति वाला है। उस स्वभाव में विभाव के आनेको भावाश्रव कहते हैं। जब भावाश्रव लदा हुआ है तो हमें स्वभावकी सुध या मग्नता नहीं हो पाती। यों समझिये एक दृष्टांत लो कि दर्पणके सामने लाल कपड़ा किया तो वहां कहनेमें ३ बाते आयी (१) कपड़ेमें लालिमा आयी (२) दर्पणमें लालिमा आयी और (३) थोड़ा यह भी कह सकेंगे कि दर्पण में कपड़ोंकी लालिमा आयीं। यद्यपि यह बात अधिक नहीं फबती, क्योंकि एक क्षेत्रा—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वगाह नहीं हैं यह अन्तर है इस दृष्टान्तमें, मगर तीन बातें समझने को मिल रही है। कपड़े की लाली, दर्पणकी लाली, और दर्पणमें कपड़ेकी लाली। तीसरी बात पूर्ण व्यक्त दृष्टान्तमें न आयगा। उसका कारण है जीव और कर्मका एक क्षेत्रावगाह और दर्पणका और कपड़ेका एक क्षेत्रावगाह नहीं है, पर एक अन्दाज के लिए दृष्टान्त दिया है। इसी तरह आत्मा में देखो एक तो आत्मा में राग हुआ और एक कर्म में राग आया और एक जीवमें कर्म-राग आया। तो जीवमें कर्मराग आया यह तो एक क्षेत्रावगाह बन्धन व निमित्तनैमित्तिक भाव व विषयविषयीभाव की अपेक्षा बात है। कहीं जीवके स्वरूपमें कर्मका प्रवेश न होगा। स्वरूप में प्रवेश होनेका अर्थ तादात्म्य है और प्रदेश में आ जानेका अर्थ एक क्षेत्रावगाह है। जैसे एक कनस्तर राख धरी है और उसमें पानी डाल दिया तो पानी राखका प्रवेश हो गया, मायने राखके प्रदेश के आजू बाजू प्रवेश हो गया मगर राख के स्वरूपमें पानी का प्रवेश नहीं, तो इसी प्रकार जीवके स्वरूप में कर्मका प्रवेश नहीं है। कर्म अपने स्वरूपमें हैं, जीव अपने स्वरूपमें है, मगर प्रदेशमें प्रदेश है, मायने एक क्षेत्रावगाह है। जिस स्थानपर जीव है उसी स्थानपर कर्म है, यह एक क्षेत्रावगाह है। वहां प्रदेश में भी प्रदेश नहीं है मगर जिस आकाश-प्रदेश में जीव है उसी आकाशप्रदेशमें जीवके साथ कर्म भी चलते हैं। तो जीवमें रागद्वेष भाव के आने का नाम भावाश्रव और कर्म में रागद्वेष प्रकृति अनुभाग आने का नाम द्रव्य-श्रव और जीव में कर्मके आनेका नाम है उभयाश्रव। तो जीवमें रागद्वेष आये।

भूतार्थविधि से आस्रव की निरख:—अब भूतार्थ विधि से निरखते हैं, जीवमें रागद्वेष भाव आया, वह रागद्वेष जीवकी परिणतिमें आया, इस परिणतिका स्रोत क्या है? क्या यह परिणति कर्म से आयी है? जीवकी जो रागपरिणति है क्या वह कर्म से आयी है? नहीं। कहां से आयी? जीवसे ही आयी, जीवसे ही वह निकली। तो देखते-देखते जो निकले उसे गौण कर दो, जहां से निकले उसे मुख्य बनालो। इसे कहते हैं भूतार्थ विधि निकला क्या? रागद्वेष वह हुआ गौण। कहां से निकला? जीव से। वह कर दो मुख्य। और फिर उसके जीवमें भी यह विचारें कि यहां वह वास्तविक मूल जीव क्या है? यों भूतार्थ विधि से स्वभाव को भी देखते हैं तो स्वभावदृष्टिका मौका मिल जाता है। कर्म में कर्मका कर्मत्व आना आश्रव है। वह आस्रव जीव से नहीं आया, कर्म से आया, तो वह कर्म क्या है? किसी लड़के का जब आप परिचय करते हैं तो पूछते हैं कि भाई आपका नाम क्या है?.....अमुकचन्द..... .....आप किसके लड़के हैं? ऐसा पूछने में "किसके" यह शब्द मुख्य हो जायगा और "लड़के" शब्द गौण हो जायगा। आपका नाम है दीपचन्द, और आप किसके लड़के? प्रकाशचन्द के। तो प्रकाशचन्द उसकी दृष्टिमें मुख्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बना ना, तो इसी तरह आश्रव राग आया। किससे आया ? जीवसे आया, कर्म से नहीं आया। तो जीव मुख्य हो गया। देखों—भूतार्थ विधि से पर्यायों को भी देखा जायगा तो पर्याय गौण हो जायगी और द्रव्य मुख्य हो जायगा। फिर उस द्रव्य में भी स्वभाव की निरख होगी। शब्द तो वहीं हैं जो आप रोज सुनते हैं। शब्द कठिन नहीं हैं, और बात भी खूब आत्माकी, आपके निजके घरकीं चल रही है। लोक में तो यह कहते कि आपको मेरे घर से क्या मतलब ? आप और बात करेंगे। आपको मेरे घरकी बात करने का क्या अधिकार ? लेकिन कोई दूसरे के घर की बात करता ही नहीं, जब करेगा तो अपने घरकी करेगा। जब घरकी खोंटी बात करता है तब दुःखी होता है और जब घरकी अच्छी बात करता है तब सुखी होता है। यह आत्मा जो कुछ कर सकेगा वह अपने घरकीं कर सकेगा। घर अपना कौन ? अपना जीवस्वरूप, अपना धाम, जो कुछ कर सकेगा अपने धामका कर सकेगा। पर धामका कुछ नहीं कर सकता। अब अपने धामका काम कोई खोंटा करे, रागद्वेष मोह आये, उसमें चिपट गए, उनमें ही उपयोगरमालिया तो उसकी बरबादी हो गई, और जो विभाव हैं, परतत्व हैं, नैमित्तिक हैं उनको गौण किया, उनसे उपेक्षा की, स्वभावदृष्टि किया, अपने स्वभावदर्शनसे प्रसन्नता पायी, यह सब कुछ आनन्द ही आनन्द हो जायगा। इस लोक में भी तो जब बड़ी अव्यवस्था हो जाती है तो कहते हैं अजी अपने-अपने घर कों सम्हाल लो। तो वही बात यहां भी करलो, अभी अपने-अपने धामको सम्हाल लो।

ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित अन्तस्तत्त्वका ज्ञानप्रकाशमें प्रकाश:—देखो इस चमड़े की आंखों से जो दिखता है, उसपर ही तो आकर्षित हो जायगा उसकी भव भव में मिट्टी पलीत है, और ज्ञाननेत्रसे अपने आपका जो दर्शन हुआ ज्ञानस्वरूपका, उसकी प्रतीति रहे, उसका विश्वास रखें तो भला हो जायगा देखने वाला कौन ? आंख। जो देखने वाला है उसे तो देखो जरा। ये इन्द्रियाँ तो ऐसी एक अटपट सी हैं कि देखो आंख-आंख को नही देख सकती। जीभ—जीभका रस नहीं ले पाती। हाथ-हाथ की गर्मी नहीं जान सकते। बुखार चढ़ा हो तो अपने एक हाथ से दूसरा हाथ छूवें तब गर्मी मालूम होती है। अरे तुम्हें बुखार गर्मी है तो हाथ पैर फैलाये सीधे पड़े रहो, दूसरे हाथ से न देखो तो क्या बुखार जान सकोगे ? नहीं जान सकते। ऐसी इसमें अशक्ति है। यह तो इस तरह है कि जैसे कोई हाल है, उस हाल में पुरुष खड़ा है, उसमें खूब खिड़कियां है तो वह उन खिड़कियोंसे बाहर की वस्तु देख लेगा। अब बताइये वहां देखने वाली खिड़कियां हैं कि पुरुष ? पुरुष। उन खिड़कियो के माध्यमसे पुरुष बाहर की चीजें देख लेता है। जैसे हालके अन्दर की चीजें

Reprint: jainstore.varni@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखनेके लिए इन खिड़कियों की जरूरत नहीं, इसीतरह यह शरीर एक हाल है, और इसके भीतर देखने वाला पुरुष आत्मा है. और इस हालमें ५ खिड़कियां हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण। इस शरीररूपी हालके अन्दर रहने वाला पुरुष इन खिड़कियोंसे बाहरकी चीजें देख सकेगा। या अन्दरकी ? बाहरकी। अन्दरकी चीज देखनेके लिए तो इन खिड़कियों की क्या जरूरत ? अपने ही ज्ञानसे, अपने ही भावसे अपने आप में खोज करें तो आपा दिख जायगा। अच्छा यह तो बात हुई अपनी खुदकी। और, क्योंजी, अगर इस मकान की भींट ढा जाय तो फिर खिड़कियों से देखनेकी जरूरत पड़ेगी क्या ? अरे वहां जब कोई आवरण ही नहीं तब तो फिर चारों तरफ पूरी तौरसे दीखेगा। तो इसीतरह भीतरका जो शरीर है वह विघट जायगा तो चौड़ा यह आत्मा चारों तरफ सर्व प्रदेशोंसे बाहरका भी ज्ञान करेगा और अन्दरको भी ज्ञान करेगा। इतनी अद्भुत शक्ति है हम आपमें अपने प्रभुपर दृष्टि नहीं करते और यहांकी गली सड़ी चीजोंमें चित्त लगाकर लड़ाई ठानते रहते हैं। और अपनी प्रभुताका ध्यान नहीं रखते है। मन्दिर किसलिए बनाया जाताकि दर्शन करने वाले लोग अपनी प्रभुताकी सुध करलें। इसके अतिरिक्त और क्या ? प्रयोजन ? प्रभुमूर्ति का दर्शन करके अपनी प्रभुताकी सुध लावें कि ऐसी ही प्रभुता मेरेमें है। स्वरूपसे क्या अन्तर है ? जब कोई बिरादरीका जीवनवार (पंगत) होता है तो उसमें चाहे कोई लखपती हो, चाहे कोई खोंचा फेरने वाला गरीब हो, सब एक समान रहते हैं। वहां ऐसा नहीं होता कि परोसने वाला व्यक्ति धनिकको तो चार लड्डू परोसे और गरीबको एक। और, यदि कोई परोसने वाला व्यक्ति ऐसा करे तो वह सबकी निगाहसे गिर जाता है। जो व्यक्ति धनिक के ही समान गरीबका भी आदर करेगा वह लोगोंकी दृष्टिमें प्रशंसनींय होगा। यह बहुत सज्जन है, इसके लिए सब लोग एक समान हैं। तो ऐसे ही सिद्धभगवानकी प्रभुता और अपने आपकी प्रभुता द्रव्यदृष्टि से समान है। उसका दर्शन करने के लिए मन्दिर हैं। कोई पुरुष तो लड़ झगड़ कर प्रतिमाके पास पहुँचता और कोई पुरूष धीरेसे दूरही खड़ा हुआ मूर्तिके दर्शन करके नमस्कार कर लेता तो यह बतलावो विशेष लाभ किसने उठाया ? जो पीछे ही रहा। भक्ति उसकी श्रद्धा उसकी अनुपम है। और जो लड़झगड़कर बहुत भीतर जावे, मान भी करे, उसमें कलह या कषाय है तो उसमें तो धर्म होता ही नहीं है

धर्माधार तत्त्वः—धर्म है शान्ति, समता। अपने प्रभुस्वरूपकी सुध लें। बेकार जो फंस गया यह जीव मोहमें उस मोह बन्धनको छेद देना, यह बात बनेगी कैसे कि जो मोह रागादिक विकाररहित अविकारी ज्ञानस्वरूप है उसकी दृष्टि होना। जो परमात्मआरती आप लोग पढ़ते हैं—"ॐ जय-जय अविकारी, इसके प्रत्येक छन्दका अर्थ दोनों जगह घटित है—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यहां पंचपरमेष्ठियोंमें और यहां आत्मस्वभावमें, दोनों जगह घटित होता है, इस आरतीमें आत्मा उपासना और प्रभुउपासना दोनों ही एक साथ होती चलती हैं। क्या अन्तर है ? मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान। द्रव्यदृष्टिसे देखा। लेकिन कोई सर्वथा ही मानले कि हम तो भगवान ही हो गए तो वह तो गिरेगा। उसकी सावधानीके लिए आगे का पद—"अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान।" लेकिन प्रभु, यह अन्तर ऊपरी है। यह जो आश्रव आया है, हमपर जो यह लद गया है यह ऊपरसे लदा है। स्वरूपमें नहीं है। स्वरूपमें होता तो कभी निकाला ही न जा सकता था। ये आश्रव निज घर के नहीं हैं, ये परके फुसलाये आये हैं। इन्हें दूर किया जा सकता है। तो जब भूतार्थ विधि से देखते हैं तो पर्याय गौण हो जाती है, द्रव्य मुख्य हो जाता है, और फिर और आगे चले तो द्रव्यमें भेदवाली बात गौण हो जाती है और स्वभाव मुख्य हो जाता है।

क्रमिक सर्व उपायपूर्वक भी स्वभावदर्शनके लाभको पौरुषके शूरता:—धर्मके लिए केवल एक ही काम किया जाना है। क्या ? अपने सहजस्वरूपका दर्शन करना, लेकिन जहां अनादिकाल से बुरी वासना लग रही है ऐसे पुरुषको इस स्वभाव दर्शनमें कैसे लगाया जाय, उसके लिए यह सब व्यवहार धर्म है। यों चलो, यों चलों। आज आप लोग इतने बड़े हो गए, समझने वाले बन गए। निश्चयधर्म की भी समझ आ गई तो अब यह कहना कि व्यवहार धर्म अत्यन्त हेय है, यह बात कैसे संगत बैठेगी ? देखो जब तुम लोग बच्चे थे, अपनी मां के साथ मन्दिरमें प्रभुके दर्शन करने आते थे। मां धोक देती थी तो तुम भी धोक देते थे। सोचे तो तुम वहां से ही प्रारम्भसे कोई कहे कि हम डाक्टर हो गए, ये जो प्रारम्भिक कक्षायें हैं ये सब हेय हैं, अरे हेय तो हैं ही, मगर प्रारम्भसे ही चलते रहे तभी तो धीरे धीरे आप एम. ए. में पहुंचे और डाक्टर बन गए। हेय तो है मगर हेय है ऐसा कहकर तो तुमने दूसरोका बिगाड़कर दिया। खुद तो अच्छे हो गए, खुदके लिए तो हेय है, मगर उसका सामान्य जनोंके लिए उपदेश करना-देखो पाठशालामें भर्ती होना हेय है और सबसे कहे भर्ती मत हो, भर्ती मत हो, यह हेय है, हमने अच्छी तरह समझ लिया है,...तो यह तो उनका बिगाड़ करना हुआ। तो वह निश्चयवर्स मेरेको प्रकट हो, इसके उपायमें व्यवहारधर्म है, तब ही कहा है "हेतु नियतको होई" व्यवहार नियतका हेतु होता है। पहुँचना कहां हैं अपने घर। मानलो किसीको यहा आपको अहमदाबादसे दिल्ली जाना है, तो जिस ट्रेनमें बैठते हैं उसे पहिले से ही तो नहीं छोड़ देते। जब दिल्ली स्टेशन पर आ जाते हैं तब उसे छोड़ देते हैं। फिर तो उस ट्रेनकी तरफ झांकते भ नहीं। अब अहमदाबाद वालेको दिल्ली पहुंच जाने वाला यदि यह उपदेश दे कि अरेबह ट्रेन तो हेय है, हमने भली प्रकार समझ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिया है तो जो दिल्ली पहुंच गया उसके लिए तो हेय है मगर जो यहां अहमदाबादमें पड़े हैं उनका तो बिगाड़ कर दिया। तो निश्चय उपादेय है। निश्चय मोक्षमार्ग क्या है? स्वभावदर्शन, स्वभावज्ञान और स्वभावरमण। और, व्यवहार मोक्षमार्ग क्या है? ७ तत्व का श्रद्धान, ज्ञान, संयम, आचरण, त्याग, व्रत।

भूतार्थविधिसे आस्रवतत्वका ज्ञान करनेमें एकत्वका प्रकाश— निश्चयविधिसे देखिये कि आश्रवका भूतार्थ पद्धतिसे ज्ञान करते करते कहाँ आया, स्वभाव पर। यही हो बात द्रव्यास्रवमें है। और उभयाश्रव जो है वह तो दो की कथनी वाली चीज है। उसमें भी एक एक की बात देखना होगा। तो भावाश्रव, द्रव्याश्रव भूतार्थविधिसे करे एक-एक हो जायेंगे। फिर उनका विचार करना है। तो देखो—भूतार्थनयसे आश्रवतत्वका ज्ञान होना सम्यक्त्वका कारण है। देखो भाई, भीतरमें एक यह उपयोग जैसे एक कोई खाली छोटा लट्टू है, उसके साथ कप वगैरह कुछ न हो, जैसे बैट्रीमें बल्ब लगाते हैं, उसको अगर यों मोड़ दिया जाय तो इस तरफ उजेला और अगर बाहरकी तरफ मुख कर दिया जाय तो बाहरकी तरफ उजेला। भीतर कुछ नहीं है, तो ऐसे ही यह उपयोग ज्योति है जाज्वल्यमान बल्ब है, प्रदीप है। इस उपभोगका मुख बाहरकी ओर करदें तो भीतर कुल अंधेरा और बाहरका आकर्षण। इस उपयोगको भीतर करलें, बाहरकी बेसुधी और भीतर को सावधानी है, प्रकाश है, इससे यह निर्णय करलें कि जब बाहरकी कोई चीज मेरे साथ रहेगी नहीं, कोई वस्तु मेरे साथ जायगी नहीं। वर्तमानमें भी शान्तिका साधन नहीं तो उस ओर ही आकर्षित क्यों रहते?

मन, कर्ण, नेत्र इन्द्रियका दुरुपयोग न करनेकी सम्मति—बड़ा दुर्लभ नरजन्म है यह अगर यहां इस इन्द्रियका दुरुपयोग किया तो बुरी हालत होगी। जैसे मन मिला तो अच्छी बात चिन्तन के लिए मिला है, हित अहितका विवेक करनेके लिए मिला है। मनका लाभ भी यही है कि जो शिक्षा उपदेश ग्रहण कर सके। लेकिन इस मनुष्यके द्वारा विषयोंमें लगाना बुरी बातोंमें फसना, अगर यह काम किया, ऐसा अगर कोई निर्णय करने वाला हो तो ये कर्म कहेंगे—बेटा तुम्हें मनकी जरुरत नहीं है, क्योंकि तुम्हें मन दिया, उसका दुरुपयोग किया इसलिए तुम्हें अब मन न मिलेगा तो अब क्या बन गए? असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय बन गए। कान मिले थे सुनने के लिए-जिनवाणी सुने, उपदेश सुने, भक्तिके गीत सुने, भगवानकी स्तुति सुने, इसके लिए कान मिले हैं, अगर इन कानोंको सनीमाके गीत या रागरागनी के शब्द सुननेमें ही अगर लगा दिया तो कानोंका दुरुपयोग हुआ। तो कर्म तो यही कहेंगे कि बेटे तुम्हें कानोंकी जरुरत नहीं है इसलिए तुम्हें कानकी जरुरत नहीं है इसलिए तुम्हें कान न मिलेंगे। तो अब वह क्या बन गया? चार इन्द्रिय जीव। आंखे मिलीं इसके लिए कि तुम प्रभुदर्शन करो, स्वाध्याय करो, सज्जन पुरूषोंके दर्शन करो, अच्छी—अच्छी चीजे देख

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करो, मगर इसने सब बुरा ही बुरा देखा । रागका शरीर, सनीमाके गंदे चित्र, और भी खोटी खातें देखी, तो निर्णय क्या हो जायेगा कि अब तुम्हें आंखों की भी जरूरत नहीं मालूम पड़ती । इसलिए आंखे न मिलेगी । तो अब क्या हो गये ? तीन इन्द्रिय जीव बन गए ।

नासिका रसना इन्द्रियका दुरुपयोगन करनेका संदेश—अब नाक की बात देखो । इसका तो हमें कोई खास समाधान नहीं मिला, यह तो हमें एक बेकार सी चीज मालूम होती है । हां इससे प्राणायामका काम करलो नासादृष्टि करलो या और भी कोई नाकका सदुपयोग हो सकता हो सो तुम जानो । मगर इस नाकका उपयोग गंध सुगंधमें न करें । लोग तो जरा जरा सी बातमें नाक भौंह सिकोड़ने लगते हैं, पर यह आदत ठीक नहीं है । यह नाक ऐसी बेकारकी चीज है कि यह लड़ाई भी करा देती है । अपने आप को विपत्तिमें डाले तो यह नाक डाले । और प्रभु दर्शनमें अगर बाधा देती है तो यह नाक बाधा देती है । नाकके मायने है अहंकार अभिमान । खैर नाक मिली है तो उससे प्राणायाम करो और नाकसे घृणा की आदत छोड़दो । जरासी कोई खराब चीज दिखी तो झट नाक सिकोड़ा और थूक दिया । अरे वह चीज तो बहुत दूर पड़ी है, उसे देखकर थूक क्यों आ जाता है? उसके प्रति ग्लानि क्यों आ जाती है ? तो जैसे उन गंदी चीजोंके प्रति घृणा न करने तथा वीरतापूर्वक हटाने की बात कहा ऐसे ही धर्मात्मा, मुनिजन, त्यागीजन, उनकी सेवा करते हुए घृणा न लाना । जिसमें रूचि होती है उसमें कुछ घृणा तो नही होती । अगर कोई छोटा बच्चा जिसे गोदमें लिए हुए हो, सुन्दर बस्त्र पहिने हों, और वह ऊपर टट्टी करदे तो उससे कोई घृणा तो नहीं करता ? वह तो उसे उठाता, साफ करता । वह घृणा इसीलिए तो नहीं करता कि उसे उस बच्चेसे प्रेम है । तो ऐसे ही जिसे धर्मसे प्रेम है उसमें धर्मात्मा से प्रेम हुए बिना न रहेगा । जैसे मां अपने बच्चे की सेवा करते हुए घृणा नहीं करती ऐसे ही धर्मात्मापुरूष धर्मात्मापुरूषकी सेवा करते हुए घृणा नहीं करता । घृणाकी चीज बच्चेमें भी है और धर्मात्माके शरीरमें भी है । समान ही तो है, तब फिर जहा रूचि है, प्रेम है वहां घृणा नही होती । इस तरह बाहरी पदार्थोंको देख लिया, उपेक्षा हो गई, कोई बात नहीं, वहाँ भी घृणा जैसी बात न लावे । क्योंकि उपयोग बहुत बदलेगा । इसलिए वहां भी आत्माकी सुध लेनेका समय कम मिलेगा । रसना इन्द्रिय मिली है तो प्रभुके गुणगान के लिए मिली है । हम आपको अच्छी जिह्वा मिली है । दुनिया के अन्य जीवों पर दृष्टि डालकर देख लो, हम आप आज कितनी उच्च स्थितिमें हैं । पन्चेन्द्रिय भी हो गये, गाय,बैल भैंस वगैरह हो गए तों उस लठ जैसी मोटी जीभ से कुछ बात कर सकते क्या ? वे वचन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बोल सकते क्या ? ये शास्त्रों के भावों को बोल सकते क्या ? याने कितनी ऊंची स्थिति में हम आप हैं। जगत के इन जीवों पर दृष्टि डालकर देखो और ऐसी ऊंचीं स्थिति में आकर हम इस आत्माभगवान पर ही हमला करने लगे, विषयों में लीन होना, व्यसनों में फसना, यह अपने आपके भगवान पर ही तो हमला है।

निज आत्मदेव पर विषयाक्रमणका फल दुर्गतिः—यों आपने आप पर ही हमला करने लगे तो उसका क्या फल होगा ? यह ही फल होगा कि अनादि से जिस गति में थे वहीं फिर जायेंगे। निगोदमें थे निगोद फिर जायेंगे। फिर क्या हाल होगा ? आज यह दुर्लभ मनुष्यभव पाया है तो यहां बहुत सम्हलकर चलने की जरूरत है, नहीं तो फिर वही दशा होगी जैसी कि एक चूहे की। कोई एक चूहा किसी साधु के पास रहता था। एक बार उस चूहे पर बिलाव झपटा, साधुने चूहे को आशीर्वाद दिया, बिडालोभव, अर्थात् तू भी विलाव बनजा। तो वह बिलाव बनगया। उसेअब विलावका डरन रहा। एकदिनउस बिलावपर कुत्ता झपटातो साधुने पुनः आशीर्वाद दिया-स्वानोभव, अर्थात् तुभी कुत्ता बनजा, तो वहभी कुत्ता बन गया। एक दिन उस कुत्ते पर झपटा शेर, तो साधु ने आशीर्वाद दिया-सिंहोभव अर्थात् तूभी शेर बनजा। लो वह भी शेर बन गया। एक दिन उस शेर को बड़ी भूख लगी। सोचा कि यहां कोई है नहीं, किसे खाऊं, इस साधु को ही क्यों न खा जाऊं ? साधु ने जब शेरकी मनकी बात पहिचाना तो श्राप दिया-पुनः मूषकोभव, अर्थात तू फिर से चूहा बन जा। लो वह फिर चूहा बन गया। तो हम आपकी भी तो यही दशा है। हम आप निगोद से निकल कर आगे बढ़ बढ़ कर आज मनुष्य हुए हैं। निगोद से निकले तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक बनस्पति हुए, वहां से निकले तो दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय हुए, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय हुए, देव हुए,। और बड़ी दुर्लभता से आज मनुष्यहुए। इतना दुर्लभ मानव जीवन को यों ही व्यर्थ खो रहे हैं। अरे करना तो यह चाहिये कि कोई अलौकिक काम कर जाने का उमंग रखें, जिससे मेरे को आत्मप्रकाश हो और सदाके लिए संकटों से छुटकारा हो।

स्नेह में बन्धन की प्राकृतिकताः—यह आत्मा अपने स्वरूप से स्वयं निरपेक्ष रहकर आनन्दमय है, इसमें किसी प्रकार का कष्ट नहीं, किन्तु पर उपाधिका सन्निधान पाकर अशुद्ध उपादान हुआ। यह जीव रागद्वेष मोह भाव को करता है, इस कारण इसपर सारे संकट छा जाते हैं। यही दशा जीवकी अनादि काल से चली आ रही है। क्या होता है कि जीव रागद्वेष मोह करता है और नवीन कर्मवर्गणायें कर्मरूप बन जाती हैं। यहां एक कभी कभी कोई शंका कर लेता है कि कर्म तो पोद्गलिक हैं, उन पौदगलिक कर्मोका इस अमूर्त आत्मा के साथ बन्ध कैसे हो गया ? तो इस विषय में सुनो। दो बातें कही जायेंगी। पहिली

Version 1.1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात तो यह कि नवीन कार्माणवर्गणाओं में जो कर्मत्व आता यह ही कहलाता है आस्रव, सो उस नवीन कर्म का, आश्रवका कारण है उदय में आया हुआ कर्म और उदयमें आये हुए कर्मो में नवीन कर्मो के आश्रवका निमित्त पना आ जाय, इसका निमित्त होता है रागद्वेष-मोह भाव। तो मूल में बात तो रागद्वेष मोह की ही पक्की रही। रागद्वेष मोह होने से ही तो पुद्गलकर्म जो उदय में आ रहें हैं उनमें ऐसा निमित्तपना होता है कि नवीन कर्मो के आस्रवको करले। तो देखो बन्ध परस्पर में किस किसका हुआ ? निमित्त तो उदयागत कर्म है पर उदयागत कर्म सदा तो नहीं रहते। वे तो कुछ समय बाद खिर जायेंगे। अर्थात् पहिले बांधे हुए जो कर्म सत्ता में है उनके साथ नवीन कर्मोका बन्धन हुआ। और, चूंकि स्वागत किया इस जीव ने। रागद्वेष मोह भाव करने के मायने यह है कि नवीन कर्मो के आने का स्वागत करना। तो भला जब स्वागत होता हो किसी का तो फिर उसके आने ठहरने में क्या शक ? यह जीव स्वागत तो करता है रागद्वेष मोह भावोंका। इसीके मायने है नवीन कर्मो के आनेका स्वागत करना। वेलकम।

जीव और कर्म की सांसारिक मैत्रीः—एक प्रकरण दिया है सर्वविशुद्ध अधिकारमें कि चेयाउपयडीयठ्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ, पयडीय चेइयट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ। एवंबधोउ दोण्हपि अण्णोण्णप्पच्चया हव, अप्पणो पयडी येव संसारो तेण जाइए। देखिये इसके दो अर्थ हो गए और दोनों अर्थोमें तत्वकी बात निकलेगी, सीधा अर्थ तो यह है कि जीव पकृति के लिये उत्पन्न होताहै और नष्ट होताहै और प्रकृति जीवके लिएउत्पन्न होताहै और नष्ट होता है। प्रकृतिके मायने है कर्म प्रकृति। तो प्रकृतिके जीवके लिए उत्पन्न हुई और नष्ट हुई। इसके मायने यह है कि प्रकृतिकी जीवकी इतनी गहरी दोस्ती हो गई जैसे एक दोस्त दूसरे के लिए है, मिटता है, उत्पन्न होता है। इस तरह हो रहा है ना। यह प्रकृति जीवके भले के लिए दोस्ती नहीं करती, बल्कि बुरेके लिए है। संसार में जो दूसरेकी बरबादीका कारण हो उसे कहते हैं मित्र। और जो बरबादीका निमित्त कारण बने वह तो कहलाता ही है शत्रु और मित्र दोनोंही उस पुरूषकी बरबादीके हेतु हैं। लड़कों लड़कों में दोस्ती हो जाय तो वे अच्छे बनेंगे कि बुरे ? वे तो प्रायः करके बुरे ही बनते हैं। कहीं सनीमा देखने जायेंगे, कहीं लोफरपार्टीमें रहेंगे, व्यर्थ की गप्प सप्प में रहेंगे। कुशील सेवन आदिके खोटे प्रसंगों में रहेंगे तो जैसे वह दोस्ती उनकी बरबादीका कारण है ऐसे ही जीव के साथ जो कर्मों की दोस्ती है वह भी इस जीव के बिगाड़ के लिये है। कर्म ही आते हैं, कर्म ही मिटते है और यह जीव उन कर्मो के लिए मरता मिटता है। कर्म इस जीवके लिए स्वयं की बरबादी कर रहे हैं। दूसरा अर्थ साफ है कि जीव प्रकृतिका निमित्त पाकर उत्पन्न होता, नष्ट होता याने

Report any errors at nikkasar@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विकार जीवमें आता और प्रकृति जीवके परिणामका निमित्त पाकर उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, ठीक है। तो जब इस जीवने नवीन कर्मोंका स्वागत किया, देखो जो बहुत ऊँचे हृदयसे स्वागत करने वाले लोग होते हैं वे काम करते हैं। मुखसे नहीं बोलते कि आइये। जो बनावटी स्वागत करता है वह कहता है कि अजी आइये, आपका स्वागत है। कभी देखा होगा, पति पत्नीकी कितनी घनिष्टता होती हैं पर जब वह पति कहीं बाहरसे आता है तो स्त्री मुखसे यह तो नहीं कहती कि आइये, आपका स्वागत है। वह तो पानी लायगी, खाना बनाकर खिलायेगी, सारे काम करेगी, उसकी स्वागत करने वाली मुद्रा होती है। तो जो स्वागतकी बात कहकर स्वागत करे उसमें हार्दिक स्वागतकी झलक नहीं होती। ऐसे ही यह जीव रागद्वेष मोह करके बहुत हार्दिक स्वागत कर रहा है नवीन कर्मोंके आने का नवीनकर्म आये और सत्तामें बन्ध गए चूँकि स्वागत करने वाला जीव है तो वे बन्ध गए। जम गए। आप किसी महिमानका बड़ा स्वागत करेंगे तो वह तो वहाँ अच्छी तरहसे जम जायगा। और कोई स्वागत न करे तो वह महिमान कहां ठहरेगा? तो ये कर्म तो महिमान हैं। इस जीवने इस कर्म महिमानका स्वागत किया और ये कर्म महिमान इस जीवके घरमें बन्धकर रह गए। अब पड़ी इस जीवको आफत। सो उस आफतमें भी कुछ ऐसी बुद्धि बन जाती है कि उससे यह ही कहते बनता कि अब तुमसे कहते कि यहां से जावों? रहो तो फिर भी स्वागत ही स्वागत करता रहता है?

कर्मबन्धन का रूप:—अब यहां देखिये—बन्धन किसका साक्षात् है और निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध किसका किसके साथ है? गाय जंगलसे चरकर जब अपने स्थानपर आती है तो उसे लोग किस तरह बांधते? क्या रस्सीके छोर से गायका गला बांधते हैं? अरे गला बांध दे तों गाय तो मर जायगी। वह गला नहीं बांधा जाता किन्तु रस्सीके एक छोरसे रस्सी का दूसरा छोर बांध दिया जाता है। पर वहां ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक भावका सम्बन्ध है कि वहां गाय बँध गई। परतन्त्र हो गई। बस ऐसे ही जीव व कर्मका राग द्वेष मोहके कारण परस्पर में निमित्त नैमित्तिक बन्धन हो गया। यह है आश्रवकी बात। अब इस आश्रव

भूतार्थ पद्धतिसे हम कैसे देखेंकि हमें स्वभाव दर्शनका मार्ग मिले? इस सम्बन्धमें कल कहा गया था, पुनः एक बात और विचार कीजिए कि हम आश्रव का जो रात दिन स्वागत करते रहते हैं यह हमारी कितनी बड़ी भारी भूल है, इसपर कुछ चिन्तन करें। बाह्य पदार्थों को आश्रय बनाकर जो हम विकल्प रागद्वेषके परिणाम करते हैं वहाँ हम किसका घात करते? खुदका। दूसरेका घात नहीं करते।

विशुद्धभावोंका प्रसाद:—गुरुजी सुनाते थे कि दशलक्षणपर्वके दिनोंमें एक घटना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हुई थी कि कोई दो सेठ थे। एक था बड़ा सेठ और दूसरा था छोटा सेठ। उन दोनोंमें परस्परमें बड़ा विरोध था। और, इतना विरोध था कि वे एक दूसरेको देखना तक न पसंद करते थे। एक बार क्या हुआ कि वे दोनो ही एक स्थानपर धर्मोपदेश सुन रहे थे। वहां यह वर्णन चल रहा था कि किसीसे विरोध रखना, विषाद रखना, विकल्प मचाना यह तो खुद की बरबादीके लिए है। कर्मबन्ध होता, उससे खोटे संस्कार बनते, जन्ममरणकी परम्परा बढ़ती। पार्श्वनाथका जीव जो पहिले मरुभूति था। मरुभूति और कमण्ठये दो भाई थे। वहां मरुभूतिका कुछ कसूर न था, सारा कसूर कमठ का था। कमठका कसूर क्या था कि जब उसका भाई मरुभूति कहीं बाहर गया हुआ था तो कमठ ने उसकीं स्त्रीके प्रति लालच किया था। यह खबर जब राजाको हुई तो राजाने कमठको राज्यसे बाहर निकाल दिया था। जब मरुभूति घर आया, समाचार सुना तो वह अपने भाईके पास पहुँचा। वहां कमठने तब तक पंचाखितपका रूप रख लिया था। वह अपने सिरपर मन भरका पत्थर रखे हुए तपस्या कर रहा था। मरुभूति बड़ी नम्रतासे उस भाई के पास गया, चरणोंमें लौट गया, वहाँ कमठ क्रोधमें आकर गिड़गिड़ाया और वही पत्थर मरुभूतिके ऊपर पटक दिया। मरुभूति मर गया। कमठका यह बैर ८—९ भवोंतक चला। ऐसी विचित्र घटना किसी भी तीर्थंकरको नहीं हुई। जब मरुभूतिका जीव पार्श्वनाथके रूपमें था तो वहां भी ध्यान करते हुएमें कमठने उपसर्ग किया था। तो किसीके प्रति रंचमात्र भी विरोध रखना यह खुदके नुकशानके लिए है। यह पापके उदयका बुलावा देता है। तो बात यह कह रहे थे कि वे दोनों सेठ इस धर्मोपदेशको सुन रहे थे। वहां उन दोनों का चित्त एकदम पलट गया। दोनों ने अपने मनमें एक दूसरेका विरोध खतम कर दिया। दोनोंके मनमें आया कि हम जिसे अपना विरोधी मान रहे थे प्रवचन वाद उसके घर जाकर उससे माफी मांगे सो बड़ा सेठ तो अपनी कारसे बैठकर चला और छोटा सेठ अपनी बग्घीमें बैठकर चला। रास्तेमें दोनों एक दूसरेको मिल गए और बिना कुछ बातचीत किए दोनोंही एक दूसरेके गलेसे मिले। देखिये एक आत्मा का दुसरे आत्माकें साथ कैसा बेतारका तार मिला कि दोनोंके परिणाम एक साथ विशुद्ध हुए। देखिये—हम आपने दुर्लभ मानव जीवन पाया है तो इसमें हमें करना क्या है? भलाई, शान्ति, वास्तविक शान्ति प्राप्त हो। वह वास्तविक शान्ति कैसे प्राप्त हो? तो उसका उपाय आचार्य देव ने बताया है कि कषाय छोड़ो और अपना जो निजस्वरूप है, ज्ञानमात्रस्वरूप, उसकी ओर दृष्टि दो। अब गृहस्थीमें है तो करें क्या? सब कुछ करना पड़ता। सब कुछ करते हुए भी भीतरमें भावश्रद्धा निर्मल रहे। मेरा कोई विरोधी नहीं

विशुद्ध परिणाममें अन्यकी विपत्तिकी प्रधानता—देखिये—श्रीराम जब गृहस्थावस्थामें

Reprinted by Bhoomi Publication @gmail.com

http://www.jainkosh.org

थे तों उनको सीताके कारण ही तो रावणसे युद्ध करना पड़ा था। तो जब रावण शान्तिनाथ मन्दिरमें बहुरूपणी विद्या सिद्ध कर रहा था तो वहां श्रीरामके सैनिकोंसे पता पड़ा उन्होंने श्रीरामसे बताया कि रावण इससमय शान्तिनाथ चैत्यालयमें बहुरूपणी विद्या सिद्ध कर रहा है, यदि उसकी विद्या सिद्ध हो गई तो उसपर विजय पाना आपको मुश्किल हो जायगा इस-लिए आप हमें आज्ञा दें। हम लोग उसकी साधनामें भंग करें, विघ्न डालें ताकि वह विद्या सिद्ध न कर सके। तो वहां श्रीराम ने यही कहा था कि अरे भाई वह पार्श्वनाथ चैत्यालयमें अपना ध्यान कर रहा है तो उसके ध्यानमें विघ्न डालना ठीक नहीं। फिर आगे क्या हुआ सो बात आगे की है। देखिये आजकलकी राजनीति तो यही कहती है कि जिस चाहे तरहसे दुश्मनको मारो, साम, दाम, दण्ड भेद से छल से बलसे जैसे बने वैसे दुश्मन को मारो, पर श्रीरामके मनमें यह बात न थी। आखिर कुछ मनचले लोगोंने रावणकी साधना में विघ्न भी डालना चाहा पर न डाल सके, कारण कि वहां जहां पानी था वहां जमीन जैसा मालूम पड़ता था और जहां जमीन थी वहां पानी जैसा मालूम पड़ता था। आखिर वहां उन विघ्न डालने वालोंको बड़ी विडम्बना ही हुई और रावणपर विघ्न न डाल सके। जब रावणकी साधनामें विघ्न डाला जा रहा था उससमय भी रावण अपनी साधनामें रंच भी न चिगा था। ऋषियोंने तो बताया है कि ऐसा ध्यान अगर मोक्षके बारेमें होता तो उसे मोक्ष अवश्य प्राप्त हो जाता। तो बात यह कह रहे हैं कि हम आप अनादिकालसे कैसी—कैसी योनियोंमें भटकते आये, निगोद थे, स्थावर हुए, त्रस हुए, कीड़ा मकोड़ा हुए और आज बड़ी दुर्लभतासे मनुष्य हुए। तो यहां मेरेको कौन जानता और यहांमें किसको जानता ? यह तो एक सनी-माका जैसा चित्र है। जैसे सनीमा के पर्देपर छाया आती है तो वहां कुछ है तो नहीं, सिर्फ छाया है, वहां किसीका किसीसे कुछ परिचय तो नहीं है इसीतरह हम आप सब भी इस संसाररूपी सनीमागृहमें एक फोटोरूप (छायारूप) हैं। किसका कौन ?

शुद्ध तत्त्वानुरागीको अशुद्धताकी असहिष्णुता:—यहां जीवोंकी जितनी भी परिणतियां हो रही हैं वे सब जीवकी परिणतियां है, लेकिन चूंकि वे नैमित्तिक हैं, औपाधिक हैं इसलिए अजीव कहा। तो यहां भी अजीव अजीवसे मिले, यों कहो। परमार्थ जीव तो भैया ? जो एक शुद्ध शाश्वत चैतन्य स्वरूप है। ऐसी बात सुनकर यह न समझना कि तब तो फिर यहां अजीवकी अजीवसे बात हो रही है, फिर तो जो होता है होने दो। अरे वहां बरबादी तो जीवकी हो रही है। यह तो भेदविज्ञानकी बात कह रहे कि जो क्रिया है, जो कुछ चीज है वह निरपेक्ष शुद्ध तत्त्व नहीं है इसलिए वह अजीव है। जैसे कोई स्वर्णकी पहिचान करने वाला सर्राफ जिसे शुद्ध स्वर्णसे प्रीति है उसके सामने मानोकोई ऐसी स्वर्णकी डली लावे

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

जिसमें रूपयेमें १५ आनेभर स्वर्ण हो और १ आनेभर खोट हो तो उसे भी देखकर वह यही कहता है कि क्या पीतल ले आये, क्या कूड़ा ले आये ? उसे जरा सी खोंटके कारण कूडा जचता है, ऐसे ही जिस अध्यात्मप्रेमी ज्ञानी संतके एक शुद्ध अंतस्तत्वकी रुचि है वह विकल्प, विचार, बुद्धि इनको देखकर कहेगा कि ये तो जीव नहीं हैं। ये तो अचेतन हैं। है वह चिदाभास, अचेतन नहीं है, और शुद्ध चैतन्य भी नहीं है। चिदाभास कहा है।

स्वयंके दुःखमें स्वयंका ही अपराधः—यहां यह ध्यानमें लावो कि हम जितना भी दुःखी हो रहे, जितना भीं परेशान हो रहे, दूसरेकी गल्तीसे हम परेशान नहीं होते, बात यह सत्य है। यह बात अभी ध्यानमें आये तो अब भला है, जब ध्यानमें आये तब भला हो। मगर बात यह पूर्ण सत्य है कि जगत के जीव जो भी दुःखी हो रहे है वे अपने अपराध से दुःखी होते हैं, दूसरेके अपराधसे कोई कभी दुःखी हो ही नहीं सकता. क्योंकि जीव द्रव्य तो न्यारे–न्यारे हैं। एक का दूसरेमें कोई प्रवेश नहीं, एक दूसरेमें कुछ सम्बन्ध रखता नहीं, तो दूसरेके अपराधसे कोई दूसरा कैसे दुःखी हो ? कोई लोग कहने लगते अरे हम तो आपके सुखमें सुखी हैं और आपकें दुःखमें दुःखी हैं। तो बतलाओ वे सच कहते है कि झूठ ? बिल्कुल झूठ बोलते हैं। तीन कालमें भी ऐसा नहीं हो सकता कि आपके सुखमें हम सुखी हो सकें और आपके दुःखमें हम दुःखी हो सकें। आप कहेंगे वाह देखनेमें तो आता है कि मानो कोई बड़ा प्रेमी रिस्तेदार गुजर गया। तो वहां तो वे पर वाले लोग दुःखी हो ही रहे थे, अब वहां जाकर यह रिस्तेदार भी दूसरा अथिति भी दुखी हुआ, तो वह जो दुखी हुआ तो क्या उन घरवालोंके दुःखसे दुःखी हुआ ? अरें उसको भी राग है, उसके भी उस तरहका विकल्प है, यह अपने विकल्पसे दुःखी होरहे और फेरा करने वाले रिस्तेदार सैकड़ों आते हैं। उनमें यह भी पता नहीं पड़ता कि वास्तवमें दुःखी कितने हैं। और, दुःखी होनेका रूपक सभी बनाते हैं। बहुतसे रिस्तेदार तो ऐसे भी होते हैं जो ट्रेनमें खूब हंसते हुए, तास खेलते हुए, आते हैं और जहां आपके अहमदाबाद स्टेशनमें उतरे, उस दुःखी परिवारके घरके निकट आये कि रोने जैसी सकल बना लेते हैं। उनकी भी एक कला है। याने रोना न आये फिर भी रोकर दिखा दे यह भी तो एक कला की बात है। अरे कौन किसके दुःखसे दुःखी होता है ? जो भी दुःखी होता है वह अपने दुःखसे दुःखी होता है। कोई कल्पना बनी, कोई चित्तमें बात सोचा बस उसके कारण दुःखी हो रहा, कोई किसीके दुःखसे दुःखो नहीं हो रहा, कोई किसी के अपराधसे दुःखी नहीं हो रहा, खुद खुदके अपराधसे दुःखी हो रहा। आप कहेंगे, वाह कोई मनुष्य बड़ा सज्जन है, किसीसे कुछ बोलता नहीं, फिर भी कोई दुष्ट पुरुष जब उसे छेड़ता है तो उससमय वह बड़ा दुःखी होता है। तो देखो उसने तो कोई अपराध नहीं किया और

Report any errors at www.jainsamaj.org

http://www.jainkosh.org

वह दुःखी हो गया, तो वह अपने अपराधसे कहां दुःखी हुआ ? उसे तो दूसरेने दुःखी किया सो भाई ऐसी भी बात नहीं है। जो वह दुःखी हुआ है सो अपनेही अपराधसे हुआ है। कैसे ? उसने अपनेमें यह विकल्प किया कि इसने मुझे गाली दी, यह विकल्प किया, यह अपराध है कि नही ? आत्माका स्वरूप तो है शुद्ध ज्ञानमात्र, उस स्वभाव में तृप्त हो, यह तो है इसकी मच्ची गैल, पर इसके अतिरिक्त जहां परतत्वमें लगाव लगाया, इसने मुझे यों कहा, विकल्प किया तो यह अपराध हुआ ना। तो अपने अपराधसे दुःखी होता। चाहे आप यह कहें कि कोई मुनि महाराज हैं और वे ऐसा विकल्प भी नहीं करते, कोई गाली देता, मारता पीटता, फिर भी विकल्प नहीं करते, फिर भी उन्हें परेशानी होती हैं, तो देखो दूसरेके दुःख दे से ही तो मुनि महाराज परेशान हुए। अगर मुनि महाराज परेशान हो रहे हैं तो वे भी अपने अपराध से परेशान हो रहे, दूसरेके अपराधसे नहीं। कैसे ? अरे कुछ प्रकारका उनके विचार बने तब तो दुःख महसूस करेंगे। विचार ही न बनायें और विशुद्ध आत्मा ध्यानमें रहे तो वह कष्ट न महसूस होगा, और फिर उन्होंने तो वह कष्ट न महसूस होगा, और फिर उन्होंने पूर्वकालमें विकल्प बनाया है, ऐसा ही कर्मबन्धन हुआ कि उदयमें आया सो दुःखी हुआ। तो कहनेका अर्थ यह है कि जो भी पुरुष दुःखी होता है वह अपने ही अपराधसे दुःखी होता है, किसी दूसरेके अपराधसे कोई दुःखी नहीं होता।

अपनी स्वच्छतामें प्रयोगमें ही बुद्धिमानी:—देखो बुद्धिमानी इसमें है कि अपने आपको स्वच्छ बना लें, अपने आपकी सम्हाल करलें, अपने आपकी गंदगी मिटा लें तो इसमें अपनी भलाई है, और जो दूसरों दूसरों का ही सब कुछ सोचे और अपने आपके बल्यागका कुछभी न सोचे तो उसका वह सोचना बेकार है उसमें वह ताकत भी नहीं है कि दूसरेका भला हो जाय, और खुदका तो भला हो हो नहीं रहा, इससे जरा अपना श्रद्धान निर्मल बना लो। क्यों परेशान होते ? यहींके विचारसे यहीं की सत्य श्रद्धासे, यहींके निर्णयसे अपने आपके ज्ञानप्रकाशसे सारे दुःख मिट सकते हैं। पहिला ज्ञानप्रकाश तो यह लावें कि मैं एक शुद्ध ज्ञानमात्र जीव तत्व हूँ। मैं मनुष्य भी नहीं हूँ क्योंकि मैं तो एक जीव हूँ, आत्मा हूँ। आज मनुष्यके नाटकमें आया हूँ, मिट जाऊंगा, और फिर दूसरे नाटकमें चला जाऊँगा, मैं मनुष्य नहीं हूँ, मैं तो आत्मा हूँ, और फिर बिरादरीमें लगाओ मैं अमुक बिरादरीका नही हूँ, मैं अग्रवाल, खण्डेलवाल आदिक नहीं, यह तो नाटक है, कर्मका ही खेल है, इस समाजमें मैं आ गया हूँ, पर यह मैं नहीं हूँ। मैं तो एक शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ, इसका क्या ? अरे मरकर किसी और जगह उत्पन्न हो गए या और जातिमें उत्पन्न हो गए, वहां यह भ्रम करना कि यह मैं हूँ, यह ही तो भ्रम लग रहा है। एक दृष्टान्त दिया है कि एक सूद्रीके दो बच्चे पैदा हुए तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह उन दोनों बच्चोंको कपड़ेमें लपेटकर किसी पेड़के नीचे चौहट्टेमें फेंक आयी । कुछ बात होगी, जो कुछ हो । अब पहिले तो उस पेड़के नीचे गया एक शुद्र मानो चाण्डाल, उसे वे बच्चे पसंद आये तो वह एक बच्चेको अपने घर ले गया । कुछ देर बाद वहां एक ब्राह्मण आया, उसने बच्चेको पड़ा हुआ देखा । बच्चा सुन्दर था । उसके कोई बच्चा भी न था सो वह उस बच्चेको अपने घर उठा ले गया । वे दोनों बच्चे पलपुष कर बड़े हुए । एक तो पला था चाण्डालके घरमें और एक पला ब्राह्मणके घरमें पला हुआ बच्चा तो यह अभिमान रखता था कि मैं तो ब्राह्मण हूँ, मैं तो अच्छे कुलका हूँ, मेरेको शराब वगैरह गंदी चीजें छूनी भी न चाहिए । उसका तो ऐसा संस्कार बना और चाण्डालके घरमें पलापुषा बालक यह अभिमान करे कि मुझे तो शराबका अधिकाधिक सेवन करना चाहिए, यहां तक कि शराबसे नहानाभी चाहिए । अब देखिये-एक ही मां के बच्चे थे, पर अलग-अलग पलने पुसनेसे अलग-अलग संस्कार बने, अलग-अलग अभिमान बना । तो यही दशा सब जीवोंकी है । सभी जीवोंका स्वरूप तो एक समान है, स्वरूपसे रंचभी भेद नहीं है । जो भगवानका स्वरूप है वही कीडा मकोड़ाके शरीरमें रहने वाले जीवका स्वरूप है, मगर कर्मोदयसे जो जहां पैदा हो गया, जो जहां पलापुषा, जिसको जो वातावरण मिला, उसने अपना अहंकार बना लिया कि मैं तो हूँ ।

प्राप्त औपाधिकपर्यायमे सर्वश्रेष्ठताका अभिमानः—अभी किसी ४—५ वर्षकी बच्चीसे कहो कि तू तो लड़का है तो वह तो घ्रणा करके कहेगी-अरे मैं क्यों लड़का होता ? मैं तो लड़की हूँ । तो उसकी दृष्टिमें यह बात है कि लड़की होना अच्छा है । और, किसी छोटे लड़के से कहो कि तू लड़की है तो वह भी यही कहेगा कि मैं क्यों लड़की हूँ ? मैं तो लड़का हूँ तो उसके मनमें है कि लड़का होना भला है । एक शाहपुर ग्राम है मध्यप्रदेशमें, वहांसे हम पैदल के रास्तेसे नैनागिरि जा रहे थे, साथमें और भी भाई थे । वहां एक चर्मकार (मोची) भी साथ हो गया । तो रास्तेमें चले जा रहे थे परस्परमें बातचीत करते हुए, ताकि रास्ता कटता चला जाय । अब तो उस चर्मकारका भी दिल खुल गया सो हमसे वह खूब बातें करने लगा । वह भी खूब बातें कह और हम भी । होते-होते हमने एक बात छेड़ दी कि भाई यह तो बताओ कि इन ब्राह्मण ठाकुर, बनिया, चमार, मेहतर आदिक भी जातियोंमें सबसे बड़ा कौन है ? गप्पें ही तो हो रही थीं । गप्पोंमें ही मैंने उससे पूछा, तो वह सबकी बात काट-काटकर अपनी बात रखता जाय, और अन्तमें उसने यही कहाकि सबसे बड़ी जात तो चर्मकार (मोची) है । अच्छा देखो अब भी आप लोग सब जैन जैन हैं, अग्रवाल, खण्डेलवाल, जायसवाल, परवाल, गोलालारे, गोलसिंगारे आदिक जितने जितने भी जैन हैं वे सब एक समान

Research and Promotion of Varni Vani @gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही तो हैं, उनमें कोई अन्तर तो नहीं है, पर हम तो ऐसी सम्भावना कर रहें हैं कि इनमें हर एक कोई अपनी अपनी दृष्टिमें यही रखता होगा कि बस सबसे ठीक तो हम हैं। मान लो कोई शादी विवाहकी बातआ जाय खण्डेलवाल आदि किसी से कहेंकि भाई हमारे यहां शादी करलो, तो वे आश्चर्य भरे शब्दों में कहेंगे—अरे इन भाइयोंके यहां ? हम तो न करेंगे तो बात यह बतला रहे कि जो जीव जिस कुलमें, जिस जातिमें जिस योनिमें उत्पन्न हो जाता है उसका अपने देहमें अभिमान हो जाता है कि यह मैं हूँ। पर यह मैं कुछ नहीं हूँ। बहुत नीचे डुबकी लगानी पड़ेगी और भीतर समझना पड़ेगा कि मैं क्या हूँ। एक परमार्थ शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमात्मतत्त्व। यह तो कीचड़ है, यह तो झंझट है, यह तो मायाजाल है, इससे तो संसारमें रुलना होता है। अपने अन्तः प्रकाशमान उस कारण परमात्मतत्त्वको समझो, उससे नेह लगाओ उससे रुचि करो, यह हूँ मैं जीव, तो भला हो, जायगा। देखो भलाई के मार्ग पर कोई मिल जुलकर नहीं चला जा सकता। अकेले अकेलेमें विचार करके, चिन्तन करके अकेलेमें प्रकाश बनाकर यह चल पायगा, तो मूल बात यह है कि आश्रवरहित जो आत्माका परमात्मस्वरुप है चैतन्यमात्र, उसकी प्रतीति बनना चाहिए कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ। यह शरीर मैं नहीं, मैं मनुष्य नहीं, मैं अन्य-अन्य कुछ भी नहीं। मैं तो एक शुद्ध ज्ञानमात्र तत्त्व हूँ। ऐसी प्रतीति हो तो आश्रवका स्वागत न होगा। और जिसका स्वागत न होगा वह काहेको आयगा ? कर्मका हम स्वागत कर रहे हैं, कर्मके घनिष्ट बनते हैं और संसारमें फिर हमको रुलना पड़ता है इसलिए सावधानी रखें, रागद्वेष मोहका परित्याग करें और सब जीवोंको एक समान समझें और एक निर्णय बनावें कि मैं अगर बुरा विचार करता हूँ, बुरी कल्पनायें करता हूँ, विरोधकी बात करता हूँ, द्वेषकी बात करता हूँ, अहंकार जताता हूँ या किसी के साथ छल करता हूँ तो इसमें मेरा ही बुरा होगा अन्य किसी दूसरेके अपराधसे मेरा बुरा न होगा। मै ही संसारसे बँध जाऊंगा और हमें ही संसार में कीड़ा मकोड़ा जैसी दुर्गतियोंमें भ्रमण करना पडेगा।

मुक्तिके प्रोग्राममें ही हितका लाभ—इस संसारमें प्रत्येक जीव अकेला ही जन्मता है, मरता है, सुख दुःख भोगता है। हम आप सब लोगोंकी ऐसी ही स्थिति है। किसी भी बाहरी पदार्थको देखकर मकान है, फर्म है, दूकान है, प्रतिष्ठा है, इज्जत है, सुन्दर शरीर है, बड़े आरामके साधन हैं, इन सबको देखकर मनमें रंच भी संतोष न लावें। इससे क्या होता है ? ये कुछ समयके लिए हैं, बादमें छोड़कर जाना पड़ेगा। और जितने समयके लिए हैं उतने समय भी उसके आश्रयसे हम अपने उपयोगको उस ओर लगाते हैं, सो बेचैन होते रहते हैं। इनमें सारका नाम नहीं है। ऐसा जानकर एक ही निर्णय रखें कि बाहरी पदार्थो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में हमें सन्तोषकी कोई चीज नहीं है। अब अपने आपको क्या करना चाहिए ? बाहरी पदार्थों से तो हमारा पूरा पड़ेगा नहीं। बाहरी परभावोंके प्रसंगमें तो मेरा गुजारा होगा नहीं, सब छोड़ना पड़ेगा। तब हमको अपनी शान्तिके लिए क्या करना चाहिए ? बहुत ध्यानसे एक भव में एक यह निर्णय तो बनाले और उसपर चलनेके लिए कमर कस लें। बाहरी पदार्थोंसे बिल्कुल उपेक्षा करें। जो होता है उसके जाननहार रहो। यहांसे घटनासेकी अपने संमान अपमान का निर्णय न करो। सम्मान अपमानका निर्णय इसमें करो कि मेरा आत्मा परमात्म–स्वरूपकी ओर रहे और उसमें सन्तुष्ट रहे, तो वह है मेरा वास्तविक सम्मान, और अपने स्वभाव से चिगकर बाहरी पदार्थोंमें रागद्वेष करके अपनेको अंधेरे में रखना इसे कहते हैं अपमान। जीवकी सर्वोत्कृष्ट अवस्था बस परमात्मा होनेकी है। परमात्माका स्वरूप क्या कि ऐसा आत्मा स्वयँ जो कुछ है वही मात्र रह जाय, इसके साथ रागद्वेषका कीचड़ नरहे। आत्मा केवल जानन देखनहार रहे, विकल्पसे छूट जाय ऐसी एक निर्मल अवस्थाको कहते हैं परमात्मदशा हम आप इस परमात्मतत्त्व को प्राप्त कर सकते हैं। सोचते हैं ना जैसे जीवन में कि हमको अमुक काम करने को पड़ा है, अरे वह मेरा कोई लक्ष्य नहीं है। वह तो एक जीवन चलाना है इसलिए एक उपलक्ष्य है, मेरा लक्ष्य तो यह है कि मैं कब परमात्मा होऊं कब रागद्वेष मोह भावसे मुक्त हो जाऊं।

सर्व जीवोंसे अपनी विरक्तता निरखने वालेमें धर्मपात्रता—भैया आपका संसारके इन जीवोंसे कोई सम्बंध है क्या ? आंज जो घरमें आ गए उनसे कोई लेन देनका सम्बंध है क्या ? उनके आत्मामें कोई नाम खुदा है क्या कि ये मेरे अमुक हैं ? अरे जैसे सड़कोंपर चलते हुए आदमी एक चौहट्टेपर मिलते हैं तो वे कितनी देरको मिलते हैं? वे विछुड़ जाते हैं, इसी प्रकार यह एक चौहट्टा है, मिल गए फिर विछुड़ जायेंगे। तो इतने समागममें या इससे थौड़े बहुत दूरके समागममें अपना सारा उपयोग उस तरफ लगा देनेसे बिगाड़ कितना है ? जिसकी कोई म्याद नहीं। कहो अनन्त काल तक भी संसारमें जन्म मरण करते रहें। देखते है कि कुत्ता बिल्ली कीड़ा मकोड़ा वगैरह कैसे कैसे दुःखी जीव है, उनको देखकर यही तो ख्याल करना चाहिए कि यदि हम रत्नमय धर्मका पालन न कर पायेंगे तो यही दशा हम आपको मिलेगी। तो क्या करना चाहिए ? पहिले यह निर्णय बनालो कि घर, परिवार, कुटुम्ब, इज्जत, सम्मान, ये सब मेरे लिए कुछ चीज नहीं हैं, इनसे मेरे जीवका कुछ हित नही है। पहिले तो एक यह निर्णय बनायें। अगर यह निर्णय न बन पाया और चित्तमें यह बात समायी हो कि मेरा ही तो घर है, मेरा ही तो कुटुम्ब है, यह अनोखा कितना है तो बस उसीके रह जायेंगे। कुछ समय तक संयोग है। बादमें संसारका यह परिभ्रमण है। कुछ तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चेतो। इन दुःखों को पाकर ऊब तो गए ही होंगे। अब तो इनसे मुख मोड़ो। और इन दुःखोंसे ऊबे हो तब एक निर्णय बनाओ कि मेरे लिए यह सब कुछ नहीं है। मेरे लिए तो मेरे पास मेरा धर्म है।

धर्मकी संवररूपता—धर्म क्या है उसकी बात कही जा रही है, लेकिन बहुत आसानीसे समझ जायें इसके लिए धर्मको १० प्रकारोंमें विभक्त करके आचार्यने बताया है। क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तत्त्य, त्याग, अकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य। और, ऐसी एक पद्धति भी सुझावमें दी कि भाईजिन दिनोंमें कोई रोजिगारमें भी व्यस्तता नहीं है, विवाह शादीमें भी व्यस्तता नही हैं, ऐसे भादोंके महीनेमें इनको करें, यद्यपि सालमें ३ बार कहापर्यू-षण गया है मगर भाद्रके महीनेमें ऐसा अवसर होता है कि कोई व्यवस्तता नहीं होती। रोजि-गार आदिकमें ही अगर उपयोग लगाये रहें तो भला बतलावो इस पर्वका लाभ क्या उठाया ? कुछ आरम्भ कम करें और धर्मकी उपासनामें अधिकाधिक रहें। धर्म नाम किसका है कि जो आत्माको दुःखोंसे छुड़ाकर उत्तम सुखमें पहुँचा दे। तो क्या है वह धर्म ? जो आत्माका स्वभाव है वह आत्माका धर्म है। स्वभाव क्या है ? बस जानना देखना। रागद्वेष मोह करना स्वभाव नहीं, ये तो अधर्म हैं, और केवल जाननहार रहना, ज्ञाताद्रष्टा रहना यह धर्म है। धर्मपालन है ज्ञाता द्रष्टा रहनेमें और अधर्म है मोह करनेमें। अपनी जिन्दगीका हिसाब भी लगाना चाहिए। रोज-रोज लगाओ तो बड़ा अच्छा है। उसीके लिए तो जाप देनेका समय रिजर्व किया गया है कि रोज जाप दो और उसमें अपना नफा टोटेका हिसाब लगाओ। मैंने रागद्वेष मोहमें कितना समय गुजारा और रागद्वेष न करके ज्ञाताद्रष्टा रहनेमें कितना समय गुजारा, इसका हिसाब लगाओ। रोज न लगाओ तो सालमें इन १० दिनोंमें तोलगालो कि हमने साल भरमें कितना तो अधर्म किया और कितना धर्मकी ओर रहे। धर्म है बस ज्ञाता द्रष्टा रहो। लेकिन बाहरकी बातोंमें क्रियाकाण्डोंमें धर्मका पूरा रूपश्रद्धामें लेना है। लोग उसके पीछे लड़ते झगड़ते हैं। अरे वह तो धर्ममार्गमें लगनेके लिए एक साधनमात्र था। वह साक्षात् धर्म न था। साक्षात् धर्म तो आत्मामें ज्ञानका प्रकाश है। जानन देखन-हार रहो, रागद्वेष न करो, इसे कहते हैं धर्म। धर्म होगा तो सम्वर तत्त्व होगा। मोक्षशास्त्र के इस चतुर्थ सूत्रमें सम्वर तत्त्वका वर्णन चल रहा है। सम्वर हो तो धर्म बन गया और संवर नही है तो धर्म नहीं बनसकता। संम्वर कहते हैं विभावोंको रोकना,याने नवीन कर्म न आने देना। उनके आश्रवका निरोध करना इसे कहते हैं सम्बर। वह सम्वर गुप्ति समिति धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहविजय, चारित्र इनके द्वारा होता है। ये भी एक साधन हैं। सम्वर तो एक सबसे निराली दशाकी अनुभूतिसे होता है। तो परखना है अपने आपमें कि अपना

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

शुद्ध स्वरूप क्या है ? शुद्ध स्वरूप है एक ज्ञानमात्र। पहिले मिथ्यात्वको छोड़ें तब सम्बर होगा। मिथ्यात्वके मायने देहको मानना कि यह मैं हूँ। बाह्य वैभवोंको मानना कि ये मैं हूँ। हां देखो धर्मकी बात सही–सही सुननेमें, सही, सही बोलनेमें खुद अपने आपके स्वरूपकी ओर झुकान करना पड़ता है। अगर स्वरूपकी ओर झुकान न हो और चित्त कहीं बाहर ही बाहर डोल रहा हो तो धर्मकी बातका प्रवेश नहीं होता, इसलिए बाहरी बातोंकी कल्पनायें तजकर जरा अपने आपके अन्दरमें तो देखो, शरीरमें नहीं हूँ। शरीरमें रहने वाला पिण्डमैं नहीं हूँ, कर्म मैं नहीं हूँ, विषय कषायके परिणाम मैं नही हूँ। एक शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ। उस ज्ञानतत्त्वको निहारो, उसका अनुभव करो तो उससे सम्वर तत्त्व प्राप्त होता है। देखो जीवका लक्षण उपयोग बताया गया है। उपयोग एक जानन देखनकी परिणति है। जो जानता है, समझता है इसको कहते हैं उपयोग। तो उपयोग तो मेरा स्वरूप है। परन्तु उपयोगमें जो और झांकी उठती है, रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय कषाय इच्छा जो कर्मविपाक है वह कर्मकी झांकी होती है, वह मैं नहीं हूँ।

संवरतत्त्वकी धर्मरूपता—अब यहां दो बातोंका निर्णय बनावें उपयोगमें उपयोग है और क्रोधादिक कषायों में कषायें हैं, जो ज्ञानकी वृत्ति है, यहाँजो उपयोगकी स्थिति है उसमें क्रोध नहीं पाया जाता। क्रोधमें क्रोध पाया जाता, ज्ञानमें ज्ञान पाया जाता। मैं तो ज्ञान–मात्र हूँ। मेरेमें क्रोधका प्रवेश नहीं, यद्यपि अभीइस आत्मामें क्रोध है। हां तो देख लो। पानी और दूध मिल गया, पानीमें दूध नहीं, दूधमें पानी नहीं। स्पष्ट समझमें आ रहा होगा और ऐसा मिला हुआ है कि हम उसे अलग देख नहीं सकते, पर ज्ञान द्वारा समझ सकतेकि पानी में पानी है और दूधमें दूध है। तो हमारे ज्ञानमें हमारे उपयोगमें कर्मविपाक की झांकियां चल रही हैं, प्रतिभास हो रहा है हम उसकी ओर जितना अधिक आकर्षित होते हैं उतना ही कर्मोकी बात बनतीं जाती है, उनकी सन्तान चलती रहती है, लेकिन उस कर्मविपाक में मैं ज्ञानस्वरूप नहीं हुं। मुझ ज्ञानस्वरूपमें कर्म विपाक नहीं है। अलग करना बड़ा कठिन काम है। मगर समझ लेना सरल बात है। आटा गूनकर, रखकर, पानी में वे सब आटा के कण भिग गए मगर वहां पानीमें पानी है, आटामें आटा है। कोई कहे कि अलग करके दिखाओ, तो कहां से दिखायेंगे ? ज्ञानसे समझें तो समझ जायेंगे। ऐसे ही इस उपयोगका, इस कर्मविपाकका ऐसा सम्बन्ध बन रहा है कि वे एक ही प्रदेशमें है, परिणति भी एकसी हो रही। आटा और पानीसे भी अधिक सम्बन्ध हो रहा हे। परिणति मानों एक हो रही है फिरभी ज्ञानद्वारा समझलें। कि ज्ञानमैं ज्ञान है और कर्मविपाकमें कर्मविपाक है। ऐसेविपाकसे निराला अपने आपके स्वरूपको परख लेवें। यह एक इतना बड़ा वैभव है कि जिस वैभव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का फल है (३) लोक का अधिपति होना। यह सम्बर तत्वकी बात चल रही है। जब तक सम्वर नही होता तब तक मोक्षमार्ग नहीं, धर्म नहीं, मुक्तिके रास्तेमें लग नहीं सकते। तो अब इन बाहरी बातोंकी उपेक्षा रखकर अपने अन्दर यह चिन्तन करें कि बस मेरा स्वरुप मेरी दृष्टि, मेरा स्वरुप, इसका आश्रय, यह ही मेरे लिए शरण है।

अनधिकार चेष्टाका परिणाम असार संसरण:—देखो भैया ? जो बात अपने अधिकारकी नहीं उसपर तो बुद्धि लगाये फिरते हैं और जो अपने अधिकार की बात है उसकी ओर बुद्धि नहीं लगाते। अब अनाधिकार कोई हस्तक्षेप करे तो लोग उसका नाम धरते हैं। अरे यहां अनाधिकार यह हस्तक्षेप करने जा रहे इसपर कुछ भी संकोच नहीं करते। इन परवस्तुओंपर, इस देहपर, कुटुम्बके लोगोंपर, इनपर मेरा क्या अधिकार ? वे जीव हैं, स्वयं हैं। अपने आपकी सत्ता लिए हुए हैं। जैसे हम रुलते हैं वैसे ही वे रुलते हैं। स्वतन्त्र हैं। कोई अधिकार नहीं, तो उस कमाई पर, पैसेपर, वैभवपर यह दृष्टि लगाये हैं कि यह ही मेरे लिए सब कुछ है। और देखये अपने आत्माके स्वरुपपर अपना अधिकार है। हम हैं, सदा रहेंगे, अमर हैं, कष्टहीन हैं, तकलीफका कोई काम नहीं है। अन्तर्दृष्टि करके देखो भैया, तो इस जीवको कष्टका कोई काम नहीं। सब सुखी है, सब शान्त हैं। सबमें अनन्त आनन्दके अभ्युदयकी शक्ति है। कोई दु:खी नहीं है। दु:ख तो यों हो गया कि हम अपने कुलके काम से हट गए। जैसे कोई बड़े उच्च कुलका आदमी हो और नीच काम करने लगे तो उसे लोग नाम धरते हैं, देखो तुम अपने कुलसे हट गए और खोटे काममें आ गए। तो यह ही बात यहाँ हो रही। हम अपने कुलसे हट गए। मेरा कुल है चैतन्य, चेतना, ज्ञाता दृष्टा रहना। इस कुलकी यह रीति हैं कि जानन देखनहार रहो, आगे मत जावो। जैसे अजायबघरमें दर्शक लोग देखने जाते हैं तो वहां यह नियम रहता है कि बस तुम देख लो, किसी चीजमें हाथ मत लगाओ। अगर हाथ लगाओगे तो गिरफ्तार हो जावोगे। इसीतरह यह जगतका सब अजायबघर है। अजायबघरमें सफेद मोर, बड़ा अजगर, बड़े बड़े शेर वगैरह ये कहां से आये ? यह संसारका अजायबघर ही तो है। उस बड़े अजायबघरसे पकड़कर छोटे अजायबघर में रख लिया। तो इस छोटे अजायबघरको देखनेके लिए तुम क्यों उत्सुक हो ? देखो यह कैसा बड़ा अजायबघर है, इसमें कैसे कैसे लोग हैं, कैसे कैसे जीव हैं, देख लो, इनको छुओ-मत, इनमें राग मत करो, अपने मनको डुबाओ मत। पृथक् रहो। जहाँ राग किया तो इसका पहरेदार कर्म है, यह गिरफ्तार करेगा। राग करोगे तो बंध जावोगे, विरागता करोगे तो छूट जावोगे, यह ही तो जिन आगमका संक्षेप है। रागद्वेष छोड़ो और अपने धर्मको सम्हालो। देखो जो पुरुष धर्ममार्गमें लगता है वह क्षमाशील होता है। उसके अन्दर क्षमाका गुण

 http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकट होता है। कोई तुरन्त अपराध करे तो या पहिले अपराध किया हो तो, अपराधीपर यह क्षमाभाव रखता है। जैसे कोई बड़ा काम करनेको पड़ा हो ना तो उस बड़े कामको सम्हालनेके प्रसंगमें कोई लोग अगर कुछ अपराध भी कर डालें, कुछ विघ्न भी करते हों तो उन अपराधोंको भी वह क्षमा कर डालता है। आप लोग कोई बड़ा काम अगर करते हैं तो कोई विघ्न भी आये, कोई अपराध भी करे, कोई उसमें दुष्टता भी करे तो भी आप क्षमा करते जाते हैं, क्योंकि आपको एक बड़ा काम पार पाड़ना है। तो इसीतरहसे संसारके संकटोंसे सदाके लिए छूट जाना, इसको आप कितना बड़ा काम समझते ? जगतमें कोई इससे भी बड़ा काम है क्या ? इतना बड़ा काम करने कोई चले तो यहां कितने भी विघ्न आयें, कितने भी कोई अपराध करे, कितनी भी कोई बाधा डाले मगर उन सबके अपराधों को यह ज्ञानी पुरुष क्षमा करता जाता है, क्योंकि उसकी एक धुन है कि मुझे मोक्ष जाना है, मेरेको परमात्म स्वरूप पाना है। यह क्या है ? यह तो मामूली सी बात है।

सर्वाधिक प्रियतम सहज ज्ञानस्वभावकी आराधनकी श्रेयस्करता:—हमको क्या करना है ? देखो आदत है राग करनेकी। तो इस प्रसंग में हम आपसे एक बात कहते हैं कि आप लोग कार करो, प्रेम करो, राग करो, खूब करो मगर एक शर्त आपको देते हैं जो दुनियामें सबसे अधिक प्यारा हो उससे प्यार करो, मगर ऐसी आदत न बनाओं कि प्यार किया फिर उसे बिगाड़ दिया, फिर प्यार किया, फिरउसे बिगाड़ दिया। तो ऐसा छोड़ने वाला काम न करो। जिससे प्यार करो तो प्यार करते ही रहो और ऐसा आप तब ही कर सकते हो कि जो दुनियामें सबसे अधिक प्यारा हो उससे प्यार करो तो वह प्यार निभेगा और जो छोटे बड़े प्यार होते उनमें यह बात न निभ पायगी। तो छटनी बनाओं कि दुनियामें सबसे अधिक प्यारा क्या है ? जरा खोज करो, अपने मनमें सोचो जिसे जो अधिक प्यारा हो सोच लो, फिर हम आपको बतायेंगे कि सबसे अधिक प्यारा क्या है ? देखो सर्वाधिक प्रिय वस्तुकी यह परिभाषा है कि जिससे बढ़कर और कोई प्यारा कभी भी न लगे उसे कहते हैं सर्वाधिक प्यारा। देखो-६—७ महीनेका या साल भर का जो बच्चा होता है उसे सबसे अधिक प्यारा क्या है ? अपनी मां की गोद। देखो यह बात सभीकी कह रहे हैं, हम आपभी तो कभी बच्चे थे। तो उस बच्चे को मां की गोद से बढ़कर प्यारी चीज और कुछ नहीं है। उसे कुछ भी संकट आये तो झट मां की गोद में छिपकर अपनेको संकटरहित अनुभव करता है। तो उस बच्चे को सर्वाधिक प्रिय हुई अपनी मां की गोद। वही बच्चा बढ़कर जब ४-५ वर्षका हो जाता है तो अब उसे मां की गोद प्रिय नहीं रहती। उसे तो खेल खिलौने प्रिय हो जाते हैं। मां उसे पकड़ कर अपनी गोदमें बैठाना चाहती है पर वह बालक अपनी मां

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से छूटकर बाहर भागता है। खेल खेलने में उसकी रूचि हो गई। तो अब उसे खेल खिलौने प्रिय हो गए, मांकी गोद प्रियक रहेगी तो जिसका प्यार बदल जाय उसे प्रिय वस्तु कह सकते क्या ? जो सर्वाधिक प्रिय चीज हो उसकी कभी बदल नहीं हो सकती। जो माने हुए प्यार हैं उनकी बदल हुआ करती है। वही बालक जब १०—१५ वर्ष का हो जाता है तो उसे खेल खिलौने प्रिय नहीं रहते। उसे पढ़ाई प्रिय हो जाती है। जब स्कूल में गणित सीखता है, जोड़ बाकीलगाता है तो उसे कितनी खुशी होती है। कभी किसी बालक से पूछा जाय कि बताओ ८ ८ बराबर कितने होते हैं। तो जब तक वह हिसाब लगा नहीं पाता तब तक दुःखी रहता है, जिसे कहाबत में कहते हैं नानी मर गई, और जब वह हिसाब लगा लेता है ८ ८—६४, तो कितना प्रसन्न होता है। उतनी प्रसन्नता तो उसे लड्डू पेड़ा खाने पर भी नहीं होती। तो अब उस बालक को विद्या प्रिय हो गई। विद्या पढ़ने सीखने में उसका मन लगता। वही बालक जब १८–२० वर्ष का हो जाता है तो उसे विद्या भी प्रिय नहीं रहती। उसको डिग्रीप्रिय हो जाती है। चाहे पढ़े चाहे चूल्हे में जाय, पर पास होना चाहिए। सर्टीफिकेट मिलनी चाहिए, डिग्री मिलनी चाहिए। परीक्षा होने पर वह पता लगाता है कि कहां किसके पास कांपियां गई, वह नम्बर बढ़वाने की कोशिश करता है। तो देखिये वहां उसे विद्या तो प्रिय न रही, डिग्री हो गई। वह जिस चाहे तरह से प्रयत्न करके डिग्री प्राप्त करता है। जब कुछ और बड़ा होता है, मानो २५ वर्ष का हो गया तो उसे स्त्रीप्रिय हो जाती है। वह विवाह करता है, और उस स्त्री से इतना अधिक प्यार होता है कि यदि कभी सास बहू में झगड़ा हो जाय तो वह अपनी स्त्रीका ही पक्ष लेता है। तो अब उसे ही डी. लिट वगैरह की उपाधियों से प्यार हट गया। जब कुछ और बड़ा हुआ, कुछ बच्चे हो गए तो उसे सबसे अधिक प्रिय बच्चे हो जाते हैं, उसे अब स्त्री भी प्रिय नहीं रहती। कदाचित किसी बच्चे को स्त्री पीट दे तो वह स्त्रीपर नाराज होता है। अब उसका स्त्री से भी प्यार हट गया, बच्चों से प्यार हुआ। कुछ और बड़ा होने पर जब बहुत बच्चे हो जाते हैं तो उसे धन से प्यार हो जाता है, अब बच्चे भी उसे प्रिय नहीं रहते। ये सब बातें आपकी समझमें खूब आ रही होंगी क्योंकि आप बीत रही हैं। अच्छा धन भी बढ़ गया। मानो वह बाबू जी आफिस में बैठे हुए हों, वहां घरसे फोन आया कि घर में आग लग गई, जल्दी आओ। अब वह बाबूजी बड़ी जल्दी–जल्दी दौड़कर घर पहुचे। और दिन तो घर लौटते समय रास्ते में रूककर किसीसे कुछ ही बातचीत भी कर लिया करते थे, उस दिन बिना कहीं रूके दौड़ते हुए गए वहां पहुचकर देखा तो सचमुच घरमें आग लगी थी वहां जाकर सब बच्चों को निकाला, सारा धन निकाला, पर आग अधिक तेज बढ़ती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गई। एक बच्चा घरके अन्दर ही रह गया। वह न निकल सका। तो वह बाबूजी पास खड़े हुए लोगों से कहते हैं-भैया हम १०,०००) देंगे, कोई हमारा बच्चा घर से निकाल दो। देखिए वहां बाबूजीको धन भी प्रिय न रहा। उन्हें प्रिय हो गई अपनी जान, अपने प्राण। कदाचित उसी घटना में उस बाबूजी को जाग जाय वैराग्य, दीक्षा ले लें, और अध्यात्म साधना करते समय अगर कोई शेर वगैरह जँगली जानवर या कोई शत्रु हमला करदे, जान ले ले तो भी वह जान प्राण जाने की परवाह नहीं करता। वह तो समाधि में, ज्ञानकी साधनामें लीन रहता है। तो बताओ उसे सबसे प्यारा क्या रहा? उसे सबसे प्यारा रहा अपना ज्ञान। अब ज्ञान तक तो हम ले आये, इससे आगे बढ़कर अगर और कोई जानता हो तो हमें बतावे। हम तो इतना तक समझ सके कि सबसे अधिक प्रिय चीज है ज्ञान। इससे बढ़कर और कुछ प्रिय नही। जब ज्ञान में दृष्टि जाती है तो फिर इसकी बदल नहीं होती।

क्षमाशील होकर ज्ञानरमण करनेमें कृतार्थता—जो ज्ञान ज्ञानमें रमता है। तो वह ज्ञान कही बाहर नहीं हैं उस ज्ञानकी मूर्तितो आप लोग हैं। अपने ज्ञानको सम्हालें, बाहरके रागद्वेष मोह भावको हटायें तो वह ज्ञानका लाभ अपने आपमें स्वयं मिल जायगा। उसमें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं है। देखो यह दुर्लभ मनुष्यजीवन मिला है, इसमें एक अपने आपकी सम्हाल बना लेवें तो सब सम्हाल जाय। आजके दिनमें यह धारणा बनायें कि हम क्षमाशील रहेंगे। अगर कोई बात करे जो बलमें बड़ा हो, या धनमें बड़ा हो या इज्जतमें बड़ा हो, या किसीतरह बिगाड़ करनेमें समर्थ हो उसके प्रति तो सभी क्षमा रखते हैं। वहां भी क्षमा नहीं है। मनमें कुड़ते हैं, और, कोई अपनेसे निर्बल हो उसके भी अपराधको क्षमा करदें। वह क्षमा है वीरका भूषण। ऐसी क्षमाकी बात चित्तमें आये तब तो समझो कि हमने अपने जीवनमें कोई बात प्राप्त की। तो सम्बरके उपायोंमें एक बहुत आवश्यक सुगम उपाय है यह उत्तम क्षमा। सम्यग्दर्शनके साथ-साथ क्षमा भी प्राप्त हो। ऐसी उत्तम क्षमा भव भवके कर्मबन्धनोंको काटनेमें समर्थ है, नवीन कर्मोके आनेके रोकनेमें समर्थ है और अपने को तृप्त करनेमें समर्थ है। कषाय करके कोई आनन्द न पा सकेगा। जो भी आनन्द पा सकेगा वह कषाय छोडकर ही पा सकेगा। तो ऐसे कषाय भावोंको दूर करके और अपने आपके स्वभावकी सुध ले करके अपने आपमें आप तृप्त रहना, यह काम अगर इस जीवनमें बन सके तो भैया समझो कि हमने कोई अलौकिक कार्य किया और यह न बन सका तो जीवन तो सभी लोग पाते हैं सभीका जीवन है। उस जीवनसे क्या लाभ है? संसारका भ्रमण है, रुलना है। उस जीवनसे इसका कोई लाभ नहीं है। जीवन तो जीवका जीवमें

Kundkund Kahan Parmarthik Trust, Mumbai. kundkundkahan@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सदैव जीवित है। उस सहज अमिट जीवनकी दृष्टि न करके विनश्वर संयोगभव जीवन को जीवन समझ कर उस जीवनकी रूचि करना अपनी विडम्बना करना है।

परभावविविक्त अन्तस्तत्त्वकी श्रद्धा विना मुक्तिकी असंभवता—यह जीव स्वभावसे ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। इसका स्वरूप ही ज्ञानानन्द है। इसको किसी प्रकारका कष्ट नहीं। इसमें किसी भी प्रकारका अधूरापन नहीं, ऐसा इसका स्वभाव है। फिर भी आज वर्तमान हालत जब देख रहे हैं तों संसारके सभी प्रानियोंकी हालत शोचनीय है। दुःखी रहते हैं। विकल्प करते हैं, क्षोभ करते है, परेशान होते हैं, जन्म मरणका दुःख भोगते हैं। इस संतापका विनाश करना यह सबसे वड़ा भारी काम इस जीवनमें है। उन सबका विनाश इस भवमें तो न हो पायगा। मगर उपाय तो बनाना चाहिए। उपाय बन जायगा तो हो जायगा। यह पंचम काल है। यहां साक्षात् मोक्ष नहीं है, लेकिन मोक्षके प्रारंभिक उपाय पर तो हमारा अधिकार चल सकता। तो हम सम्यक्त्व प्राप्त करें और सम्बर निर्जरा तत्त्वका उपादान करके, ग्रहण करके मुक्तिके मार्गमें बढ़े चलें, यह हमारा आज प्रथम कर्तव्य है। तो कैसे होगा कर्मका सम्बर, कर्मकी निर्जरा, तो देखिये—कर्म दो तरहसे जानना चाहिए द्रव्यकर्म और भावकर्म। जो मुझमें भाव उत्पन्न होते, रागद्वेष विकल्प विचार तर्कणायें ये सब भावकर्म हैं और इनके निमित्तभूत जो द्रव्यकर्म हैं, ज्ञानावरणादिक ८ प्रकारका कर्म है। जो जीवके साथ एक क्षेत्रावगाह बन्ध है वह द्रव्यकर्म है। तो कैसे द्रव्यकर्मसे मुक्ति मिले और भावकर्मसे मुक्ति मिले, उसका उपाय देखिये तो मूलमें एक ही उपाय है। द्रव्यकर्मसे रहित, भावकर्मसे रहित इसमें स्वभावकी श्रद्धाकर लीजिए मैं ज्ञानमात्र हूँ, अपने आपमें ज्ञानास्वरूप हूँ, इसमें अन्यका प्रवेश नही, ऐसी श्रद्धा करना, ऐसा ही ज्ञान बनाना और ऐसे ही उस ज्ञानभावमें लीन होना, इसको कहते हैं मोक्ष का उपाय देखिये जैसे चौकीपर कूड़ा करकट जमा है या बीट जमा है और इस चौकीको मुक्त करना है मायने कूड़ा करकट बीट आदिक जो जमा हैं उनसे इस चौकीको मुक्त करना है मायने कूड़ा करकट बीट आदिक जो मैल जमा है उस मैल से रहित चौकीको बनाना है, तो जो चौकीको निर्मल बनाता है उसके मनमें यह श्रद्धा है कि नहीं कि चौकीके स्वभावमें मल नहीं, कचड़ा नहीं, बीट नहीं। चौकीका स्वभाव तो चौकीमें जो कुछ है स्वयं, सो है, ऐसी श्रद्धा न हो तो चौकीको साफ कर सकेगा क्या ? अगर पहिलेसे जानें कि यह तो चौकी की चीज है, जितना मैल जमा है यह चौकी का स्वरूप है तो चौकीको साफकर सकेगा क्या ? इसीतरह अपने आत्माको अगर साफ करना है मायने कर्मबन्धन से मुक्त करना है तो यह श्रद्धान बहुत आवश्यक है कि इस द्रव्यकर्म भावकर्म रागादिक भावोंसे मैं निराला हूँ, मेरे स्वभाव नहीं। में तो भीतरमें पूराका पूरा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विशुद्ध ज्ञानस्वरूपको लिए हुए हूँ। यह श्रद्धा करना आवश्यक है। तो ऐसा ही उपयोग निरन्तर बनायें, क्योंकि वह उपयोग अगर यहां नही रमता है और उपयोग बाहरी पदार्थोंमें रमता है तो वहां सिवाय क्लेशके और कुछ नहीं है। जहां क्लेश है वहां कर्मबन्धन है, जहां आनन्द है वहां कर्मबन्धन नहीं है

आनन्दकी सुखदुःखातीतता—भैया ऐसा भी कहे तो कोई हर्ज नहीं संसारके सुखमें भी क्लेश संसारके दुःखमें भी क्लेश, इसलिए सांसारिक सुख को भी क्लेश और दुःखको भी क्लेशके खातेमें जमा करें। सांसरिक सुखको आनन्द खातेमें जमा मत करें। वह आनन्द नहीं आनन्द तो आत्मदर्शन, आत्मानुभव आत्मस्वभाव और आत्मरमणमें यहा जो कुछ एक परम सहज आल्हाद उत्पन्न होता है उत्कृष्ट विलक्षण, किसीके पूर्ण है किसीके कम है, वह कहलाता है आनन्द। उस आनन्द से कर्म झड़ते हैं। कष्टसे कर्म नहीं झड़ते। जैसे लोगोंकी यह दृष्टि बन गई कि व्रत तप करनेमें कष्ट है और बेकार चीज है, उससे लाभ नहीं है, अरे जो व्रत तप करते हुए कष्टका अनुभव करता हो बात सही है, उससे लाभ नहीं है किन्तु व्रत तप करते हुएमें जो अपने भीतर आनन्द मानता हो, ज्ञानदृष्टिकी तृप्ति मानता हो वह आनन्द तो कर्मनिर्जराका कारण होता है। उपवासका क्या महत्त्व है, इस बातको वह ही तो समझ सकेगा जो ज्ञानपूर्वक उपवास रखता है उसका ऐसा चित्त होता है, ऐसा मन होता है कि जिसे उससमय एक बहुत अच्छा वातावरण मिलता है। व्रत, तप आदिक सम्यक्त्व बिना भी करे कोई तो भी पाप बन्ध बराबर तो न होगा। पापसे जो हानि है उससे तो बच जायगा, और, सम्यक्त्वसहित व्रत, तप, संयम बने तो वह मोक्षमार्ग पर चलेगा, उससे मुक्तिका मार्ग बनेगा। तो देखिये बात है अपने आपकी ज्ञानमात्र अनुभव करनेकी मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, मेरेमें इच्छा नहीं, इच्छा मेरा स्वरूप नही, इच्छा ही, परिग्रह है इच्छा ही बन्धका कारण है। मेरेकिसी भी बाह्य पदार्थमें इच्छा नहीं है। यह बात तब बनती है ना जब यह ज्ञानमें आ जाय कि मेरा परसे सम्बन्ध नहीं, पर परमें है, मैं मुझमें हूँ, परका मैं कर्ता नहीं, परका मैं भोक्ता नहीं। मैं तो अपने आपकी वस्तुमें परिणमन करता रहता हूँ। इसके सिवाय दूसरी बात है ही नही यहां पर, ऐसी जिसकी श्रद्धा हो वह ही इच्छापर विजय प्राप्त कर सकता है। तो जिसको ऐसा अपने भीतरका परिचय है कितना ही उसपर कर्मका उदय आये मगर वह कर्मसे लिप्त नहीं होता। भला सुकुमाल मुनिका शरीर स्यालिनियोंने चौथा, खून निकल आया, मांसकी लोथड़ें प्रकट हो गई, इतना होनेपर भी उपयोग निर्मल रहे, इस ज्ञानस्वभावमें ही उपयोग मग्न रहे, यह बात दूसरोंको कठिन दिखती है लेकिन जिसने इस ज्ञानस्वभावको ही आत्मीय आनन्द रूपमें अनुभव किया, शरीर तो यों है जैसे कि और शरीर ऐसे ही परद्रव्य जिसने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

शरीर को मान लिया भीतरमें, जिसका इतना दृढ़ श्रद्धान है उसको उस समयमें कोई बाधा नहीं होती और कोई विलक्षण ही आनन्दका अनुभव वह करता रहता है।

आत्मीय आनन्दके उपभोगमें कर्मका प्रक्षय—वह देखो सुकुमाल मुनि, किसके प्रतापसे उन्होंने उर्द्धगति पायी। उन सुकौशल मुनिको सिंहनीने खाया, उनका वक्षस्थल बिगाड़ा, उनके मस्तक को नोचा, इतने पर भी वे अपनी आत्मसाधना से रंच भी नहीं चिगे, वे भी तो आनंदमय हुए ? अरे कष्ट तो वहां था ही नहीं। सहन करने की बात तब ही तो आये कि जब कष्ट हो, कष्ट तो उस उपयोग में था ही नहीं, शरीर की बात शरीरमें हो रही, वह अपने आत्मस्वरुपको अपने आत्मामें मग्न करता रहा है। ज्ञानका यही उपयोग चल रहा हैं। कष्टका अनुभव भी नहीं है। उस अनुभवके प्रतापसे संसार से मुक्ति होती है। तथ्य तो भाई यही : कि यह निर्णय बनावें कि बाहरमें आनन्द नहीं है। किसी भी बाह्य पदार्थसे मेरे को आनन्द न मिलेगा। आनन्द मिलेगा तो मेरेको मेरे आत्मप्रदेशमें ही मिलेगा अन्य वस्तुमें आनन्द नहीं है, झंझट है, यह राग आग है। किसी भी पर जीव के प्रति राग करे तो आगकी तरह जलन करती है। श्रद्धा बनायें, परिस्थितिवश बोलना पड़े तो बस बोललें परिस्थितिवश तो जिस चाहे से प्रेम से बोलते हैं। दूकान में, घरमें रहते हैं, पेट पालन करते हैं, परिस्थिति ऐसी है तो आपको कुटुम्ब से बोलना पड़ता है तो बोल ले, पर श्रद्धा यह बतावें कि यह मेरा कुछ नहीं है। मैं तो इन सब से निराला ज्ञानमात्र हूँ।

ज्ञानाराधनामें ही शान्तिकी संभवता—शान्तिका काम आजसे न लो आपकी मर्जी किन्तु अगर शान्त हो सकें, मुक्ति पा सकें तो यह ही उपाय करेंगे तब पा सकेंगे, दूसरा कोई उपाय नहीं है। तो ऐसे अपने ज्ञानस्वरुपमें निहारकर इन विभावोंसे उपेक्षा करना उपभोगसे उपेक्षा करना और एक ज्ञानस्वरुप की आराधनामें रहना, बस इसीसे सम्बर होता है; इसीमें दस धर्म आ गए। सब कुछ अपने आप आ जाता है। एक ज्ञानमात्र स्वरुप की बात है वह सब इसमें अपने आप आ जायेगा। क्रोध न करना, घमंड न करना, मायाचार न करना, छल कपट न करना, एक अपने आप पर करुणा करलें, दया करले, दूसरा जीव कोई मददगार नहीं किसके पीछे अपने आत्मा को खराब करना : कौन मेरा प्रभु है, कौन ईश्वर है, कौन साथी है ? किसके लिए अपने आत्माको बरबाद करना और जन्म मरणका रास्ता लेना क्या जरुरत पड़ी है ? किसी प्रकारका छल करनेकी क्या जरुरत पड़ी है कि लोभ कषायको मनमें रखें। परिस्थिति है तो वहां आप अपना बजट बनायें, एक घर है, आपकी एक संस्था है, आप उसमें संस्थाके एक मेम्बर की भांति रहो। राग न करो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सदस्य (मेम्बर) भी तो किसी संस्था में करनेके लिए तत्पर रहता है, उत्साहित रहता है मगर उसकी श्रद्धामें इतना व्यामोह नहीं है इसके ही सहारे मेरा जीवन है। करता सब कुछ हैं। जैसे मोही मानव फर्मको तो मानते हैं कि वह मेरे जीवनका एक सहारा है, इसी तरह ज्ञानी पुरुष मानता है कि मेरे ज्ञानस्वरुपकी जो आराधना है यही मेरा प्राण है, यही मेरा सहारा हैं, बाकी तो सब परिस्थितिवश करना पड़ता है। परिवार तो एक संस्था है, मैं तो उसका एक मेम्बर हूँ। जो बड़ा पुरुष है वह अपने परिवार में प्रेसीडेन्ट (प्रधान) का काम कर रहा है। मगर उसमें आपका है क्या ? आप तो अपने आत्माके अधिकारी हैं, दूसरेकी आत्माके अधिकारी नहीं है।

उपयोगका स्वभावमें संयमन व प्रतपनका प्रताप—जब क्रोध मान माया लोभ कषाये दूर हो जाती हैं तो आत्मामें ऐसी पवित्रता जगती है कि वहां सब सच्चाई प्रकट हो जाती है। अब वहां असत्यका काम न रहा। जहां सच्चाई प्रकट हुई कि वहां वास्तविक संयम बनने लगेगा और फिर संयम होने से, वह सच्चाई के होने से आत्मामें एक तपश्चरण होना, प्रतपन होना जिसके फल से यहाँके रागद्वेष मोह सब दूर होते चले जाते हैं, और यह प्रकट अकिञ्चन बन जाता है। ब्रह्ममें लीन होनेका यह ही तो उपाय है। देखो जैसे एक आतसी कांच आता है उस आतसी कांचके पीछे कुछ कागज के टुकड़े या रुई रख दी जाय और उसमें सूर्यकी किरणें केन्द्रित करके सूर्यका प्रकाश डाला जाय तो वह कागज या रूई जल जाता है। तो वहां हुआ क्या ? कांच तो एक साफ होना चाहिए निर्मल होना चाहिये पहली बात। और फिर सूर्यकी किरणें केन्द्रित हो जाना चाहिए, दूसरी बात। फिर नीचे तपन हो जायगी। रूई पर वे किरणें पड़ी तो वहां प्रतपन हो जायगा, फिर वह रूई जलने लगेगी। फिर वहां क्या रह जायगा ? फोक, अकिञ्चन रह जायगा, याने कुछ नहीं रहा। तो क्या फिर रहा ? जो है सो ही रह गया। तो इसीतरह क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक का त्याग होनेसे पवित्रता जगी, सच्चाई जगी, स्वच्छता हुई, अब अपने उपयोगकी किरणोंको केन्द्रित किया। जो उपभोग यहां वहां भागता था सबको केन्द्रिय कर दिया। संयत हो गया। उपयोगके संयत होने से यह प्रतपन हुआ, इस चैतन्य आत्मामें एक प्रताप जगे जिसके कारण रागद्वेष मोह जितने भी हो रहे थे वे सब दूर होते चले गए। तब यह आत्मा अकिञ्चन रहा, उस समय यह अपने स्वरूपमें लीन होता है, यह उसका ब्रह्मचर्य है। यह एक वैज्ञानिक पद्धति है कि कैसे हम मुक्त हो सकते हैं। जहां हम कर्मबन्धनमें इतना फँसे हैं तो क्या उपाय है कि हम मुक्त हो सकें ? ये १० धर्म एक वैज्ञानिक ढंग से हैं। यह उपाय करलें तो मुक्ति अवश्य पा लेंगे। तो ऐसे इन दश धर्मों का सहारा लें और अपने मूलमें अभेद दृष्टिसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानमात्र का सहारा लें तो ऐसा तपश्चरण चलेगा, प्रतपन बनेगा कि कर्म दूर हो जायेंगे, मुक्ति प्राप्त होगी। देखिये—सम्यग्दर्शनके लिए प्रयोजनभूत ये ७ तत्त्व ठीक रहेगा, इनमें से कौन से तत्वकी श्रद्धाकी जायकि मुक्तिका मार्ग मिले। दो तो मानने ही पड़ेंगे, जीव और अजीव, जिनका कि झगड़ा युद्ध चल रहा है अब तक बरबाद हो रहा है यह आत्मा भगवान जिस अजीव के प्रसंगमें उपाधिके सम्बन्धसे और उस ओर उपयोग लगानेसे उस अजीव के संपर्कसे यह भगवान आत्मा बरबाद हो रहा है। तो इतनी बात तो मानना पड़ेगा कि जीव और अजीव दो का यह सम्पर्क है, उसमें यह झगड़ा चल रहा है। तो यह झगड़ा मिटाने को क्या करें ? झगड़ा मिट गया, इसके मायने है मोक्ष। झगड़ा मिटनेके लिए क्या काम करना ? जिससे झगड़ा हो वह काम न करें और जिससे झगड़ा मिटे वह काम करें। तो झगड़ेका कारण है आश्रव बन्ध। बन्ध स्वयं झगड़ा है। झगड़ेका कारण है आश्रव। आश्रव न करें तो सम्बर हो गया।

संवरपूर्वक निर्जरासे आत्माकी निर्भारता—अब सम्बर तो हो गया, आगामी कर्म तो मानो रुक गए और नवीन और पुराने कर्म अभी इतने बन्धे हैं कि अगर इतना ही हिसाब कोई लगाये कि नये कर्म न आयें, पुराने कर्मेको क्षमा करदें, उनको समयसे पहिले न खपावें और नवीन कर्म न आयें, इतनी ही काम रखें तो कितनी देर लगेगी मोक्ष होनेमें। इसजीव के साथ इतने कर्म बन्धे हैं कि आजके बांधे याने एक क्षणके हुए कर्मका उदय कबतक आयगा ? ७० कोड़ा कोड़ी सागर व्यतीत हो जाय। जिसके सम्बर होता है उसके इतने कर्म तो नहीं रहते अंतः कोड़ा कोड़ी रहते हैं मगर कोड़ा कोडी से समझिये कर्म कितने देर तक इस जीवके पास रहते हैं यह एक क्षणमें बांधे हुए कर्मकी बात कह रहे हैं, फिर तो जो रात दिन कर्म बांधे जा रहे हैं उसका अंदाज लगा लेना। एक क्षण में बांधे हुए कर्म अज्ञानी मिथ्यादृष्टि मोही जीवके ७० कोंड़ा कोड़ी सागर तकके लिए कर्म बन्ध जाते हैं। अब जरा कोड़ा कोड़ी सागरका अर्थ समझिये वह बड़ा भारी काल है। वह गिनतीसे न बताया जा सकेगा। उसको उपमासे बताया जायगा। इसे कहते हैं उपमाप्रमाण। मान लो कोई २००० कोश का लम्बा, चौड़ा, गहरा, एक गड्ढा है और उसमें कोमलसे कोमल बालके इतने सूक्ष्मसे टुकड़े किए जायें कि जिनको किसीभी प्रकारसे दूसरा टुकड़ा न हो सके उन बालांशोंको उस गड्ढेमें ठसाठस भर दिये जाँय और उसपर हाथी भी फिरा दिया जाय ताकि वे बालके टुकड़े खूब दब जायें। अब उन टुकड़ोंमें से १०० १०० वर्षमें एक एक टुकडा निकाला जाय, तो इस क्रमसे सारे टुकड़े निकलनेमें जितना समय लग जाय उतने समयका नाम हैं व्यवहारपल्य और उससे अनत गिनते गुणा काल लगे तो उसे कहेंगे उद्धार पल्य और उससे अनगिनते

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

गुणा काल लगे उसे कहते हैं अद्धापल्य और एक करोड़ अद्धापल्यमें एक करोड़ अद्धापल्यका गुणा करनेपर जो लब्ध हो उतने समयको कहते हैं एक कोड़ा कोड़ी अद्धापल्य, ऐसे १० कोड़ा कोड़ी अद्धापल्यका नाम है एक सागर ऐसे एक करोड़ सागरमें एक करोड़ सागरका गुणा किया जाय तो उतने समयका नाम है एक कोड़ा कोड़ी सागर ऐसे ७० कोड़ा कोड़ी सागर तक का कर्म बन्ध हो गया उदयकालमें आयेंगे, आबाधा कालके बाद आते रहेंगे, इतने काल तक रहेंगे। आना एक तो ऐसा होता ही नहीं। जिस शुद्ध परिणामके कारण कर्मका सम्बर होता है उसीशुद्ध परिणामके निमित्तसे कर्मनिर्जरा भी होती है, फिरभी कल्पनामें मानलो बन्धन समझनेके लिये कि अगर कोई कल्पना करके मान ले कि सम्बर ही सम्बर होता, निर्जरा नहीं होती, तो वह कितना बड़ा समय है। वह समय भी कम हो जाता है ज्ञान व वैराग्यके कारण संवरपूर्वक यह निर्जरा आत्मापर से बोझ दूर कर देती है। इस तरह सम्बर और निर्जरा इन दो तत्त्वों पूर्वक जीवका मोक्ष होता है। यों यह मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्व हैं

ज्ञानद्वारा ज्ञानमें ज्ञानको रमानेके अनुग्रहमें कृतार्थता—अब देखिये-इतनां तो सबको अंदाज है कि जब सारे समागमको भूल जाते हैं और एक केवल ज्ञानस्वरुप आत्मा भगवान हीं ज्ञानमें रहता है उस समय पूर्ण आनन्द हो जाता है। 'करि उपाय देख हुमन माही मूदहु आंख कितउ कछु नाहीं।' जिस समय इन्द्रिय व्यापार रूक जाये, मनकी कल्पनाओंकी दौड़ रुक जाय उस कालमें जो एक स्थिरता होती है, धीरता होती है, ज्ञानमें ज्ञानस्वरुपका परिचय होता है, अनुभव होता है, बस मेरी वही है सम्पत्ति, वही है सम्पन्नता, यह ही मेरे को काम देगी, बाहरकी कोई चीज इस आत्माके काम न आयगी। देखिये अनादिकालसे रुलते-रुलते आज हम कुछ बड़े हुए याने मनुष्य हुए। मन अच्छा मिला, ज्ञान की तर्कणा पायी। तो बड़ी दुर्लभतासे तो आप हम लोग एक महान पर्यायको प्राप्त हुए, महत्वशाली पर्यायको को पाया। अब ऐसे समयमें अगर इस पर्यायका दुरुपयोग किया, विषय कषायोंमें अगर इसको लगाया, तो जब इतनी बड़ी पर्याय का हम दुरुपयोग करनें लगे तो इस पर्यायको फिर पा सकनेकी आशा है क्या ? और जब यह पर्याय न मिलेगी, मिल गई गंदी पर्याय तो उसमें फिर क्या बीतेगी ? अभी तो हर बातका हठ बनाते हैं कि मुझे यह चीज चाहिए। कभी कभी तो भोजन करने वालाभी हठ कर लेता है कि मुझे तो यह ही चीज खाना चाहिए। एक बारकी बात है कि एक नीमखेड़ा ग्रामसे हमारा किसान आया। जब हम घर रहते थे उस समय की बात है, तो वह किसान दुपहरबाद असमयमें आया तो हमने घरमें कहाकि इसे रोटी बनाओ और खिलावो। तो मना किया। जब मना कर दिया तो हमारे गुस्सा आयी और हमने घरके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भीतर जाकर चूल्हा फोड़ दिया। हमें गुस्सा इस बात पर आयी कि देखो बेचारा गरीब आदमी द्वार आया है, उसे खाना बनाकर खिलवानेको कहा और घरमें मना कर दिया। तो चूल्हा फूट जाने पर हुआ क्या कि काफी समय तक हम भी भूखे बैठे रहे और वह भीं बैठा रहा। और बहुत देरमें अन्य साधनों पर किसी तरह बनाकर तब खिलाया गया। तो कोई थोड़ी भी हठ करे तो उसमें कुछ लाभ नहीं है। चाहे वह घरमें हठ हो चाहें परिजन में हठ हो, चाहे समाजमें हो, चाहे अपने आत्मा में हठ हो, किसी का हठ कोई दूसरा नहीं करता है। जो भी हठ करता है वह अपने आपमें करता है, जो विकल्प हुआ, जो कषाय जगी, जो इच्छा जगी, जो तर्कण उठी उस विकल्प और तर्कणामें यह हठ कर लिया कि यह ही ठीक है। यह ही मैं हूँ। इसके सिवाय मेरा कुछ नहीं है। यह ही मेरा पूरा वैभव है बस अपने आपकी पर्यायमें, परिणमन में भावोंमें यह हठ बनायें है, बस इस हठ का परिणाम थोथा है। हठ बनावे तो जो सहज ज्ञानस्वरुप है उसका हठ करें यह ही हूँ मैं। तथा जो यहां ऐसा भेद करेगा कि जो यह उदय आ रहा, जो ये रागद्वेष झलक रहे, सो ये कर्मविपाक हो रहा, यह कर्मोकी चीज है, यह मैं नहीं हूँ। मैं इनमें न लगूं, मैं इनसे हटकर अपने ज्ञानस्वरुपमें ही रहूँगा। इस तरहका आप हठ करें तो करें। सत्यका आग्रह करें। भैया आजदी हासिल करनेके दो ही तो उपाय है। जैसे यहां देशका मुक्ति आन्दोलन चला था न भाई, तो वहां क्या उपाय बनाया था। सत्याग्रह और असहयोग। खूब सोचलो जिसके पास हथियार नहीं, लड़ नहीं सकते, ऐसी प्रजा अपनी मुक्ति चाहे गुलामी से तो वह कैसे पेश पा सकती है ? बतलाओ जरा। तो दो ही तो बात किया था (१) सत्याग्रह और असहयोग। सत्याग्रह तो यह था कि जो हमारे देश की वस्तु है उस पर हमारा अधिका है। जैसे नमक बनाने पर बड़ा भारी वार लगा रखा था। तो उनका यह था सत्याग्रह कि हमारे भारत की वस्तु पर हमारा देशवासियोंका अधिकार है, यह था उनका सत्याग्रह और अहयोग क्या था कि जो भी विदेशी वस्तुयें थी कपड़ा या और और चींजें, तो उनका बहिष्कार करना, उनकी सहयोग न देना, जैसे फैल्ट केप का बहिष्कार किया था। ये दो हुए सत्याग्रह और असहयोग तो जब यह विभाव कर्म सरकार हमारे ऊपर बड़ा जुल्म ढ़ा रहा है, हम गुलामीमें हैं, बन्धनमें पड़े हैं, बन्धन दशामें आ गए हैं तो हम क्या करें सो उपाय बताओ जिससे कि आजाद हो सकें और उन कर्मबन्धनें से मुक्ति पा सके। उसका उपाय है सत्याग्रह और असहयोग। सत्याग्रह बनाओ जरा, सत्य क्या है ? मेरा जो मेरे सत्में अपने आप निरपेक्षतया स्वतँत्रतया जो आज हो वह सत्य है। वह सत्य क्या है ? ऐसा यह आत्मा। दर्पणमें सत्य क्या है ? दर्पणमें दर्पणकी सत्ताके कारण दर्पणकी ओर से दर्पण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में जो स्वच्छता है वही तो दर्पणका सत्त्व है या दर्पणके सामने लाल कपड़ा कर दिया, दर्पणमें छाया आ गई तो क्या वह दर्पण का सत्व है ? नहीं। आप स्पष्ट समझ रहे हैं कि वह दर्पणमें बाहरकी उपाधि है। कोई छाया आयी, कोई छाया आयी, कोई प्रतिबिम्ब आया तो वह दर्पणका सत्व नहीं है। दर्पणका सत्व तो दर्पणकी निजी स्वच्छता है। तो मेरेमें जो कर्मउपाधिका निमित्त पाकर जो यह रागद्वेषादिक प्रतिफलन उटती है, ये परिणाम उत्पन्न होते हैं, विकल्प होते हैं, क्षोभ होता है, क्या यह मेरा सत्व है ? यह भी सत्व नहीं है मेरा सत्व तो मेरा निरपेक्ष पारिणामिक ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञान ही मेरा वैभव है, ज्ञान सिवाय मेरा और कुछ नहीं है। सत्याग्रह रखो और असहयोग करो। जो मेरी चीज नहीं है, मुझ पर लादी जा रही है ? ये रागद्वेष, अहंकार व्यामोह, विषय कषाय, इच्छा, कर्मविपाक ये सब मुझपरलादे जा रहे हैं। ये मेरी वस्तु नहीं है। मुझे इनका सहयोग न चाहिए, ये हटें, इनसे मेरी उपेक्षा है। मैं तो अपने आपके सत्य स्वभावका ही आग्रह करुंगा, और मैं इसमें ही मुक्त होऊं, इसमें ही मैं आनन्दमग्न होऊं। मुझे बाह्य वस्तुका सहयोग न चाहिए। इनमें असहयोग करो। तो अपने आपके स्वरूप का आग्रह करना यह है सत्याग्रह और जो बाहरी मेल है, जो बाहरकीं वस्तुओंको उपाधियोंको लगाया है उनसे असहयोग करो तो देखो कैसे मुक्ति न प्राप्त होगी। यह ही तो मुक्तिका उपाय है

सुख दुःख दोनों विषोंके त्यागकर, सहजानन्दामृतपानकी सम्मत्ति—भैया ? सत्यके आग्रह और परभावके असहयोग ही ये सब सम्वर निर्जरा गर्भित हो जाते हैं। इसतरह सम्वर तत्व और निर्जरा तत्त्व ये उपादेय तत्त्व मेरेमें प्रकट होओ, इनकी मेरेमें उपासना बने तो मुक्ति अवश्य होगी। परमात्मा तो पूर्ण आनन्दमग्न है तब ही तो हम आप उनकी उपासना करने आते हैं, और अन्तरात्मा ज्ञानी पुरुष ये भी कुछ आनन्दमग्न हैं मगर कुछ-कुछ उनको कष्ट भी है, और ये बहिरात्मा तो सदा कष्टमें हैं, उनको तो आनन्दकः नाम ही नहीं है। अज्ञानीं पुरुषको तो चाहे बहुत संतान हो जायें, चाहे वह बड़ा धनिक बन जाय, चाहे बड़ा राजपाट भी मिल जाय, मगर मिथ्यात्व होनेके कारण उसे निरन्तर कष्ट है। वह एक क्षणकों भी आनन्द नहीं पा सकता। कष्टकी दशायें होती हैं भाई कोई होता है मीठा विष और कोई होता है कड़वा विष। अब कड़वा विष पिये तो भी मरे और मीठा विष पिये तो भी मरे। बल्कि एक बार तो ऐसा भी हो सकता कि कड़वा विष पिये तो उससे अलग भी हो सकता, क्योंकि उसके कड़वापनके कारण अरुचि करेगा। मुझे नहीं पीना है, यह ठीक नहीं है। एक बार उसे मौका मिल सकता है कड़वे विषसे हटने का भी मगर मीठा विष तो चूंकि तुरन्त पीनेमें मीठा लगता है, अच्छा लगता है इसलिए उससे हट

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

http://www.jainkosh.org

का बहुत कम अवसर है। तो यहां समझिये कि यह संसारका सुख मीठा विष है और संसार का दुःख कड़वा विष है। देखो जब कोई दुःख आता है तो उससमय लोग प्रभुका स्मरण भी करते हैं मगर सुख हो, ठाठ हो, बड़ा मौज हो तो उसमें प्रभुका स्मरण करना बड़ा कठिन हो जाता है, क्योंकि वह मीठा विष है। कड़वे विषसे तो उपेक्षाकी जा सकती है मगर मीठे विषकी भी उपेक्षा करना चाहिए, किन्तु उस मीठे विषकी उपेक्षा करना कठिन पड़ जाता है। यही बात सांसारिक सुखोंमें है। इनसे प्रीति न करें देखिये इस सोरे जीवनमें अनेकों वर्ष तो धर्मकी उपासनाकी, पर्यूषण पर्वमनाये सब कुछ किया, मगर कमसे कम एक निर्णय तो बना लो कि यह संसारका सुख एक मीठा विष है और बाकी प्रतिकूल बातें, कष्टकी बाते ये सब कडवे विष हैं। दो तरहके ये विष हैं, इनके पीनेसे हमारी बरबादी है, भव भवमें हमें मरण करना पड़ता है। ऐसी सहज आनन्दके अनुभवमें सर्वप्रकार अनाकुलता व पवित्रता है ऐसी श्रद्धा बनावें। अगर सत्य श्रद्धा हो जायगी अपने आपकी तो जन्म मरणसे रहित हो जायेंगे।

सद्भक्तिकी अव्यर्थता।—एक कोई भक्त था। उसने अपने घरमें एक चैत्यालय बनवा रखा था। वह बड़ा गरीब घर था। रोज—रोज वह भगवानकी पूजा करता, अभिसेक करता, आरती करता और प्रभुकी भक्तिमें वह अपना अधिकाधिक समय गुजारता, आनन्दमें रहता इसतरहसे उसके १५—२० वर्ष गुजर गए। उस प्रभुभक्तिके प्रसादसे वह मालोमाल भी हो गया। एक बार क्या हुआ कि चार डाकू उसके घरमें घुसे और कहा कि देखो जितना तुम्हारा धन है निकालकर रख दो, तुम्हारा सब धन भी लेंगे और साथ ही जान (प्राण) भी लेंगे। तो वह भक्त बोला—लीजिए यह चाबी, सारा धन भी निकाल लीजिए और यह जान भी आपके सामने हाजिर है। मरने का मुझे कुछ डर नहीं, मगर एक बात सुनो तो सुन लो। मैंने जिस प्रभुकी बीसों वर्षोंतक भक्तिकी उनको अगर आप कुछ अवकाश दें तो मैं नदीमें सिखा आऊं और फिर वहां से वापिस आने पर आप हमारी जान भी ले लेना। चारो डाकुने सलाह की कि ठीक है। अपन चारोंमें से दो डाकू इसके साथ चले जावें और दो यहीं रहें। अब दो डाकुओं सहित वह भक्त प्रभुकी मूर्तिको पासकी नदीमें सिखाने ले गया। जब वह कुछ गहराईमें पहुंचा और प्रभुकी मूर्तिको सिखाने चला उससमय वह भक्त बड़ी करुणा भरे शब्दोंमें कहता है कि हे प्रभो ? जिन हाथोंसे मैंने आपकी सेवा की उन्ही हाथोंसे आजमैं आपको नदीमें सिखा रहा हूँ। इस बात का तो मुझे कुछ विषाद नहीं कि मेरी मृत्यु हो रही है। मृत्यु खूब हो, इसकी मुझे परवाह नहीं, पर दूसरी बात मेरी समझमें यह बनती है कि प्रजाके लोग क्या कहेंगे कि खूब तो भक्ति की, खूब तो धर्म किया, मगर उसका फल क्या मिला कि धन भी गया और जान भी गई। तो ऐसा धर्म करनेसे मुझे क्या लाभ है?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसतरह से धर्मकी अप्रभावना होगी, इसका मुझे कुछ क्लेश है। इस भक्तकी करुणा भी आवाज सुनकर आकाशसे ऐसी आवाश आयीं कि तुम किसी कि बातका खेद मत करो, तुम्हारी भक्ति निष्फल न जायगी, अप्रभावनाकी भी कुछबात न होने पायगी। देखो ये जो डाकू आये हैं तो इन चारो डाकुओ को तुमने पूर्वभवमें मारा था इसलिए तुमको इनके द्वारा चार बार मरना चाहिये था याने चार भवोंमें तुम्हारी मृत्यु इनके द्वारा होनी चाहिये थी लेकिन तुमने जो १०—२० वर्ष प्रभुकी भक्ति की है तो उसके प्रसादसे तुम्हारी तीन मौत कट चुकी हैं, ये चारों के चारों तुम्हें एक साथ मारनेके लिए आये हैं तो तुम्हारा एक हीं तो मरण रह गया। तीन मरण तो तुम्हारे मिट गए, यह प्रभु भक्तिका प्रसाद है। जब डाकुओं ने इस तरहकी आकाशवाणी सुना तो वे बोले ठहरो ठहरो अभी इस मूर्तिको मत सिरवाओ, यहांसे लौटकर चलो, हम चारों डाकू मिलकर जो आदेश देंगे सो करना। सो वे डाकू उस भक्तको मूर्ति सहित वापिस लौटा ले गए। वहां उन दोनों डाकुओंने अपने साथ वाले दोनों डाकुओंसे आकाशवाणीकी बात सुनाया। तो वहां उन चारों डाकुओंने यही निर्णय दिया कि जब एक प्रभुभक्तिके प्रसादसे इसकी तीन मौत कट गई तो क्या हम चार लोग मिलकर इसकी एक मौट नहीं काट सकते। उन डाकुओंका दिल बदल गया और भक्तिसे कहा कि तुम अब किसी बातकी चिन्ता न करो, तुम आनन्दसे रहो। न तुम्हारा धन लेंगे और न तुम्हारी जान। यह कहकर डाकू चले गए। तो श्रद्धा थी ना, भक्ति थी ना, एक धुन था, इसलिए उसे प्राण जानेकी भी परवाह न थी।

जीवन और मरण सर्वत्र समाधिके पौरुषका कर्त्तव्य—यहां अपनी बात देखिये हम आपने अब तक अनन्ते बार जन्ममरण किए, अगर इस भवके प्राण चले जायें तौ इसमें आपका क्या नुकशान ? जो बहुत—बहुत सोचता है, बहुत—बहुत विचार करता हैं, ऐसा कैसे होगा, कैसे मेरी बात बनेगी ? कैसे मेरा गुजारा होगा, कैसे क्या होगा ? और, जब मरण हो गया तो क्या होगा। अरे यहां क्या मरणसे भय करते ? दो ही तो चीजें हैं हां, जन्म और (२) मरण। इनमें विवेकपूर्वक छटनी तों करलो कि जन्म खोंटी चीज हैं कि मरण ? देखिये जन्म के बाद किसोकी मुक्ति नहीं होती, और मरणके बाद मुक्ति मिलती हैं। भगवान अरहंतका जोमरण होंता है उसका नाम है पंडित पंडित मरण उसे निर्वाण बोंलते हैं आखिर वह भी एक मरण है। तो केवली भगवानका जो पंडित मरण है उसीके बाद मुक्ति हो जाती है, और जन्मके बाद किसीको मुक्ति हुई क्या ? जन्मसे मुक्ति नहीं मिलती, मरणके बाद मुच्ति मिल सकती है। मरण समयमें विशुद्ध परिणाम हो, निर्मल भाव हों तो आपका यह भव भी बहुत समृद्धिसे गुजरेगा मरण तो इतनी उपकारी चीज है। लोग तो मरण के

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

समय उस मरण करने वाले से चिपट कर रोते है उसके मोह पैदा करते हैं और उसका मरण बिगाड़ देते हैं। जिन्दगी भर भी उसे सताया मगर मरण समय में ऐसा सतायेंगे कि उसे परभव में भी चैन न मिले। अरे मरण समय तो लोगों को उत्सव मनाना चाहिए था, खुशी मनाना चाहिये था, इसपर तो दृष्टि नहीं देते, लोग उस समय शोक मनाते, उसमें मोह पैदा करके उसका जीवन विगाड़ते। तो भाई अपना जन्म मरण सुधारो। अपना नाम यहां के मोही अज्ञानी प्राणियों की लिस्ट में न लिखाओं बल्कि सिद्ध भगवानकी लिस्टमें अपना नाम लिखाओ।

सहज विशुद्ध ज्ञानस्वभावके आश्रयमें ही सर्व श्रेयः—सम्बर तत्त्वमें यह बताया जा रहा है कि जब ज्ञानी पुरुष को अपने आपके स्वरूपका यथावत् निर्णय हो जाता है कि मैं सनातन अहेतुक चैतन्यमात्र हूँ, तब इसमें कष्टका कोई काम नहीं रहता। ज्ञान ही अपना परमार्थ पिता है अपने ज्ञान की विशुद्ध कलापर ही अपनी उन्नति की विशुद्ध कलापर ही अपनी उन्नति निर्भर है। शान्ति केवल एक अपने ज्ञानकी शुद्ध कलापर निर्भर है। बाहरमें किसी भी पदार्थपर निर्भर नही है। जहां यह ज्ञानी समझता है कि मैं यह आत्मा विशुद्ध ज्ञान ज्यौतिमात्र हूँ, शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ, और धारावाही ज्ञानसे अपने आपको शुद्ध ही पाता रहता है, निरखता रहता है। उसके कर्मका लेप नहीं होता और जहाँ उस शुद्ध ज्ञानस्वरूप-की श्रद्धासे हटे और बाहरमें बाह्य पदार्थ में अपना लगाव लगाया बस वहीं कर्मबन्ध होता है। अब यह सोच लो कि इन २४ घंटों में कितना समय तो अपने आपके स्वभाव के लगाव में रहता है और कितना समय परके लगाव में रहता है, जितना परका लगाव है उतना जीवन को निष्फल खोना है, जितना अपने आपके स्वरूपकी उन्मुखता है उतना ही यह सच्चा जीवन है, जिस पुरुषने अपने आपके विविक्त ज्योति स्वरूपका परिचय किया है उसके सहज वैराग्य रहता है। जिसको अपने आत्मस्वरूपके अनुभवमें आनन्द आया उसको विषय सुखों में प्रीति करेगा? जिसको अनुपम आत्मीय आनन्दका अनुभव नहीं जगा वही विषय सुखोंको ललचायगा, लेकिन जिसको अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूप का परिचय हो गया वह तो न तो किसी पर द्रव्य में आकर्षित होता और न अपने सुख दुःख भाव में आकर्षित होता तो इसमें मौज की कौन सी बात आ पड़तो है? यह सब उसके लिए उपद्रव है। मैं परमात्माकी भांति एक शुद्ध शाश्वत आनन्द ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञानमें इतना बल होता है कि आते हुए कर्म-रूक जाते है और पहिलेके बंधे हुए कर्म झड़ जाते हैं। ज्ञानकी कलामें अदभुत है। यहा लोकमें भी तो देखने में आता। एक तांत्रिक पुरुष हो, वैद्य हो जो साँपके विषको अपने मंत्र बल से उतारता है देख लो सही, ज्ञानबलका प्रताप उसीमें हो रहा, मगर कैसे बड़े-बड़े

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संकट भी दूर हो जाते हैं। अथवा तांत्रिक पुरुष विषको खाता हुआ नहीं मरता, क्योंकि उसने ऐसी सिद्धि प्राप्त की अथवा विषवैद्य हो और विषको भष्म करके खाये तो वह नहीं मरता। यह ज्ञानकी ही तो कला है। ऐसे ही जो ज्ञानी है वह भोगोपभोग भी भोगता है लेकिन समस्त भोगों से वह अपने को निराला देखता है। मैं हूँ एक ज्ञानज्योतिस्वरूप राग-रहित अपनी प्रतीति बनायें। रागमें सारे ऐब बसे हुए हैं, तो ऐसा जो विराग पुरुष है वह कर्मसे नहीं बंधता। कर्मका उसका सम्बर होता है, ऐसे इस सम्वर तत्त्वकी बहुत बड़ी महिमा हैं।

परिपूर्ण ज्ञानानन्दस्वभाव अन्तस्तत्त्वके दृष्टाकी निर्मद परिणतिः—इस ज्ञानी पुरूषने अन्तः देखा कि मैं क्रोध, मान, माया, लोभआदिकषायोंसे रहित हूँ। मान किस बातका ? मान के ८ आश्रय होते हैं—किसी के ज्ञान विशेष हो जाय तो वह भी मानमें बढ़ सकता है, किसी की पूजा प्रतिष्ठा हो वह भी मान में बढ़ सकता हो, किसीका ऊच्च कुल हो, किसी की उच्च कुल की मां हो, किसीका बल, ऐश्वर्य, शरीर, तपश्चरण आदिक में कुछ विशेषता हो तो उसके भी मान कषाय बढ़ सकती है। मगर ये सब चीजें क्या हैं ? आत्मासे निराली चीजें हैं। ज्ञानका क्या मद करना ? अरे केवल ज्ञान के सामने मनः पर्ययज्ञान भी क्या चीज है ? सर्वावधि ज्ञान भी क्या चीज है ? फिर हम आपको ज्ञान कितना सा मिला ? थोड़ा सा मिला, लेकिन उसी ज्ञानमें यह समझते हैं कि हमने बहुत कुछ पाया। ज्ञानका मद करते, कोई पूजा प्रतिष्ठा मिले यश सम्मान मिले तो उसका घमंड करता हैं अरे चक्रवर्ती भी जब विजय करके वृषभाचल पर्वत पर नाम खोदने जाता है तो उसको भी अपना नाम लिखने के लिए खाली जगह नहीं मिलती। नामोंसे भरा हुआ था वह सारा पर्वत। वहां अहंकार दूर होता है—ओह मेरे जैसे चक्रवर्ती यहाँ अनगिनते हो गए, वहां मांन भंग होता है। जिसकी पूजा रही, किसका कुल रहा कुल भी उच्च कैसे ? अरे यह कुल भी क्या है ? यह तो एक कर्मविपाक है। हम आपका कुल तो वास्तव में चैतन्यवंश है, देखो पुत्र किसे कहते हैं ? जो वंशको पवित्र करे उसे पुत्र कहते—वंशः पुनाति इति पुत्रः, और सुत किसे कहते ? जो पैदा हो सो सुत। तो अब यहां देखो ? हमारा पुत्र कोण है जो मेरे वंशको पवित्र कर सके, मेरे वंशको स्वच्छ बना सके, वह मेरा पुत्र है। आपका वंश है चेतना। जिसके साथ आप रहते थे, रहेंगे, जिस वंशको आप छोड़ नहीं सकते उस चैतन्यवंशको पवित्र करने वाला कौन ? एक यह शुद्ध निर्मल ज्ञानपरिणाम। बस यह ही अनुभूति, यह अनुभव, यह ज्ञान परिचय यह ही वास्तविक पुत्र है। आपका पिता कौन ? पिता कहते किसे हैं ? पाति इति पिता, जो रक्षा करे उसे पिता कहते हैं आपकी रक्षा करने वाला कौन ? आपका

Report any errors at vikasnet@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह विशुद्ध निर्मल ज्ञान, यह ही आपकी रक्षा कर सकता है, दूसरा और कोई रक्षा करने में समर्थ नहीं है अतः अन्यकी आशा व अहंकार छोड़ स्वमें आवो।

सज्ज्ञानमें सर्वसिद्धिः—सारा कुटुम्ब, सारा वैभव सब कुछ एक अपने आपमें ही है। जैसा चाहें अपनेको बना लें। एक बालकने मुट्ठीमें कुछ चीज ली, वह चीज क्या थी यह आप पीछे जान जायेंगे। वह बच्चोंसे पूछता है—बोलो बच्चों मेरी मुट्ठीमें क्या चीज है ? कुछ बच्चे तो यों ही चुप रह गए, कुछ बताने लगे। तो वह बच्चा बोला—नहीं, नहीं मेरी मुट्ठीमें तो सारी दुनिया है, तीनो लोक हैं, भगवान है, सारे द्वीप समुद्र हैं, सारे देश हैं, मेरी मुट्ठीमें सब कुछ है। तो सभी बच्चोंने कहा-अच्छा मुट्ठी खोल कर दिखाओ। जब मुट्ठी खोला तो उसमें निकली एक स्याहीकी टिकिया।.....अरे तुम तो कहते थे कि इसमें सारी दुनिया है।...हां हां सारी दुनिया है,...कैसे ?...इसे घोल कर इससे हम जो चाहे बना दें, दुनियाका सारा नक्शा बनादें, तीनों लोक अलोकका नक्शा बनादें, जो कहो सो बनादें, हमारे हाथमें सब कुछ है ऐसे ही हम आपके पास सब कुछ है।.....अरे सब कुछ क्या ? न धन है, न कोई बाहरी चीज है।.....अरे आपके पास ज्ञान है बस वही सब कुछ है। सोना चांदी हीरा रत्न आदिमें भी कीमत नहीं बसी वह आपके ज्ञानमें बसी है। बाहरी पदार्थों में भेद नहीं पड़ा, भेद तो आपके उपयोगमें पड़ा है। बाह्य वैभव क्या चीज है ? कुछ नहीं। एक साधुमहाराज जंगलमें बैठे हुए तपश्चरणमें रत रहा करते थे। एक दिन वहां से एक राजा निकला तो राजाने उस साधुकी तरफ देखा भी नहीं। वह तो बड़े अभिमानमें था। तो किसी तरह साधूने उसे अपने पास बिठाया और कहा—अरे राजन तुम किस बात पर अभिमान करते हो ? तुम यदि राजा हो तो हम भी उपासना किए गए महान बुद्धिधनसे उन्नत हैं। तुम यदि वैभवसे प्रसिद्ध हो तो हम लोगोंके यशोंको कवि लोग चारों दिशाओं में विस्तृत कर रहे हैं, इस प्रकार गौरवकी दृष्टिसे भी हम तुम दोनों में बहुत अन्तर है। यदि तुम हमसे परान्मुख होते हो तो हम भी एकान्ततः हठपूर्वक तुम सबसे निष्पृह हैं। और भी सुनो राजन् ! तुम यदि अर्थ (धन) को चाहते हो तो हम भी वाणीके अर्थ को चाह रहे हैं, बड़े-बड़े आगम वेद वाक्योंके अर्थसे हम सम्पन्न हैं और उन अर्थों के विलासमें हम बने रहा करते हैं। तुम तब तक ही तो शूर हो जब तक कि तुम्हारेपास धन (अर्थ) वैभव है। तो हम इस प्रकारसे शूर हैं कि वादियोंके घमंडको उपशमन (शान्त) करनेमें समर्थ हैं, उसमें हम लोगोंके अक्षय चतुरता है। तुम्हारी यदि धनिक लोग सेवा करते हैं तो हमको भी सुननेकी इच्छा करने वाले अनेक श्रोताजन अपने दोषोंके विनाशके लिये सेवा करते हैं। यदि तुम्हें मुझमें आस्था नहीं है तो हमारी तुममें बिल्कुल ही आस्था नहीं है। और भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देखो राजन् ! तुम यदि रेशमी वस्त्रोंसे सन्तुष्ट हो तो हम यहां बल्कलोंसे सन्तुष्ट रहते हैं। तो बाह्य सन्तोषकी दृष्टिमें तो हम तुम दोनों समान हैं, पर विशेष बात एक यह है कि दरिद्र पुरूष वह है जिसके बहुत बड़ी तृष्णा लगी है। यदि मन सन्तुष्ट हो जाय तब फिर कौन धनी है और कौन दरिद्र है ? तृप्ति साधुको है राजाको तृप्ति नहीं।

परमें लगाव करनेमें बुद्धिमानी समझनेकी विडम्बना:—अब सत्य समझलो कि बाहरको जितनी बातें हैं वे सब बेकार हैं, भिन्न हैं, असार हैं, उनके लगावसे आत्माका हित नहीं है। आत्माकी भलाई है तो आत्मस्वभावकी दृष्टिसे है। यहीं बैठे–बैठे अन्दाजा करलो, जरा विकल्प छोड़ दो, इस देहके विकल्पको भी छोड़ दो फिर अशांति नहीं रहती। विकल्प तो शल्यकी तरह आत्माको दुःखी करता है। जिसकी दृष्टिमें आत्मापर दृष्टि नहीं रहती पर्यायको ही आपा समझता है। मैं अमुक जातिका हूँ, अमुक पद्धतिका हूँ, अमुक फर्म वाला हूँ, अमुक रिस्तेदार हूँ, आदि अनेक बातें इसके साथ लगी हैं जो सब कीचड़ हैं, इस आत्मकल्याणमें बाधक हैं, इस देहसे भी अपनेको निराला समझकर जरा अपने आपके अन्तः प्रवेश तो करें; मैं तो एक ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञान-ज्ञान मात्र हूँ, ज्ञानसिवाय मैं और कुछ नहीं हूँ। जहां ज्ञान ज्ञानस्वभावको ग्रहण कर रहा होगा, वह एक ऐसा कठिन दुर्ग हैकि वहां कर्म-का प्रवेश नहीं हो सकता। लोग चिन्तवन करते हैं तो व्यर्थकी चीजों का करते हैं और उसीमें अपनी बुद्धिमानी भी समझते हैं। वे रागद्वेष मोहके विषयभूत पदार्थका ही चिन्तन करते और वहां ही अपनी बातें बनाते। जैसी कषाय है वैसी ही अपनी बुद्धि घुमाते और उसमें समझते हैं कि हम बड़े चतुर हैं। एक सेठ अपनी हवेली के आगे चबूतरे पर बैठकर प्रतिदिन दातून किया करता था। यह बहुत प्राचीन पद्धति है। देखिये दातून करने का रिवाज बुन्देलखण्डमें भी बहुत है और इधर आपके गुजरातमें भी। मगर दातून करने में कोई आधा एक घंटेका समय बेकार गंवा देते हैं। तो वह सेठ प्रतिदिन अपनी हवेलीके चबूतरे पर बैठकर करीब आधा घंटे तक दातून किया करता था। उसी जगहसे सामने से ही प्रति-दिन कुछ गाय, भैंस आदि जानवर निकला करते थे। सेठ उन्हें दातून करते समय प्रतिदिन देखा करता था। उन सभी जानवरोंमें एक भैंस ऐसी थी कि जिसके सींग सेठको बहुत अच्छे लगते थे। जैसे पंजाबकी भैंस सुहावनी लगती हैं उनके सींग छोटे घेरमें गोलमटोल रहते हैं ऐसे ही सेठको उस भैंसके सींग बड़ी सुहावनी लगते थे। प्रतिदिन देखते-देखते एक दिन उसके मनमें आया कि यदि इस भैंसकी जैसी सींगे मेरे सिरमें लगी होती तो मैं भी इसी की तरह बड़ा सुन्दर लगता। इसी तरहका विचार करीब ६ माह तक उसके रोज बना करता था। ६ माह पश्चात् एक दिन उससे न रहा गया वह चबूतरेसे कूदकर अपने

Report any errors at vikasnc@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सिरको उस भैंसके सिरसे भिड़ा दिया इसलिए कि इस भैंसके दोनों सींग मेरे सिरमें लग जावें। अब वहां भैंस विचकी, दोनों लोहू लुहान हो गए, एक ओर वह सेठ गिर पड़ा और दूसरी ओर भैंस बड़ी दूर जाकर खड़ी हो गई। इतनेमें लोग जुड़े, तो लोगोंने कहा—अजी तुमने बिना विचारे क्या कर डाला। तो सेठ बोला-अरे मैंने बिना विचारे कुछभी नहीं किया, मैंने तो ६ माह तक खूब विचार किया कि जैसे इस भैंसके सींग हैं वैसे ही मेरे भी लग जायें तो मैं कितना सुहावना लगता ? तो लोगोंने कहा—ठीक है, तुमने बिना बिचारे तो नहीं किया, लेकिन जो उपाय किया वह तो गलत रहा। तो ऐसे ही सब लोगोंकी बात चल रही है। हम आत्मस्वरूपके बारेमें तो चिन्तन नहीं करते। पालतू चिन्तन करते रहते हैं

धर्मका साक्षात आन्तरिक आश्रय—भैया। कभी सुबुद्धि जगती तो हम धर्म करनेकी बात कभी कभी करते तो हैं कि धर्म करो, धर्म करो, धर्म पर्व आया, पर्यूषण आया, धर्म करो, और धर्म कितना होता है, क्या होता है, इसपर बिचार भी नहीं करतेकि यह धर्मपर्व है या नगीना पर्व है, जितने स्त्रियोंके नगीना हों, जैसे कानके ततैया, नाककी मकड़ी, सिरके बिच्छू, कमरके सांप आदि जितने भी नगीना (आभूषण) हैं उन सबको पहिननेका मौका इन पर्वो में ही मिलता है और पुरुषोंको जरा—जरासी बातोंमें लड़ाई ठन जाना, मनके प्रतिकूल बात होने पर जगह-जगह दुःखी होना आदिका अवसर इन पर्वके मौकोंपर अधिकाधिक आता है, अरे धर्म तो हमारा अपने आपके अन्दर है। प्रभुमूर्तिके दर्शन तो इसलिए किए जाते हैं कि हमको अपनी सुध आये कि मैं वह हूँ जो हैं भगवान। धर्म तो भाई मोह और क्षोभसे रहित जो आत्माका स्वभाव है उसका नाम धर्म है। सो धर्म करें तो पद्धतिसे करें। कोई भी काम हो जब उसे विधिपूर्वक करेंगे तभी उसमें सफलता होगी नहीं तो सफलता न होगी। धर्मकी विधि है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। बाहरी बातोंकी हठ मत करें। हठ कभी भी सफलता नहीं मिलती। हठसे तुरन्त अपने आपके मनमें कलुषता आती है। हठमें कहो या अभिमान कहो, एक ही बात है। तो हठको त्यागकर अभिमान छोड़कर अहंकार से हटकर अपने आपमें निर्मान, अकषाय जो आत्म परिणाम है, स्वभाव है उस स्वभावकी सुध लें। अब तक परभावकी-बहुत सुधली मगर अपने अकषायभावकी, अपने इस निर्विकार ज्ञान-स्वरूपकी सुध नहीं ली। बड़ा कष्ट भोगा।

सांसारिक समागमकी अशरण्यता—राजा भोजकी सभामें कवि लोग बैठे हुए थे, तो कवियोंमें एक कविका बाप भी बैठा था, वह पढ़ा लिखा न था। कहीं यह नियम तो नहीं कि कविका पिता कवि ही हो, वकीलका पिता वकील ही हो, तो उस कविका पिता बहुत सीधा सादा था, तो राजा ने उसी कविके पितासे कहाकि आप एक समस्याकी पूर्ति करें—क्या

Version 2

http://sahjanandvarnishastra.org/

समस्या थी ? क्व याम: किं कुर्म: हरिणशिशुरेवं बिलपति, यों एक चरण बोल दिया, छन्दमें चार चरण होते है तो राजाने कविके पितासे कहा कि तुम इस छन्दको पूरा करो। तो पिता तो जानता न था। वहीं पासमें उसका लड़का बैठा था जो विद्वान कवि था। तो पिता कहता है अपने बेटेसे पुरा रे बापा, (बापा कहीं कहीं लड़के को भी कहते हैं) याने अपने लड़केसे कहा कि बैटे तुम इसे पूरा करो। तो लड़का चूंकि विद्वान कवि था उसने अपने पिताके कहे हुए शब्दोंसे ही छन्द तैयार कर दिया इसलिए कि राजा यह न समझ सके कि इस कविका बाप मूर्ख है। तो वह छंद इस प्रकार बना-पुरा रेवापारे गिरिरतिदुरारोहशिखरे, गिरौ सव्येऽसव दवदहनज्वालाव्यतिकरे, धनु:पाणि: पश्चान्मृगयुशतकं धावति भृशं। क्व याम: किं कुरुम: हरिणशिशुरेवं बिलपति। देखिये–उस बापने कहा था-पुरा रे वापा, तो उस कवि ने उसमें रे लगाकर क्या शुरू किया ? पुरा रेवापारे, देखिये शब्द तो उसने वही रखा, आगे रे और जोड़ दिया अर्थ–आगे रेवानदीके तटपर देखो बहुत गहरा जल है, और दोनों तरफ जंगलमें आग लगी है और पीछेसे सैकड़ों शिकारी धनुष बाण लिए एक हिरणके बच्चेके पीछे लगे हुए हैं, तो ऐसी स्थितिमें हिरणका बच्चा विलाप करता है, उस समय वह कहता है—कहां जांऊ, क्या करूं ? आगे जाऊं तो नदी के तीव्र प्रवाहमें प्राण नहीं बच सकते, दायें बायें और जंगलोंमें भयंकर अग्नि जल रही है, उधर भी मेरे प्राण नही बच सकते, पीछे लौटूं तो शिकारियों द्वारा प्राण नहीं बच सकते, अब कहां जाऊं ? क्या करूं। यह सोच सोचकर वह हिरणका बच्चा घबड़ाता है। ठीक यही हाल तो हम आपकी है। न जाने कितने कितते उपद्रव चारों ओरसे छा रहे हैं ऐसी भयंकर स्थिति है हम आपकी क्या ? कि कर्मका विपाक, कर्मका उपद्रब कर्ममें चल रहा पर यह चेतन है ना, बाह्यमें झांकी हुई उसको पकड़ा, उसमें लगाव रखा तो सारे उपद्रव आ गए। कुटुम्बके झगड़े जुदे, देश के झगड़े जुदे, सरकारके झगड़े जुदे, यों चारों ओरसे सब उपद्रव ही उपद्रव आ रहे। और कुछ नहीं तो बैठे–बैठे यही सोचकर चिन्तित रहते कि न जाने सरकारके कैसे कानून बन जायें, रात दिन शल्यमें सब रहते कि नहीं, चिन्तामें रहते, कितने, उपद्रव आ पड़े ? और भीतरमें देखो तो कर्मविपाकके उपद्रव हैं। ऐसी स्थितिमें जब कि हमारे चारों ओर उपद्रव छाये हुए हैं ऐसी स्थितिमें क्या करूं ? कहां जाऊं ? ऐसी स्थिति है, लेकिन यहां समाधान है अपने आपके अन्त: विराजमान जो कारणसययसार है तत्त्व है परमपारिणामिक भाव, है शुद्ध ज्ञानस्वरूप निरपेक्ष तत्त्व है उसकी ओर दृष्टि दें, उसका सहारा लें। सहारा ले किसका रहे ? बाहरमें जिस चाहेको मित्र समझते। अरे परमार्थ मित्र तो पंचपरमेष्ठी हैं। दूसरा और कोई मित्र नहीं, उसके अलाबा वे ज्ञानी पुरुष भी मित्र हैं जो विषयोंसे हटाकर धर्मके

Report any errors at vikasnit@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मार्गमें लगाते हों ऐसा मित्र कौन है वास्तवमें ? तो ऐसे अपने आपके स्वरूपपर विचार करें। ये क्रोध, मान, माया, लोभ आदि चारों कषायोंसे जितना दूर रहनेका प्रयत्न करें उतना भला होगा। यहां तो लोग छोटी सी विभूतिमें तरस जाते हैं उसके पीछे क्रोध, मान, माया लोभ आदिक कषायें करते हैं, और मंद कषाय करते रहें, दूसरेको क्षमा करके रहें। अधर्म से दूर रहें, ऐसा अगर निष्पाय जीवन वितायें तो इससे करोड़ों गुना विभूति एक समय बाद मिल जायगी। वास्तविकता तो यह है कि समस्त लोक की विभूति हो तो भी उसे जीर्ण-तृणवत समझो। क्या रखा है। तो अपने आपके स्वरूप की ओर आवो। बाहरी पदार्थों से अब मुख मोड़ों और अपने आपके भीतर आवो।

मोहप्रकृतिविलासकी सभ्य प्रकृति—गुरु जी सुनाते थे कि कोई एक घुड़सवार कहीं जा रहा था, उसे कहीं जाते हुए १००—५० आदमी दिखे। उसने पूछा—भाई आप लोग कहां जा रहे हैं ? तो उन लोगोंने बताया कि हम लोग एक मण्डपमें जा रहे हैं···किसलिए ? ···भई वहाँ कोई कथा होती है तो उसे सुनने जा रहे हैं। वह बात सुनकर उस घुड़सवारने अपना घोड़ा वहीं किसी जगह छोड़ दिया और खुद भी उसी कथा मण्डपमें चला गया। वहाँ कथा सुना। उस दिन संसार, शरीर और भोगों की अरुचिताका वर्णन चल रहा था। उस कथाको सुनकर उसे वहीं वैराग्य हो गया और घोड़ेको वही छोड़कर जंगल गया, साधु महाराजसे दीक्षा ले ली। जंगलमें ही रहने लगा। १०—५ वर्ष बाद फिर वह उसी शहरमें आया, देखाकि उसी मण्डपकी ओर काफी लोग जा रहे थे। पूछाकि भाई आप लोग कहां जा रहे हैं ? तो उन्होंने बताया कि हम लोग कथा मण्डपमें कथा सुनने जा रहे हैं।···कबसे जा रहे ? तो किसीने कहा २० वर्षसे: किसीने कहा ३० वर्ष से और किसीने कहा ४० वर्ष से। लो वह साधु बोला अरे वीर तो तुम लोग हो। मैं तो एक दिन ही कथा सुनने गया तो उसकी चोट न सह सका सो इस साधुरूपमें हो गया, तुम लोग इतने—इतने वर्षसे कथाकी चोट रोज—रोज सह रहे हो तो वीर तो तुम लोग हो। देखो बात जरा सी है, दृष्टिके जरा से फेरसे प्रकाश और अंधकारकी बात चलती है। जैसे छोटे बल्बके जरासे फेरमें अन्धकार और प्रकाशका वातावरण बन जाता है। जिधर बल्ब का मुख है उधर प्रकाश और जिधर से मुख मोड़ दिया उधर अंधकार। ऐसे ही अपना उपयोग है। बल्बकी मोड़में तो फिर भी कुछ क्षेत्रका अन्तर आ जायगा, मगर उपयोगकी मोड़में तो क्षेत्रका भी अन्तर नहीं आता। यह उपयोग बाह्य पदार्थोंकी ओर मुख किए हुए है कि यहां विभाव हैं, अन्धेरा है, विपत्ति है, विडम्बना है और जरा सी देरमें अपने आपके उन्मुख हों गए वहां अन्तः प्रकाश है, सर्व विडम्बनाओंका विनाश है। एक जरा सी कलाकर जब अपना सब कुछ बिगाड़ और सुधार निर्भ-

http://sahjanandvarnishastra.org/

र है फिरभी हम उसे न करना चाहें ऐसा एक अलौकिक समागम पाकर तो फिर बालाओ कि फिर और करनेके दिन कब होंगे ? सब जीवोंको समझोकि मेरे ही समान सब हैं। वह स्वरूप विज्ञान है चैतन्यमात्र, सब जीव एक है। ये परभाव क्यों लग बैठे कि यह अमुक है, यह गैर है और मैं यह हूँ, यह मेरा कुटुम्ब है, यह दूसरेका है। अरे तेरा जब शरीर तक नहीं है और श्रद्धा मैं तू ऐसा विष पी रहा है, तो देख यहां का विष पीनेसे एक बारही मरण होगा मगर यहां मिथ्यात्वका विष पीनेसे अनेक जन्मोंमें जन्ममरण होते जायेंगे इससे तो अच्छा यहांका हालाहल विष पी लेना है। अज्ञानीको तो अज्ञानका विष लगा ही है लेकिन मिथ्यात्वका विष इतना तेज है कि न जाने कितने भवोंतक बना रहे। तो इस बातको नहीं सोचते।

अन्तःपरमात्मतत्वका ज्ञाननेत्रसे दर्शन—शरण परमात्मतत्त्वका भीतरसे दर्शन होगा, विकल्पोंसे न होगा, क्षोभ से न होगा। धीरतासे होगा, और धीरता भी तब आती है जब यह निर्णय हो जाता है कि मैं किसी पदार्थका कुछ करनेमें समर्थ नहीं। होता है, निमित्त नैमित्तिक योगसे होता रहता है। देखो कोई लड़का किसी लड़केसे २० हाथ दूर खड़ा हो, खड़ें-खड़ें वह अपनी अंगुली मटकी रहा हो, जीभ निकाल रहा हो तो २० हाथ दूर खड़ा वह दूसरा यह सोचकर दुःखी होता है कि देखो यह मुझे चिढ़ा रहा हैं, अरे वह चिढ़ाता कुछ नहीं जैसे कहते हैं कि दूसरेके आंखकी जरा भी फुली हो तो वह जल्दी दिख जाय और अपनी आंखमें बड़ा टेंटा हो तो भी नहीं दिखता। दूसरेमें जरा भी गल्ती हो तो झट नजर आ जाती है कि यह कैसा मोहकर रहा है, यह पागल हो रहा है। जाना तो कुछ साथ है नहीं। घर तो इसका है नहीं फिर क्यों मोह कर रहा ? दूसरेको तो यों नजर आता और खुदकी गल्ती कुछ नहीं देखता। जैसे जंगल में कोई आदमी चला जा रहा था तो देखा कि वहां अचानक ही आग लग गई। चारों तरफ आग फैल गई अब वह पेड़पर चढ़कर खड़ें होकर अपनी जान बचानेके लिए पेड़पर आराम करने लगा। थोड़ी देरमें आग बढ़ती हुई बिल्कुल निकट आ गई, वहां उसे कुछ मौज आने लगी थी, वह देखो हिरण मरा खरगोश जला, अरे वह देखो हाथी भी अग्निसे जलकर छटपटा रहा ?···पर उसे यह पता नहीं कि जिस पेड़ पर मैं बैठा हूँ वह भी जल जायगा और में भी जल जाऊंगा। तो ऐसे ही यहां देख लो दूसरोंकी विपत्ति तो आंखोंके सामने है पर अपनी विपत्तिपर कुछ नजर नही है। आप लोग रोज सुबह नहाते हो, यहां मंदिर आते हो, दो दो चार चार फर्लांग चलकर आते हो। इतनी तकलीफ करके यहां प्रभुदर्शन करने आते तो क्यों आते ? अरे इसलिए आते कि मुझे मेरा स्वरूप प्राप्त हो जाय और ये सारी प्रवृतियां, ये सारे लटकट मुझे न करने पड़ें जब तक कि संसारदशा है

Please donate to support www.sahjanandvarnishastra.org

http://www.jainkosh.org

और मैं ऐसी अवस्था पाऊं कि हमें ये कोई कष्ट ही न करने पड़े मैं तो अपने ज्ञानस्वरूपमें ही रत रहा करूं, आनन्दमग्न रहा करूं, ऐसा मार्ग बनानेके लिए यहां मन्दिरमें आते हैं, भगवानके स्वरूप को देखते हैं इसलिए कि मेरे ये झंझट संकट सदाके लिये छूट जायें और मैं स्वयं परमात्मस्वरूपमें मग्न ऐसा जिसे मिले अन्तःपरमात्मत्त्व, जो कषायोंसे विवित आत्माका स्वरूप है उसे अपनायें और भीतरमें ऐसा विश्वास बनायें कि मुझे ज्ञाताद्दष्टा रहना है, ऐसा चैतन्यमें प्रतपन हो मैं तो ऐसा करके ही रहूँगा।

कषायके आ हमें आत्मविनाश और अकषाये अन्तस्तत्त्वके आश्रयस्ते आत्मविलास:—भैया ! कषायकी पकड़ में खुदका विनाश होता है, दूसरे का कुछ नहीं कर सकता कषायकी पकड़ में बुरा खुदका है, दूसरेका नहीं, यह निर्णय बनावें और एक आरामले अपने आपके कषायको दूर करें। जब शरीरसे थक जाते हैं परिश्रम करके तो पड़कर आप आराम लेते कि नहीं ? तो जब मनुष्यथक गया विकल्प कर करके, तो अब तो जरा मनको आराम दें। सभी कषायोंमें कठिन कषाय है लोभ। प्रकृति नहीं छूटती यह द्वैत भाव मचा रखा कि यह मेरा है और यह दूसरे का है, यह बड़ा कठिन अंधकार है। श्रद्धामें अगर परमाणुमात्र भी राग रहता है तो वह आत्माका ज्ञाता नहीं होता, और आत्माका ज्ञान नहीं तो फिर उसने न जीव जाना न अजीव। जब अपने आत्माका ज्ञान होगा तो वहां फिर ये कोई प्रकारके विकार भाव न रह जायेंगे, वह फिर काहे को रोष करेगा, काहेको घमंड करेगा, काहे को मायाचार करेगा ? मायाचार भी किसलिए करना ? साफ साफ बात है, भाई गुजारा करना है ? आपको दो बातों से मतलब है। एक तो आजीवकामें फर्क न आये और दूसरे धर्मपाल न का कार्य चलता रहे। धर्म के प्रसंगमें आना बड़ा कठिन है और गप्प सप्प के प्रसंगमें आनेमें क्या देर लगे ? गप्पशालायें तो बड़ी जल्दी खुल जाती है। अगर अपने आपमें तत्व ज्ञान वाले धर्म का प्रवेश हो, भेदविज्ञानकी बात आये यह बात बड़ी कठिन है। अपने स्वरूपकी सम्हाल, आपको सम्हाला तो सब सम्हला, तो चारोकषायों से रहित, विकल्प जालसे रहित,अपने आपकी परिणतिसे परिणमने वाले आत्मवस्तुकी स्वतन्त्रता देखो, आत्मदर्शन करो मैं चिदानन्दस्वरूप आत्मतत्त्व हूँ। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् जो सत् है उसमें निरन्तर उत्पाद व्यय चलता रहता है, यह वस्तुका स्वभाव है। मैं अपने आपके उत्पाद से परिणमता रहता हूँ और फिर भी बना रहता हूँ, मेरा दूसरे से कोई लेन देन नहीं कोई मेरी परिणति नही बनाता मैं दूसरे की परिणति नहीं बनाता। जगतमें बाहर मेरे करने योग्य कुछ काम नहीं है। कर ही नहीं सकते। निमित्त नैमित्तिक योगसे होना होगा हो जायगा, पर मैं किसी भी बाह्य पदार्थ में कुछ नहीं करता हूँ ऐसी स्थिति में क्या है, वह

Bhandari

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्यों क्रोध करेगा ? किस पर मान, माया, लोभ करेगा ? अपने को विश्राम में रखेगा। भाई पवित्र जो जैन शासन पाया है, उसका आभार प्रकट करनेमें निष्पक्षकों कोई संकोच नही होता।

पुण्य पाप नामक दो तत्त्व बढ़ाकर ९ तत्त्व कहनेकी एक प्रसंगोचितशंका—मोक्षका उपाय बताने वाले इस मोक्ष शास्त्र में सर्व प्रथम यह कहा गया कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व मोक्षमार्ग है। द्वितीय सूत्र में बताया कि सम्यग्दर्शन क्या है ? प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वोंका श्रद्धान करना, जो पदार्थ जिस स्वरूप अवस्थित है उस रूपसे ही पदार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन कैसे उत्पन्न होता है ? तो वह होता है निसर्ग और अधिगम से। यों दो सूत्र कहने के पश्चात् यह बताना आवश्यक हो गया कि वे तत्त्व हैं कितने ? तो चतुर्थ सूत्रका इस प्रश्नके उत्तर में अवतरण हुआ है। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष यह ७ तत्व है। ये ही तत्व सब श्रद्धान किये जाने योग्य हैं अन्यथा मोक्षका उपाय न बन सकेगा। इस विषयमें बहुत कुछ कहा गया। फिर थोड़ा सा कुछ इस पर भी विचार किया गया कि ७ ही तत्व क्यों हैं ? कम ज्यादह क्यों नहीं कहे ? इस प्रसंग में एक यह आशंका हो सकती है कि पुण्य और पाप भी तो पदार्थ हैं। और कहीं कहीं ९ तत्व कहे भी गए हैं। तो यहां भी ७ की जगह ९ तत्व कहना चाहिए। पुण्य और पाप और बढ़ा देने चाहिए। क्यों बढ़ाना चाहिए कि आखिर पुण्य ज्यों, बांधते हैं। उनका उदय होता है तब उनका फल भी भोगा जाता है। यां पुण्य पाप बन्धके फलभी है, तो इन दो हेतुओंसे चूंकि पुन्य पाप बँधने योग्य हैं और बन्धके फल हैं अतः पुण्य पाप की उपेक्षा नहीं करना चाहिए। दो और बढ़ाकर ९ तत्व कहना चाहिए। क्योंकि पुण्य पाप इन दोनोंके श्रद्धानन हो तो बन्धका श्रद्धान सही नहीं बन सकता पुण्य पाप की श्रद्धा नहीं है तो पुण्य पाप रूप ही तो बंध है सो बंध की श्रद्धा न हो सकेगी। और फिर कोई फल भी बंधका न कहलाया, अगर पुण्य पापकी बात न कहें तो कैसे लोग जानें कि बंध से नुकशान है और बंध का यह फल है ? इसके कारण पुण्य और पाप दो पदार्थ और माने जाना चाहिए। तो यह एक शंकाकारकी आशंका है।

पुण्य पापका आस्रव व बन्धमें गर्भितयना होने से पुण्य पापकों अलग से कहने की अनावश्यकता बताते हुए उक्त शंकाका समाधान:—अब उक्त शंकाके समाधान में कुछ सोचें। पुण्य पाप बढ़ाये जाना आवश्यक है या नहीं तो देखो-पुण्य पाप बंध ये दोनों ही आश्रव से अलग वस्तु नहीं है। जो बंध है उसीके ही दो भेद हैं पुण्य और पाप। आश्रव है उसी के दो भेद हैं पुण्याश्रव और पापाश्रव। तो इन्हें अलग से कहना चाहिए। अगर

Report any errors at vikasnandi@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पुण्य पापको अलगसे कहनेकी हठ बनायी जाय तब तो बहुत-बहुत दोष आयेंगे। कोई कहेगा गुप्ति समिति अनुप्रेक्षा ये भी कहने चाहिए, ये भी तत्त्व हैं, जिसतरह गुप्ति आदिक नहीं कहे गए कि वे सम्वरके भेद हैं इसीतरह पुण्य पाप भी नहीं कहे गए कि ये आश्रव के भेद हैं। यह तो एक समाधान पक्षतरका समाधान है। अब युक्ति देखो शंकाकारने जो दो भेद दिये थे, कि पुण्य पाप को अलग कहना चाहिए, क्योंकि ये बंधने योग्य हैं और बंधके ये फल हैं, अब तो इन दो युक्तियोंपर विचार करें। जरा ध्यानसे सुननेसे भैया सब समझमें आयगा। बात सही सही कही जा रही है। ७ तत्त्व तो हर एक कोई बोलता है। ७ की जगह ९ क्यों नहीं कहे गए ? यह एक आशंका है। वैसे प्रयोजनके लिए कहीं कहीं पुण्य पाप भी कह दिये हों तो भी कोई अनुचित बात नहीं। जैसे समयसारमें जो अधिकार गाथा है उसमें ९ तत्त्व भी बताये गए, वहां कोई हर्ज नहीं, लेकिन जहां सूत्र रचना हो रही हो वहां इस बातका ध्यान दिया जाता है कि कमसे कम बात कहे, गुजारा चले, बात स्पष्ट हो उतनी बात कहना चाहिए। यह सूत्रकारोंकी पद्धति होती है। तो पुण्य पापके बिना भी तत्त्व श्रद्धाकी योग्य बात कही जा सकती। पुण्य पापके विकल्प आश्रव हैं, फिर भी विचार कर शंकाकारने यह कहा था कि चूंकि पुण्य पाप बंधने योग्य हैं इस कारण इनका भी नाम लेना चाहिए सो जरा शंकाकारकी इस प्रथम युक्तिपर विचार करें। पुण्य पाप क्या बंधने योग्य हैं ? अगर बंधने योग्य मानते तो यह मानना पड़ेगा कि बंधनेसे पहिले भी वहाँ पुण्य पाप का नाम पड़ा है, लेकिन ऐसा तो नहीं है। जब बन्धते है उसी समय उनमें पुण्य पाप का भेद पड़ता है। जीवने शुभ या अशुभ कर्मबन्ध किया, कर्मबन्धनके साथ ही उनमें पुण्य पाप की प्रकृति पड़ती है। जैसे कर्मबन्धनसे पहिले कर्म वर्गणा कहलाती है ऐसे ही बन्धनसे पहिले पुण्य पाप कहलायें ऐसा नहीं। है पुण्य पाप तो तब कहलाते हैं जब बन्धते हैं। बन्धनसे पहिले वहां भेद नही पड़ा कि ये कर्म पुण्य परमाणु के हैं और ये पाप परमाणुके हैं। बन्धकालमें शुभ अशुभ भावके अनुसार पुण्य बन जाता और पाप बन जाता तो बन्धय जो हेतु दिया था वह युक्त नहीं बैठता

शंकाकार द्वारा कथित बन्धव्य व बंधकाल हेतु पर विचार—अब शंकाकारकी दूसरी बातपर विचार करें इस प्रसंगमें पुण्य पाप बंधके फल होते हैं, यह हेतु शंकाकारने दिया था, यह भी ठीक नहीं। पुण्य पाप बंधके फल नहीं, हैं किन्तु वे स्वयं आश्रव हैं, बंध हैं। बन्धके फल तो सुख दुःख साता असाता, याने निर्जरा है बन्धका फल। बन्ध है तो उसका फल क्या हैं ? अलग हो जायगा, यह उसका फल है। कर्म बन्धे है तो उनकी आखिरी होगी। क्या ? कि मिट जायगा जैसे जीवन पाया है तो उसकी आखिरी होगी ? क्या किमरण

http://sahjanandvarnishastra.org/

होगा ऐसे ही बन्ध गए हैं कर्म तो उनकी आखिरी होगी, निर्जरा होगी, चाहे फल देकर निर्जरा हो चाहे बिना फल दिए निर्जरा हो। बन्धका फल निर्जरा है, पुण्य पाप नहीं, इस-लिए पुण्य पापको अलगसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। ये बन्ध और आश्रवके भेद कहलाते हैं। तो इस तरह तत्त्व ७ हैं यह बात युक्तिसंगत बैठती है। पुण्य पाप तो बन्धके भेद हैं, क्योंकि बन्ध दो प्रकारका कहा गया है (१) पुण्यबन्ध (२) पापबन्ध। बन्धसे पहिले पुण्य पाप नही है, जैसे कर्मबन्धसे पहिले कर्मपरमाणुओंमें कार्माण वर्गणाओंका नाम है और वे बंधती हैं, ऐसे ही बन्धसे पहिले पुण्य पाप नाम नहीं होता। बन्ध गये, उनमें पुण्य और पाप का रस पड़ गया। जैसे पानी बरसा और बादमें गिरा ना पानी, तो कोई पानी नीमके पेड़में आया कोई आमके पेड़में आया और कोई अंगूरके पेड़में आया तो जो नीमके पेड़में पानी आया जड़में सो वे जल परमाणु तो कड़वे बन जाते हैं और जो पानी अंगूर आम आदिके पेड़ोंके जड़में आया वे जल परमाणु मीठे रसके बन जाते हैं। तो यह भेद तो नहीं है कि नीम और अंगूरपर आनेसे पहिले इस पानीमें दो भेद पड़े हों कि यह पानी तो मीठा बनेगा और यह कड़वा। उन पेड़ोंकी जड़में आनेसे पहिले पानी एकरूप है वहां दो भेद नहीं हैं, पर पेड़में जब आया पानी जब बंधा तो उसमें दो फाटे पड़े। इसीतरह कर्मके बंधनेसे पहिले दो रूप नहीं हैं कि कोई परमाणु पुण्यरूप हो और कोई पापरूप हो लेकिन जब बंधते हैं तो कषायभावका निमित्त पाकर बंधते हैं। तो जैसा कषायमें अनुभाग है, शुभ अशुभपना है उस तरहका वहां पुण्य पापका भेद पड़ता है। पुण्य पाप तो बंधके विकल्प है, आश्रवके विकल्प हैं। ये कोई अलगसे तत्त्व न मानना चाहिए, इन ७ से अतिरिक्त तत्त्व माननेकी आवश्यकता नहीं, यह बात समझनेके लिए सोच लें कि कोई कारणसे किसी प्रयोजनसे अगर ७ तत्त्वोंसे अतिरिक्त मान लिए जाते हैं कोई तत्त्व तो यों तो फिर कोई व्यवस्था न रहेगी। निर्जरा भी एक क्यों मानते, दो मानें। सोपक्रम और निरुपक्रम याने फल देकर झड़ने वाली निर्जरा और बिना फल दिए झड़ने वाली निर्जरा। सम्बर के भी कई भेद हैं उन्हें भी अलग अलग तत्त्व मान लिया जावे फिर तो कहा भी व्यवस्था नहीं बन सकेगी, अतः जीवादिक ७ तत्त्व मोक्षके प्रयोजनभूत हैं ऐसा जो कहा गया है वह युक्ति संगत बात है।

बन्ध और मोक्षके परिचयका महत्त्व:—देखिये—बँध और मोक्ष इन दो का भले प्रकार स्वरूप समझने वाला पुरुष स्पष्ट और निःशंक रहता है। बंध है, यही दुःख है। यही क्लेश है। संसार में कहीं भी सुख शान्ति, नहीं है। यह बात भली भांति सब परखा होगा। भ्रम एक ऐसा कठोर विष है कि जिस भ्रमसे मूर्छित होकर यह जीव महान विपत्ति भोगता है। जब स्वरूप तो हमारा आत्मा परमात्मस्वरूपकी तरह शुद्ध अनन्तज्ञान, अनन्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

http://www.jainkosh.org

दर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दका स्वभाव रखने वाला है। कष्टका यहां नाम नहीं लेकिन जब स्वयं ही ऊधम मचा रहे है, वाह्य पदार्थोंको अपना मान रहे हैं, जो नहीं है, जो अनोखा है उसे कभी करना चाहे तो उसको तो क्लेश होगा ही, याने यह मोही जीव भगवान से भी बढकर बनना चाहता है, कैसे कि भगवान तो सर्व पदार्थोको जैसे हैं वैसे जान रहे, आत्माको आत्मारूपसे जाना, पर पदार्थ पररूपसे जान गए। भगवानके ज्ञानमें तो इस तरह आया, लेकिन यह मोही परपदार्थोंको आत्मारूप बनाना चाहता है देखो इसमें कितनी हिम्मत है, कितना दुःसाहस है कि यह भगवानसे भी बढ़कर चलता है, तो एक कहावत है कि जो बड़ेसे भी बड़ा बननेको चलेगा तो उसकी खैर नहीं होती। यह मोही जीव भगवानसे बड़ा बननेकी चाह कर रहा है तो यह स्वतः दुःखी तो होगा ही। जैसे भगवान तो सीधे सादे जो जैसा है उसे वैसा जान रहे, सब पदार्थ अपने आपके स्वरूपसे परिणमते है, किसी पदार्थका किसी अन्य पदार्थमें लेन देन नहीं है। निमित्तनैमित्तिक भेद है यहतो है एक तथ्यकी बात। इतना होनेपर भी कोई पदार्थ किसी पदार्थकी परिणति करता नहीं है। सब स्वयं सत् हैं, स्वतंत्र हैं, ऐसा निरख रहे हैं ना भगवान, लेकिन ये मोही पुरूष उससे बढ़कर निरख रहें हैं। परकोआत्मारूप से मानने की यह हुज्जत कर रहा है, मेरा ही तो सब है, तो उसे पद-पद पर क्लेश है। जो यह जानता है कि संसारमें सुख मिल सकता है उसको पद-प पर क्लेश होगा और जो समझता है कि संसारमें तो सुखका नाम नहीं है। जैसे कोई एक सेठ था वह किसी अपराधमें गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। अब वहां तो चक्की पीसनेका काम भी उसे करना पड़ता, रस्सी बनानेका काम भी उसे करना पड़ता। जो काम उसने जीवनमें कभी न किया था वे वहां करने पड़ रहे थे। तो वह सेठ वहां बड़ा दुःखी रहा करता था। तो जेलमें भी तो ऐसा होता है कि कैदी कैदी परस्परमें मित्र बन जाते हैं। तो वहां उस सेठके एक कैदी मित्रने, सेठ के दुःखका यह कारण जान लिया। एक दिन उसने पूछा—बताइये सेठ जी आप इस समय जेल में हैं कि ससुराल में ? जेलमें। तो जेल में ऐसा करना ही पड़ता है। यह कोई ससुराल थोड़े ही है जो आरामसे पड़े रहो। तो सेठ की समझमें आ गया कि अरे यहां तो ऐसा करना ही पड़ेगा, लो उसका दुःख कम हो गया। तो जो यह सोचे कि मैं तो इतना बड़ा हूँ, मेरे पर इतने कष्ट क्यों आये ? यह तो मेरे पर अनहोनी हो गई, उसे तो बड़ा कष्ट होगा, और जो यह सोचले कि अरे यह तो संसार है, दुःखका घर है, यहां सुखका नाम नहीं, यहाँ तो अनहोना कुछ होता नहीं, यहां तो ऐसा ही होता है, लो इतनी बात सोच लेनेसे उसके दुःखमें काफी अन्तर आ जायगा।

विशुद्ध ज्ञानकी शरण्यता—विशुद्ध ज्ञान ही हम आपका शरण है। जगतमें कोई भी

Version 1.0

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव आप के लिए शरण नहीं है। भगवानका यही उपदेश है कि अपने आपको समझो। अपने आपको ही अपना शरण मानो। किसी दूसरेको यदि अपना शरण मानोगे तो झंझटों से नहीं बच सकते। लोग सुख शान्तिके लिए अनेकानेक उपाय किया करते हैं, बड़े बड़े कष्ट सहते हैं, मगर बाहरसे कहीं सुख शान्ति प्राप्त नहीं होती। अगर अपने आपके भीतर ही अपने ज्ञानका काम कर लिया जाये, यथावत जान लिया जाय, जो जैसा है उसे वैसा जान लिया तो फिर तकलीफकी कोई बात नहीं है। वहां सुख शान्तिकी प्राप्ति होगी। इस लोकमें सुखी, शान्त, आनन्दमय, अनाकुल कौन है बतलाओ ? हैं केवल एक भगवान। अरहंत भगवान, सिद्ध भगवान, सशरीर परमात्मा, ये ही अनाकुल हैं। इससे नीचे तो निराकुलता न कहेंगे। और सर्वाधिक दुःखी कौन हैं ? वहिरात्मा, मोही, मिथ्यादृष्टि, जो बीचमें रहने वाले जीव हैं, मायने सम्यग्दृष्टि गृहस्थ, सम्यग्दृष्टि मुनि ये कुछ कष्ट पाते हैं और कुछ आनन्द पाते हैं। कोई कम आनन्द पाता कोई अधिक, पर आनन्द पाने के वे सभी अधिकारी हैं। तो यह समझो कि भगवान हैं पूर्ण सुखी, सम्यग्दृष्टि हैं कुछ कम सुखी और मिथ्यादृष्टि हैं नितान्त दुःखी। जैसे देखा होगा कि बरसातके दिनोंमें मेढक बहुत खुश रहते हैं। तो एक बार एक मेंढक के ऊपर दूसरा तथा दूसरेके ऊपर तीसरा, यों तीन एकपर एक बैठे हुए थे। तो उनमें से सबसे ऊपर वाला मेढक बोलता है। हमें तो बड़ा सुख, हेच न गम माने हम तो बड़े आरामसे बैठे हैं, तो बीच वाला मेढक बोलता है—कुछ कुछ कम-याने हम कुछ कम आराममें बैठे हैं और सबसे नीचे वाला मेंढक कहता है मरे तो हम। यही दशा यहां भी समझिये। परमात्मा, अन्तरात्मा और बहिरात्मा में भी यही बात देखिये परमात्मा कुछ कहता तो नहीं है, पर अलंकारमें समझलो। परमात्माकी यही पुकार है कि हमें तो हेचन गम। अन्तरात्माकी पुकार है कि कुछ कुछ कम, और वहिरात्माकी यह पुकार है कि मरे तो हम देखिये हम आप चतुर्गतियोंके भ्रमण करते नाना तरहके विकल्प मचाते। ये सब दुःखरूप हैं। कदाचित् आज कुछ पुण्यका उदय है। सुख साधन मिले हुए हैं तो इन्हें महा विषैले समझो इनके सेवनसे घोर दुःख उठाना पड़ेगा। यहां जो लोग देख देखकर खुश हो रहे हैं कि यह मेरा घर, ये मेरे बच्चे, ये मेरे परिजन आदि, तो इन सबके प्रति मोह किए जानेका फल क्या होगा ? बस कष्ट हो कष्ट भोगना पड़ेगा। तो संसारकी इस क्षणिक सुख सामग्रीको पाकर इनमें मुग्ध मत होओ। ये भी जीवके कर्मविपाक हैं।

ज्ञानप्रकाशमें आकुलताका अनवकाश—कोई एक ज्ञानी सेठ था। तो उसके कई मुनीम थे। तो जो हेड़ मुनीम था वह सेठको देखकर बड़ा आश्चर्य किया करता था कि देखो यह तो कितना बड़ा धनिक पुरुष है लेकिन इसे रंच भी अभिमान नहीं होता, कभी कोई छल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कपट आदि नहीं करता, और देखो कितनी इसकी उदार वृत्ति है कि कभी कोई कुछ मांगता तो उसे झट दे डालता एक बार क्या हुआ कि एक जगह से तार आया कि सेठ जी की अमुक फर्ममें ५ लाखका टोटा पड़ गया । तो इस समाचारको मुनीमने सेठ को दिया तो सेठने वहां यही कहा कि हां हो गया होगा टोटा ठीक है। वहां मुनीमने देखा कि सेठको रंचभी विषाद (शोक) न हुआ तो वह मुनीम बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। कुछ समय बाद फिर किसी दूसरी जगहसे खबर आयी कि दूसरी जगह के किसी काम में जब हिसाब देखा गया तो उसमें २५ लाख का फायदा हो गया । यह भी समाचार मुनीमने सेठ को सुनाया, तो वहां भी सेठने यही कहा कि हां हो गया होगा फायदा, ठीक है मुनीम ने वहां भी यही पाया कि सेठको रंच फी हर्ष न हुआ तो वह आश्चर्य से भर गया पूछा—सेठ जी आपने न तो फायदा होनेपर कुछ हर्ष माना और न टोटा होनेपर कुछ बिषाद माना, तो इसका क्या कारण है ? तो वहां सेठने यही उत्तर दिया कि देखो ये सब बाहरी बातें हैं, इनसे मेरे आत्माका क्या सम्बन्ध, आया तो ठीक न आया तो ठीक। वे सब बाहरी परिणतियां हैं, वैसा हुआ तो ठीक न हुआ तो ठीक इसमें मेरे आत्माका क्या लगता है ? फिर काहे के लिए हर्ष और काहेके लिए विषाद ? देखो जैसे कहते हैं ना तिलकी ओट पहाड़ याने आंख के तिलके आगे कोई तिल बराबर कागज या कोई चीज लगा ली जाय तो सारा पहाड़ ढक जाता है, बस यही बात यहां है। यहां अपने आत्म प्रदेशोंमें जहां पर पदार्थ संबंधी विकल्प लगाया वहां समझिये कि सारा अन्धकार छा गया। यहां का प्रकाश परखो, यही परमात्मस्वरूपका दर्शन है। बाहरी पदार्थोंमें ममत्व मत रखो। जो है सो ठीक है। यह कुछ चीज नही है। ये कामकी चीज नहीं है, बल्कि मेरा बिगाड़ करने वाली हैं ।

खालचमें संतजनोंके प्रति भी संशय कर जानेके पापकी नौबत—एक बार एक मुनि महाराजने किसी नगरमें चातुर्मास किया। तो शहरसे बाहर एक पेड़के नीचे उन्होंने अपना निवास स्थान बनाया। तो वहां का जो एक प्रमुख सेठ था उसके मनमें आया कि हम भी मुनिराजके साथ चातुर्मासभर रहकर धर्मसाधना करेंगे। उसका लड़का था कूपूत सो उस सेठ ने अपने घरमें रखे हुए हीरे, जवाहारात, रत्न एक हांडीमें भरकर उसी पेड़के नीचे जहां कि उसे मुनिराजके साथ रहना था वही एक गड्ढा खोद कर गाड़ दिया। अब वह सेठ निशल्य होकर धर्मसाधना करने लगा। अब उस चातुर्मासके ही बीचमें सेठके कूपूत लड़केको किसी तरह मालूल पड़ गया तो मौका पाकर एक दिन वह उस हाड़ीको निकाल ले गया। सेटको कुछ पता न पड़ा। मुनिराज तो चातुर्मास पूरा होनेके पश्चात् किसी अन्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नगरको बिहार कर गए, इधर सेठने जब अपना अर्सफियों का हंडा खोदा तो गायब। सेठके मनमें आया कि देखो यहां हम और मुनिराज दोही व्यक्ति रहते थे। कोई तीसरा व्यक्ति तो यहाँ आता न था। फिर और कौन ले जा सके ? मालूम होता है कि इसमें मुनि महाराजका कुछ हाथ है। सो वह सेठ उन मुनिराजके पास पहुँचा। उनसे सीधा यह तो न कह सकता था कि तुमने हमारा अर्सफियोंका हंडा चुराया, क्योंकि वह ज्ञानी पुरुष थे। समाजमें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। तो सेठने वहां पर कुछ ऐसी ऐसी कहानियां कही जिनसे यह स्पष्ट मालूम होता था कि देखो हमने चार महीने तक मुनि महाराजकी सेवा सुश्रुषा की फिर भी हमारा धन उठा लाये इस तरहकी ८ कहानियां सेठने कही, और ८ कहानियां मुनिराजने भी कही। मुनिराजके भी कहने का आशय यही था कि अरे सेठ तू व्यर्थ ही मेरे ऊपर भ्रम कर रहा है, मैंने नहीं चुराया। भले ही उन कहानियोंका मर्म अन्य लोग न समझ सकते थे मगर सेठ तो जानता ही था। और तो मुनि महाराज ने जो ८ कहानियाँ कही थी उनमें से एक कहानी हम आपको सुनाते हैं—देखो सेठ जी, एक ब्राह्मणके घर नेवला पला था। वह घरमें सब सुध रखता था कि कोई नुकशान न हो जाय। तो एक बार वह ब्राह्मणी अपने छोटेसे बच्चेको पालनेमें सुलाकर खुद कूवेंमें पानी भरने चली गई कुवा तो घरसे बाहर कुछ दूर था। देहातोंमें तो बड़े—बड़े घरोंकी स्त्रियां भी कूवेंमें पानी भरने जाती हैं। तो ब्राह्मणी कुवें में पानी भरने चली गई। इधर क्या हुआ कि घरमें उस पालने के पास एक जहरीला काला सर्प निकला और बच्चे को डसने के लिए पालनेकी ओर बढ़ा नेवलेने सर्पको देख लिया और उसे पकड़ कर उसके टुकड़े टुकड़े कर दिए, ब्राह्मणीके बच्चे की रक्षा करदी। और मारे खुशीके वह झट दरवाजेपर आगया अपनी मालकिन को खबर देनेके लिए। उसका मुख तो खून से भिगा ही था सो उसे देखकर ब्राह्मणीने सोचा कि अरे आज तो इसने मेरे बच्चेका काट डाला। सो मारे क्रोधके उसने पानीसे भरा हुआ घड़ा उस नेवलेपर पटक दिया। नेवला मर गया। जब ब्राह्मणी घरके भीतर गई तो क्या देखा कि बच्चा खेल रहा था और पास ही सर्पके टुकड़े टुकड़े पड़े थे। ब्राह्मणी सारी बात समझ गई और वहाँ अपना माथा धुनने लगी। हाय व्यर्थ ही मैंने भ्रममें आकर निरपराध नेवलेकी हत्याकर दी। तो कथा तो मुनि महाराज ऐसी कहते जाते थे, इससे आगे कुछ नहीं बोलते थे। वे सारी कथायें सेठका वह कुपूतभी सुन रहा था उसने सारी कथाओंका मर्म भलीभांति समझ लिया। उससे अधिक और समझ ही कौन सकता था ? तो वहां उस कुपूत ने कहा पिताजी आप व्यर्थ ही मुनिराजपर भ्रम कर रहे हैं। आपका अर्सफियोंका हंडा तो मैंने चुराया था। वह घरमें अमुक जगह रखा है आप यह लीजिए चाभी और घर जाकर अपना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धन लीजिए, मैं तो अब घर न जाऊंगा, यहां मुनिमहाराजके पास दीक्षा लेकर धर्मसाधना करूंगा। सो वह कुपूत वहीं साधु हो गया। तो भाई बाह्य पदार्थोंके प्रति जो इतना लगाव लगाया जा रहा है यह तो तिलकी ओट है, इससे सारा अन्धकार छा जाता है।

संसारको दुःखमय जानकर व अन्तस्तत्त्वको दुःख रहित जानकर संतोष धारण करने का अनुरोध—भैया एक यहां भीतर ही इस आवरण को हटा दीजिए ताकि और परिचय हो जाय कि मैं तो सबसे निराला विशुद्ध चैतन्यमात्र हूँ। इस तत्त्वका बोध हो जाय तो बस सारी समस्या सुलझ जाय मुक्ति का पात्र हो जाय, अन्यथा तो संसार में भटकना ही पड़ेगा। कोई चारा नहीं है। संसारको तो ऐसा मानो कि यह जेलखाना है। जैसे जेल खाने में आराम नहीं है। चाहे जेलमें कुछ आराम मिल भी जाय, पर संसार में तो रंच भी आराम नहीं है जेल कहीं संसारसे अलग नहीं है, पर एक दृष्टान्त की बात कहा है। संसारमें सुखका नाम नहीं। लोग कहते भी हैं कि यहां सुख तो राई बराबर है और दुःख है पर्वत बराबर। और असलमें तो इस संसारमें सुख शान्ति तो रंचमात्र भी नहीं है। सारा दुःख ही दुःख है। यहां सुखका नाम भी नहीं है। ऐसा जानो और किसी भी सुख सामग्री में फूलो मत, हर्षित मत हो। उसमें बहुत पाप का बंध होता है। दुःख में दुःखी होनेसे भी पाप बंध होता और सुखमें मग्न होने से भी पापका बंध होता है। और पापका फल बुरा होता है। इससे अपने आपकी सम्हाल बनाना चाहिए। सुखमें होकर मग्न न फूलो, दुःखमें कभी न घबड़ाये। ज्ञाता दृष्टा रहो, जान ले, यह ऐसा है यह ऐसा है। लोग किसी भी विपत्तिको एक बहुत बड़ी विपत्तिका रुप दे देते हैं, मेरेको तो बड़ी विपदा है और यह नहीं देखते कि संसारमें जो हमसे भी अनगिनते गुने दुःखी है वे कितना दुःखी हैं। उनके सामने मेरा क्या दुःख ? इस बात पर दृष्टि नहीं जाती। और मोही पुरुष मानते हैं कि मेरे को सबसे बड़ा भारी दुःख है। क्या दुःख है ? अगर लड़केने कुछ पिताके मनके प्रतिकूल बात कहदी तो पिता सोचता है कि मेरे समान कोई दुःख नहीं। अरे क्या दुःख है ? जगतके और दुःख तो देखो उनके सामने क्या दुःख है ? कभी मानलो आपका १०-५ हजार का नुकशान हो गया तो आप उसका बड़ा दुःख मानते। पर यह तो बताओ कि क्या इससे अधिक आपका नुकशान हो न सकता था ? अरे जब कभीं कांटा लगता है तो वहां बुद्धिमान पुरुष सोचता है कि आज तो वास्तव में हमको शूली लगनेका दिन था पर कांटा लग गया इससे सस्ते ही निपट गए। उसका मन कभी ऐसा व्यग्र नहीं होता कि मेरे ऊपर विपदाओंका पहाड़ आ पड़ा। अरे यह संसार तो दुःखोंका घर है। यहां क्या छटनी करना कि इसमें हमको सुख होगा। अरे जीव जब कषाय करता है, सुखमें राजी होता है, दुःखमें घबड़ाहट करता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर्मबन्ध न होनेके लिए सावधानीकी महती आवश्यकता—जिस समय यह जीव क्रोध करता है उस वक्तमें बहुत पाप कर्मबन्ध हो जाता है। तो जो कर्मबन्ध हो गया उससे छुटकारा नहीं होता। कोई विशिष्ट तत्वज्ञान जगे तो भले ही उसकी निर्जरा पहिले हो जाय, संक्रमण करके निर्जरा हो जाय। कहते हैं न कि बिनाफल दिए कर्म झड़ते हैं। एक सिद्धान्त ऐसा है कि जिसने यह कहा है कि न्युमुक्तंभोग्यते कर्मोंचाते बिना भोग कर्म क्षीण नहीं हो सकते। यह है नैयायिकों का सिद्धान्त, पर इससे मिला जुला जैन सिद्धान्त भी यही कहता है कि बिना भोगे कर्म क्षीण न होगे। भोगने की व्याख्या जुदी है। कभी वह पूरा फल देकर झड़ जाय। विशुद्ध परिणाम हो जाय तो वही पहिली स्थिति में मिल जाय, ऐसी प्रकृतिरुप हो जाय और उसका फल मिले देखो हम आप सब जीव जो भी यहां बैठे हैं उनमें बहुत कुछ यह सम्भव है कि चारों गतियों का बंध किया हो-नरक, नियंच, मनुष्य और देव। और इस समय हम आप मनुष्य हैं। उदय तो एक का है मनुष्य आयुका मगर जो कभी हुई चारों गतियां हैं वे चारो गतियां उदयमें आ रही। अब यहां आप असमजसमें पड़ जायेंगे कि जब हम मनुष्य है तो यहां चारो गतियोंके उदयका क्या काम, मनुष्यगतिका ही उदय होना चाहिए। मनुष्य जैसे ही भाव हों रहे हैं। तो भाई जो पहिले और गति बाँधी और उनके जो कर्मपरमाणु हैं वे आत्मामें से खिरेंगे तो जरुर ही। बस उसके खिरने का ही नाम फल है। वहां इतनी बात हो जाती है कि जिसके कारण बाकी तीन गतियोंका उदय आजाय, सामने आयगा। मानलो कि ८ बजकर१० वे समय पर उदय आयगा तो होता क्या है कि ९ ही समयमें वे तीन गतियां मनुष्यगतिरुप बंध जाती हैं और फल तो हुआ ना! पर वह मनुष्यगतिके रुपमें उसका फल हुआ। इस तरह अगर सोच विचार करें तो उनका कैसा उदय है कि बिना भोगे कर्म नष्ट नहीं होते। अच्छा और बात विचारों। जब व्रत तप संयम आदिक साधन करते हैं, ज्ञान स्वभावकी अनुभूति बनाते है उस काल में तो बिना फूल दिये कर्म झड़ जाते हें फिर वहां कैसे लागू होगा कि विना भोगे कर्म नहीं झड़ते! तो वहां भी स्थिति परखो। जो कर्म हजार वर्ष बाद उदयमें आते उन्हें तो १०० वर्षमें ही सामिल कर दिया और वहां भी प्रकृति परिवर्तन कर दिया। ये सब होते रहते। प्रकृति परिबर्तन, स्थिति अनुभाग आदिक मोक्षमार्ग में चलते हैं तो उसके परिणामका निमित्त पाकर तो कर्मपरमाणु तो उतने ही रहेना, वे उदय से पहिले निर्जराको प्राप्त हो गए। उदय काल में निर्जरा, को प्राप्त हो गए। उदय वैसा फल दिये बिना झड़ गए। कम फल देकर झड़ गए। कैसी ही पचासो तरह की स्थितियां हो आखिर वे सब विपाक कहलाती है। तब

Report any problem at vikasnandi@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही तो दो प्रकारके भेद किए गए। सविपाक निर्जरा, अविपाक निर्जरा। जो अपने आपके ढंगसे फल न दे, और और ढंगमें आकर खिर जाय उसे कहते हैं व्यवहार अविपाक निर्जरा। तो कर्मबन्ध न होनेके उपाय पर बहुत ध्यान दीजिए।

सात तत्त्वोंकी संख्याके कम किये जानेकी शंकाका प्रकरण—जीवादिक ७ तत्वों के विषयमें यह प्रकरण चल रहा है कि ७ ही तत्व क्यों कहे? कम या अधिक क्यों नहीं कहे गए? इस विषयमें कुछ तो वर्णन हुआ। यहां यह शंका की जा रही है कि ७ तत्वके बजाय कम या ज्यादह क्यों नहीं कहे गए? प्रसंग यह है कि आश्रव, सम्वर, निर्जरा, न कहकर बंध हेतु मोक्षहेतु यों कह दिया जाय। उसमें सब आ जाता है। समाधान यह है कि बन्ध हेतु कहने से तो संख्या कम होने का लाभ तो कुछ होता नहीं इसलिए बंध हेतु की जगह आश्रव कहना ही युक्त है, वह स्पष्ट हो जाता है अब केवल मोक्षके सम्बंधका विवाद है। मोक्षके कारण हैं सम्बर और निर्जरा याने नवीन कर्मका न आने देना और निर्जरा याने नवीन कर्मका न आने देना और पहिले बांधे हुए कर्मका विनाश करना। ये दो तत्व मोक्षके हेतु माने गए हैं। अब दो न कह कर केवल मोक्ष हेतु कहा। तो इसमें लोगोंको विवाद हो जाता है। क्षणिकवादी कहते हैं कि केवल सम्बर ही मोक्षका हेतु है, अथवा यह ही मोक्षका कारण है। बंधे हुए कर्मोंके नष्ट करनेका कोई उपाय नहीं करना पड़ता। प्रत्येक वस्तुका विनाश अपने आप स्वयं होता है। क्षणिकवाद ही तो ठहरा और इस सम्बंधमें एक बात तो यह है कि वह बन्धन ही उनके यहां घटित नहीं है, क्योंकि क्षण-क्षण में नया-नया आत्मा पैदा होता है। जो सुबह ८ बजे है, वह ८ बजकर एक सेकेण्ड पर वह आत्मा नहीं है, वहां दूसरा आत्मा है, तीसरे सेकेन्ड में फिर तीसरा आत्मा है। ऐसे ही, सेकेन्ड तो बहुत बड़ा है प्रत्येक समय में नया-नया आत्मा पैदा होता है। बन्धन किसका और मोक्ष भी किसका?

संवर निर्जरा तत्त्वोंमें से केवल एकको माने जाने में मार्गलाभ—जब उक्त आपत्ति प्रदर्शित होती तो उनका कहना यह है कि आत्मा तो न बंधता है न उसका मोक्ष है, लेकिन जो नये-नये आत्मा पैदा होते रहते हैं तो पहिला आत्मा जब नष्ट होता है तो अपना संस्कार नये आत्मा को सौंप देता है और जब तीसरा आत्मा पैदा हुआ तो दूसरा आत्मा तीसरे को अपना संस्कार सौंप देता है, इस तरह उस संस्कारके कारण बंध है। और जब जीव को यह मालूम पड़ जाय कि आत्मा कुछ नहीं है वह तो क्षण भरकी एक ज्योति है, सो क्षण भरके लिए आत्माको स्वीकार न करें तो उसका मोक्ष हो जाता है क्योंकि आत्मा अमर मानोगे तो वह बंधेगा और आत्मा ही न मानोगे, नया नया आत्मा होता है तो बन्धन किसका? तो उनका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तत्वज्ञान उतना ही है कि यह भ्रम छोड़ दें कि मैं आत्मा अमर हूँ, मैं आत्मा सदा रहता हूँ, यह भ्रम छोड़ दें तो मोक्ष हो जायगा। मानलो कि आत्मा एक समय तक रहता है अगले समय होता ही नहीं और दृष्टान्त भी देखो कितना सुन्दर बताया अपनी बुद्धिमाफिक जैसे दीपक जल रहा है मिट्टीके तेलका अथवा सरसोंके तैलका, तो जो दीपक है वह तो एक बूंदका दीपक है, फिर दूसरा बूंद आया फिर तीसरा बूंद आया ऐसी एक-एक बूंद उस दीपकके पास आती रहती है और वह ऐसा लगता है कि एक दीपक जल रहा है। तो जैसे यह भ्रम हुआ कि दीपक एक है इसी तरहसे आत्मामें भी लोगोंको भ्रम हो गया कि आत्मा एक है। यह भ्रम हो गया कि आत्मा सदा रहता है। उनकी युक्ति है। ऐसा नाशको अहेतुक मानने वाले निर्जरा तत्वको न मानकर केवल संवरको मोक्षहेतु मानते हैं। किन्तु ऐसा न हो सकेगा कि निर्जराका निग्रह करदें और नास हो जाय अहेंतुक। जो कारण उत्पादका है वही कारण व्ययका है याने घड़ा फूटा उसका कारण न हो और खपरिया बनी उसका कारण हो, ऐसा नहीं होता। व्यय भी सहेतुक है और उत्पादभी सहेतुक है। और भी देखो क्षण-क्षणमें एक नया-नया आत्मा है तो फिर मोक्षकी क्यों फिकर पड़ी कि उपाय तो हम करें, तप करें, संयम करें। अनेक प्रकारके तपश्चरण करें और मोक्ष हो किसी दूसरे आत्मा का। तो ऐसे मोक्ष की क्या जरुरत ? तो क्षणिक मानने पर यह मोक्षकी व्यवस्था नहीं बन सकती। आत्मा है, सदा है, वही है, एक है। अब नये कर्म भी नहीं आये यह तो हुआ सम्बर और उपाय बनायें। भेद विज्ञानसे ज्ञात स्वभावके, आश्रयका संयम दीक्षा आदिकका उपाय बनायें तो कर्म निर्जरा होती है, मोक्ष होता है। तो जिसने अलग केवल सम्बरको माना है तो वहां आत्मतत्व न आ सकेगा, जिसकी श्रद्धा बिना मोक्षका उपाय नहीं बनता। तो कोई लोग यह कहते हैं कि केवल निर्जरा ही मोक्षका कारण है। जो कर्म आये है उन्हें झड़ादें उनकी भी बात ठीक यों नहीं बनती कि कर्म तो झड़ानेका काम करें और नये कर्म आते रहें तो कैसे मुक्ति हो सकती है। एक बात। दूसरी बात यह है कि जहां सम्बर है वहां खाली सम्बर नहीं है। निर्जरा साथ लगी है। जहां निर्जरा है वहां केवल निर्जरा नहीं है, सम्बर साथ है। गुप्ति समिति आदिक जो सम्बर के कारण है वे ही निर्जरा के कारण हैं। वे दोनों एक साथ चलते हैं इसलिए सम्बर निर्जरा दोनों एक साथ कहने आवश्यक है। ६ संख्या बनाने से भी काम नहीं चलता। इस तरह जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जर, मोक्ष ये ७ तत्व बनाये गए हैं।

जीव अजीव न कहकर शेष पाँच तत्त्वोंके कहनेकी अप्रयोजकता—कोई कहे कि तुम्हारा हठ है, संवर निर्जरा कहनेका तो ५ ही तत्व मान लो आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अरे जब जीव नहीं मानते तो फिर मोक्ष किसका कराना प्रथम तो जो क्षणिक वाद भी जीवन मानने की तरह है, फिर चार्वाक लोग तो जीवको मानते ही नहीं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुका संयोग हुआ कि जीव तत्त्व पैदा हो जाता है। वहां न कोई परलोक है, न कोई नरक है न कोई स्वर्ग है और उनका कहना ऐसा है जैसे प्रायः आजकल भी कहते हैं कि अच्छी ठाठ है वह तो है स्वर्ग और जहां दरिद्रता हो उसे कहते हैं नरक। ऐसा कहने वाले लोग भी बहुत हैं, तो जो न लोक मानते न परलोक मानते ऐसे जो लोग हैं उनके यहां आश्रव, बन्ध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष आदिककी व्यवस्था ही नहीं है। तो जीवका कहना आवश्यक है और जीव एक ही अकेला हो तो उससे तो आश्रव बन्ध नहीं हो सकता। जैसे एक से लड़ाई नहीं छिड़ती, कोई अकेला हो, उसका प्रतिपक्षी न हो तो वह क्या लड़ेगा? और, प्रतिपक्षी हैं तब ही लड़ाई शान्त है, केवल एकमें बन्ध मोक्ष नहीं हूँ। अब देखो इस प्रसंगसे द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमें निश्चयनयकी दृष्टिमें जीवतत्त्व माना जाता है। ज्ञायकस्वभाव, अपरिणामी, शाश्वत एकस्वरूप अखण्ड अभेद, अरे एक ही तो माना तो उस एक में बन्ध मोक्ष नहीं है। जीवके बन्ध मोक्ष नहीं है, ऐसा न समझना, किन्तु जब कोई इस दृष्टि से निहारे, द्रव्यार्थिक दृष्टिसे देखे कि यह तो एक अखण्ड चैतन्य प्रतिभासमात्र है; इतना ही स्वरूप जब देख रहे हैं तो ऐसे स्वरूपमें बन्ध मोक्ष नहीं है। उसका अर्थ यह हैं इसका अर्थ यह नहीं है कि जीव सत्य है और उसका बन्ध मोक्ष नहीं है। जब द्रव्यदृष्टिसे जीवको देखा जा रहा है, उसमें जो स्वरूप नजरमें आया वह स्वरूप बंध मोक्षकी व्यवस्थासे रहित है और जब पर्यायदृष्टिको लेते हैं तो वहां बन्ध मोक्षकी व्यवस्था बिल्कुल सही है उसमें सत्य असत्यकी जो बात कर रखी है कि पर्यायार्थिकनय असत्य है, द्रव्यार्थिकनय सत्य है तो इस तरह सत्य असत्यकी बात नहीं है। दोनों ही बातें सत्य हैं, लेकिन जब द्रव्यार्थिक दृष्टिसे स्वरूप निहारते हैं, इस पर्यायको कोई बात ही नहीं है, वहां वह दृष्टिमें ही नहीं है जैसे एक मकानकी चार भीट होती हैं आमने सामने दो भीट हैं। जब हम सामनेकी भीट देख रहे हैं तो इस दृष्टिसे पीछेकी भीट का सत्व है क्या? जब हम केवल सामनेकी भीट निरख रहे तो पीठ पीछेकी दीवालका सत्व दृष्टिमें नहीं है, लेकिन यह कहता कि बात यह ही है केवल एक ही भीट है, दूसरी भींट नहीं है, तो यह कहना गलत है।

सीमातोड़ हटकी अयुक्ता:—देखिये हठकी बात तो अलग है। अगर कोई कहे कि हाँ हमारे कमरेमें एक ही भींट है। एक भींटमें दोनों तरफ छज्जे निकालकर कमरेका रूप दें दे तो वह बात अलग है। हम ऐसे तर्कोंकी बात नहीं कह रहे। यों तो भाई एक बार कोई वकील कहीं घूमने जा रहा था। उसने देखा कि एक जगह एक तेलीका बैल कोल्हू पेल रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

था। उसके गलेमें एक घंटी बन्धी हुई थी। तथा आखोंमें पट्टी। जब तक वह घंटी बजती रहती तब तक वह तेली समझता रहता कि बैल ठीक ठीक चल रहा है और वह अपना कोई दूसरा काम किया करता था। जब घंटी बजना बन्द हो जाता था तो तेली समझ लेता था कि बैल खड़ा हो गया और वह आकर बैलको खेद देता था। तो वहां जब वकील ने बैलके गलेमें घंटी बंधी हुई देखा तो तेलीसे पूछा—भाई इसके गलेमें घटी क्यों बांध रखी है ? तो तेलीने बताया कि जब तक यह घंटी बजती रहती है तब तक हम और काम करते रहते हैं और जब घंटी बजना बन्द हो जाता तो हम समझ लेते कि बैल खड़ा हो जाता और आकर उसे खेद जाते हैं, तो इसलिए हमने घंटी बांध रखी है। वकील ने कहा यदि यह बैल खड़े खड़े ही घंटी हिलाता रहे तब तो तुम धोखेमें पड़ जावोगे ना ? तो तेली बोला जिस दिन हमारा बैल वकील बन जायगा उस दिन हम कोई और उपाय बना लेंगे। तो यह एक सामान्यतया बात है कि जब कमरा है तो उसमें दो भीट होना आवश्यक है। जब हम सामनेकी भींट लक्ष्यमेंले रहे उतने समय दृष्टिमें दूसरी भींटका अस्तित्व नही है। तो इसके मायने यह नहीं है कि दूसरी भींट नहीं है। इसीतरह जब हम द्रव्यदृष्टिसे आत्मतत्त्वको देखते हैं उस समयमें स्वरूपमें क्योंकि निश्चयनयका विषय अखण्ठ है, अभेद है। तो वहां बन्ध मोक्षकी व्यवस्था नहीं होती है। साथ ही यह भी समझ लीजिए कि उस अखण्ड अभेद निश्चयनयके विषयका आश्रय करनेसे सम्यक्त्व होता है। इतना महत्त्वका विषय है। महत्त्वका विषय होनेपर भी यह बात झूठ नहीं है कि जीवका बन्ध है, जीवमें रागादिक होते हैं, जीवके साथ कर्मबन्धन है, यह बात असत्य हो, असत्य कुछ नहीं है, मगर उस द्रव्यदृष्टिमें उस लक्ष्यमें बन्धन नहीं हैं, बन्ध भी क्या, मोक्ष भी नहीं है, क्योंकि उसकी दृष्टि एक विशुद्ध तत्त्व पर है,

सहजस्वरूपमें बन्धन मोक्षकी अदृष्टि—भैया निज विशुद्ध तत्त्व को, देखा जाय और उसका मोक्ष मानें तो वह भी उसके लिए गालीको तरह है। जैसे कोई यह बात सुनता है कि मोक्ष होना अच्छी बात है तो उस छुट्टीकी प्रशंसा करे और कहे कि आपके पिता तो जेलसे मुक्त हो गए हैं तो क्या वह भला मानेगा ? अरे बुरा क्यो मानते हो ? मुक्तिकी ही तो बात कह रहे हैं कि आपके पिता जेलसे मुक्त हैं। लेकिन ऐसा कोई किसीको कहे तो वह बुरा मानता। क्योंकि उस माननेमें यह बात शामिल हो गई कि यह पहिले कैदमें थे अब मुक्त हो गए। तो कैदमें थे यह बात सुनना पसंद नहीं है। इसीतरह इस जीव तत्त्वको जो निश्चय का विषय है उसके लिए यह कहना कि मोक्ष होता है यह भी गाली है। बंध होता है यह तो प्रकट गाली है। जीवके बंध होता है इनका कारण है कि जीव बंध अवस्था में है, लेकिन

Report copyright violation to vkvilas26@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निश्चय अवस्थामें जहाँ एक अखण्ड को निहारा जा रहा हैं वहां न बंधकी व्यवस्था है न मोक्ष की इसका तात्पर्य यह हुआ कि बंधकी मोक्षकी व्यवस्था नहीं है यह मात्र एक दृष्टिकी बात कही जा रही है। तो जीव माने बिना तो मोक्ष मार्गके तत्वकी श्रद्धा नहीं आ सकती और अजीव माने बिना भी तत्त्व नहीं आता। जीवपर अजीव लदा बंधा है, यह ही आश्रव बंध है और जीवसे अजीव अलग हो जाय, यह ही इसका मोक्ष है और ऐसा होनेका जो उपाय हैं उसको कहते हैं सम्बर तथा पहिले के अजीव झड़े वह कहलाती है निर्जरा। अब इस प्रसंगमें कोई ज्ञानी पुरुष कहीं भी बंध मोक्षकी व्यवस्था देखे वहां उसको ये ७ बातें आयेंगी। यह हुई जीव और कर्मके बाबत में तत्त्व–व्यवस्था।

जीवमें ही सात तत्त्वकी व्यवस्थाका दर्शन—अब जरा जीव और विभाव इन दो को दो तत्त्व मानकर, जीवस्वभाव एक ५ तत्व और रागदिविकार भी एक तत्त्व है इन दोनों तत्त्वोंको सामने रखकर जब आश्रव बंध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष निरखा जाता है तो देखिये वह ही पद्धति। यहां जीव है स्वभाव और अजीव है विभाव, जीवमें अजीवका आना आश्रव, मायने स्वभावपर विभावका बँध जाना, संस्कार हो जाना सो बंध, स्वभावमें विभावको न आने देना सो सम्वर और विभावके संस्कारका क्षय करना निर्जरा और इस स्वभावमें विभाव बिल्कुल न रहे तो इसका नाम है मोक्ष। कहीं भी बात रख लो, पद्धति यह ही आयगी। कोई सोचे कि यह जीव तो ज्ञान स्वरूप है, जाननहार है, इसको कष्ट क्या है कि इसमें बाह्य पदार्थ ज्ञेय होते हैं। तो इस प्रसंग में अब दो तत्त्व सामने आये ज्ञान, और भीतर में जो झलक हुई, ज्ञेय हुआ। जिसे ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार कहो। ज्ञान और ज्ञेय ? चाहे ज्ञायक कहो और ज्ञेयकहो। ज्ञायक है सो जीव ज्ञेय है सो अजीव। जो प्रतिपक्षीमें रखें वह अजीव कहलाता है। उस ज्ञानमें ज्ञेयका आना आश्रव, ज्ञानमें ज्ञेयका बँध जाना बंध और ज्ञानमें ज्ञेयका न आना यह हुआ सम्वर और वस्तुके त्यागका जो संस्कार बना सो ज्ञानाकारपर दृष्टि देकर उस संस्कारको नष्ट करना निर्जरा और जब परवस्तुका कोई ज्ञेय नहीं आये, ज्ञान है ऐसा ज्ञानाकार मिलसे इसका नाम है मोक्ष। जब कभी दो तत्त्व आमने सामने रखेंगे तो पद्धति उसी तरह बनेगी। यद्यपि ऐसा नहीं होता कि कोई भी ज्ञान ज्ञेयाकार बिना रह जाय। अब कुछ भी ज्ञानमें न आयगा ऐसा नहीं हो सकता, ज्ञान ही ज्ञानमें आये तो वह स्व भी ज्ञेय। जहां केवल ज्ञान हुआ वहां विवश होकर लोक अलोकके समग्र तत्वोंको आना ही पड़ता है, देखना ही पड़ता है। तो ध्यानमें जो बाह्य वस्तुके रोकनेकी बात कही जाती वैसा यहां ही कहा जा रहा है। जैसे मोक्षमार्गप्रकाशमें दृष्टान्त दिया है कि घरमें आने वाली नई बहूको लोग समझाते हैं कि यहां वहां न जावो, परघरमें न जावो, बाजारमें न

Version 1.

http://sahjanandvarnishastra.org/

जावो, परधरकी बुढ़ियाको तो कोई नहीं रोकता कि इधर उधर मत जावो। वह तो सब जगह फिरती है, तो ऐसे ही समझो कि केवल ज्ञान तो एक बुढ़िया हो गई, उनमें तो तीनों लोकालोकका सारा ज्ञान आ गया, उसे तो कोई नहीं रोकता कि ऐ केवली भगवान तुम तीनों लोकालोकका ज्ञान न बनाओ। वह तो विवश होकर होता है, लेकिन यहां संसारी जीवोंको रोका जाता है कि तुम ज्ञेयमें मत जावो, तुम किसीभी परवस्तुको मत ग्रहण करो, इस तरह रोका जाता है, क्योंकि इसके रागका संस्कार लगा है। तो यहां जो परद्रव्योंको ध्यानमें मत लो, यह उपदेश है वह हम आपके लिए है और जहां केवल ज्ञान प्रकट हो गया वहां इस रुकावटको भी जरुरत नहीं पड़ती। तो यों जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष, ये ७ तत्त्व हैं। इन तत्त्वोंके रूपसे निश्चित किए गए पदार्थका श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है।

मोहसे पृथक् रहनेमें कल्याण—अब इस प्रसंगमें अपने आपके कर्तव्यके सम्बंधमें कुछ चिन्तन करें। हमें क्या सोचना है? किस ढंगसे चलना है कि हमारा कल्याण हो? देखिये पहिला निर्णय तो यह बनावें कि जितना भी हमको समागम मिला है यह सब समागम मायारूप है, विकार है मिल गया है, इससे मेरा कोई सम्बंध नही है, केवल इस समागमके सम्बंधसे मेरेको आकुलता ही हुआ करती है। इस संसारमें सुख रंच मात्र भी नहीं हैं। यों तो भाई जो शराबियोंकी गोष्ठी होती हैं वे भी मतवाले बनकर खूब हंसते हैं, मौज लेते हैं, वे भी अपनेको सुखी समझते हैं मगर जिन्होंने शराब नहीं पिया वे तो ठीक ठीक समझते हैं कि देखो यह बेचारा कैसा बेहोश है, कैसा इसे कष्ट है। इसी तरह जिसने मोह की शराब पी लिया है वह संसारके सुखोंमें चैन मानता है, खूब हंसता है, मौज मानता है, मगर जैसे शराब पीने वालेकी बेवकूफीको कोई दूसरा शराबी नहीं समझ पाता, वह तो उसे ठीक ही समझता है, उसकी बेवकूफी तो वही समझता है जिसने शराब न पिया हो जिसकी बुद्धि ठीक हो वही समझ पाता है कि यह दुःखी है। तो मामला यह पड़ गया कि यों ही जीवोंकी संख्या बड़ी है। माने मोह की शराब सब पिये हैं तो सभी लोग इस समागम में खुश हो रहे हैं। शराब पीने वालों ने अर्थात् मोहियोंने यहां नगरपालिका बनाली है। रजिस्ट्रेशन कायम कर लिया है। यहां तो लिख देते हैं कि यह चीज अमुक की है। यह अमुककी है पर यह तो सब मोहियोंकी बात है। मोही लोग तो इसे ठीक ही मानते हैं लेकिन सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष जानता है कि ये मुग्धजन तो अपना-अपना माननेमें लग रहे हैं। मगर इसका है कुछ नहीं यह तो केवल ज्ञानस्वरूप है ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व के अतिरिक्त इसका कुछ नहीं

Support and Donate at vkashi@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस बात को तो कोई ज्ञानी पुरुष हो, जिसे मोहकी परख हुई हो वह समझ लेता है ।

मोहमत्तोंको हितविभागमें वोट देनेका अनधिकार—अब रही वोटकी बात । अगर किसी बात बातको सलाह ली जाय यहां संसारमें तो ज्ञानीकी विजय होगी कि मोहियों की ? आप कोई भी बात रखेंगे तो मोही तो हैं अनन्तानन्त और ज्ञानियोंकी संख्या है असंख्यात । अब यहां वोट मिलेगी मोही जीवोंकी । कोई मानो १८—२० वर्षका नवयुवक है विवाह करने लायक हो गया, पर वह मन्दिरमें पूजापाठ में अधिक समय देता, त्यागी वृत्तियोंकी सेवा सुश्रूषा में अधिक रहता, गृहस्थीमें वह फसना नहीं चाहता ऐसे नवयुवकके लिए अगर कोई लोगोंसे सलाह ले कि इसके लिए हमें क्या करना चाहिए तो यह तो है मोहियोंका समूह । यहां तो मोहमें डालनेकी ही राय मिलेगी । अजी इसका विवाह करदो ताकि यह घरमें रहे, काम धाममें ठीक-ठीक रुचि रखे । तो यहांके इन संसारी मोही प्राणियोंसे वोट लेनेसे काम न चलेगा । छहढालामें बताया है कि मोह महामद पियो अनादि, भूलि आपको भरमत वादि ।" येसमस्त ससारी जीव अनादिसे मोहरूपी मदिराका पान किए हुए हैं । ये अपने आपके आत्म स्वरूपको भूलकर संसारमें भटक रहे हैं, रुकते फिर रहे हैं । तो इन संसारी मोही प्राणियोंसे अपने हितके लिए वोट न लें । अपना यह प्रतिबोध रखें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ जो ज्ञानकी स्वच्छता है सो मेरा स्वरूप है, इसीमें कल्याण है, इसीमें तृष्णा लगाना चाहिए इसीमें संतुष्ट रहना चाहिए । यह बात सबके मनमें आनी चाहिये कि देखो भाई छोड़ना तो सबको सब कुछ पड़ेगा यह बात तो बिल्कुल निश्चित है, इसमें रंच भी सन्देह नहीं । मगर कोई अपने इस जीवनकालमें ही सही ज्ञान बढ़ाकर इन बाह्य पदार्थोंका त्याग करें तो इसमें जीवन सफलता है ।

मोहकी विडम्बना—:जागदीशी टीका है उसमें एक कथा दी हैं कि एक भंगिन मलका टोकरा लिए हुए किसी बाजारसे जा रही थी । वहां जाते हुए अनेक लोगोंको तकलीफ हुई । तो एक सज्जनने सोचा कि इससे तो हमारे जैसे अनेकों लोगोंको तकलीफ होगी सो उसने एक बड़ा ही सुन्दर तौलिया उस मलसे भरे टोकनेको ढाकनेके लिए दिया । वह भंगिन जब सुन्दर तौलिया से ढाके हुए जा रही थी तो उसके पीछे तीन पुरुष लग गए । भंगिनने उनसे पूछा—भाई तुम लोग हमारे पीछे क्यो लगे हो ? तो उन्होंने कहा कि हम जानना चाहते हैं कि तुम्हारे टोकने में क्या है । हमें तो मालूम होता है कि इसमें कोई बहुत ही सुन्दर चीज है । भंगिनने कहा इसमें तो मल की भरा है । सो इतनी बात सुनते ही एक पुरुष लौट गया । दो पुरुष अभी भी उसके पीछे लगे रहे । फिर भंगिनने पूछा-भाई क्यों हमारे पीछे लगे हो ? अरे हमे तो खोल-कर बादो, जब हम देख लेगें तब विश्वास करेंगे । भंगिनने तोलिया खोलकर दिखा दिया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो उसे देखकर दूसरा पुरुषभी लौट गया। एक पुरुष अभी भी उसके पीछे लगा रहा। फिर भंगिन ने पूछा-भाई तुम हमारे पीछे क्यों लगे हो ? अजी हम तो इस तरह से न मानेंगे। हमें तो अच्छी तरहसे देखभाल कर परीक्षा कर लेनें दो तब हम मनेंगे। भंगिन ने तौलिया खोला उस पुरुषने अच्छी तरह से सूंघ सांघकर परीक्षा किया। जब जान लिया कि सचमुच यह मल है तब वह वहाँ से लौटा। तो भाई ऐसे ही समझो कि यहांके जितने भी समागम हैं वे सब अवश्य छोड़ने पड़ेंगे। अब उन्हें चाहे कोई सही ज्ञान बनाकर बिना भोगे पहिले से ही छोड दे चाहे उनको भोगकर उनमें रचपचकर उनकी असारता लखकर छोड़े, पर सारे प्राप्त समागम नियमसे छोड़ने पड़ेंगे। मानों कोई इस जीवनमें जीते जी न भी छोड़ सके पर अन्त में मरण होने पर तो सब कुछ छूट ही जायगा। तो अपना एक यह निर्णय बनायें कि जितने भी समागम मिले हैं वे सब एक अंधेरा हैं। इनसे मेरे जीवनका पार न पड़ेंगा। यों बात तथा की कही जा रही है इसमें असत्य रंचभी नहीं है

उत्पफनोंका कारण परसम्पर्क—भैया जितने भी समागम हैं वे सब मात्र क्लेश के ही कारण हैं। वे शान्तिके कारण न कभी हुए और न कभी हो सकते हैं। आज कुछ पुण्य का उदय है इसलिए ऐसा लगरहा कि बहुत कुछ ठीक। घरमें किसीके गुजर जानेपर जो बड़ा दुखी होता है वह दुःख और है किस बातका ! कोई लेन देन नहीं, कोई सम्बन्ध नही सत्ता न्यारी न्यारी है, कुछ बात ही नही है मगर भीतर में यह विकल्प बना रखा है कि यह मेरा है, यह मेरा है बस इस विकल्प से परेशान होकर दुखी होना पड़ता है यदि ममता का त्याग हो जाय, अहंकारका त्याग हो जाय तो इस जीवको किसी भी समय कष्ट नही है। ये जीव दुखी हो रहे है तो अपने आपके ऊधमसे दुःखी हो रहे है। सच-सच मानलो, कोई अपने दुःख नही। जहां असत्यका आग्रह है बस क्लेश तो उसी जगह है। तो अपना पहिले यह निर्णय बनायें कि जो भी समागम मिले हैं वे मेरे लिए क्लेशकारी हैं, मेरी उन्नतिके हेतु नही हैं। उन्नतिका हेतु है सदाचार भला विचार, सच्चा श्रद्धान, आत्माकी परख जिसमें तुरन्त भी शान्ति मिलती है और भविष्यमें भी सदाकाल इसे शान्ति मिलेगी है तो सार शरण यही तत्व बाकी जितने समागम हैं उनमें ललचाना नही, इनको पाकर मुग्ध मत होना, क्योंकि यह सब धोखा है। जैसे बच्चे लोग कभी कभी मजाकमें क्या खेल खेलते हैं कि चार पाया पलंग जो रस्सो या निवाड़से बुना हुआ नही हो उसको कुछ कच्चे धागोसे फांस देते हैं और उसपर अच्छी चादर बिछा देते हैं। कहते हैं आइये साहब पधारिये, बैठिये तो जब वह पुरुष अथवा बालक उस पलंगपर बैठता है तो धड़ामसे नीचे गिर जाता है मानों वह स्वयं अपने पैरोंमें सिर रखकर छूने सा लगता है याने उसके सिर पैर एक हो जाते हैं। तो जैसे वह पलंग

Recent Advances in Nikkaya Commentaries

http://www.jainkosh.org

धोखा है, देखनेमें भला लग रहा है मगर उसका सहारा ले तो वह गिरता है, इसी तरह संसारके ये समागम, ये सुन्दररूप, ये सुन्दर शृंगार, ये सुन्दर आभूषण ये भी धोखा हैं। इनमें जो फसाव रखता है वह निरन्तर कर्मबन्धन करता है और निरन्तर आकुलित रहता है। यों तो अपनेको कोई मानले कि मैं बड़ा सुखी हूँ, बड़ा आनन्द है, पर कल्पना होनेसे होता क्या है। वास्तविक सुख तो केवल मुक्तिमें है। अर्थात् केवल ज्ञानभावकी दशामें, ज्ञानभावकी श्रद्धामें, ज्ञाताद्रष्टा रहनेमें है।

परके रागमें संकटोंका वरदान—भैया जानने देखनेसे आगे बढ़े तो वह नियमसे फसा जैसे कहते हैं ना बोले सो बिबूचे। यह कहावत बनी कैसे कि एक राजा जंगलमें पहुँचा तो वहां एक संयासी मिला। राजा संयासीके पास बैठ गया। थोड़ी देर बाद साधु बोला राजन् क्या चाहते हो ? तो राजा बोला--महाराज मेरे पास कोई सन्तान नहीं है, सो कृपा करके आप एक सन्तानका मुझे आशीर्वाद दे दीजिए। साधुने कहा–एवं अस्तु याने–ऐस ही होगा। अब राजा तो प्रसन्नतापूर्वक घर गया। वहां सारी रानियोंको सारा हाल कहा सुनाया। राजदरबारमें आनन्द छा गया। जब १०-१२ महीने व्यतीत हो गए तो संयासी ने अपने ज्ञानसे देखा कि यदि जगतमें कोई जीव मर रहा हो तो वे उसे रानीके पेटमें भेजें, पर कोई जीव ऐसा न दिखा तो वह स्वयं ही मरकर रानीके गर्भमें पहूँच गया। वहां तो वह बड़े कष्ट सह रहा था। सोचा ओह–मैंने राजासे जंगलमें बोला था इसलिए फसा अच्छा अब मैं बाहर आनेपर कभी न बोलूंगा। वह बच्चा पैदा हो गया, सयाना हो गया पर बोले नहीं। राजदरबारमें बालकके पैदा होनेका तो हर्ष था पर साथ ही उसके गूंगा होनेका शोक भी था। सो राजाने अपने राज्यमें यह घोषणा करा दिया कि मेरे बेटेको जो बोलना सिखा देगा या बोलता बता देगा उसे बहुत सा इनाम दिया जायेगा। एक दिन क्या घटना घटी कि वह बालक अपने पासके बगीचेमें खेल रहा था। वहां उसने देखा कि एक चिड़ीमार जाल बिछाये हुए चिड़िया पकड़ रहा था। जब एक भी चिड़िया वहां न दिखी तो चिड़ीमार अपना जाल लपेटने लगा बगीचेसे चल देनेके लिये इतनेमें एक पक्षी जो डालीपर कहीं छिपा बैठा था ची ची कर बोल उठा। चिड़ीमारने समझ लिया कि अभी कोई पक्षी बैठा है सो झट लौट आया, जाल फैलाया, कुछ यहाँ वहां दाने बिखेर दिये और थोड़ी ही देरमें वह पक्षी आकर फंस गया। उस पक्षीको फंसता हुआ देख राजकुमारको अपनी पुरानी घटना याद आयी और सहसा बोल उठा अरे जो बोले सो फसे। राजकुमार के इन शब्दोंको सुन लिया चिड़ीमारने, सो वह जाल फेककर झट राजाके पास पहूँचा और राजाको बताया महाराज आपका कुमार बोलने लगा। बोलने लगा ? अच्छा तुम्हें राज्यकी ओरसे

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

५ गाँवपुरस्कार में दिए जाते हैं। जब राजकुमार पास आया, राजाने उसे बहुत-बहुत बुलाया पर न बोला—तो राजाको चिड़ीमार पर क्रोध आया, देखो चिड़ीमार भी मेरी हंसी करने लगे है। मेरा पुत्र बोलता नहीं, पर झूठ मूठ कह कर मेरी हंसी करता है कि यह बोलता है। अच्छा चिड़ीमारको फांसी दी जायगी। जब चिड़ीमारको राजाने फांसीका हुक्म दिया, फांसीके तख्तपर चढ़ा दिया तो राजा पूछने लगा-ऐ चिड़ीमार! बोल, तुझे क्या चाहिए? क्या खाना चाहता है? किससे मिलना चाहता है? सो चिड़ीमार बोला-राजन् मैं और कुछ नहीं चाहता, सिर्फ आप अपने कुमारसे मुझे दो मिनटके लिए मिला दीजिए। मिला दिया गया राजकुमार। वहां चिड़ीमार राजकुमारसे कहता है कि ऐ राजकुमार मुझे मरनेका गम नहीं, पर इस बातका गम हो रहा है कि दुनियां कहेगी कि चिड़ीमारने राजासे झूठ बोला था, इसलिए उसे फाँसी दी गई थी। सो कृपा करके आप उतने ही शब्द बोल दीजिए जो आपने बाटिकामें बोले थे। फिर क्या था। राजकुमारने कहा कि देखो जो बोले सो फसे। पहिले मैं साधु था, जंगल में तपस्या करता था। वहां मैंने राजासे बोला था तो में फसा था, चिड़िया बोल गई सो वह फस गई, और यह चिड़ीमार साहब राजासे बोल गए सो वह भी फस गए। तो भाई यह तो संसारकी रीति है कि यहां जो राग करेगा, बोलेगा वह नियमसे फसेगा।

सात तत्त्वोंमें प्रथम जीव रखा जानेका कारण--जीवाजीवाश्रवबन्ध सम्वरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं, इस सूत्रके सम्बन्धमें अब तक दो बातें कही गई हैं। पहिली बात तो यह है कि जीव तत्वकी संख्या ७ ही क्यों रखी गई? कम या अधिक क्यों नहीं रखी गई, दूसरी बात फिर यह कही गई कि इन ७ तत्त्वोंकी ही जब कुछ और कम संख्यामें बात मिल सकती थी तो इन ही ७ में और संकोच क्यों नहीं किया गया? इन दो बातों का समाधान भली प्रकार दिया गया है। अब यह बात कही जा रही है कि इन ७ तत्त्वोंका नाम इस क्रमसे क्यों रखा गया है? देखो भाई एक घड़ेमें अगर चने, गेहूँ आदिक कई चीजें भर दी जायें और उस घड़ेको हिलाया जाय तो एक सहज बात होती है ना कि कोई चीज नीचे रहती है कोई चीज मध्यमें रहती है और कोई ऊपर आ जाती है, तो जब एक सूत्रमें ७ चीजें भरी गई तो ये ७ चीजें एक साथ कैसे आयेंगी? कोई नीचे रहेंगी कोई ऊपर। इस सूत्रमें इन ७ तत्वोंको भरकर हिलाओ जरा सोच विचारकर युक्ति से सोचो तो अपने आप यह बात जाहिर हो जायगी कि हां पहिले जीव कहना ठीक फिर अजीव फिट बैठ जायगा। ध्यानसे सुनिये आज इसको दार्शनिक शैलीमें कहा जायगा। कठिन बात भी ती कभी सरल बनाना चाहिए। अगर कठिन बात कठिन ही बनी रहे तो हम कुछ बढ़ तो न सके और ध्यानसे सुननेसे तत्त्वको अनेक

Regd. Address: 4 at www.sahjanandvarnishastra.org

 http://www.jainkosh.org

बार समझनेसे कठिनसे भी कठिन बात सरल बन जाती है। आज यह बात कही जा रही हैं कि यह ७ तत्त्वोंका क्रम क्यों रखा ? यह सब बात जीवके लिए कही जा रही है। मोक्षका उपदेश जीवके लिए, सुख शान्तिका उपदेश जीवके लिए याने हम आपके लिए, तो जिसके लिए सारा उपक्रम किया जा रहा उसका नाम तो पहिले रखना चाहिए। यही कारण है कि ७ पदार्थोंमें जीवका नाम पहिले रखा गया, क्योंकि जितना भी जो कुछ वक्तव्य है और जो कुछ कर्तव्य है, जो भी प्रयोग कराया जाता है वह सब जीवके लिए है। तो फिर होता ही है कोई न कोई कारण जिससे हर एक बातका क्रम बना करता है। समाजमें रहो तो, रेल का टिकट बांटना हो तो, हर एक काममें कोई न कोई ऐसी पद्धति होती है कि जिसमें क्रम हुआ करता है। तो क्रम रखनेकी बात तो आवश्यक है। आप भोजन करते हैं तो उसमें भी यह क्रम पड़ा रहता है कि किस भोजनका कौन सा अंश क्या बनेगा। कितने अंशमें वह मल मूत्ररूप बनेगा, कितने अंशमें पसीना रूप बनेगा, कितने अंशमें खून रूप बनेगा, कितने अंश में हड्डी रूप बनेगा, तथा कितने अंशमें वीर्यरूप बनेगा, इस प्रकारका क्रम उस भोजनमें भी बनता है। तो क्रम रखनेकी कोई पद्धति तो होती है, यहां ७ तत्त्वोंके क्रमकी पद्धतिका यहाँ जिक्र किया जा रहा है।

सप्त तत्वों के नाम क्रमका संक्षिप्त दिग्दर्शन—अब जीवके प्रतिपक्षमें भी विचार करें। पहिले ७ तत्त्वोंकी बात एक संक्षेपमें कह दूं। जीवके लिए वर्णन है तो जीवका नाम पहिले और जीवके उपद्रवका कारण अजीब है याने जो बात कही जायगी उस सबका सम्बन्ध अजीबसे लगायेंगे तब ही तो बनेगा, इसलिए जीवके बाद अजीब कहा और जीव और अजीबके आश्रय होता है जो सबका एक मूल है उन ५ पर्यायोंमें वह है आश्रव। आश्रव न हो तो बांध कहां से हो। आश्रव की बात ही न समझो तो सम्बर किसका किया जाना समझोगें ? झड़े क्या ? मुक्ति किसकी हो ? मुक्ति क्यों दिलाई जाय ? इन ५ परिणामों का जो एक प्रारम्भ करने वाला है वह है एक आश्रव तत्त्व। और आश्रव होनेपर बन्ध होता इसलिए इसके बाद बन्ध बताया है और आश्रव बन्धका प्रारम्भक है, सम्बर मोक्षका प्रारंभक कारण है, सो सम्वर कहां। सम्वरके होनेपर निर्जरा होती है, सो सम्वर के बाद निर्जरा कहा और अन्तमें मोक्ष होता है इस तरह इसका क्रम रखा गया है।

प्रकृतिके लिए उपदेश न होकर बन्ध मोक्षके आश्रयभूत जीवके लिए उपदेश होनेसे जीव तत्त्वका प्रथम विन्यास—अब जरा सात तत्त्वोंके नामके क्रमके विरोधमें कुछ दार्शनिक लोग अपनी-अपनी बात रख रहे है। पहिली बात क्या कही गई कि हितका उपदेश' ज्ञानका उपदेश कल्याणकी बात जीवके लिए की गई है इसलिए जीवका नाम पहिले रखा ?

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

तो यहां सांख्य कहते हैं कि यह बात हमें खोटी लग रही है। उपदेश जितने भी होते हैं वे प्रकृतिके लिए होते हैं जीवके लिए नहीं होते, क्योंकि प्रकृतिमें ही ज्ञान होता, प्रकृतिमें ही घमन्ड होता, प्रकृतिसे ही ये शरीर आदिक बनते हैं और प्रकृतिका ही यह सब जाल है। जीव तो अपरिणामी शुद्ध चैतन्यमात्र ब्रह्म है इसलिए जीवके लिए यह उपदेश नहीं। यह सारा उपदेश प्रकिकृतिके लिए है। जरा जीव और प्रकृतिकी बात और बतला दें। कहते तो सभी लोग हैं यह तो प्राकृतिक दृश्य है। यह तो प्रकृति है, कुदरत है। सभी लोग प्रकृतिकी बात कहते हैं तो प्रकृति क्या चोज है। कहने को तो सभी कहते हैं। कोई पहाडका दृश्य देखा, नदी बह रही है, पत्थर हैं। उनकी लोग फोटो उतारते है और कहते हैं कि ये सब प्राकृतिक दृश्य हैं, तो वह प्रकृति क्या चीज है ? सांख्य सिद्धान्तमें तो प्रकृति एक कोई अचेनन तत्त्व है और यह सारा समागम, यह सारा दृश्मान जगत प्रधानका विकार है। जैन सिद्धान्तके अनुसार प्रकृति नाम है कर्मका। मूलमें प्रकृतियां हैं ८ और उत्तर प्रकृतियाँ हैं १४८ तो जितने ये सब दृश्य हैं वह सब इन प्रकृतियोंका है। फूल फूल रहे हैं तो वह भी प्रकृतिका उदय है जल बह रहा है तो वह भी प्रकृतिका उदय है। कहीं सुन्दर जानवर विचर रहे हैं तो वह भीप्रकृतिका उदय है। पहाड़ कोई कैसा ही है, तो प्रकृतिका उदय है, यह सब प्रकृतिका खेल है और हम आप जो बैठे हैं यह भी क्या है ? प्रकृति, प्रकृतिके ही उदय की तो चीज है। जीव तो एक चैतन्यस्वरूप है। प्रकृतिका उदय पाकर यह जीव भी विकृत होता है, इसप्रकारयह सब प्रकृति है। यहां सांख्य कहते हैं कि ज्ञान होता है तो प्रकृतिमें होता है। उपदेश हुआ तो प्रकृतिसे हुआ प्रधानसे हुआ और जीवमें केवल परम ब्रह्म चलेगा। जो एकमात्र अद्वैत चित्स्वरूप है। देखिये—इस प्रसंगमें ऐसा कहने वाले ये दार्शनिक बिल्कुल तो अजान नहीं और एक साधारण भी नहीं। कोई दृष्टिसे ऐसी एक दृष्टिसे हट गए जिससे यह सिद्धान्त बना। वह बात ठीक है ना। जीव द्रव्यार्थिक दृष्टिसे परम ब्रह्म स्वरूप है। वहां बंध मोक्षकी बात नहीं है, लेकिन पदार्थ केवल द्रव्यदृष्टिसे देखा गया तन्मात्र भी तो नहीं है। प्रत्येक पदार्थ पर्यायमय है। उस पर्यायकी बात भी तो कहना चाहिए। बस पर्यायको तो छोड़ दिया और द्रव्यार्थिकका जो विषय है उसको ग्रहण किया उसमें बना है ब्रह्माद्वैतवाद। देखो अगर प्रकृत्ति के लिए उपदेश किया जाय तो प्रकृतिको तो अचेतन माना है चैतन नहीं माना है। तो यहां भी कितने ही तत्त्व बता दिए जायें क्या उनके लिये आदेशका उपयोग हो सकता है ? नहीं हो सकता। ये भीट खम्भा आदिक जो खड़े हैं इनसे अगर कोई कहे किऐ भींट, ऐ खम्भे तुम यहां आ जावो तो क्या वे आ सकते हैं ? नहीं आ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सकते । तो अचेतन तत्त्वके लिए कोई उपदेश नहीं हैं, उपदेशतो चेतनतत्त्वके लिए होता है इसलिए जीवका नाम प्रथम रखा गया है । संक्षेपसे यह एक प्रतिपक्षीकी बात कही गई ।

क्षणिकवादसम्मत संतानके लिये उपदेश न होकर जीवतत्त्वके लिये उपदेश होनेसे जीवतत्त्वका प्रथम विन्यास:—इतनेमें कोई क्षणिक वादी आया जिसका सिद्धान्त है कि आत्मा क्षण–क्षणमें नष्ट होता है, नया-नया बनता है, लेकिन लगातार बनते रहने वाले आत्माकी जो एक संतान है बस उस संतानके लिए यह उपदेश दिया जाता । तो इस सिद्धान्तका कहना है कि जीवके लिए उपदेश नहीं दिया गया किन्तु संतान के लिए उपदेश दिया गया, क्योंकि जीव तो क्षण–क्षणमें उत्पन्न होता । कोई समय व्याख्यान दिया तो सुनने वाला तुरन्त मिट गया । सुनने वाला और हो और सुनकर उसको चित्तमें धारण करने वाला और हो तो जीवके लिए क्या उपदेश है । उपदेश तो संतानके लिए है, संगति के लिए है, ऐसा कहा है लेकिन यह बात भी अयुक्त है, क्योंकि संततिको अवास्तविक माना है क्षणिकवादियों ने, वास्तविक तत्त्व तो क्षण-क्षणमें होने वाला आत्मा है । तो जो अवस्तु है उसका अनुग्रह कैसे किया जा सकता है । तो वह भी बात ठीक नहीं प्रतीत होतीं कि संतानके लिए उपदेश होता जीवके लिए नहीं होता । देखो भाई एक बात यह ज्ञानमें आनी चाहिए कि मैं जीव हूँ, सदा रहता हूँ, इसलिए मुझे तत्त्वोपदेश सुनना चाहिए । तत्त्वोपदेशका लाभ उठाना चाहिए, कल्याण करना चाहिए । एक बात, दूसरी बात यह समझिये कि मैं जीव हूँ सो प्रतिक्षण बदलता रहता हूँ इसलिए अपनी ज्ञानदशाको बदल करके हमें ज्ञान अवस्थामें आना चाहिए । अगर अपनेको सर्वथा नित्य माना जाय तो कल्याण नहीं हो सकता, सर्वथा अनित्य माना जाय तो कल्याण नहीं हो सकता, यह बात सामने रखना है और इन दो बातोंका खुलासा होता है शंकाकारके इस प्रसंगसे । तो जिसका यह कहना है कि जीवके लिए मोक्षमार्गका उपदेश नहीं किन्तु संतानके लिए तत्त्वोपदेश है, यह बात युक्त न रही, क्योंकि संतान अवस्तु है । संतान कोई चीज नहीं है क्योंकि आत्मा नये–नये पैदा होते रहते हैं, तो उनमें एक दृष्टि बना लें कि लगातार ये चल रहे हैं, तो लगातारकी दृष्टि दृष्टि ही तो रही, कोई वहां वस्तु तो न रही ।

क्षणिकवादसम्मत निरन्वय क्षणिकचित्तके लिए उपदेशकी असंभवता:—अब इस विषयमें क्षणिकवादी बोलते हैं कि संतानके लिए न सही, किन्तु जो नया–नया जीव बनता रहता है उसके लिए उपदेश कह लीजिए । तो निरन्वयक्षणिक चित्त उनके जीवका नाम है, निरन्वय क्षणिकचित्त माना वहां आत्मा, वह है जीव; क्षण–क्षणमें नष्ट होता है, मायने वे अत्यन्त भिन्न–भिन्न जुदे–जुदे जीव हैं, ऐसे जीवके लिए उपदेश मान लिया जाय तो यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात भी ठीक नहीं बैठती, क्योंकि उसमें तो बड़ा धुटाला हो जायगा। ऐसा जीव जो क्षण-क्षणको आया और दूसरे क्षण न रहा, अब उपदेशदेने वाला जब उपदेशके शब्द निकालेगा तो उसके शब्द पूरे न निकलेंगे और वहां १०-५ जीव नयेनये पैदा हो जायेंगे, किसको उपदेश दिया बतलाओ? औरफिर किसीने एक शब्द सुना, किसीने आगेका शब्द, सुना, तोलो वह पूरा वाक्य कोई भी एक जीव नहीं सुन सकता, क्योंकि क्षण-क्षणमें नया-नया आत्मा माना। सुनने वाला कोई और है, धारणा करने वाला कोई और बन गया तो वहां किसके लिए तत्वपदेश है? तो समझना चाहिए कि निरन्वयक्षणिकचित्त के लिए भी तत्त्वोपदेश नहीं किया गया, क्योंकि वहां तो तत्काल ग्रहण नहीं बन सकता सो क्षणिक जीवकी प्रयोजकता वहां जरा भी सम्भव नहीं है क्योंकि संकेतग्रहणकालभी बह रहे और व्यवहारकाल भी बह रहे इतनी बात तो होना ही चाहिए तब तो तत्वोपदेश आ सकेगा। क्षणिक जीवमें तत्काल ग्रहण काल और व्यवहारकाल हो ही नहीं सकता। जैसेक्षणिक आत्ममें, संकेत तो पहिले कराया और उपदेश कभी ग्रहण करे और उसका उपयोग वह कभी तो उसका कल्याण कैसे हो सकता है? तो यह भी बात नहीं कहीं जा सकती। यहां तक तीन बातें कही गई, प्रधानके लिए उपदेश नहीं, संतान के लिए उपदेश नहीं और क्षण-क्षण में होने बाले आत्माके लिए भी उपदेश नहीं।

शरीरके लिये उपदेशकी असम्भवता और अप्रयोजकताअब एक चौथा दार्शनिक यह कहता है कि जो चैतन्यसे विशिष्ट शरीरहै उसके लिए तत्वका उपदेश है, अब यहां चार्वाकआया चेतन से सहित जो काय है वह तत्वोपदेश ग्रहण करता है और उसकी ही मुक्ति होती है तो यह बात भी विचार करनेपर ठीक नहीं बैठती, थोड़ा-थोड़ा ठीक तो बैठती है, क्योंकि जैसे शरीरमें जीव है ऐसे जीवसहित शरीरके लिए ही तो उपदेश है। जैसे सिद्ध भगवान हैं तो उनके लिए क्या उपदेश किया जाय? जैसे कोई मुर्दा शरीर हो तो उसके लिए क्या उपदेश दिया जाय? तो बात तो कुछ ठीक रखी कि चैतन्यसहित जो शरीर है उसके लिए सारा उपदेश दिया जाता है, लेकिन यह निर्णय उनका बनता नहीं है। इस शंकाकारने चेतन कोई पदार्थ अलग नहीं माना है कि कोई स्वतंत्र सत् है जीव। वे शरीरको ही भौतिक पदार्थ के संयोगकी एक वस्तु मानते हैं कि चेतन है। उस चेतन सेसहित जो शरीर है उसके लिए यह उपदेश है, इसमें जरा और विचार करें। शंकाकारने दो बात कही— चेतन और शरीर। चेतन सहित शरीर। तो शंकाकार जरा यह बतलायें कि वह चेतन शरीरसे जुदा तत्त्व है या शरीरका ही नाम चेतन है? दो बातें इसमें पूछी जाना चाहिए। यदि यह कहो कि शरीर से जुदा पदार्थ है चेतन और इस चेतनसे विशिष्ट शरीरके लिए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपदेश है तो इसमें बहुत कुछ बात सिद्धसाधनपने की आती है। ठीक है। यह व्यवहारनय-से कथन समझना चाहिए। चेतनसे सहित शरीरके लिए उपदेश है मायने नरक, तिर्यञ्च मनुष्य, देव, इन सबके लिए उपदेश किया जाता है। यहां तक तो बात ठीक है। पर वहाँ भी निश्चयसे देखा जाय तो उपदेश सुननेमें दो का स्थान नहीं है कि चेतन और शरीर दो मिलकर मोक्ष मार्ग को करेंगे, यहां पर भी एक जानने वाला समझने वाला चेतन है और इस चेतनके लिए ही उपदेश है। जो चेतन ऐसी परिस्थितिमें आवे समझो उस जीवके लिए उपदेश है। वह जोव निर्लेप नही है। अतः कुछ शब्दोंमें बात रखी जाना ही चाहिए। इस तरह से निश्चय और व्यवहारनय दोनोंका प्रयोजन संगत हो जायगा। तब यह सिद्ध हो गया कि चेतनके लिए उपदेश है, जीवके लिए उपदेश है। चेतनारहित शरीरको कौन उप-देश करता। अब दूसरे विकल्पकी बात सुनो। क्या कहा जा रहा कि चेतन शरीरसे न्यारा नहीं है, किन्तु शरीर ही चेतन है। कोई जुदा तत्त्वान्तर नहीं है, यह विकल्प जब लेते है तो यह विषय बिल्कुल ही असंगत है। अजीवके लिए कौन उपदेश देता। इस समय इस बात-पर विचार चल रहा है कि चैतन्यविशिष्ट कायके लिए उपदेशकी बात जो कही जा रही है उसमें ये चार्वाक यह समझ रहे हैं कि शरीर निराला नहीं है चेतन और शरीर एक चीज है। अगर एक ही चीज है तो इसके मायने है कायके लिए उपदेश हो रहा है। जब कायसे निराला चेतन नहीं माना जा रहा, तो कायके लिए उपदेश करना व्यर्थ है, क्योंकि कायके लिये कितना ही उपदेश दें, शरीरका उपग्रह नहीं होता। इससे यह सिद्ध हुआ कि तत्त्वो पदेश जीवके लिए ही होता है,।

सात तत्त्वोंमें जीवतत्त्वको प्रथम रखनेके कारणका उपसंहार—एक बात यह यहां संगत की गई है कि जीवाजीवाश्रवसंवरनिर्जरा मोक्षाः इन ७ तत्त्वोंमें जीवका नाम प्रथम क्यों ग्रहण किया ? उत्तर संक्षेपमें यह रहा कि जितनी जो कुछ बात कही जा रही है वह सब जीव के लिए कही जा रही है। और भी देखो-जगतमें सारे पदार्थ ६ प्रकार के हैं ना, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। एक कल्पना करो कि ५ तो द्रव्य रहें ये परन्तु इनमेंसे एक जीव सत्त्व न माना जाय, पुद्गल खूब रहें, धर्म अधर्म, आकाश और काल खूब रहें, तो इसमें क्या हानि है ? तो अब हानि देख लो। जीव नहीं है और सब हैं पुद्गल धर्म अधर्म आकाश, काल सो जोव को तो यहां माना नहीं जा रहा, बाकी ५ द्रव्य है इनका को ई जानने वाला नहीं तो ये रहे न रहे बराबर हैं फिर पुद्गलमें जो इतनी चीजें दिख रही हैं, जो भी पुद्गल है यह सब जीवके सम्बन्ध से दिखने योग्य हुआ, अगर जीवका सम्बन्ध न हुआ हो तो यह दिखना कभी न बन सकता था। जैसे यह भींट है, कलई है, चूना है, पेड़

Version 1

है, मल है, मूत्र है, पृथ्वी है आदिक ये सब जीवका सम्पर्क होनेसे ही देखे गए हैं जीवका सम्बन्ध न हो तो ये चीजें कभी दिखनेमें आ सकेंगी क्या ? आप बतलाओ जीवका सम्बन्ध आया तो यह वनस्पतिकाय जीव हुआ शरीर बना, शरीरमें पुष्टि आयी अब जीव न रहे तब तो ये बातें शरीरमें नहीं हो सकती। अगर जीवको न मानें तो फिर पुद्गल ठहरेगा कहाँ और मानों ठहर भी जाये मानों सूक्ष्म परमाणु हैं तो उनका प्रयोजन क्या, जानने वाले बिना क्या ? जीव तत्व तो समस्त द्रव्योंमें एक राजा, प्रधान, सारभूत तत्व हैं, सब समयोंमें सार समय मायने पदार्थ, सब पदार्थोंमें सार पदार्थ है जीव सो समय सार हुआ जीव, इस समयसार में भी सार है द्रव्यदृष्टिसे परखा गया ज्ञानस्वभावी अतस्तत्व। देखिये समयसार नामपर एक सार और धर दिया और उसमें भी सार परखा तो कोई सार जब बोलेगा तो एक ही सारसे काम चलेगा। यह समयसार। तो जीवका नाम पहिले रखा गया, इसका कारण यह है कि जीवके लिए ही तत्वोंपदेश है इसलिए जीवका सूत्रमें प्रथम नाम है।

अजीव तत्त्वको द्वितीय नवरपर रखनेका कारण—अब जीवके बाद अजीवकी बात देखिये दूसरे नम्बर पर तत्व कौन रखा गया ? अजीब जो कि जीवके विकारका कारण है। धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल आदिक जो अजीबके विशेष है वे जीवकी गतिमें कारण, स्थिति में कारण, अवगाहनामें कारण शरीर आदिक बनानेमें कारण है जीव तो अकेला एक है ना, अब जीवके साथ यह शरीर बन गया तो यह किसका उपकार है ? पुद्गलका विकार है, इसउपकार को इस तरह न देखना कि भाई जिसका उपकार है उसका तो कृतज्ञ होना चाहिए और उसकी खूब सेवा करनी चाहिए, क्योंकि यह शरीर पुद्गलका उपकार है, धन्यतो पुद्गल तुम्हारी वजह से शरीर मिला ऐसी कृतज्ञताकी बात नहीं, किन्तु उपकारका अर्थ है काम होना इसमें कारण है सूक्ष्म कर्म और शरीर साथ है। तो जीव अभी किस तरह चल रहा है, यह बात तो प्रकट दिख रही है। बड़े बन्धनमें है इसका कारण अजीव प्रसंग है। आपसे कहें कि भाई जरा आप इस शरीर विस्तारको तो वही पड़ा रहने दो और आप ही अकेले कृपा करके एक हाथ आगे आ जावो तो क्या आप इस तरहसे आ सकते है ? नहीं आ सकते। यह जो पिण्डोला लगा है, जिसके भीतर हम घुसे हुए हैं जहां जायगा साथ जायगा, ऐसा एक क्षेत्रावगाह हो रहा है, निमित्तनैमित्तिक बन्धन चल रहा है, वास्तविक है वह असत्य नहीं कहा जा सकता लेकिन ये कल्याणमार्गकी दिशामें कुछ विधन करें मैं तो शरीरको तो ऐसी दृष्टिसे छोड़ देना होगा कि मानों शरीर है ही नहीं। दृष्टिमें केवल एक जीवको लें। ज्ञानभावको लें तो यह भूतार्थका आश्रय, कहलायगा और यह ही सम्यक्त्वकी प्राप्तिका कारण है। तो बात यह कही जा रही है कि ७ तत्त्वोंकी व्यवस्थामें जीव के बाद अजीब क्यों कहा कि यह जीवके

Report any errors at vikasnu@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपग्रहका कारण है। इससे यह क्रम बताया गया जीव और अजीव। देखिये-भाई मित्रता, दोस्ती, बन्धन, मोह ये सब इस जीवको कल्याण में बाधा देने वाले हैं। मूलको देख लो—इस जीवके साथ अजीव न लगा होता तो आज हम आपकी ऐसी दयनीय दशा क्यों होती। किसी भी समय हम अपना सच्चा आराम नहीं कर सकते सहज निजवा गांवका आनन्द नहीं ले सकते, और जरा-जरा सी बातमें क्षमा हम करते हैं।

सम्यग्ज्ञान हुए बिना विकारोंसे पृथक् हो सकनेकी असंभवता:—यह सब सिद्ध करता है कि जीवके साथ कोई विपरीत उपाधि हैं। कभी कभी कोई माता आहार देनेके बाद हमसे कहने लगती हैं कि महाराज हमारा लड़का कभी-कभी बड़ी गुस्सा करने लगता है उसको आप यह नियम दिला दो कि वह कभी गुस्सा न करे। अब हमें कोई भाई समझादे कि इस गुस्साका भी किसीसे त्याग कराया जा सकता है क्या? कोई बाहर भी चीज हो तो कह भी दिया जाय कि भाई गोभीका फूल अभक्ष्य है उसे छोड़ दो, पर उसे क्रोध का त्याग कैसे करायी जाय? वह तो एक अन्दर की विकृत चीज है। खैर वह तो छोटे लड़कों की बात है, आप सब जो बड़े बड़े जवान लोग बैठे हुए हैं, वे ही भला गुस्साका त्याग करके दिखा दें। कोई कहे कि इसके विकल्पका त्याग करा दो। विकल्प में बड़ा क्षोभ है, दुःखी होना पड़ता है, तो इसके विकल्पका नियम दिला दो कि न करे विकल्प, तो बताओं कोई विकल्पका त्याग कैसे करायेगा? कोई दूसरेको विकल्पोंका त्याग कराना क्या? पहिले खुद भी तो विकल्पोंका त्याग करके दिखायें। यह बातयों न निभेगी। वह तो निभेगी सम्यग्ज्ञानसे। खुद ही खुदका निभाव बना सकता है। अपना सम्यग्ज्ञान जगे, अपने भीतरका स्वरूप समझमें आ जाय कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञान ही मेरा वैभव है, ज्ञान ही मेरा घर है, ज्ञानके शिवाय मैं कुछ नहीं, ज्ञान ही मेरा सर्वस्व है, ऐसा अपने आपकी दृष्टिमें आये तो भाई भला होगा। देखो अपनी दया करलो, अपने मनको समझा लो। कोई प्रसंग आये दुःखका तो अपना मन दुःखी हो रहा है ठीक है, लेकिन कोई वचन व्यवहार ऐसा न करें कि जिससे दूसरे को दुःख पैदा हो। अगर आपको कोई दुःख है तो दो मिनटमें आप स्वयं उसे दूर कर सकने हैं। सब दुःख अपने ओपपर झेल लें मगर दूसरेसे वचन व्यवहार ऐसा न करें कि जो दूसरे के मर्मको भेद दे, क्योंकि ऐसा बचनव्यवहार हो जायगा तो फिर कोई उपाय नही है कि आप उसके दुःखको दूर कर सकें। अपना दुःख थोड़े समयको हो गया तो आप अपनेमें समझालेंगे, आप उस दुःखको स्वयं पचालेंगे, उससे कोई वातावरण न विगड़ेगा। एक शान्तिका वातावरण बनानेमें लाभ ही लाभ है। तो कैसे दूसरेको नियम दिलाया जा सकता। खुद ही ज्ञानप्रकाश पाये और अपने आपके

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्माको समझे, अहो कितना बड़ा अज्ञान था, उस अपने ज्ञानस्वभाव को न ग्रहण करके विषय आया शरीर, दूसरा जीव, उसको ही अपना करके अपने को अभी तक अनादिसे संकट ही संकट में रखा। अब मैं इन संकटोंको नही सह सकता। ये संकट तब समझमें आयेंगे कि संकट हैं जब मैं इनको न सहूंगा। जब इन संकटोंको मैं संकट ही न समझता था तब तक संकट भी सह रहा था, संकटो का बहिष्कार भी कर रहा था लेकिन आज परिचय हुआ कि ज्ञानादृष्टा रहने के अतिरिक्त जो कुछ भी विकल्प होता है वह सब संकट है, उसे मैं अब न करूंगा।

अजीवके उपग्रहकी विडम्बना:—देखिये यहां उपकारकी बात कोई भलेकी नहीं कह रहे, मगर जो काम हो रहा है, जो जीवकी विभिन्न दशा चल रही है उसका कारण है अजीव यों अजीवसे उपग्रह चल रहा है इसलिए जीवके बाद अजीव तत्त्वका नाम लिखा गया है। देखो यह अजीवके सम्बन्धका उपकार, यह अजीवके साथ दोस्ती बनानेका काम कितना खतरनाक बन रहा है। हम मन्दिर में आकर सिद्धभगवान की पूजा करते हैं हे भगवान् प्रसन्न हो ओ। सिद्ध की भक्ति करने आते हैं, पर पुण्य करके बहुत से लोग सोचते हैं कि मेरा परिवार सुखी रहे, मेरे धन बढ़े। अरे पूजा करते हुए जब यह दृष्टि न रहे कि सिद्ध भगवान जैसे हैं वैसा मैं भी हूँ मेरा भी स्वभाव एकत्वको लिए हुए है, ऐसा वह ज्ञानमात्र आत्मा है ऐसा भीतरमें बोध न करे और मैं भी इस अवस्थाको प्राप्त कर सकता हूँ ऐसा विश्वास न करें तो उस भक्ति से क्या फायदा ? एक गरीब भाई किसी धनिककी सेवा करे और वह मनमें कुछ उद्देश्य न रखे कि में भी ऐसा हो जाऊं या मेरेको भी कुछ सुविधा मिले यह उद्देश्य न बनाये और केवल यह धनी है इसलिए हमें सेवा करना चाहिए, ऐसा सोचकर कोई सेवा करे तो उसे कोई लोग बुद्धिमान कहेंगे क्या ? वह तो एक कायरता भी हो सकती है। इसीतरह सिद्ध भगवान की हम भक्ति उपासना करने आये और हमारी यह श्रद्धा न बने कि जैसा सिद्धका स्वरूप है, वैसा ही मैं हो सकता हूँ। वैसा होना चाहिए नहीं तो संसारके संकट नहीं छूट सकते। यहां तो एक विपत्ति की सम्हाल करते हैं तो दूसरी विपत्ति सामने आ खड़ी होती है। घर-घर में यही बात चल रही है कि अभी एक समस्या नहीं सुलझा पाये, दूसरी समस्या सामने खड़ी हो जाती है। यह संसार दुःखका घर है। यहां से तो हमें विदा होने में ही लाभ है, और देखो जो यहां से विदा होते है उनका कितना बड़ा विदा समारोह मनाया जाता है। तो फिर जो इस संसारसे विदा होते हैं उनका बड़ा ऊँचा समारोह होता है, उस समारोह को माननेके लिए साधारण प्राणी समर्थ नहीं होते, उसे तो तीनों लोकों के इन्द्र मानते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जब यह जीव सदाके लिए संसार से मुक्त होता है ।, सिद्ध भगवान बनता है उस समयका समारोह क्या कहलाता ? मोक्षकल्याण । बड़ा समारोह होता है । तो समझ लीजिए कि यहां तो लोग जरा जरा सी बात में कीर्तिकी चाह करते हैं मगर बहुत बड़ी कीर्ति चाहिए और बहुत बड़ा समारोह चाहिए तो आप संसारसे सदाके लिए छूटनेका प्रोग्राम रचें तब यह मौका मिलता है, संसारसे सदाके लिए छूटनेका मौका मिलेगा, आप कुछ न चाहेंगे मगर तीनों लोकों के इन्द्र आपका विदाई समारोह करेंगे।

साँसारिक सुखकी विडरूपता—भाई देखो ऐसे सुखसे क्या लाभ है जो थोड़ी देरको मिला फिर वियोग उसकी कसर निकाले और, देखो किसीका बच्चा बचपन में ही मर जाय तो माँ कहती है कि इससे तो अच्छा था कि वह पैदा ही न होता । अगर उस बच्चेका मुख न देखते तो उससे राग विकार होनेका मौका ही क्यों आता ? तो जो ये संसार के सुख आये हैं थोड़ी देरके लिए, बादमें कठिन दुःख नियमसे आयगा । जो संसारके सुखोंमें मग्न होगा वह नियमसे संसारके कठिन दुःख पायगा । संसारका सुख जो जितना चाहेगा उसको उससे कई गुणा दुःख नियमसे आयगा । इससे सबसे पहिले तत्व निर्णय बनायें कि सांसारिक सुख दुःखसे भी बुरे है दुःखमें तो प्रभुकी याद भी आजाती है दुःखमें प्रभुभक्ति का स्वाध्याय वा सेवाका कुछ समय भी निकल आता है मगर जब सुख अधिक होता है तो वहां इसके लिए समय अधिक नहीं निकलता जिस सुखमें हम प्रभुका स्मरण करने लायक भी न रहें उसे हम क्या समझें ? सुखसे तो दुःख अच्छा है जहां सावधानी बनी रहती है । देखो विषय भोगोंको भोगने वाला सम्यग्दर्शन नहीं प्राप्त कर सकता है । पर ७ वें नरक का नारकी प्राप्त कर सकता है । भले ही उसे बहुत कठिन दुःख है मगर उसकी वेदना उसे प्रभुकी याद दिलाने का साधन बनेगी और ये सांसारिक सुख ये भोग प्रसंग इस जीवके कल्याणके बाधक बन जायेंगे । इस कारण भाई इस संसारके सुखोंमें ललचाना नहीं और संसारके दुःखोंमें घबड़ाना नहीं । लोग सोचते हैं कि हमें तो बड़ा दुःख है, पर वास्तविकता यह है कि दुःख किसी को भी नहीं है, क्योंकि जो हम आप सब हैं वे एक–एक अकेले अकेले जीव हैं । जितने भी परिपूर्ण हैं, जो कुछ भी सत् है उसमें दुःखका क्या काम ? वैसे दुःख होगा, इसको दुःख कहां से आयेंगे ? दुःखकी गुंजाइस ही नहीं है । किसी भी परवस्तु से मेरेमें कुछ आये यह हो नहीं सकता एक द्रव्यका दूसरा द्रव्य कुछ भी परिणमन नहीं कर सकता । वह तो निमित्तनैमित्तिक योग है कि इसका निमित्त पाकर यह वस्तु इस प्रकार परिणम गई । पर वास्तविकता यह है कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थका परिणमन करने में समर्थ नहीं है । एक का दूसरे के साथ कर्त्ताकर्म भाव नहीं है । लेकिन कोई इस तरह माने कि जीवमें

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

अपने आप जो होना है होता है सामने जो हो उसमें निमित्त हो जाता है, इसमें निमित्त नैमित्तिक की व्यवस्था नहीं आयी और इसमें कल्याण ढुढ़ने का मार्ग भी नहीं मिलता। जब जो होना है होता है। तो भाई निमित्त कहो या ना कहो बात सामने है। तथा निमित्ता पेक्षविकार है तो वह स्वभाव बन बैठेगा तो नित्यकर्त्ताका प्रसंग आ जायगा। तो आत्मा सबसे निराला है। जितना भी विषय कषायोंका भाव है वह मेरी चेतना का परिणाम नहीं है, किन्तु यह कर्मविपाक है। कर्मविपाककी झांकी हुई एक बार अपनी और उसमें इस तरह भी बात चल उठी तो इसे पोद्गलिक मामने में कुछ हर्ज नहीं, जिसके सम्बन्धमें कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं कहा है कि यह सब जो है वह पौद्गलिक भाव है परभाव है।

आस्रवका स्वरूप न अजीवके बाद रखनेके क्रमका कारण—अब तक दो तत्वो के बारे में क्रम के निर्णयका वर्णन किया गया आज आश्रव तत्वके सम्बन्धमें कहा जा रहा है, जीव अजीवके बाद आश्रवका नाम क्यों रखा गया है ? तो यहां यह ध्यानमें रखियेगा कि आश्रव होते हैं तो दो प्रकार के (१) द्रव्याश्रव और (२) भावाश्रव। जो शरीर परमाणु और कर्म परमाणु हैं इनके आनेक नाम है द्रव्याश्रव और जीवमें इस योग्य विभाव के आनेका नाम भावाश्रव है देखिये यद्यपि आश्रव के बाद से कर्म और शरीर परमाणु दोनो आ सकते हैं, किन्तु प्रधान है कर्मपरमाणु, क्योंकि शरीर परमाणु आनेका कारण है कर्म परमाणु, इसलिए मुख्यता कर्मकी है। तो यहां आश्रवका अर्थ माना है जीवमें अजीवका आना सो आश्रवसे होता है इसलिए दो तत्त्वोंके बाद आश्रव तत्त्वका वर्णन किया जा रहा है। आश्रवके होनेपर ही बंधकी उत्पत्ति होती है इस कारण आश्रव के बाद बंध कहा है। आश्रव का अर्थ है आना और बन्धका अर्थ हे बंधना। कर्म आयें और तुरन्त चले, जायें, ठहरें ही नहीं। जैसे कोई बच्चा दौड़कर मंडपमें ले जाकर मंडपसे बाहर निकल गया इस तरह कर्म आयें और तुरन्त ही निकल जायें आत्मामें ठहरें ही नहीं यह तो हुआ आनेका स्वरूप और ठहर जायें यह हुआ बंधका स्वरूप। तो ऐसे आश्रबमें आये और जो ठहरे नहीं तो ऐसा आश्रव तो वीतराग आत्माके होता है। ११ वें, १३ वें गुणस्थान तक ईर्यापथ आश्रव होता है और १४ वें गुणस्थानमें ईर्यापथ आश्रव भी नहीं होता है। यद्यपि आश्रवका अर्थ ठहराना नहीं है लेकिन हम आप सब लोगोंके जो आश्रव होता रहता है सो स्वरूप तो वही हे जो आश्रवका स्वरूप है, मगर यहां कोई आश्रव ऐसा नहीं कि आकर तुरन्त चला जाय। यों आश्रवकी बात है।

आस्रवके बाद बन्धतत्त्वको क्रममें रखनेका कारण:—बन्धके बारेमें समझें बन्ध कहते हैं बन्धनको। तो आप यह बतलावो कि आया जिस समयमें उस समयमें बन्ध कहलायगा

Report any errors at vitasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि नहीं, देखिये कहलायगा भी और नहीं भी कहलायगा । दूसरे समयमें ठहरे तो, पहिले से ही बन्ध संज्ञा है । अगर दूसरे समयमें न ठहरा तो पहिले समयमें भी ठहरा न कहलायगा ठहरने से पर पहिले समयमें भी कहलायगा कि उसी समयमें आश्रव है, उसी समयमें बन्ध है, लेकिन समझनेके लिए यह बात आयगी कि ठहरना होनेपर बन्ध होता है याने आश्रवके समयमें भी बन्धकी संज्ञा होनेका कारण है दूसरे समयका ठहरना । इसे कहते हैं बन्धन । तो आश्रवके होनेपर ही बन्धन होता है, इस कारणसे आश्रव के बाद बंधका होना क्रममें रखा गया है । यहां तक क्रम समझमें आया । जीव, अजीव, आश्रव, बंध । बात क्या कही जा रही कि जीव तो हम आप खुद हैं पर इसमें कर्म जो धरे हैं वे अजीवमें आ जायेंगे । जीवमें कर्म आये तो आश्रव जीवमें कर्म बँधे सो बन्ध ।

आश्रव बन्धके बाद निर्जरातत्त्वको क्रममें रखनेंका कारण:—बंधके बाद सम्बर कहा है, उसका कारण यह है कि आश्रव और बंधका प्रतिपक्षी है सम्बर जहां सम्बर है वहां न आश्रव है न बंध है । देखो—सम्यग्दृष्टि श्रावक मुनिके सम्बर भी हो रहा, आश्रव बंध भी हो रहा निर्जरा भी हो रही । चारों बातें एक साथ होती है, चारों बातें होनेका कारणभूत परिणाम भी एक है । एक समयके परिणामसे, उस अन्तर्मुहूर्तके परिणामके निमित्तसे आश्रव भी हो रहा बंध भी हो रहा सम्बर भी हो रहा निर्जरा भी हो रही, परिणाम एक है किन्तु उस परिणाममें जो रागाँश है वह आश्रव बंधका कारण है और उस परिणाममें जो वैराग्यकी झलक है वह सम्बर निर्जरा का कारण है । एक ही परिणाममें राग और वैराग्य दोनों भरे हुए हैं । उसको यों समझ लीजिए—जैसे जमीनपर तो १०० डिग्रीका राग समझिये और जरा कुछ और ऊपर १ डिग्रीका राग समझिये, याने जीव जैसे जैसे परिणाममें ऊपर चढ़ेगा उसके रागकी डिग्री कम होगी । मानों ४० अंशकी डिग्री का राग है, जमीनसे भी बहुत ऊँचा उठ रहा है तो उस समयका जो ४० अंश वाला रागका परिणाम है उसे यही तो कहेंगे कि ६० अंश न रहा वह हुआ वैराग्य और जितने अंशमें राग है वह है राग । जो वैराग्य शक्ति हुई उससे तो होता है सम्बर निर्जरा और जो रागांश होता है उससे होता है आश्रव बंध । एक ही समयमें चारों होते हैं, किन्तु कुछ सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन करने पर निमित्तकरणका जुदा जुदा विदित हो जाता है तो आश्रव और बंधका प्रतिपक्षी है सम्बर अतः आश्रव और बंधके बाद सम्बर का नाम दिया ।

संवरके बाद निर्जरातत्वका क्रम रखनेका कारण—सम्बर होने पर ही मोक्ष हेतु भूत निर्जरा होती है इसलिए सम्बरके बाद निर्जराका सम्बर दिया गया है । क्योंकि सम्वरके होनेपर ही परम निर्जरा होती है और परम निर्जरा के होनेपर ही मोक्ष होता है ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निर्जरा और परम निर्जराका भाव क्या ? कुछ कुछ निर्जरा हो गई, निर्जरा की एक विशेष वृत्ति नहीं चल रही वह तो निर्जरा हैं और जहां बहुत अधिक निर्जरा होती है और जहां बन्ध और आश्रव नहीं चलता है, ऐसी स्थिति को कहते हैं परम निर्जरा और परम निर्जरा होती है १४ वें गुणस्थानमें । जहां परम निर्जरा हुई वहां अन्तमें मोक्ष होता है । निर्जरा, परम निर्जरा और मोक्ष ये तीन बातें समझना है । निर्जरा तो जो सम्वर पूर्वक निर्जरा है यह चलती रहती है चतुर्थ गुणास्थान से १२ वें गुणास्थान तक । १३ वें गुणास्थानमें और विशेषता हुई और १४ वें गूणास्थानमें परम-निर्जरा हुई । उसके बाद मोक्ष होती है । यहां एक आशंका की जा सकती है कि परम निर्जरा और मोक्षमें क्या अन्तर है ? जो परम निर्जरा हुई, पूरे कर्म खिर गए उसीका नाम तो मोक्ष है । मोक्ष और परमनिर्जरामें क्या भेद है ? कुछ भी तो अन्तर नहीं । इसे मोटे रूपसे देखते हैं तो शंकाकार की बात कुछ भली जचती है लेकिन कुछ सूक्ष्मतासे विचारें तो परम निर्जरा तो है १४ वें गुणस्थानमें और मोक्ष है गुणस्थान से अतीत स्थितिमें । जहां गुणस्थान नहीं है वह है मोक्ष, जहां तक गुणस्थान है वहां तक है मोक्षसे पहिलेकी स्थिति । यद्यपि १३ वें १४ वें गुणास्थान को भी मुक्ति कहते हैं पर वह है जीवनमुक्त । यो तो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुषको भी मुक्त जीवन कहते हैं, अभिप्राय जुदा जुदा है । शब्द पर अधिक विवाद न करना चाहिए । अभिप्राय देखना चाहिये कि क्या है आशयकों छोड़ने से विवाद है जैसे कि एक स्वरूपाचरण की बात चर्चाका विषय बना हुआ है

वचनके आशयसे निर्णयकी व्यवस्था—कोई कहते हैं कि स्वरूपाचरण चौथे गुणा-स्थानमें होता है कि नहीं ७ वें गुणास्थान से होगा । ५ वं या ६ठे से नहीं किसीका यह मंतव्य है और कोई कहते है कि स्वरूपाचरण चौथे गुणस्थानसे होता है, भाई स्वरूपाचरणका नाम लेकर विवाद मत करो । तुम तो यह बात बताओ कि स्वरूपाचरणका अर्थ तुम क्या कर रहे हो ? जब यहां भेद बतायगा कोई तो विवाद हो जायगा । स्वरूपाचरणका अर्थ यदि यह लिया जाता कि अपने आत्माके स्वरूपमें मग्न हो जाना तो यह स्वरूपाचरण प्रभुता प्रकट होनेसे पहिले नहीं है । श्रद्धा की अपेक्षा तो चौथे ५ वें छठवें गृणस्थान में भी ऐसा ही मानते है जो चौथे गूणस्थान से स्वरूपाचरण मानते हैं । साधारणतया स्वरूपाचरण का अर्थ यदि स्वरूपमें मग्न होना लिया जाय तो स्वरूपाचरण तो सदा रहता है, अनुभूतिके समय स्वरूपाचरण हो और अनुभूति न हो तब न हो ऐसा नहीं है, अनुभूति तो कभी होती है लेकिन स्वरूपाचरण निरन्तर बना रहता है ज्ञानी तम्यग्दृष्टि के । जब स्वरूपाचरणका अर्थ यह किया जाय कि स्वरूपकी ओरका आचरण, चाहे थोड़ा हो अधिक हो या पूर्ण हो । तो आत्माका शुद्ध निरपेक्षस्वरुपज्ञायकभावकी जो दृष्टि है उसकी धुन बनती है, उसकी ओर

Report any errors at vkasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपयोग रहता है वह भी स्वरूपाचरणकी पंक्तिका आचरण है और उसके अपने आप मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य इनकी प्रवृत्ति दूर हो जाती है, प्रशम, सम्वेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य आदिक का व्यवहार हो जाता है । व्यवहारमें तो यह है और अन्तः एक उस निरपेक्ष ज्ञायकस्वभाव की सुध रहती है ऐसा एक आचरण बन जाता है इसे कहते हैं स्वरूपाचरण । तो इसे चौथे गूणस्थानमें भी माननेमें कोई विपत्ति नही । शब्दोमें विवाद होनेपर बहुत बड़ा झगड़ा खड़ा हो जाता है । भाव तो कोई नहीं देखता । एक बार सहारनपुर में हुआ है ऐसा कि जब हिन्दू मुस्लिम दंगा चला करता था उस समयकी बात है कि एक लड़के के पास थी एक खोंटी चवन्नी । वह चलती न थी । तो एक हलवाई की दूकान पर २ आनेकी मिठाई लिया, वही चवन्नी दी, हलवाईने २ आने वापिस कर दिये । वह लड़का बड़ा खुश हुआ, और मारे खुशीके उछलता कूदता दौड़ा और साथ ही यह भी कहता गया कि चल गई चल गई चल गई उसका यहां आशय तो यह था कि मेरी चवन्नी चल गई । पर वहां जब दूकानदारोंने सुना तो उन्होंने सोचा कि शायद हिन्दू मुस्लिममें लड़ाई चल गई, सो सभी दूकानदार अपनी अपनी दूकाने बन्द करके अपने अपने घरमें घुस गए । तो शब्नों पर ही कोई दृष्टि दे, उसके आशयको न समझे तो वही विवाद खड़ा हो जाता है और कोई शब्दके भावों पर दृष्टि दे तो वहां कोई विवाद नहीं होता है,

मोक्ष तत्त्वको अन्तमें रखनेका कारण:—देखिये परम निर्जरा १४ वें गुणस्थानमें है और मोक्ष गुणस्थानसे अतीत हो जाने में है । कोई यह सोच सकता कि जो कर्मके विनाशका समय है वही तो मोक्षका समय है, फिर कैसे परमनिर्जराके बाद मोक्षकी कल्पना हो सकती है ? ध्यानसे देखिये—समस्त कर्मोका विनाश जहां है वह है १४ वें गुणस्थानके अन्तमें और १४ वें गुणस्थानका जहां अन्त हुआ उसके बाद का जो प्रथम समय है वही लोकके अग्रभागपर विराजमान हो जानेका है । एक समयमें ७ राजू ऊंचे केवलीका जीव पहुंच जाता है उसे कहते हैं मुक्त दशा । तो अयोगकेवलीका जो चरम समय है वह गुणस्थानमें है और मोक्षकी जो स्थिति है वह गुणस्थान से अतीत है, लोकके अग्रभागमें जहां पहुच जाता है उसे अतीत गुणस्थान कहते हैं । यो ही परमनिर्जरा और मोक्षमें अन्तर होता है । इसलिए अन्तमें मोक्षतत्वका शब्द रखा है । इस तरह संख्याका वर्णन हुआ और क्रमका भी वर्णन हुआ ।

सूत्रमें तत्त्व एकवचनान्त शब्दका मर्म:—अब तत्त्वं इस शब्द पर दृष्टि दीजिए तत्त्व का क्या कहां जाता है ? तस्यभावः तत्त्वं तस्य मायने उसका, उसका मायने सब का । वस्तुका जो भाव है उसे तत्त्व कहते हैं । एक तत्त्वसूत्र पुस्तक बनाया है

 http://sahjanandvarnishastra.org/

उसमें बहुत छोटे छोटे सूत्र हैं, जिसमें पहिला सूत्र है ॐ, दूसरा तत् और तीसरा सत् इनको मिलाकर बोलें तो ॐ तत् सत्, । यह बात अन्य मतावलिबयोंमें बहुत प्रसिद्ध है, और यह बात जैनसिद्धान्तमें भी है, ॐ तत् सत् । इसका सीधा अर्थ तो यह है कि ॐ में तो पंचपरमेष्ठी गर्भित हैं । अब और दृष्टिसे तत्त्वको ग्रहण करिये तो ॐ तो है सत्यका प्रतिनिधि, तत् है ज्ञानका प्रतिनिधि और सत् है समस्त अर्थका प्रतिनिधि । ॐ तत् सत् बताया था कि तीन रूपमें परखो—शब्द, ज्ञान और अर्थ, इनमें सब कुछ आ गया । जो ७ नय कहे गए हैं—नैगम नय, संग्रह नम, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढ़नय और एवंभूत नय, इनमें से नैगम तो ज्ञाननय है, और संग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय ये हैं अर्थनय और शब्दनय और समभिरूढ़नय यह है शब्दनय । सब चीजोंमें ये तीन बातें परख लीजिए । यहां यह बात बतलायी जा रही है कि तत् शब्दसे समस्त अर्थों का बोध होता है । तो यह शब्द अर्थनयका आश्रय करनेवाला है । और जीवादिक हैं, सो तत्त्वशब्द सबके लिए लगेगा । यहां एक बात और समझना है कि देखो वहां तो दिया है बहुबचनजीवाजीवाश्रववंधसम्बरनिर्जरामोक्षाः । और तत्त्वं कहा एक वचन । यह भी बहुत अर्थ रखता है । ससयसारमें जैसे कहते हैं नवतत्त्वगतत्वेपि यदेकत्वं न मुञ्चति वह समयसार, वह आत्मस्वरूप ९ तत्त्वोंमें गत होने पर भी अपनी एकताको नहीं छोड़ता । यह ध्वनि इस सूत्रसे निकल रही है । तत्त्वंशब्द एक बचन दिया है उस सामर्थ से यह बात ज्ञात हो रही है । उन सबमें रहकर भी जो वह है तत्व एकस्वरूप है ।

परमार्थ लक्ष्यके अपरिचयमें उपयोगका परिखोडन:—देखिये जब तक लक्ष्य का परिचय नहीं होता अपना लक्ष्य बिन्दु जब तक नहीं बनता तब तक इस उपयोगका आसपास भटकना होता रहता है,यह तोजगह जगह भटकता है । और लोग कहते भी हैं कि जब सामायिकमें बैठते हैं, जाप करने बैठते हैं तो यह उपयोग इतना अधिक भटकता है जितना और काम करके नहीं भटकता । तो क्या करे यह उपयोग ? जब तक लक्ष्य बिन्दु नही मिला अपने आत्माका लक्ष्य न जाना जा सका तो वह उपयोग तो बाहर डोलेगा आसपास झलकेगा । बस यही पद्धति है, यह उपयोग जो जगहज्जगह डोल रहा है ऐसी ही विडम्बना है और जब यह उपयोग अपने आपके इस ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वको करेगा जब यहां ही वह अपना लक्ष्य रखेगा तो उसे शान्ति मिलेगी । एक निर्णय है शान्ति और अशान्तिका । जब तक अज्ञान है, मिथ्यात्व है, मोह है, उपयोग बाहर भटक रहा है नब तक अशान्ति हे । और, जह उपयोग अपने आपमें आ जाता है तब उसे शान्ति होती है । देखिये बाहर उपयोग रखनेमें कितनीं ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विपत्ति है, और है वास्तब में विपत्ति है यही कि बाहरमें उपयोग कर लिया। तो देखे ये अनेक विपत्तियां सब एक साथ शान्त हो जाती हैं अपने आपके भीतरी समयसार अन्तस्तत्त्वका परिचय होता है। जैसे एक जमुना नदीमें कछुवा रहता था वह पानीके नीचे नीचे तैरता रहता था। एक बार उसके मन में आया कि मैं जरा पानी के ऊपर अपनी चोंच उठाकर घूम आऊँ। ज्यों ही वह अपनी चोंच पानीसे बाहर निकालकर डोलने लगा त्यों ही चारो ओर से अनेक पक्षी आ आ कर उसकी चोंचको चोटने लगे। वह वेचारा कछुवा अपनी चोंचको इधर उधर चारों ओर घुमा घुमाकर हैरान होने लगा। बड़ा दुःखी होने लगा। उसे कोई समझादे कि रे कछुवे तू व्यर्थ ही दुःखी हो रहा है, तेरे अन्दर तो एक ऐसी कला है कि जिसको खेलले तो तेरे सारे संकट समाप्त हो जायें। क्या है वह कला? अरे जरा एक विलस्त पानी में अपनी चोंचको डुबाले फिर तो ये १०—२० पक्षी ही क्या, सैकड़ों पक्षी भी तेरा कुछ बिगाड़ नहीं कर सकते। इसी प्रकार यह आत्मा अपने इस ज्ञानस्वरूप में जारहा है, लेकिन अनादि से यह स्थिति है कि इस ज्ञानसरोवरके ऊपर ही यह ठहरता है। उस कछुवेसे इसकी भिन्न स्थिति है दृष्टान्त जितने अंशमें दिया है सो देखना है यह उपयोग अपने इस ज्ञानसरोवर से ऊपर रहता है और अपने ध्येय अर्थात् उपयोगमें बाहर-बाहर घूमता रहता है कभी घर देखा, कभी परिवार देखा कभी इज्जत देखा, कभी पार्टी को देखा। उपयोग में बाहर ही बाहर यह अपनी दृष्टि बनाये रहता है, ऐसी स्थिति में चारों ओर से उपद्रव आते हैं। भाई बंधु के जुदे उपद्रव, हिस्सा बांटके जुदे उपद्रव, मित्रजनों के जुदे उपद्रव, सरकारके जुदे उपद्रव, यों उपद्रवों की कोई गिनती हो तो गिनायी जाय हजार लाख की तो बात क्या, अनगिनते उपद्रव हैं, उन सब कष्टों से दुःखी हुए इस जीवको कोई समझा तो दे जरा कि हे आत्मन्! तू क्यों दुःखी हो रहा? देख तेरे में तो ऐसी एक कला है कि जिसका प्रयोग तू करेगा तो तेरे ऊपर आने वाले सारे उपद्रव समाप्त हो जायेंगे। "अरे भाई वह कला क्या है? वह कला यही है कि जिस ज्ञानसरोवर के ऊपर तुम रह रहकर भ्रमवश थोड़ा कुछ मजा सा जान रहे हो तो अब ऊपरका सारा उपयोग छोड़कर जरा ज्ञानसरोवरको भीतर तो समा जावो, अपने उपयोगको ज्ञानभाव में ले आओ जहां ज्ञानमें ज्ञानस्वरूप ज्ञेय हो जायगा, वह ज्ञानस्वरूप जहाँ व्यापक हो जायगा, ज्ञान ज्ञेयकी एकता हो जायगी उस कालमें बाहर बाह्य पदार्थमें कितने ही प्रकार के उपद्रव हों, अतः कोई कष्ट नहीं हो सकते। आखिर करना भी तो यही है सुकुमाल सुकौशल आदि ने जिन्होंने अपने ज्ञानमें अपने ज्ञेयको निरखा वहां बाहरी उपद्रवसे उनका कोई बाल बांका न हुआ रंच भी उपयोग चलित न हुआ और फल हुआ कि सर्वार्थ सिद्धि गए, मोक्ष

http://sahjanandvarnishastra.org/

गए।

अभूतार्थ नयसें विज्ञान सात तत्वोंको भूतार्थविधिसें परखनेका प्रभाव—यहां उस ही तत्वकी बात कहीं जा रही हैं जिस तत्त्वपर दृष्टि जाने से सदाके लिए हम आपका भला हो जायगा। वह तत्त्व क्या है ? वह तत्व है एक ज्ञायकस्वरूप, एक चित्स्वरुप, सहजनिरपेक्ष पारिणामिक भावकी समझसे समझमें आने वाला परिपूर्ण आत्मा, स्वभावमें परिपूर्ण आत्मा, वह है तत्व और उसका ही आश्रय करने से, उसको ही दृष्टिमें लेनेसे सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती है, पर वह तत्त्व जाना कैसे जाय ? सीखो इन ७ तत्वोंकी बात और इन ७ तत्वोंमें भूतार्थ विधिसे परखें कि क्या है इसमें अंतस्तत्व, तो समझमें आ जायगा। देखो एक दृष्टान्त है कि एक बार कोई संस्कृतका भारी विद्वान राजाको आशीर्वाद देने गया। राजा तो था मानो अंग्रेज अंग्रेजी भाषाके सिवाय वह और कुछ जानता न था और वह संस्कृतका विद्वान केवल संस्कृत जानता था। अंग्रेजी बिल्कुल न जानता था। तो वहां उस विद्वान ने राजाको आशीर्वाद दिया स्वस्ति, अब वह क्या समझे ? बल्कि वह आंखे निकाल कर अचम्भेके साथ देखने लगा यह क्या कह रहा है। कुछ समझमें न आया। अब बतलावो राजाको उस विषकी बात समझमें आ जाय इसका क्या उपाय है ? हाँ उपाय है, ऐसा कोई पुरुष जो संस्कृत भी जानता हो और अंग्रेजी भी जानता हो वह संस्कृत भाषाकी बात समझकर अंग्रेजी भाषामें बता दे कि आपको यह कहा जा रहा है कि तेरा अविनाश हो, तेरेको परम आनन्द हो, May be blessed अर्थात् तेरेको सहज आनन्द प्राप्त हो, यो जब अंग्रेजी भाषा में बोल दिया तो उस राजाको बड़ा आनन्द होता है—ओह यह तो बड़ा अच्छा पुरुष है, उसका वह सत्कार भी करता है, ऐसे ही तत्त्व की बात, आत्माकी बात निश्चयका विषयभूत जो एक भूतार्थ अखण्ड शुद्ध विषय हैं सहज भाव, अगर आत्मा आत्मा, अखण्ड, अखण्ड चिल्लाते रहें तो साधारण लोग जो इससे अनभिज्ञ हैं वे क्या जानेंगे कि क्या बात कही जा रही है ? वे अचरजमें बोलेंगे कि क्या बात कही जा रही है, किस तत्वकी बात सुनाई जा रही है। तो बहुत से लोग तो ऐसे बैठे रहते होंगे कि जिनकी समझमें कुछ नहीं आता। अब बताओ किसी तरह समझमें आ भी सकता क्या ? आ सकता है किस तरह ? जो जीव निश्चयनय और व्यवहारनय दोनों पथ पर चलता हो और जिसने परिचय पाया हो यह व्यवहारनयकी भाषामें निश्चयनयकी बात समझाये तो समझ जायगा। आत्मा आत्मा इसमें यह कहा जा रहा है कि जो जाने सो आत्मा जो निरन्तर जानता रहे उसे आत्मा कहते है--अतति गच्छति सततं जानातिइति आत्मा यह आदित्य भी उसी से बना आदित्य उसे कहते हैं जो निरन्तर चलता रहे। और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सो आत्मा। कोई क्रोध करे चाहे मान करे, चाहे क्षोभ करे चाहे शान्ति से रहे, चाहे निगोद में रहे चाहे त्रसपर्याय में रहे, हर स्थितियोंमें जानना चलता रहता है, इसलिए इसका नाम रखा गया है आत्मा। देखो जो जाने सो आत्मा, जो दर्शन करे, देखे, प्रतिभास करे सो आत्मा, जो आनन्द पावे सो आत्मा। ऐसे व्यवहारनय के जुदे-जुदे गुणभेद करके समझाया जाय तो वह आत्म तत्त्व को समझ सकता है तो देखो भैया! व्यवहारनय कितना उपकारी हुआ इस जीवको।

स्वयंके स्वयंकी परमें खोज करनैकी विकट उन्मत्तता—देखो जो निश्चयनय-के विषय को समझानेका एक परम साधन हो, जो उस तत्वकी बात कही जा रही है। वह तत्व बाहर नहीं, भीतर है, मगर ऐसी दशा हो गई जैसेकि एक कहावत है कि कांखमें लड़का गांव में टेर। याने लड़का तो लिए हैं अपनी कांखमें और खोजते पूछते फिरते हैं कि मेरा लडका कहां गया, इधर उधर बाहरमें ढूढते फिरते हैं! जैसे कभी आपने देखा होगा कि चश्मा या कोई चीज अपने हाथमें ही लिए हैं, पर उसकी सुध न होनेसे उसे बाहरमें ढूढ़ते फिरते हैं, और, जब समझमें आ गया कि अरे यह है मेरा चश्मा, तो झट प्रसन्न हो जाते हैं। देखिये वह चश्मा कहीं बाहर से तो नहीं आया। यही था। जब समझमें आया तब मिला, और जब समझ न थो तब न मिला। ऐसा तो नहीं है कि पहिले हाथ से अलग था चश्मा अब हाथमें आ गया जब हाथमें उस समयकी स्थिति कह रहे हैं। इसीतरह यह भगवान आत्मा परमात्मतत्व यह कैसे मिलता है। है सही कांख में लड़का गांवमें टेर। है यही अन्तरमें आत्मा बाहरमें खोज की जा रही है। ज्ञान व आनन्द बाहर देखना ही तो बाहरमें खोजते है। पर आत्माकी समझ नहीं है सो उपलब्धि नहीं है। जब समझमें आ गया कि अरे यह मैं आत्मा तो वह आत्मा कहीं इस तरह नहीं कि कहीं बाहर बैठा हो और उसके पास जायें फिर मिलें। अरे आत्मन् तुम बहुत दिनोसे बिछुड़े हुए थे, अब मिले, इस तरहका मिलना और बिछुड़ना नहीं है। वह तो यहीं है, अन्तः प्रकाशमान है, शीश्वत है, उसकी सुध नहीं है, परिचय नहीं हें तो मेरेको मिला नहीं है। और जिस कालमें परिचय हुआ उस कालमें मिला हुआ कहलाया है तब ही तो जब पहिले पहिले उपदेश किया गया कि आत्माको उपासना करो, आत्माकी आराधना करो तो कोई प्रश्न कर सकता है कि क्या बोलते हो? अरे आत्मा कहीं दूर हो तो आराधना करें, सेवा करें उपासना करें जब यह आत्मा स्वयं है तो आराधनाका मतलब क्या? तो उसका समाधान यही तो है तो स्वयं आत्मा, हैं स्वयं ज्ञानस्वरुप, मगर सुध नहीं हैं इसलिए ज्ञान नहीं हो रहा, वह मिला नहीं है उसकी दृष्टि करना यह ज्ञानकी आराधना कहलाती है, तो भाई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह ही अमृत है अमृत दूसरा नहीं है जिसे पीकर अमर हो गए–वह है यह ज्ञानदृष्टि दूसरा अमृत दुनियामें कोई रस या फल रूप नहीं है वे तो सब गढ़ी कथायें हैं जिनमें अमृतको फल या रस रूपमें कहा। अरे जब अमृत फल भोगा गया तो बेचारा स्वयं ही कचूमर बन गया। जब वह अमृत फल स्वयं की ही रक्षा न कर सका तो फिर दूसरेकी रक्षा क्या कर सकेगा ? है क्या बाहरमें कोई ऐसा अमृत कि जिसे खाले तो अमर हो जायें ? वह अमृत है निज सहज ज्ञायकस्वरुपकी दृष्टि। तो वह अमर होने का भी मर्म देखिये— अमर है आत्मा, इसका बिनाश भी नहीं होता, पर अपने अमरत्वकी सुध नही है सो बाहरमें ऐसा ख्याल करते कि हाय में मरा। तो बस यह ख्याल करना यह ही इसका मरण है। कल्पनामें यह बातलाये कि में मरा, वह गया, इसीके मायने है मरण। आत्मा का मरण और कुछ नहीं। आत्मा तो अनादि अनन्त अहेतुक शाश्वत प्रकाशमान है, उसका कभी मरण नहीं होता, तो ऐसें इस आत्मस्वरूपकी जो सुध लेता है उसे कहते हैं भूतार्थका उसने आश्रय किया और बह है सम्यक्त्वका उपाय पर यह उसका तत्व है, निश्चयका विषय भूत है, और जीवा जीव श्रवबंध सम्बर निर्जरा मोक्षा ऐसा जो पद है व्यवहारनयका विषयभूत, उस पदका साधन है यह ७ तत्व। जैसे कहते हैं ना कि हेतु नियतको हुई इस तरह व्यवहारसम्यक्त्व तो ७ तत्वोंका श्रद्धान है और उसकी श्रद्धाके उपायमें जो इन ७ तत्वोंको भूतार्थ विधिसे देखने पर जो एक सहज ज्ञानस्वरुप लक्ष्यमें रहता है वह कहलाया निश्चयसम्यक्त्व इस तरह सम्यक्त्व प्राप्त हो तो संसारके समस्त क्लेश इसके शान्त हो जायेंगे।

अभेददृष्टिकी परखमें अलौकिक जागरण—तत् और तत्त्व इस सम्बन्धमें थोड़ी सी बात सुन लीजिए जो इस से सम्बधित है। देखिये तत्व जो ७ है तो वे कोई अलग अलग चीज नहीं हैं इन्सान और इन्सानियत ये कोई अलग अलग नहीं हैं। इंसानियत यहां मंदिर में हो और इन्सान और कहीं बैठा हो ऐसी बात नहीं है। इंसानमें ही इंसानियत है। इसी तरह ये जो ७ तत्व कहे गए—आत्मा ही तत्व है; प्रत्येक में तत्व है। और, यों जीवमें जो तत्व है उसका नाम है जीवत्व। अजीवत्वमें जो तत्व है उसका नाम है अजीवत्व। अजीवत्वमें जो तत्व है उसका नाम है अजीवत्व। ऐसे ही आश्रवत्व, बंधत्व, सम्बरत्व, निर्जरत्व और मोक्षत्व। फिर जब और विशेष भूतार्थ पद्धतिसे निखरते हैं तो सबसे हटकर किसी एक अखन्ड तत्व पर अड़ जाते हैं वह है भूतार्थनयका विषय। उसकी आराधना करना यह है सम्यक्त्वका कारण। अब जरा इन सब बातोंको संक्षेपमें बतलाते हैं जो आपके कामकी बात है और जिसे आप कर सकते है। यहां बैठकर, घरमें बेठकर उसे आप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निहार सकते हैं। वह क्या है ? देखो अपने आपको ऐसा ध्यानमें रखें कि में ज्ञानमात्र हूँ, में केवल ज्ञान हीं ज्ञान हूँ, जो ज्ञान है जानन है सबका सहारा छोड़ दीजिए, अब उस ज्ञानके भावपर जावें, जानन, प्रतिभास, समझ चेतना, बस यही मेरा स्वरूप है, ज्ञान मेरा स्वरूप है। ज्ञान हीं ज्ञानसे हो, ज्ञान सिवाय और कुछमैं हूँ नहीं, ज्ञानकी जो वृत्तियां होती हैं उनका ही में कर सकने वाला हूँ। ज्ञानकी जो अनुभूति है उसीका मैं भोगने वाला हूँ। ज्ञान ही मेरा स्वरूप है, ज्ञान हीं मात्र मैं हूँ। ज्ञान सिवाय मैं और कुछ नहीं हूँ। ऐसा चिन्तन रखें जीवन भर रोज रोज चाहे घरमें बैठकर करें दूकान वगेरहमें बेठकर करें, होगा क्या कि ऐसे भावका चिन्तन होनेसे एक अलौकिक जागरण होगा, सम्यक्त्वका लाभ होगा। अब कोई यह कहे कि हमें तो यह भी कठिन लग रहा। इससे और बताया जाय तो इससे सरल और कुछ भी नहीं कहा जा सकता। एक बड़ा पहलवान था वह किसी दंगलमें बोला कि हमसे जो कोई भी लड़ना चाहे वह लड़ सकता है। वहां किसी कि हिम्मत न पड़ी, पर एक कोई बहुत ही दुबला पतला आदमी उठा और बोला—हम लड़ेगे इससे। हम तो इसे तुरन्त ही अखाड़ेमें पछाड़ देंगे मगर एक सर्त है—क्या कि जब वह अखाड़ेमें पहुंचे, और जिस समय मेरेसे लड़नेके लिए खड़ा हो उसी समय वह जमीन में गिर जाय, बस हमारी निश्चित रूपसे विजय होगी। तो भला बताओ इससे सरल और क्या बताया जाय ? कोई कहे कि ज्ञानमात्र अपने आपको जानूँ समझूँ, जरा यह भी आप कर देना, तो यह बात दूसरे से नहीं की जा सकती, खुद कर सकता और इससे सरल कोई उपाय भी न मिलेगा। आप घरमें बैठे हो, दूकानमें बैठे हों, कही भी बैठे हों, बस नेत्र बंद करके अपने भीतरमें यह चिन्तन करें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञान ही ज्ञान हूँ, ज्ञानके सिवाय मैं अन्य कुछ नहीं हूँ, ऐसी दृष्टि बनायें और भीतरमें यह निहारनेका यत्न कीजिए। ज्ञानसे मतलब क्या ? वह जानन कैसे होता है ? जानना क्या कहलाता है, वह प्रतिभास जिसमें रागद्वेष नहीं, विकल्प नही, ऐसा जानन किस रुप है, आपको एक सामान्य ज्योतिके दर्शन होंगे, ऐसा प्रयत्न करके भीतर देखेंगे तो बस सब कुछ कल्याण हो जायगा।

जीवतत्वकी सिद्धिमें अजीव तत्वकी सिद्धि की भी अनिवार्यता—जीवतत्वके प्रसंगमें यहां एक आशंका की जा रही हैं कि जीव ही मात्र एक तत्वार्थ है, दूसरा कुछभी पदार्थ नहीं है सर्ववैरवल्विंदब्रह्म याने जितना जो कुछ समस्त समागम है वह सबका सब सारा लोक अन्य कुछ नहीं है केवल एक ब्रह्ममात्र हैं, ऐसा ब्रह्मद्वैत सिद्धान्तमें आया है, देखिये ध्यानसे उन्होंने सिद्धान्त कोई एकदम मिथ्या नहीं गढ़ा। जब हम द्रव्य दृष्टिसे

Version 1.1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निहारते हैं तो यह विदित होता है कि एक ज्ञानमात्र ज्ञायक स्वभाव ही कोई वास्तविक तत्व है सारभूत है, समयसार है यह जो एक अपने आपके बारेमें बात हुई और जितनी बाहरकी चीज है तो जो जीव हैं उनमें भी यह अवकाश होता है कि सब ज्ञानस्वरूप हैं। अब यह तो अन्य जीवोंकी बात हुई, अब बाकी रहे जोअजीव हैं अर्थात् जितने देखने वाले जीव हैं वे सब पुद्गल अपने आप ही वैसे न बन सके। उनमें पहिले जीवका सम्बन्ध था तब बड़े हुए अंकुर, पृथ्वी भी जीव, जल भी जीव अग्नि भी जोध, वायु भी जीव और जो कुछ यह सूखी बनस्पति दिख रही है वह भी जीव थी लेकिन कटनेके बाद, अलग होनेके बाद ये अजीव हो गए। तो जितने ये प्रत्यक्ष दिख रहे हैं ये सब भो जीवके आश्रयसे ही इनका निर्माण हुआ है। इसतरह से सारा लोक जो कुछ दिखता हैं उसमें जीवका सम्बन्ध है और जीव—जीव सब द्रव्य दृष्टिसे सामान्यदृष्टिसे देखा जाता है तो एक जीवस्वरूप ज्ञानस्वरूप विदित होता है, जब स्वरूपदृष्टि की जाती है तो लो इस दृष्टिसे ब्रह्म सिद्धान्त की उत्पत्ति हुई, पर ब्रह्माद्वैत मानने वालोंने इस ओर दृत्टि न दी कि कि जगत में जो भी सत् होता हैं वह पर्यायसहित होता है, पर्यायशून्य नहीं होता। और पर्यायरहित हो कोई ब्रह्म तो अब समझिये वह क्या है। बात ही बात रह जायगी, कुछ दिमागमें न आयगा न प्रयोगमें आयगा, तो क्या है वह ब्रह्म, जिसकी कोई अवस्था ही नहीं, जिसका कोई परिणमन ही नहीं तो पर्यायका निषेध कर देनेसे यह द्रव्यार्थिक का विषयभूत सिद्धान्त गलत हो गया। अव जरा विचार करो। कोई कहता है कि जीव तत्त्वार्थ है, अजीव कुछ चीज नहीं है तो अब जरा इस आशंका के विषयमें कुछ आलोहन विलोडन कोजिए। जीव है, अजीव कुछ नहीं है तो भला बतलाओ जीव को आप समझायेगे कैसे? जगतमें केवल एक ब्रह्म ही हैं, जीव हीं है इस आग्रहमें यह बतलाओ कि आप हमें समझायेगे केसे? दूसरेको समझायेंगे कैसे? बचनोंसे बताओगे ना लो वचन तो अजीव हैं तो अजीव की सिद्धि हो गई अजीव के बिना तो जीव है एक है, ब्रह्म है इस बात को समझानेका कोई उपाय नहीं है। वचनोंसे ही तो बतावोगे और वचन हैं पौद्गालिक, अन्य प्रकारसे, तो समझाया जा सकता, नहीं तो कैसे यह कहा जा सकेगा कि जीव है और यह सब अजीव कुछ नहीं। अजीव है अब अनुमान प्रमाण से सिद्ध कीजिए अजीव है क्योंकि एक जीवको सिद्ध करना अंयथा बन नहीं सकता। अगर अजीव न हो तो दूसरेके लिए जीवकी सिद्धि नहीं की जा सकती बचनोंसे ही तो समझते हैं ओर ऐसा हो नहीं सकता कि दूसरे के लिए जीव सिद्धि के साधन तो बन जाय और अजीव न रहे यह बन नहीं सकता। जो साधन है दूसरेको समझानेका वह वचन है अजीव। किसी भी दूसरेको वचन सहारा लिए

Report any errors at vikasjain@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बिना समझाना नहीं बनाया जा सकता अगर कोई केवल यह कहे कि अपने आपसे अपना जीव समझा जायगा तो अब तक क्यों नहीं समझा, कारण क्या है और अब समझा रहा तो कारण क्या है। अजीव के माने बिना जीव तत्वकी सिद्धि हो नहीं सकती

जीव और जीवत्व के समझको झांको—जीव है, देखिये इस सिद्धान्त पर जितना अधिक अहलोह किया जायगा, मार्गमें बड़ी स्पष्टता आ जायगी, क्योंकि देखो मोक्षमार्गमें चलनेके लिए एक चैतन्यभावके आश्रयकी बात बहुत आवश्यक है। अखण्ड अभेद एक चित्स्वरूप का आश्रय करके मोक्षमार्गके लिए बहुत आवश्यक चीज है। लेकिन वह जो एक चैतन्यब्रह्म है सो मेरेमें मेरा चैतन्यब्रह्म आपमें अपना तत्त्व है, लेकिन जैसे गेहुवोंका ढेर लगा है तो उसमें गेहूँके दाने अरबों खरबों है लेकिन कोई एक ढेर देखकर यह कोई नहीं बोलता कि इन सारे गेहुवोंको आप किस भावमें देंगे ? जो भी पूछता है वह यही कहता है कि यह गेहूँ किस भावका है ? यद्यपि अरबों खरबों गेहूँ हैं मगर कोई बहुवचन कहकर कहता है क्या ? वे सब एक समान हैं इसलिए अनेक कहनेकी आवश्यकता नहीं, केवल एक वचन बोला जाता है, इसीतरह जगतमें जितने अनन्तानन्त जीव हैं वे सब जीव मूलमें एक समान हैं, इस कारण से बहुवचन के रूपमें प्रयोग नहीं किया जाता। भूतार्थ दृष्टिमें जीव एक ब्रह्मस्वरूप है, लेकिन ऐसा क्यों समझते ? यो समझते कि मेरेमें जो अज्ञानका अँधेरा है, मेरेमें जो नाना प्रकारकी आपत्तियां हैं वे दूर हों इसके लिए इस जीवस्वरूपको समझनेकी बात आती है। उसकी सिद्धि हो गई ना ? अब हम बन्धनमें हैं और बन्धनसे हमको मुक्ति होनी है। बन्धन कभी एकमें एकके द्वारा नही होता। एक एक से बन्धे क्या ? एक अकेला है केवल है, दूसरा कुछ है हीं नहीं तो फिर बन्धेगा कैसे ? जब दो का सम्बन्ध हो जाय तब बंधे। अगर एक ही तत्व हो जीवमात्र परम ब्रह्मस्वरुप तो उसका बन्धन क्या ? वह बंध नहीं सकता। और जब बंधन नही तो मोक्ष नहीं तो फिर शास्त्र क्यों, ग्रन्थ क्यों, सभा क्यों जोड़ना, गुरुसे शिष्यको क्यों समझाना ? तो अजीवका निषेध करनेपर भी तीर्थप्रवृत्ति नहीं चल सकती।

नाना जीवोंकी प्रमाणसिद्धता:-अब यहां यदि अद्वैतवादी यह सिद्ध करे कि जीवही पहिले नहीं फिर कोई गुरु हो, कोई शिष्य हो, समझने वाला हो ऐसा कुछ नही है, यह भ्रममें ऐसा मालूम पड़ता है कि जीव नाना हैं। जैसे स्वप्नमें जब देखता है कोई तो उसे बहुत मालूम पड़ते हैं इस कारण ये सब क्यों भ्रम हैं कि नाना जीव हैं। जीव ब्रह्म केवल एक है ऐसा अद्वैतवादियोंका यह कथन चल रहा है। यह एक हीं परमात्मा है। जो अनेक रुपसे प्रतिभासमें आ रहा कि यह प्रतिपाद्य है, यह प्रतिपादक है। वह सब विद्याकालीन अविद्याके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण आ रहा हैं, जीव बहुत नहीं हैं। भ्रान्तिमें मालूम पड़ रहा है। जैसे स्वप्नमें देखते हैं ऐसे ये नाना जीव पारमार्थिक नहीं है, मिथ्या हैं, बहुतका ज्ञान होना एक बात रखी है मगर इसके एवजमें कोई यह नहीं कह सकता कि अगर कोई यह सोच रहा है कि जगतमें जीव केवल एक है तो वह भी भ्रम हैं। स्वप्नमें क्या कभी ऐसा एक पना निरखा जा सकता है। तो जीव जैसे नाना हैं यहां स्वप्नका दृष्टान्त देकर मिथ्या बताते हो तो जीव एक है यह भी स्वप्नका दृष्टान्त देकर मिथ्या बताया जा सकता है। किन्तु सबको अपना अपना आत्मा स्वसम्वेदन सिद्ध है, प्रत्येक जीव अपने आपमें अपना अपना जुदा जुदा अनुभव लिए हुए है। मोटी बात है कि अगर ब्रह्म एक होता तो एक जीव अगर सुखी हो रहा तो सब जीवों को सुखी हो जाना चाहिए, क्योंकि तुम सब तो एक हो, एक दुःखी हो तो सबको दुःखी हो जाना चाहिए था मगर यहां प्रत्यक्ष देखनेमें आ रहा कि आपका विचार आपके साथ है, मेरा विचार मेरे साथ है। अनुभव ही सिद्ध करता है कि जीव नाना हैं। हां जीवमें जीवका जो स्वरुप है वह स्वरुप भिन्न—भिन्न प्रकार का नहीं, वह एक स्वरुप है। जैसे हजार मनुष्योंमें मनुष्यत्व (मनुष्यपना) एक है हजार नहीं हो सकते, इसी प्रकार जितने भी जीव है वे सब स्वरुपमें समान है, स्वभाव एक है जब जीव है तो सिद्धान्त यह है कि जीव तो जाना हैं मगर जीवमें स्वरुप सबका एक समान है। स्वरुपमें जरा भी अन्तर नही है। देखो इतना हो जाने पर भी किस जीवके मोक्ष जानेकी शक्ति है, किसी जीवके नहीं है, ऐसा भव्य और अभव्य का भेद किया जाने पर भी सब जीवोंमें स्वरुप एक समान है। स्वरुप दृष्टिसे भव्य अभव्य सिद्ध भगवान निगोद किसीमें कोई भी अन्तर नहीं हैं। जो अन्तर पाया जायगा वह पर्याय शक्ति प्रकट हो गई उस पर्यायमें अन्तर आयगा। स्वरुप दृष्टिसे कभी अन्तर न द्रव्यदृष्टिसे निहारें तो वह एक परम ब्रह्म स्वरुप है पर सर्वथा नहीं।

आत्मवन् सबका महत्त्व आंकनेका महत्त्व—अब यहां एक बात और रखी जा सकती है कि हमको तो ऐसा लगता है कि मेरे सिवाय और कोई जीव नही। बस मैं हीं हूँ ऐसा अद्वैतवादीं मानते भी हैं। सो भैया यह बात तो ऐसी हुई कि न मैं रहा और न कोई रहा। मैंने यह समझा कि मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है। मेरा स्वरुप वही एकमात्र मैं हूँ। तो दूसरे यह कहेंगे कि मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं। दूसरेमें भी तो मैं आ गया तो मैं भी न रहा और न अन्य कोई केवल एक रहे दूसरा न रहे इस तरह की हठमें एक भी आत्मा न रहा। कुछ परिणति ऐसी पड़ी हुई है लोगोंके विचारमें, प्रायः प्रत्येकका जीवको अपने स्वरुपके बारेमें अपने अस्तित्वके बारेमें कि मैं तो वास्तवमें हूँ और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दूसरे के अस्तित्व कुछ ऐसे लगते हैं कि यह सब तो बिना काम हो गया अस्तित्व तथा तब जैसे कोई जीव जब सुखी रहता है तो उसे सारा जगत सुखी नजर आता है और जो स्वयं दुःखी है उसे सारे मनुष्य दुःखी नजर आते हैं। मानो कोई कोई बारात किसी जगह आयी हो, बड़ी-बड़ी खुशियां मनाई जा रही हों, पर जो दुःखी है उसे तो ऐसा लगेगा कि ये सब ऊपरी-ऊपरी प्रसन्न दीख रहे हैं, अन्तर में ये भी दुःखी ही हैं। जिस पर जैसी बीत रही है उसकी वैसी ही निगाह बननाप्राकृतिक बात है। एक बार किसी बादशाहके यहां कोई एक खवास (नाई) हजामत बनाने जाया करता था। तो ये खवास लोग हजामत बनाते समय वहुत-बहुत बातें किया करते हैं। तो वहां हजामत वनाते समय खबास बादशाहसे भी बड़ी गप्पें मारता था। एक दिन बादशहाने खवास से पूछा-खवास जी आप यह बतलाइये कि हमारी प्रजाके लोग सुखी हैं कि दुःखी हैं? तो वह खवास बोला महाराज आपकी प्रजा बड़ा सुख पा रही है, घर घरमें खूब घी दूधकी नदियां बह रही हैं, आपकी प्रजा वड़े मौजमें है। बात क्या थी कि उस नाई के घरमें १०-१५ भैंसे थी, उसके यहां बड़ा मौज था तो उसे सब जगह मौज ही मौज (सुख ही सुख) दीखता था। बादशाहने पूछा कि तुम्हारे पास कितनी भैंसे हैं? पन्द्रह। बस समझ लिया बादशाह ने कि यह खवास सुखी है इसलिए इसे सब जगह सुख ही सुख नजर आ रहा है। एक दिन बादशाह ने अपने किसी सिपाही या किसी बड़े अफसर से कह दिया कि इस खवासपर कोई जुर्म लगाकर इसकी सब भैंसे ले आवो। अब उन्हें जुर्म लगानेमें क्या देर थी। कोई जुर्म लगाकर सब भैंसे ले आये। एक दिन वही खवास से फिर बादशाह ने पूछा—खवास जी बताइये कि मेरी प्रजा सुखमें है या नहीं? तो खवास बोला—महाराज आपके राज्य में प्रजामें बड़ा दुःख छाया हुआ है, सुख का नाम नहीं, वहां घी दूध के तो किसीको दर्शन भी नहीं होते। तो एक दृष्टान्त दिया है कि जिसके विकल्पमें जो समाया हुआ है वह लग रहा सच्चा और वैसा ही यह जीव दूसरी जगह देखता है आप। परन्तु देखो जितना बड़ा जीव आप अपने को मानते हो उतना ही महत्त्व वाला, अस्तित्व वाला आप दूसरे को मानो।

सर्वमें स्वरूपसमता—अद्वैतवादियों को एकानतः ऐसी प्रकति पड़ जाती है कि वे अपनी प्रकृतिके अनुसार बोलते हैं कि बस जीव तो एक ही है, दूसरा कुछ नहीं है, एक ही ब्रह्मस्वरूप है। लेकिन, ऐसे अद्वैतवाद में तो मोक्ष की व्यवस्था नहीं बन सकती भले ही सोचे कोई कि जैसे किसीके यहां एक ही लड़का हो तो उसे क्या चिन्ता अपने पास जो कुछ हुआ, सारा का सारा पिता नें उसे दे दिया। और यदि कई लड़के हो गए तो उसमें पितको

Versions

http://sahjanandvarnishastra.org/

अलग-अलग धन देने की बड़ी परेशानी रहती है। यों एक ब्रह्म मान लो तो कोई खटपट न रहेगी यह तो एक व्यवहार की बात कहा। इसीतरह से समझलो कि अगर एक ही है दूसरा नही है तो फिर बन्धन क्या? जीव हो वह तो ठीक है मगर अजीव भी है। तो ऐसा ध्यानमें लावो कि मेरे सिवाय अन्य कुछ नहीं है इसलिए सब एक ही है यह प्रमाणयुक्त बात नहीं है। सबको लगता है यों जब धन में अधिक थे, परिवार में अधिक थे तो मानते थे कि अच्छे तो हम हैं। बड़े तो हम हैं, ये तो बड़े छोटे लोग हैं, मेरे में जो स्वरूप है सो ही सत्व है, बाहरमें कुछ सत्व नहीं। अरे बात तो यह ठीक कहा मगर इसका अर्थ यह नहीं कि अपनेको तो बहुत बड़ा समझलो और दूसरोंको तुच्छ समझलो। अरे यहां कौन छोटा और कौन बड़ा? स्वरूप दृष्टिसे देखो तो सब जीव एक समान हैं। जो अपनेको तो बड़ा समझे और दूसरेको तुच्छ समझे उसे सही मार्ग नहीं मिल सकता। कौन छोटा और कौन बड़ा? बच्चोंकी पुस्तकों में एक छोटीसी कहानी आयी है कि एक जगह कोई सिंह सो रहा था, उसी जगह एक चूहा रहता था। वह चूहा बार-बार सिंह की पीठ पर चढ़ जाता था। तो सिंह को गुदगुदाहट लगनेसे बार-बार जग जाता। उसे निद्रा न आने पाती थी। सो उस सिंह को गुस्सा आया, चूहेको पकड़ लिया मारना चाहा, पर वह चूहा बोला—ऐ बनराज! तुम मुझे मत मारों, हम भी कभी तुम्हारे काम आयेंगे। तो सिंह ने सोचा कि यह छोटा सा चूहा मेरे काम कैसे आ सकता, पर उसे तुच्छ समझकर छोड़ दिया। एक बार सिंह ने देखा कि किसी जगह कुछ मांसके टुकड़े पड़े हुए थे। ज्यों ही उन्हें चलकर उन्हें खानेकी कोशिश की त्यों ही वह जालमें फस गया। ज्यों-ज्यों वह उससे निकलने की कोशिश करे त्यों त्यों वह उसमें फंसता गया। वहां वही चूहा पहुंचा, सिंह को जालमें फंसा देखकर सोचा कि देखो इस सिंहने मुझे प्राणदान दिया था। अब मुझे भी इसके प्राण बचाने चाहिए। यह सोच कर चूहे ने अपने दांतों से जाल काट दिया। जाल के कटते ही सिंह जालसे बाहर हो गया। प्राण बच गए। तो भाई यहां किसीको छोटा मत समझो। सबको समानसमझो बड़ा आनन्द आएगा। और हमको तो इसीमें आनन्द जचता कि सबके समान रहें, सबके बराबर बैठें। कौन ऊँचा, कौन नीचा? सबके बराबर बैठनेमें बड़ा आराम मिलता है, एक शान्ति मिलती है, बढ़कर बैठनेमें शान्ति नहीं मिलती। पर परिस्थिति हो बढ़ कर बैठाओ तो वह भी उसके लिए एक विपत्ति है, शान्ति मिलेगी, सन्तोष मिलेगा तो समता में मिलेगा, ताकि उसे कोई विकल्प ही न करना पड़े। सब जीवोंमें वही एक समान भाव है। सब एक प्रकार के हैं। सबका एक महत्व है। किसीसे मैं बड़ा नहीं हुँ, और छोटाभी नहीं हुँ, सब जीव एक समान हैं, ऐसी दृष्टि रहेगी तो वहां मोक्षका मार्ग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मिलेगा, और उसे अगर कोई यह कहे कि बस जीव तो एक है, दूसरा कुछ है ही नहीं जब दूसरा कुछ है ही नहीं तो फिर तीर्थ प्रवृत्ति बिल्कुल मिथ्या हो जायगी, इसलिए जीव तत्त्व भी है और अजीव तत्त्व भी है,

निज एकत्वकी दृष्टिकी उपादेयता—देखो इन सब बातोमें जो ब्रह्माद्वैतके सिद्धांत से मिलती जुलती बात है वह बात बतलाते है कि जिसको उपयोगमें लेनेसे हम आपको कल्याणका मार्ग मिलता है। देखो मैं एक हुं, अरे दूसरेको तुम दृष्टिमें मत डालो। दूसरा कोई तुम्हें दिखेगा ही नहीं, दूसरा है मगर दूसरा तुम्हारे विकल्पमें रहे, दृष्टिमें रहे तो आपको शान्तिका मार्ग नही मिल सकता। इसलिए बाह्य विकल्पको छोड़नेकी बात कही। प्रकट बाह्य तो छूट रहा यह खुद विकल्प और छोड़ दो। अब खुद छूटकर कहां जायगा? इसका तो अभाव हो नहीं सकता। अभाव दूसरेका भी नहीं मगर उपयोग तो किसी न किसीका आश्रय लेकर ही चलेगा। जब उपयोग है, जब ज्ञानवृत्ति है तो इस ज्ञानमें कोई न कोई ज्ञेय निरन्तर बना ही रहता है। ज्ञेय कुछ न रहा ऐसे ज्ञानकी कभी कोई स्थिति नही रह सकती। ज्ञानीने किसी बाह्य पदार्थका तो त्याग कर लिया उसका उपयोग नहीं कर रहा तो स्वयंको छोड़कर जायगा कहां। वह विषम होकर आत्मतत्वका विषयभूत बनेगा। वह भली बात है। ऐसी स्थितिमें यह मैं एक हूँ, अच्छा यह तो एक हो गया मगर उस एक में भी जो नाना घुसे हुए हैं उनके भी अपने से अलग हटाना है। यह मैं सारा आत्मा एक हूँ मगर इस आत्मामें रागद्वेष क्रोध, मान, माया, लोभ आदिका प्रवेश नहीं है। जो नाना तरंगें चल रही है वे भी यह मैं नही हुँ। तो मेरेमें और जो नाना बातें है उनसे भी अपने को निराला बनाना है, ये क्रोधादिक कषायें मैं नहीं हूँ। मैं तो एक चैतन्यस्वरूप हूँ अब उस जाननमें भी नानापन हटाया गया। और नानापनको हटाकर अपने को एक देखा जाननमें भी मतिज्ञानको जाना, श्रुतज्ञान को जाना, यह ज्ञेय हुआ, भिन्न भिन्न प्रकारके ये ज्ञान बनते हैं। ये ज्ञान नाना हैं, इन रूप मैं नहीं हूँ किन्तु मैं एक जानन सामान्यमात्र हूँ। जो विशेष विशेष ज्ञान उठते हैं उन रूप मैं नहीं किन्तु मैं एक सामान्य ज्ञानमात्र हूँ। चाहिए सामान्य ज्ञानमात्र मुझमें सब पर्यायें सामान्य मत देखें किन्तु एक शाश्वत अन्तः प्रकाशमान द्रव्यदृष्टिका विषयभूत वह एक ज्ञानभावको देखे। यह हूँ मैं, जब अपनेको ढूढ़ने चले तो वह मैं साहब यह मैं नवाब इन सबके बीच, कहां यह मैं गुप्त हूँ, यह मैं मिला, बाकी तो सब विकल्पकी बातें हैं। उस अपने आपके एक का परिचय करना है और उस ही में अपने आत्माका अनुभव करना है कि यह हूँ मैं। अन्य कुछ मैं नहीं हूं। अगर यह दृष्टि आती है तो आपने सर्वसमृद्धिपाली

Version

कीचड़ की उलझन—भैया यह बाहरी सम्पदा, यह धन वैभव ये लोग, ये बाहरी बातें ये सब कीचड़ है। बरबादीके हेतुभूत हैं। ये मेरेसे अत्यन्त भिन्न हैं। उनके लगावसे कुछ सिद्धि नहीं मिलने की। होता है ना एक गोरख धन्धा। तारोंका उसमें एक ऐसा छल्ला रहता है कि वह अधर फस जाय तो निकलता नहीं है और अगर निकल जाय तो फंसता नहीं है। मानो किसी तरह छल्ला फस गया अब उससे कहा गया कि भाई इसे उसी तरह फसावो तो वह बहुत—बहुत हैरान होता है पर बह नहीं फसता है, बल्कि ज्यों ज्यों उसे फसाया जाय त्यों त्यों वह उलझता जाता है, ऐसा यह गोरखधन्धा है। तो अपनी जिन्दगीमें सभी लोग अपनी अपनी बात सोच लें। कभी सोचा था कि बस १५—२० वर्षकी और बात रह गई, जहां इन लड़कियोंकी शादी कर दी बस मैं स्वतंत्र हो जाऊँगा, फिर मैं खूब धर्मसाधनामें लगूंगा पर होता क्या है कि एक समस्या सुलझ नहीं पाती कि दूसरी समस्या सामने खड़ी हो जाती है। कभी सोचा था कि विवाह करलें फिर तो हमें बनी बनाई रोटियां मिलेंगी, हमें कोई बातकी चिन्ता न रहेगी, पर होता क्या है कि बाल बच्चे हो जाते हैं तो उनकी चिन्ता लद जाती है अपनेको वे और भी फसा हुआ अनुभव करते हैं। वहां कषाय करनेके अनेक प्रसंग आते हैं। जब परिवारके बीच हैं। अनेक लोगों के बीच है तो वहाँ तो लड़ाई होनेके अधिक मौके आते हैं। भला बतलाओ चाहते तो थे कि मैं स्वतंत्रा हो जाऊं पर हुआ क्या कि फसाव और भी अधिक बढ़ गया। तो भाई ठीक है। स्वतन्त्र होना चाहें तो स्वतंत्र हो सकते हैं मगर स्वतंत्र होना है तो अपने आपके आधीन रह जाइये ? कैसे ? सबका ख्याल छोड़ दो, सबका आश्रय छोड़ दो। तो आप कहेंगे कि तब तो मुनि बनें तब ही बात बनेगी। हां तब ही तो बनेंगी। तो फिर वह स्वतन्त्र कहां, वह तो हो गया परतंत्र। श्रावकोंके आधीन हो गया। तो भाई साधु परतन्त्र कहां है ? वह तो अपनी साधना कर रहा, स्वाधीन रह रहा। जब कभी क्षुधाकी वेदना हुई तो चर्याके लिए निकल पड़े जहां सुयोग बन गया ब्रह्म वहां से आहार करके चले आये। वहां श्रावकोंके आधीन कैसे कहा जाय ? अब अगर श्रावक लोग साधुको आहार दान देने के लिए सोचें, इन्तजाम करें तो उससे तो उन्हें पुण्यका बंध होगा। वह तो एक भली बात हुई। यदि यह बात न होती तो फिर लड़के बच्चोंकी सेवा करते या और भीर भी अनेक नटखट करते, फिर क्या पुण्य कमा लेते ? उस निर्गुन्थ अवस्थामें स्वतन्त्रता है, पराधीनता नहीं। उनका किसीसे कुछ लेनदेन नहीं। वे तो अपने आत्माकी आराधनामें रहते हैं। अगर आत्माकी आराधना नहीं करते, यहां वहांकी बातोंमें फंस जाते हैं, अपना कर्तव्य नहीं निभा पाते हैं तो यह तो उनकी कमी है। वे तो फिर परतन्त्र ही कहे जायेंगें, मगर उसका अर्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह नहीं कि मार्ग खराब हैं। अपने कल्याणका मार्ग यही है, तिरनेका मार्ग यहीं है।

ऊंचा लक्ष्य होनेपर सफलताकी आशा:—कुछ लोग तो सोचते हैं कि जब मोक्ष है नहीं इस कालमें तो मुनि क्यों होते हैं, मगर आप एक बात रखिये—जब आप कोई काम करते तो आप बहुत ऊंचा भाव रखते हैं और बहुत श्रम करनेकी उमग रखते हैं तब प्रयास के बाद कुछ अनुरूप सफलता पाते हैं। आप और भी देखलो। आपकी कोई बड़ी बात कब बनेगी, उस अनुभूति के लायक आपके भाव कब बनेंगे ? जब बहुत बड़ी उम्मींद लेकर चलेंगे। प्रकृति भी आप अपने आपकी देखलो। आप कोई बहुत बड़ा धर्मका प्रोग्राम रखते हैं तो कहीं धर्म की कणिका पा लेते हैं। बात यह कह रहे हैं कि हम आपको अनादिकाल से ऐसी वासना लगी है कि हम चाहते हैं कि खूब धर्म करें। बहुत चाहते हैं कि खूब धर्म करें। बहुत चाहते हैं तब थोड़ा कर पाते हैं। हम आप सभी लोग चाहते कि नहीं कि हम जाप में बैठे तो एकदम सबका ख्याल छोड़कर अपने आपमें एकदम मग्न हो जायें मगर होता क्या है कि जापमें बैठे नहीं कि थोड़ी ही देरमें मन चलित हो जाता है। कहीं थोड़ा सा आनन्दमग्न हो पाते है। जब कोई बड़ा कांम करना बिचारे तब कहीं छोटी बात पा सकेंगे और अगर पहिले से ही छोटी बात करना विचारें तो फिर उससे बहुत ही छोटी बात पा सकेंगे। आप जितना बड़ा लक्ष्य बनायेंगे उससे कई हजारवां हिस्सा कम आप कर पायेंगें। इसलिए हमें लक्ष्य ऊंचः ही बनाना चाहिए और अपनी प्रवृप्रि बड़ी ऊंची करनी चाहिए। और ऊंचे ढंगसे धर्मसाधनकी बात बनेगी तो उसमें प्रयत्न करनेपर हम आप सफल हो सकते हैं। बात यह कही जा रहीं है कि हमें अपना लक्ष्थ ऊंचा ही बनाना है, छोटा लक्ष्य बनाकर धर्ममार्गमें मत लगे। ऊंचा लक्ष्य क्याकि मेरेमें जो अन्तः प्रकाश मान शाश्वत मेरा जो ज्ञानभाव है वहीं मैं हूँ। मुझें वही रहना है, मुझे अन्य बात न चाहिए, ऐसा अपना एक संकल्प और प्रयत्न बनायें। ऐसा लक्ष्य बननेपर हम कुछ धर्ममार्गका प्रयोग भी कर सकेंगे। पूरा प्रयोग तो न कर पायेगे क्योंकि अनादि वासना ऐसी लगी है, मगर लक्ष्य बनायेंगे तो आप उसे थोड़ा प्रयोग कर सकेंगे। जैसे व्यापार करने वाले व्यक्ति का बड़ा लक्ष्य होता कि नहीं कि हमें तो इतनी बड़ी दूकान बनाना है। वह बड़े साधन बनाता है, बड़े बड़े यत्न करता है पर वह थोड़ा सफल हो पाता है। यहां ही देखलो जो कोई थोड़ा काम करना विचारता है वह कुछ भी नही कर पाता। ऐसी आदत है हम आपकी। तो हमें धर्म मार्गमें पूरा लक्ष्य बनाना चाहिए, फिर लक्ष्य करके उसपर चलें तो हम थोड़ा सफल है। तो अनेकान्तसे च्युत होनेके कारण वह पदार्थ कुछ नहीं मिला, हौवा मिल गया। वह ब्रह्मस्वरूप एक है, अखण्ड है, सबमें भरा है। पर्यायरहित माननेपर उससे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समझे क्या जैसे हौवा होता है, बच्चेको चुप करनेके लिए माँ कहती है—अरे चुप रहो देखा होवा आ गया ? अब वह हौवा क्या है ? अब वह हौवा क्या है ? किसीने आज तक हौवा देखा है क्या ? कैसा होता है हौवा ? उसको न किसी ने देखा, न कोई उसका क्षेत्र, न कोई प्रयोगमें ही चीज, मगर होवाका बड़ा भारी डर बैठ गया । वह बच्चा उस हौवाका नाम सुनते हीं रोना बन्द कर देता है, चलो वह भी अच्छा है कोई अद्वैत ब्रह्म मान-कर ब्रह्माद्वैतके धर्ममार्गमें बुद्धि बनाकर पापोसे बचें तो चलो यह भी कि मगर वे सोचते हैं कि ब्रह्मा तो खुद बनता नहीं है ब्रह्म सोंचता ही है तो स्याद्वादसे गिर जाने पर हम अपने आपकी दृष्टिमें सफल नहीं हो पाते ।

सर्वात्मक एक आत्ममात्र सिद्ध करनेका साहस:—जीवतत्त्वके बारेमें कुछ आलोडन चल रहा है, अद्वैतवादी कहते हैं कि जीव एक है, परमब्रह्मस्वरूप है, उसमें कभी परि-णमन नहीं होता । केवल चैतन्यस्वरूप है इसमें वृत्तियां नहीं उठतीं जो वृत्तियां उठती हैं वे सब प्रकृतिकी चीज हैं । यों जीवको अद्वैतब्रह्म सिद्ध करनेके लिए एक हेतु यह दिया करते हैं कि देखो भाई प्रत्यक्ष प्रमाणसे केवल विधि जानी जाती है, निषेध नहीं जाना जाता, याने हम आंखोसे देखेंगे तो सत्त्व दिखेगा, अभाव न दिखेगा । प्रत्यक्ष अभावका विषय नहीं करता, प्रत्यक्ष किसी का निषेध नहीं कर सकता, विधि तो बना सकता । देखिये वे क्या कहते हैं कि हम आंखें खोलकर देखते हैं तो हमें विधि दिखती है या निषेध ? विधि दिखती है विधि के मायने है अस्तित्व । हम अस्तित्व देखते हैं । जो है वह दिखता है और जो नही है वह नहीं दिखता है । हम विधि ही देखते हैं, निषेध नहीं देखते । निषेध नहीं दिखता तो सब जगह विधि ही ज्ञात होगी । और, वह सब विधि विध्यात्मक है इसलिए एक ब्रह्म है दूसरा नहीं । उनही अद्वैतवादियोंका यह कहना है कि हम जो पचासों चीजें समझते हैं कि ये ५० चीजें रखी हैं तो हम यह कब समझेंगे जब यह जानेंगे कि में जो एक है वह ४९ नहीं है' यह दूसरा भी ४९ नहीं है, इस तरह जब हमें निषेधकाज्ञान होगा तब कहेंगे कि ये चीजें बहुत हैं । देखिये, किसकी चर्चा चल रही है ? अपने आत्माकी । यह चर्चा थोड़ी कठिन लगेगी, पर ये १० मिनट गुजार दें फिर सरल हो जायगी । और १० मिनट भी ध्यान पूर्वक सुनो-क्या कहता है कोई अद्वैतदार्शनिक उसकामंतव्य है कि दुनियामें केवल एक ही चीज है ब्रह्ममात्र, और कोई दूसरी चीज नहीं है । दूसरी कुछ चीज है ऐसा जो बोध होता है वह भ्रमसे होता है, जैसे स्वप्नमें नाना चीजें दिखती हैं तो वे भ्रमकी चीजें हैं इसी प्रकार यहां जो नाना चीजें दिखती हैं वे सबभी भ्रमकी चीजें हैं । चीज तो एक है ब्रह्म । ऐसा ब्रह्माद्वैतवादियोंका कथन है और इसकी घोषणा की गई थी कि देखो भाई नाना बातें तो तब

Report typing errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनेंगी जब यह समझें कि यह तो यही है और कुछ नही है और निषेधका जानने वाला तो कोई प्रमाण नहीं होता। प्रत्यक्ष तो केवल विधिको जानता है, निषेधको नहीं जानता। बात तो सुननेमें बहुत भली लगेगी और ऐसा रह कर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि केवल एक ब्रह्म है लेकिन यह नही सोचा कि जिसे हम यह कह रहे कि प्रत्यक्षसे केवल विधिजानी जाती है तो भले ही विधि जानी जाय मगर एक है इतना ही तो नहीं जाना अनेक जीव है परमाण है मेज है, कुर्सी है, दरी है, लोग, यह भी तो ज्ञान हो रहा है कैसे निषेध कर सकते कि दुनियामें दूसरी चीज कुछ नहीं है। केवल एक अद्वैतब्रह्म है।

अद्वैत अनस्तत्त्वके परिचयके संदर्भमें:—देखिये—७ तत्वोके श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसमें से जीव तत्वकी बात फिर उठ रही है। जीव नाना नहीं हैं, किन्तु जीव एक है, परम ब्रह्मस्वरूप है, क्योंकि प्रत्यक्ष से विधि नजर आती है। तो समाधान यह है कि विधि तो नजर आती है मगर जैसे अपके लिए आप एक अकेला ज्ञाता होता है और दूसरेके लिए वह खुद भी अकेला ज्ञाता होता है ऐसे ही अनन्त जीव हैं, उनको अपना अपना अद्वैत ज्ञात होता है। देखिये वास्तविकता तो यह है कि यह जीव अपने आपमें अद्वैत है इसमें किसी दूसरे का प्रवेश नहीं, दूसरे का प्रवेश नहीं दूसरे का सम्बन्ध नहीं, अपने आप की सत्ता एक करके अकेला है। इसका दूसरेसे ताल्लुक नही, ऐसा अद्वैत तो है मगर सारा संसार, सारे चेतन अचेतन पदार्थ ये सब मिलकर एक अद्वैत हो ऐसा अद्वैत नहीं है। हां देखिये जब अपने आपको कल्याणकी विधि अपनानीं होती है तो वहां अद्वैतका ही दर्शन किया जाता है और बताया गया है कि जिसकी द्वैत दृष्टि है वह संसार में रूलता है और जिसकी अद्वैतपर दृष्टि है वह मुक्ति पाता है। यह तो जैन सिद्धान्तका भी कहना है लेकिन बात सोचना चाहिए। अद्वैत नहीं है, तो दूसरी चीज नहीं है, ऐसा मान करके नहीं सोचना है, द्वैत है, सब कुछ है मगर किसी दूसरी चीजकी दृष्टि करने से आत्माका हित नही है। यह बात वहां कहीं गई है लेकिन ये अद्वैतवादी तो यह कहते हैं कि दूसरी कुछ चीज है ही नहीं, तो देखो जो द्वैतका निषेध करता वह अद्वैतकी भी सिद्ध नहीं कर सकता दूसरा कुछ है ही नहीं, तो अद्वैतकी दृष्टि तुम कहां से लाये? इसमें द्वैत शब्द ही तो पड़ा है कि द्वैत नहीं, अद्वैत बिल्कुल ही नहीं है तो उसे मना कैसे किया जा सकता। असत् वस्तु का तो कोई नाम भी नहीं ले पाता है। तो अद्वैत एक ब्रह्म ही नहीं; किन्तु अपने आपको देखिये तो पता पड़ जायगा अपने स्वरूपका। देखो कई बातें होती है केवल एक जाननमात्रा को समझने में, लेकिन यह मैं स्वयं आत्मा मात्र जाननेसे समझमें न आऊँगा, किन्तु प्रयोग किया जायगा, जाननेमें उस ज्ञानस्वरूपको रखा जायगा तो यह समझमें आयेगा।

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैसे मिश्रीका स्वाद बचनोसे नही आता किन्तु मुखमें मिश्री की डली रखे तो स्वाद आता है, इसीतरह आत्माका स्पष्ट ज्ञान बचनों से न होगा और ऊपरी जाननेसे भी न होगा, किन्तु अपने आपमें प्रयोग करे तो ज्ञानमें आयगा। प्रयोग क्या करना, अपने आपपर करूणा करके किसी समय तो यह प्रयोग करो कि मैं ज्ञानमात्र हूँ मेरा दूसरी वस्तुसे कोई सम्बन्ध नहीं, दूसरी वस्तुसे मेरा सम्बन्ध है उससे मेरा हित है ऐसा मानते जायें और चाहें कि आत्मानुभूति बने तो यह कभी नही बन सकता।

अनुभव और आर्षोपदेशके समन्वयमें याथातथ्यका निर्णय—देखो भीतरमें जब सत्य ज्ञानप्रकाश होता है तो सारी बात स्पष्ट होती है। जैसे यहां जिसने कभी बाहुबलि स्वामी के दर्शन नहीं किया वह चाहे यहां घरमें ही रहकर उस मूर्तिके प्रति बहुत बहुत ज्ञान भी करले फिर भी उतनी स्पष्टता न आयगी जितनी कि वहां श्रवणबेल गोलमें जाकर साक्षात् दर्शन करके आयगी। वहां साक्षात् दर्शन करके जब अनुभव होता है और वे सब बातें ठीक समझमें आती है ओह मैं अभी तक जो चर्चा सुन रहा था सचमुच वैसा ही है तो ऐसे ही जब इस आत्माको अपने प्रयोगमें लेकर अपना अनुभव होता है उसके बाद यह समझता है कि अरे बीसों वर्षोंसे जो हम शास्त्रोंमें पढ़ रहे थे कि यह ज्ञानमात्र है, यह परम आल्हादमें है वह सब सच है। देखो पहिले तो किया पुस्तकोमें ग्रन्थोंमें जो कुछ लिखा उसके आधारपर आत्माका विश्वास और जब अनुभव हो गया तो आगमपर ऐसा दृढ़ विश्वास हुआ कि जिनेन्द्र देवने जो कुछ कहा वह बिल्कुल सत्य अनुभवमें आया। तब ही तो सच्चाई जगी और इस डरके मारे कि जिनवाणी ठीक है कैसे जाना ? वह एक प्रमाणके साथ नही बोला गया। जब भीतरमें अनुभवमें बात उतर जाती है, वह ज्ञानमात्रस्वरूप जब भीतर अनुभवमें आ जाता है तब सच्चाई आती है। ओह जिनेन्द्र देवने जो कुछ कहा है वह सच है। ऐसा जानकर आत्माको जानने लगे तो फायदा मिला और जाननेपर जिनवाणीमें इसकी दृढ़ता हुई। आत्माकी बात परस्पर बोलते हैं। जैसे बतलाओ अच्छा विषयोंका त्याग करना पहिले चहिए या तत्त्वसँवेदन करना पहिले चाहिए ? हर एक का उत्तर जुदा-जुदा होगा। अगर विषयोंको भोगते-भोगते कोई ज्ञानकर सका क्या ! विषयोंमें आसक्ति रख रखकर कोई ज्ञानकर सकेगा क्या? नहीं कर सकता। तो जो ज्ञान करने के लिए उद्यमी होगा को उसे विषयोंका त्याग करना होगा विषयोंका त्याग होनेसे ज्ञानका प्रकाश होगा और जैसे ज्ञान का प्रकाशबढ़ा वैसे ही विषयों का त्याग बढ़ा, इससे एकान्त रूपसे कोई यह नही कह सकता कि पहिले ज्ञान करे फिर विषय छोड़े या पहिले विषय छोड़े फिर ज्ञान करे ? अरे जब जैसा मौका मिले वैसा कर डालो। जैसे जिस

Report any errors at vikasnagar@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चीजके प्रति आपकी धुन होती है उसके लिए तो आप अनेक प्रकारके उद्यम करके उसे प्राप्त करते हैं ऐसे ही आत्माके पाने के लिए भी आप क्यों नहीं उद्यम करते ?

आत्महितके लियें सदाचार तत्वज्ञान भक्ति आदि सभी सदुपयोगमें पूर्वापर श्रेय-कुछ लोग सोच विचार करते कि पहिले ज्ञान करूँ या विषय प्रसंग छोड़ें ? अरे यथाशक्ति सब करें। ज्ञानप्रकाश आयगा तो वह सब सही हो जायगा। लोग कहा करते हैं कि कंजूसधनी बेकार है। वह निर्धनसे भी खराब है। अच्छा बतलावो—क्या यह बात एकान्त से सच है ? मान लो कोई धनी है मगर वह है कंजूस तो क्या वह गरीब से भी खराब है ? अरे किसी समय उसकी बुदि बदल जाय तत्त्व समझमें आ जाय तो लोगोंके उपकारमें वह धन लगा देगा, और, गरीबकी समझमें आ भी जाय तो वह कहां से लगा सकेगा ? तो इसोतरह जो विषयोंका त्याग करे, अभक्ष्यका त्याग करें और ज्ञान नहीं है तो उसे समझलो कंजूसधनी की तरह है, लेकिन वह बिल्कुल बेकार तो नहीं है। जिससमय ज्ञानप्रकाश किया उसी समय जो साधना की थी ज्ञानके अभावमें ज्ञान प्रकाश होनेपर अब उससे बहुत कुछ सहूलियत आ जायगी। ऐसे आत्मस्वरूपको, परमात्म स्वरूपको पानेकी धुन हैं तो हर प्रकारके उपायसे उसे प्राप्त करलो। जैसे जिस चीज पर आपको आशक्ति है उसे आप सामदान दण्ड भेद आदि सभी उपायोंसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं, तो यहां भी पानेका प्रयत्न करो। और, देखिये—अगर प्रारम्भसे मन्दिर न आते मां के साथ, जब बच्चे थे तब मां के साथ मन्दिर आते थे और मां ने नमस्कार किया तो आप भी बच्चे थे तो नमस्कार करते थे ना। चाहे ऐसा भी नमस्कार कर डालते थे कि भगवानकी तरफ तो पीठ कर ली और दूसरी तरफ सिर नवा दिया, ऐसा भी किया मगर कुछ श्रद्धा तो थी कि मेरी मां करती है सो मुझे भी करना चाहिए, इससे हमको लाभ है। देखो श्रद्धासे चलते आये, कुछ और बात हुई, कुछ पढ़ा, कुछ स्वाध्याय किया, कुछ पुराण बांचा। सब कुछ करते हुए किसी दिन ऐसा योग हुआ कि तत्त्वज्ञानके लिए उमंग उठी और द्रव्य, गुण, पर्याय, वस्तुकी स्वतंत्रता, साधारण गुण, असाधारण गुण सबके प्रकाशक। असर आया, एक तत्वज्ञानका प्रकाश पाया, उसके प्रति किसी समय कहने लगे कि सब बेकार है। जब तक सम्यक्त्व न हो तब तक हम अभक्ष्यका त्याग न करे, क्या यह कहना ठीक है ? अरे करें सब मगर कोशिश करे आत्मतत्त्वके परिचय की। यह समझते रहें कि इसमें जो कषाय मेंद होती है तो इसमें लाभ है, मगर मोक्षमार्ग की बात तत्वज्ञानसे मिलेगी, सम्यक्त्वकी प्राप्ति मिलेगी उसकी बात चल रही है।

मोक्षमार्गका मार्ग पानेके लिये मैं के निर्णयकी नितान्त आवश्यकता—भैया। मैं का निर्णय किये बिना सम्यक्त्व नहीं होता। बाहरमें सब निर्णय कर लिया मगर अपने स्वरूप

Version 1.1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

का जब तक निर्णय नहीं है तब तक सम्यग्दर्शन नहीं उत्पन्न होता। मैं क्या हूँ इसे समझने का उपाय है अहंप्रत्यय वेद्यता। भीतरमें जो मैं ऐसा जिसके सम्बन्धमें ज्ञान हो रहा है वही तो मैं हूँ! अगर कोई कहे कि भाई मैं नहीं हूँ तो भाई जी मैं नहीं हूँ ऐसा जो ज्ञान कर रहा है वही तो मैं हूँ, निषेध कौन कर सकता है? जो ज्ञानमय पदार्थ हो वहां मैं हूँ किसी परवस्तुके आधीन मेरी सत्ता नहीं है। मैं अनादिसे स्वयं सिद्ध अपने आप सत् हूँ और सत् हूँ तो अपने आप परिणमता रहता हूँ। देखो जैसे रेलगाड़ी चल रही है अपनी पूरी स्पीडसे और नीचे है पटरी तो देखो रेलगाड़ी को वह पटरी तो नही चलाती। वह तो अपने कारण कलापसे अपने चक्र से, अपने परिणमनसे प्रत्येक पुर्जेमें अपना परिणमन है, एक पुर्जेको दूसरा पुर्जा भी नहीं चलाता, वे चल रहे हैं, गाड़ी चल रही है। और कहीं स्टेशनके नजदीक जाते हैं तो इन्जन तो अपने आपकी शक्तिसे चल रहा है, मगर पेटमें न द्वारा किये पटरीके बदल का निमित्त पाकर इंजनका मुख दूसरी ओर हो जाता और इस तरह उधर चला गया। जैसे मोटरको ड्राइवर भीतर बैठकर उसे मोड़ लेता है ऐसे अपने आपके यन्त्र पुर्जेसे कोई ड्राइवर रेल इन्जन नहीं मोड़ता इन्जन तो अपनी रफ्तारसे चलता रहता है मगर पेटमैंन ने लेन बदल दी तो इंजन तो जैसा चल रहा था चलता गया वह अपने रंगमें है लेकिन बदली हुई पटरीका निमित्त पाकर यह इंजन तिर्छी चलने लगा। वहां कोई कहे कि यह इंजन इसतरह चल दिया तो वह इंजनकी चाल पराधीन हो गयी, अरे नहीं, इंजनकी चाल पराधीन नहीं है, वह तो जो, उसकी शक्ति है उसके आधीन है। रेलगाड़ीने कोई उद्यम नही किया कि मेरी पटरी बदल जाय। लेकिन जैसा सहज भोग मिल गया उधर को मुड गई इंजिनकी पद्धति रफ्तार ज्योंकी त्यों रही ऐसे ही आत्मा सत् हैं, स्वयं सिद्ध है, इसका उत्पाद व्यय करनेमें कोई दूसरा समर्थ नहीं है। जो सत् है वह स्वयँ अपने आप उत्पाद व्ययध्रौव्य वाला है। तो आत्मास्वतन्त्रतासें अपनी कलासे चूंकि प्रत्येक सत् का ऐसा ही स्वरूप है सो अपने ही स्वरूपके कारण निरन्तर उत्पाद व्यय करता चला जाता है। प्रत्येक पदार्थका उत्पाद व्यय ध्रौव्य उसका अपने आपमें होता है बीचमें एक सहज योग ऐसा आया कि कर्मविपाक आया, जो पूर्वबद्ध कर्म हैं उनका उदय आया, कर्मविपाक हुआ तो यह विकाररूप परिणमन करने लगा। अब वहां कोई कहे कि कर्मका निमित्त पाकर विकाररूप परिणमन किया जीवने तो जीवका परिणमन परतन्त्र हो गया क्या? अरे यह तो अपने उत्पाद व्ययकी धुन लिए हुए था प्रत्येक पदार्थ अपना अपना ही उत्पाद व्यय करता जाता है। अब सहज योग भी जैसा मिलता है वैसा उत्पाद व्यय की मुद्रा बदलती रहती है, यह सहज योग की बात है फिर भी दृष्टि इस ओर देना है कि यह मैं आत्मा स्वयं सत् हूँ,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और स्वयं अपना उत्पाद व्यय करता चला जाता हूँ, रात्रि को कल आपने धार्मिक सनीमा देखा था। उस पर्दे पर नाना प्रकारके चित्र आये तो वे जो चित्र आये थे वे क्या मशीनने उत्पन्न किये थे, मशीन तो बाहर थी और जो उसमें फोटो आयी वे भी बाहरी चीज थी। जिस वस्तु के जितने प्रदेश हैं उस वस्तुके उन प्रदेशों में परिणमन है। मशीनसे चित्र नहीं आये, वह तो चल रही थी मगर सामने फोटो आक्स का ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध था कि वह पर्दा स्वयं अपने आपका रंग बदल रहा था। कैसा जल्दी–जल्दी वह कपड़ा रंग बदल रहा था इतना तेज बदलना हो रहा था उस पर्दे में मगर उसमें निमित्त था वह फोटो आक्स। तो निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध स्पष्ट दिखता है, और स्वतन्त्रता भी अतीव स्पष्ट हैं।

अपने कर्तव्यसे न चूकनेका अनुरोधः—जो जीव है वह ज्ञानस्वरूप है, आनन्दमय है, अनादि से अकेला है अनन्तकाल तक अकेला रहेगा। वर्तमानमें उसकी जो विकृत अवस्था है। वह सब औपाधिक है। तथा अपने आपकी ओरसे देखो तो मात्र कल्पनाकी बात है। एक नींद की बात है। जैसे दुःखी दुःखी तीन चार जीव एक साथ हैं तो वे आपसमें अपनी ऐसी चर्चा व सलाह बना लेते हैं, अपने उपयोगकी बात करने लगते हैं कि घरमें सभी दुःखी हो जाते हैं। वस्तुतः सब अपने–अपने में दुःखी है। उन दुःखोंको निपटाने के लिए एक तरह की संस्था है, इसके आगे उसका कोई महत्व नहीं, जैसे संस्थामें रहकर कोई काम ही तो करता है ज्ञानप्रभावनाका, धर्मप्रभावना का, परोपकारका कुछ काम ही तो करता है इसी प्रकार गृह संस्था में रहकर सब अपना-अपना काम करते रहते हैं। जिसका जैसा भाव है उसके अनुसार वह अपना अपना परिणमन करता। मगर इस तथ्यको भूल कर जो परसम्पर्क जोड़ता है वह दुःखी होता है। तो अपने आपके लिए बिचारों कि मैं हूँ और सदा रहूँगा। अब कहां रहूँगा आगे ? इतना तो देखते हैं सामने कि यह शरीर छोड़ना पड़ेगा। इस शरीरको लोग जला डालेंगे, फिर भी मैं आगे रहूँगा। जो भी सत् है उसका मूलतः कभी नाश नहीं होता। जब मैं आगे भी रहूँगा तब कुछ दयाकी बात चित्त में लाना चाहिए। मैं कैसा रहूगा आगे ? क्या कुत्ता, बिल्ली आदिक जैसा जीवन बिताना ठीक रहेगा ? नहीं। कोई उत्तम जीवन होना चाहिए, धार्मिक प्रसंग मिलना चाहिए ! देखो बाहर के वैभव कितने ही मिल जायें उससे शान्ति नहीं मिलती और धार्मिक वातावरण मिल जाय तो उसमें उद्धार होनेका अवसर है और उस धर्मका आचरण करके मुक्तिमार्ग में आगे बढ़ने का मौका मिलता है। चाहिए तो यह था कि मैं इसी भवसे मुक्त हो जाऊँ, मगर नहीं हो सकते, कारण कि हीन संहनन है। जो संहनन हम आपको मिला है

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

उससे मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति तो उसे मिल सकती है जिसे बज्रवृषभनाराचसंहनन मिले जो बड़े-बड़े उपसर्गोको सह सकता है, वहां आत्मा का ज्ञान बने, और आत्माको रास्ता मिले अपने आपमें रमण करे तो उसे मुक्ति मिलती हैं इस समय तो मुक्ति नहीं मिल सकती। आगे हमें जन्म लेना पड़ेगा। कहां जन्म लेना पड़ेगा इसकी ओर बहुत ध्यान देना चाहिए।

वर्तमान परिस्थितिमें ही धर्ममार्ग बना लेनेमें कुशलताः—देखिये पहिले तो सोचा था कि मैं इतनी व्यवस्था और करलूँ, इसके बादमें धर्मसाधनामें ही रहकर अपना जीवन बिताऊँगा, मगर वहां होता क्या है कि उतना समय बीतनेपर कोई न कोई समस्या और सामने खड़ी करली जाती है। यों कभी भी जीवन में शान्ति पानेका अवसर नहीं मिल पाता। जीवन में अभी तक बड़े बड़े प्रयत्न कर डाले पर कभी शान्ति न पाया। तो अब तो कुछ विवेक बनाओं। थोड़े दिनों तक प्रयत्न करे और बहुत दिनों तक आनन्द पाये, बुद्धिमानी तो इसमें है। और इसमें कोई बुद्धिमानी नहीं कि साल दो साल तो मौज लूटा और फिर पचासों वर्ष कष्ट कष्टमें ही बीतें। अब तो क्या करें कि आगे के लिए अनन्त काल तक आनन्दभवन रहने के लिए? एक इस ही भवको आत्मचिन्तनमें, ज्ञान और वैराग्यके काममें लगावे, इसमें हम आपकी बुद्धिमानी है। बाहरमें जहां जो कुछ होता हो होने दो, उसकी कुछ परवाह न करों। खुद सावधान हैं तो सब सावधानी है और खुद ही अगर सावधान नहीं तो कोई सावधानी नहीं है, अपने आपपर दया कीजिए और अपने आपमें शान्तिलाभ अभी से प्राप्त कीजिये। उसके लिये समय लम्बा न करे। जैसे एक बार किसी साल अकाल पड़गया पानी न बरषा, तो कोई पडौसी थे। उनमें से एक के घरमें तो ११ माह तकके लिए खाने को अनाज रखा था और एक के घर कुल १ माह तक खानेके लिए अनाज रखा था। तो जिसके घर ११ महीने तक खानेके लिए अनाज था उसने सोचा कि में एक महीने तो पहिले बिना खाये ही गुजार दूं, बाद में फिर ११ महीने बड़े आरामसे खाऊँगा और उधर दूसरे पडोसीने सोचा कि हमारे पास कुल एक माह तक के लिए खानेका सामान है, सो अभी तो एक माह तक खूब खाये, बादमें फिर जैसा होगा सो देखा जायगा। अब जिसके घर ११ माह तकके लिए अनाज रखा था उसने १०—१५ दिन ही भूखे रहकर बिता पाया कि वह तो चल बसा और जिसने एक माहमें ही सब खा पी डाला वह फिर ११ माह तक उस आनाज से गुजारा करने लगा। हम आप यहाँ थोड़ेसे समयके लिए हैं तो यहीं जो बन सके शन्तिका उपाय सो कर लें तभी शन्ति रहेंगे आगेंका अनन्तकाल कष्टमें न जायगा। अगर अपनी असली शान्तिके लिए एक इस भवको लगा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दिया तब तो फिर अनन्त काल तकके लिए अपनी शान्ति मिल सकती है। अपनी एक ऐसी प्रकृति बनायें अपने आपके अन्दर समस्त बाह्य पदार्थोंके प्रति उपेक्षाकी वृत्ति रहे, यहां की हर बातमें अपनी उदारता दिखावें, यदि यह प्रकति हो गई कि फिर अपने भीतरमें धीरता गम्भीरता आदि सबका स्वागत रहेगा।।

स्वहितके पौरुषमें बड़प्पन—एक बार किसी राज्यमें वहां का राजा गुजर गया तो मंत्रियोने अपना निर्णय बनाया कि प्रातःकाल होते ही सब लोग इस किलेका फाटक खोलेगे, वहां फाटकपर जो सोता हुआ सबसे पहिले मिलेगा उसको यहांका राजा बनाया जायगा। ठीक है। तो प्रातःकाल होते ही सभी मंत्रियोंने किलेका फाटक खोला तो देखा कि फाटक पर एक फकीर जो लंगोटी पहिने हुए था वह सो रहा था। उससे सभी मंत्रियोंने कहा—चलो तुम्हें हम लोग राजा बनायेगे हम सबने ऐसा निर्णय किया है। तो फकीर बोला—हमें नहीं राजा फाजा बनना है हमें तो ऐसे ही ठीक है। ''' अरे नहीं तुम्हें तो बनना ही पड़ेगा। यह कहकर किलेके अन्दर उस फकीरको घसीट ले गए। वहाँ वह फकीर बोला—अच्छा हम राजा तो बन जायेंगे पर हमारी एक शर्त मन्जूर करें ''' क्या ? ''' हमसे राज्य पाटकी कोई सलाह मत लेना, तुम सब लोग मिलकर अपना काम करना। ''' अच्छीं बात। बहुत से मन्त्री तो ऐसा चाहते ही थे कि नांममात्र का राजा बन रहें, बाकी काम सब हम कर लें उस फकीर नें अपनी लंगोटी तो एक पेटीमें रख दी और मन्त्रियोंने उसे राजसी वस्त्राभूषण पहिनाकर सिंहासन पर बैठा दिया। वह राजा बन गया। कुछ ही समय बीता था कि उस राज्यमें किसी दूसरे राजाने चढ़ाई कर दी। मन्त्रियोंने राजाके पास आकर कहा महाराज आपके राज्य पर अमुक राजाने हमला कर दिया है। वे बहुत निकट आ गए हैं। अब अपन लोगोंको क्या करना चाहिये ? तो वह राजा बोला—जरा वह पेटी उठाना। आ गई पेटी अब फकीरने अपने राजसी वस्त्र उतारे लंगोटी पहिनी और कहा कि अपने रामको तो यह करना चाहिए और लोग जो जाने सो करे। यह कहकर चल दिया। तो भाई अपने चित्तमें भी यह बात आये कि अपने रामको तो यह करना है—क्या ? अपनी श्रद्धा अर्थात् अपना ज्ञान बनावें और अपने आपकी धुन बनावें, अपने आपको तो यह करना है अब दूसरो को जो करना है वे जानें। इतनी बात हम आप सबको करना चाहिए। आप कहें कि हम तो गृहस्थ हैं। कहां करें अरे गृहस्थ हो तो कुछ समय तो ऐसा चिन्तन कर सकते। प्रतीति तो ऐसी बना सकते, भीतरमें श्रद्धा तो यह रख सकते कि जगतमें मेरा कहीं कुछ नही है। मात्र मेरा ज्ञानस्वरुप ही मेरा वैंभव है। इतनी बात चित्तमें तो बना सकते हो और फिर परिस्थितिवश बच्चोंसे भी बोलोगे, उन्हें खिलाओगे भी, दूकान आदिकके कामभी करोगे,

Version 1

अपना धनार्जनका कामभी करोगे मगर अपनी प्रतीति न छोड़ो। जैसे पतंग भले ही आकाश में चढ़ जाय मगर उसकी डोर यदि हाथमें रहेगी तो वह आपके आधीन है, अगर उस की डोर आप छोड़ देंगे तो वह पतंग कहींके कही पहुचेगी। जिस पतंग की डोर टूट जाती है वह कही बहुत दूर जाकर गिरती है। उसके गिरते ही बच्चे लोंग उस पतंगपर टूट पड़ते हैं और उसके धज्जे धज्जे निकालते हैं। इसीतरह हम आपका यह उपयोग अगर बाहर गया और इस उपयोगकी जो डोर है सम्यक्त्व, प्रतीति ज्ञान है। अगर प्रतीति न रखें तो क्या। हालत होती जैसी स्थिति को कोई चाहता नहीं हमें चाहिए अपने आपके विश्रामकी स्थिति ऐसा निर्णय बनायें, तो भाई आपका बड़प्पन है। बड़े कुल में पैदा हुए, धन सम्पदा भी यथोचित है और बड़े अच्छे शासनमें भी रहते हैं। धर्ममार्गमें भी लग रहे हैं अहिंसाका वातावरण है, पर्वमें भी अहिंसा, क्षत्रमें भी अहिंसा, घरमें भी अहिंसा ऐसा तो सुन्दर वातावरण है, इतना बड़प्पन मिला है तो इसको बेकार न खोओ। अगर इस बड़प्पनकी महिमा न आंकी जो कि संयम तप, आदिक से महिमा है, अगर इस बड़प्पनकी महिमा न आंकी तो फिर निश्चित है कि यह वड़प्पन फिर न मिलेगा।

मात्र अजीव हो अजीव माननेमें विडम्बना—सम्यग्दर्शके विषयभूत मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत तत्त्व ७ हैं जीव, अजीव, आश्रव, बंध सम्बर निर्जरा और मोक्ष। उसमें से जीव तत्त्वके बारेमें बात चल रही है। ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि जीव तो एक ही है संसारमें और इसीकारण सब कुछ जीव ही है, अजीव कुछ नही है, ऐसा ब्रह्माद्वैतवादियोंका कहना था। वहां यह सिद्ध किया गया कि अजीव न हो तो जीवकी सिद्धि नहीं की जा सकती, क्योंकि दूसरेको तुम जीवकी बात बताओगे तो वचनोंसे बताओगे और वचन अजीव हैं, इसके अतिरिक्त शास्त्र हैं, अक्षर हैं संकेत हैं और हाथका हिलाना है यह सब भी समझनेमें कारण पड़ता है। तो यह अजीव अगर नहीं है तो फिर जीवकी बात कैसे समझाओगे। यह बात सुनकर अब चार्वाक बोलते हैं, सब कुछ अजीव ही है। जीव कुछ नहीं है। जैसे आज कल बहुत से लोगोंका यह भाव होता है कि जीव कोई चीज नहीं है। बस ये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चारका संयोग हो गया, शरीर बन गया, तो इन चारके संयोगमें एक चेतना पैदा हो जाती है। चेतना कोई अलगसे पदार्थ नहीं है। तो इस सम्बन्धमें बहुत कुछ बताया गया था। इस समय इतना हीं समझना ठीक है कि अगर जीव न हो तो अजीव को समझनेका कोई साधन नहीं है। जो लोग मानते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार ही चीजें हैं जीव कुछ नही है तो भला दूसरेको आप समझा कैसे सकेंगे? जो समझ है जो ज्ञान है सो चेतना है, चेतनाके बिना समझनेकी बात नहीं बन सकती। अगर कोई यह कहे कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो चेतना सामान्य माना है वह भी अजीव ही है। तो जब सब अजीव अजीव ही हैं तब तो फिर सब शून्य हो जायगा। समझनेकी बात ही न आयगी। और, देखो बड़े आश्चर्यकी बात है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार चीजें एकमें सामिल हो सकती हैं सो तो उसे बनाते हैं चार और चेतना इन चारोंमें सामिल नहीं हो सकती सो उसका नाम भी नहीं लेते। कितने आश्चर्यकी बात हैं पृथ्वी कभी जल बन सकती है कि नहीं? बन सकती है। जल कभी पृथ्वी बन सकता। जल कभी पृथ्वी बन सकता, जल, अग्नि वायु ये सब परस्परमें एक दूसरे रूप बन सकते हैं। देखो चन्द्रकान्त मणिमें विविध पृथ्वी जातिके स्कंध जिनका कि जल बन जायगा। और जलका पृथ्वी बन जाता जलके अणु पेड़ बन गए ना तो पेड़को पृथ्वी माना है तो देखो पृथ्वी बन गए। तो यहां परस्परमें एक दूसरे रूप बन सकता है इसलिए चार कहनेकी जरूरत न थी। एक पुद्गल ही कह देते। भूत ही कह देते, जैसाकि प्रसिद्ध शब्द बनाते है तो उनको तो चार कह रहे और चेतन का किसीमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता है, क्योंकि उसका एक विलक्षण स्वरूप है। सो उस चेतन का अस्तित्व ही नहीं मान सकते। चेतन अचेतन नही हो सकता और अचेतन चेतन नहीं हो सकता। तो जीव है, अजीव ही मात्र नहीं है जीव भी है और अजीव भी है यहां तक जीव तत्त्वकी बात कही गई थी अब अजीव तत्त्वकी बात कही गई।

आस्रव तत्त्व व उसके निमित्तभूत योगकी सिद्धि—अब आश्रव तत्त्वकी बात सुनो आश्रव क्या है? मन, वचन, कायका परिस्पंद होनेका निमित्त पाकर जीवमें प्रदेश परिस्पंद हुआ, उससे होता है कर्मोंका आना। वह योग है। वही आश्रव कहलाता है। ऐसी बात सुनकर कुछ दार्शनिक बोलते हैं कि जीव तो अपरिणामी है, उसमें प्रदेश परिस्पंद की गुंजाइस नहीं, तब आश्रव तत्त्व कोई चीज नहीं। आत्मा तो क्रियारहित है। जब आत्मामें कोई क्रिया ही नहीं बनती तो आस्रव कैसे हो सकता है? जैसे कि आकाशकी क्रिया तो नहीं बनती। यह आकाश उठाकर कहीं धरे या आकाश चलकर कहीं पहुंच जाय यह क्या सम्भव है? नहीं, इसीतरह आत्मा भी कहीं चले या कहीं पहूँचे, यह बात सम्भव नहीं है, ऐसा कुछ दार्शनिक कहते हैं लेकिन यह बात सत्य नहीं है, क्योंकि आत्मा क्रियावान है आत्मा क्रियावान है उसका हेतु यह है कि आत्मा सर्वत्र अबेला है व अव्यापक है। देखिये—आपका आत्मा आपके शरीरमें है, मेरा आत्मा मेरे शरीरमें है। तो यह आत्मा सब जगह नहीं व्यापक हो रहा तो उसमें क्रिया सम्भव है, जो व्यापक है उसकी क्रिया सम्भव नहीं। आकाश व्यापक है उसकी क्रिया नहीं हो सकती। धर्म अधर्म द्रव्य आकाशमें लोकाकाशमें व्यापक है उनमें भी क्रिया नहीं हो सकती, किन्तु यहां तो अनुभव हो रहा है आपका आत्मा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आपके शरीर में मेरा आत्मा मेरे शरीर मे तो अव्यापक है ना । सब जगह फैला तो नही है इसलिए इसकी क्रिया हो सकती और क्रिया है सो तो यह आश्रव भी बन गया तो यहां दार्शनिक वैशेषिक यह कह सकते हैं कि सभी आत्मा व्यापक हैं आत्मा दो तरहके होते हैं व्यापक मानने वाले एक तो ऐसा मानते हैं कि एक ही आत्मा है और सर्वकायक है और कुछ एसा मानते हैं आत्मा तो अनेक है लेकिन वे सभी के सभी व्यापक हैं । जैसे सिद्ध भगवान एक में एक समाये हुए हैं ऐसा यह आत्मा पूरी दुनियामें सब समाया हुआ है । तो जब सब व्यापक हैं आत्मा तो उनमें क्रिया नहीं बन सकती । जैसे अमूर्त आकाशमें क्रिया नहीं बनती तो उनका यह कहना भी सम्भव नही, क्योंकि ये लोग कालद्रव्यको व्यापक मानते हैं जो कि अनेक द्रव्योंके परिणमन का कारण है और क्रियावान है ना तो आत्मा भी क्रियाबान है ।

आश्रव क्रिया व क्लेश हेतुता—देखो इस प्रसंगमें बहुत सीधी सी बात है । दो तरह की बात है । एक तो आत्माको कोई व्यापक मानता है कोई अव्यापक लेकिन स्व सम्वेदनसे आप समझ लेंगे कि मेरा आत्मा तो केवल मेरे में ही है । मेरा आत्मा व्यापक नहीं । सुख दुःखका अनुभव शरीरके अन्दर रहने वाले आत्मप्रदेशमें ही होता है कि शरीरसे बाहरके प्रदेशमें भी होता है ? सो तो बतलाओ ? शरीरके बाहर सुख दुःखका अनुभव नहीं होता । शरीरके अन्दर आत्मा के प्रदेशोंमें ही सुख दुःखका अनुभव होता है इससे सिद्ध है कि मेरा आत्मा मेरे में ही है । मेरेसे बाहर नही । और, देखिये आत्मामें क्रिया भी होती है, सोच विचार किया, रागद्वेष किया, जो कुछभी बात हुई सो भी आत्माके प्रदेशमें हुई । आत्माके प्रदेशसे बाहर कुछ नहीं होता, आत्मा स्वप्रदेशोंसे ही कुछ करता है यह है एक ऐसा ज्ञानामृत कि इतनी बात समझमें आ जायतो उसकी ममता टूट जावेगी, विपत्ति नष्ट हो जायगी । जगतमें जितना क्लेश है वह सब ममता का क्लेश है । वस्तुतः कोई भाई दुःखी नहीं है किसीको भी कष्ट नहीं कष्ट तो ममता करके बना रखा है, पर ममता करने वालोंकी संख्या ज्यादह है और मोही मोहीकी परस्परमें बात होती है तो इस ओर दृष्टि नहीं दी जा रही है । इसको जितना दुःख हो रहा सो ममता से हो रहा । कष्ट केवल ममता का है । ममता न करें तो कष्ट न आयगा । आपही बताओ । जिसमें आपकी ममता है अगर यह ममता न हो तो आपका क्या बिगाड़ है ? बल्कि शान्ति हैं, सुधार हैं आनन्द है । तो जो यही बैठे अपने हाथकी बात है उसे करनेमें तो पामर (कायर) होते हैं और जो अधिकारसे बाहर की बात है इन बाहरीं पदार्थोंमें, परभावोंमें, परतत्त्वोंमें, पर पदार्थों में निगृह अनुगृह, सुधार बिगाड़की हठ किए हुए हैं तो कैसे काम बने ? एक समझ बनावें कि मुझे जितने भी क्लेश हैं वे इस ममताके कारण हैं, और ममता करना यह झूठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चीज है। कोई हो अपना, तो कहें कि मेरा है, कोई भी तो अपना नहीं।

आस्रवकी विपत्तिमयता—इस जीव पर सबसे बड़ी भारी विपदा हैं मोहकी मोह रागद्वेषका जो आत्मपरिणाम होता है बस वही आस्रव है, विपदा है, दूसरी कोई विपदा नहीं। दूसरेसे मेरेमें कोई आपत्ति नहीं आती। मैं हीं अपनेमें सोचता हुं और विपन्न बन जाता हूँ। यो किसी की समझमें आ जाय यह बात भली प्रकार बस उसका आत्मव्यवहार बन जाता है। कई लोग ज्ञानी बनकर बाल ब्रह्मचारी हो जाते हैं। हुए हैं, उनके चित्तमें रंच मात्र भी बाहरी बात चिलित तहीं होती, क्योंकि समझ रखा है कि अनादि से अब तक भोगा तो हैं सब कुछ पर उसका सार क्या निकला ? कष्ट ही कष्ट निकला देखो भैया। आज यहां हैं तो यहां के समागममें मोह किया जा रहां और मरकर दूसरी जगह जायेंगे तो यहांके समागमकीं क्या सुध रहेगी ? फिर रहेगा आपका कुछ क्या ? वहां जाकर दूसरा मोह बना लेंगे। फिर तीसरी जगह मोह बना लेगा। क्या बच्चों जैसा खेल मचा रखा हैं। बच्चोंके खेलमें यही कुछ कुछ बात है। लेकिन बच्चोंसे भी गया बीता खेल कर रहे हैं बच्चेभी, बूढ़े भी नादान भी, कैसा एक झंझट का खेल मचा रखा है ? इससे मिलता जुलता कुछ नहीं' लेनदेन कुछ नहीं, सम्बन्ध रंच भी नहीं, लेकिन ममता ऐसी बना रखी है कि ऐसा लग रहा कि यह ही मेरा सारा सर्वस्व है जब किसीकी स्त्री गुजर जाती तो वह सोचता है कि सारा सूना है। किसी स्त्रीका पति गुजर जाता तो वह सोचती कि सब सूना है, इस जगतमें कुछ नहीं है। अब मैं कुछ रहा ही नहीं। पुत्र गुजर गया तो पिता समझता है कि मेरा तो अब जीवन ही नहीं है मेरे कुलका दीपक न रहा पिता गुजर जाय तो पुत्र सोचता है कि हम तो असहाय हो गए। कैसा ममता का खेल मच रहा है। अरे जो बात है उसीमें अपना समाधान निकाल लो। परिस्थिति है राग करना पड़ता ठीक है, पर वियोग होने पर उसकी रटन क्यों लगायी जाती ? यह अज्ञानताकी सूचना देता है।

मोहमें विनष्ट अलब्ध वस्तुकी और आशा होनेसे निकट प्राप्त समागममें भी संतोष पानेकी अशक्यता—एक बुढ़िया थी उसके ७ लड़के थे, उनमें से एक लड़का गुजर गया, रह गये ६ लड़के वह बुढ़िया बहुत बुरी तरहसे रोई, तो वे ६ लडके समझायें—मां देखो हम तुम्हारे ६ लड़के तो अभी हैं हम लोगोंको देखकर तुम खुश रहो, सन्तोष करो, इतना विषाद मत करो। हमको भी दुःख होता है तो मां कहती है बेटा बात तो सही है, तुम हमारे ६ तो हो मगर जो गुजर गया हमारी दृष्टि तो उसकी और रात दिन रहती है। तो ६ लडके बोले कां इतना मत रोवो। इतना रोवोगी तो हम लोगों में से कोई गुजर जायगा। तो बुढ़िया कहती है बेटा ऐसी असगुनकी बात मत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहो, तुम ६ जरूर हो, पर क्या करे हमारी दृष्टि तो उसीकी ओर लगी है जो नहीं है। अब उन ६ में से एक और गुजर गया। ५ रह गय अब उन ५ ने समझाया, अम्मा रोवो मत तो बोली बेटा यह तो ठीक है, पर हमारी दृष्टि तो उन के गुजरे हुए दोनो बेटोंपर ही रहती है। क्या करूँ रोने लगीं। इसतरह एक बेंटा और गुजर गया, सबने समझाया पर उसने यही कहा बेटा हमें तो उन तीनोंका ही ध्यान बना रहता है, क्या करूं। इसी तरह से चौथा मरा, फिर ५ वां मरा और मान लो छठा भीं मर गया, जो भी बालक मरे बस उसे वही बालक ध्यानमें बना रहे। इसतरह रोते रोते ही उसका सारा जीवन बीत गया। तो यहीअज्ञानता की निशानी है। अज्ञानता के कारण कष्ट ही मिलता है बल्कि वर्तमानमें जो चीज प्राप्त है उसमें भी अपना निभाव नहीं करना चाहते। यही धन कमाने वालोंकी बात है। मान लो किसीके पास एक लाख का धन है, उसमें से यदि एक हजार का टोटा पड़ गया तो उसकी दृष्टिमें वह एक हजार ही बना रहता है, उसके पीछे वह बड़ा क्लेश मानता है। यद्यपि अभी उसके पास ९९ हजार का धन है फिर भी अज्ञानतावश उसका सुख भी वह नही लूट पाता। जो पासमें है उसकी और दृष्टि नही रहती जो नहीं है उसकी ओर दृष्टि रहती है। तृष्णामें यही हाल होता है। तो जो नहीं है ऐसी चीज पर दृष्टि रखेगा तो उसका क्या पूरा पड़ेगा ? आपके पास तो बहुत सी चीजें नहीं हैं, और जो है भी आपकीं चीज नहीं उसके प्रति आपने कल्पना कर रखी है कि यह चीज मेरी है। कल्पनासे ही तो मान रहे कि यह मेरी है। जब कल्पनासे हीं अपनों मान रहे तो फिर सभी मनुष्योंके पास जितना जो कुछ धन है उसे मान लो कि यह मेरा है और आनन्द ले लो। क्योंकि जो इसके पास है इसका भी कुछ उठेगा नहीं और जो दुनियाके पास है उसका भीं कुछ उठेगा नहीं। परिस्थिति कराती है। अरे प्रयोजन तो दो रोटो दो कपड़ेका है, इन दो के अलावा और क्या प्रयोजन उठाते सो तो बताओ।

धर्मभावनासे ही जीवनकी सफलता:—भगवान की भक्ति हो, ज्ञानकी प्रभावना हो, अपने आत्माके स्वरूपका ध्यान जगे, आत्मतृप्ति हो, मोक्षमार्ग मिले, यह था लाभ उठाने की बात। तो उसे ओर तो सुध नहीं। बस जैसे एक भजनसा बना है ना नमामि पैसा ? उसने पैसा को नमस्कार किया है। तो आप यह समझो कि कितना अपनेको हैरान करते हो ? अपने को परेशान और दुःखी क्यों बनाये हो ? तृष्णाकी बात छोड़ो क्या चाहिए क्या न चाहिए ? यों बनू यों बनू इस धुन को छोड़ो। कर्मों के अनुसार जो कुछ आता है, जो कुछ मिला है। बस उसीमें ही अपना गुजारा निकालो और तृप्त रहो

Reprinted at siddhantikvikas@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रास्ता तो सब निकल आता है। जिसके पास जितना धन है जरुरत से कई गुना उसके पास ज्यादह है, जब गरीबोंकी ओर दृष्टि दो तो मालूम पड़ेगा कि इसके पास मुझसे सौवां हिस्सा वैभव है और ये सब भी जिन्दा है कोई दुःखी नहीं तो देखो है न प्रायः सबके पास जरुरत से ज्याह है। इतने भी धनकीं जरुरत न थी। तो सन्तोष बनायें और देखो कुछ कर भी नहीं सकते। जितना उदय है उसके अनुसार होता है। उससे ज्यादह कुछ नहीं होता एक बार एक साधु महाराज किसी श्रावकके घर आहार करने आये और आहार करके आंगनमें बैठ गए। कुछ उपदेश हुआ। इतने में सेठकी बहू जो करीब ३५ वर्षकी उम्रकी थी बोली महाराज आप इतना सबेरे क्यों आ गए ? तो महाराज ने उत्तर दिया बेटी समय की खबर न थी। लोग सुनकर बड़े परेशान हुए कि देखो कितना तो दिन चढ़ आया, १० बज रहे हैं और फिर भी यह बहू भी गड़बड़ बोल रही और मुनि महाराज भी गड़बड़ बोल रहे। इसके बाद मुनि महाराज ने एक बात पूछा बेटी तुम्हारी उम्र कितनी है ? महाराज मेरी उम्र ५ वर्षकी है। अब तो लोग और भी बड़े आश्चर्य में पड़ गए। देखो यह है तो कोई ३५ वर्षकी मगर अपने को ५ वर्षकी बता रही है। फिर मुनिराज ने पूछा—तुम्हारे पतिकी उम्र कितनी है ? ५ महीने की। तुम्हारे स्वसुरकी उम्र कितनी ? महाराज स्वसुर तो अभी पैदा ही नहीं हुए। अच्छा यह बताओं बेटी कि तुम ताजा खाती हो कि बासी ? महाराज हम तो सदा बासी ही बासी खा रहे हैं, ताजा कहां रखा ? इतनी बात हुई और मुनि महाराज तो अपने निवास स्थान पर चले गये यहा सेठ अपनी बहूसे लड़ने लगा, अरी बहूँ आज तो तूने हमारी नाक कटाली। मैं इस नगर का सबसे बड़ा सेठ हूँ कहलाता हूँ और तूने इतने लोगो के बीच अटपट बातें कहीं तो सुनने वाले लोग क्या कहते होगे ? तो उस बहू ने कहा कि आप मेरे ऊपर नाराज मत हों, उन्हीं मुनि महाराज के पास चलकर सारी बात समझलो। वे दोनों गए मुनिराजके पास। उन मुनिराजकी उम्र २० वर्ष की थी। बहूने यह पूछा था कि तुम इतने सबेरे क्यों आ गए मायने इतनी छोटी उम्रमें तुम साधुपद में क्यों आगए ? तो मुनि महाराज का उत्तर ठीक था ना कि बेटी समय की खबर नहीं, याने कितने दिन हमें जीना है,कब मर जाना है, बच्चे भी मर जाते, तो समयकी खबर न थी इसलिए जल्दी ही मैं इस पदमें आ गया। दोनों का जबाब सही मिल गया तो सेठ समझ गया कि ठीक कहा। सेठ ने कहा—महाराज यह तो ठीक है मगर आपका जबाब सवाल बड़ा गड़बड़ मालुम होता है। यह बहू तो ३५ वर्ष की है और अपने को ५ वर्ष का बताती है, सो कैसे ? तो बहूने बताया कि महाराज मुझको ५ वर्षोंसे धर्म की श्रद्धा हुई है इसलिए हम तो अपनी आयु ५ वर्ष की मानती हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धर्मको श्रद्धा बिना जीना कोई जीना नहीं। अगर धर्म के बिना जीने को भी आप आयु में शुमार करें तो हम आप तो अनादिकाल से जी रहे हैं। तब तो यह कहना चाहिये कि हम तो अनन्तकाल के बूढ़े हैं। सब हैं अनन्तकाल के बूढ़े। तो धर्म बिना जीवनको हम जीवन नहीं समझते, इसलिए हमारी जिन्दगी तो ५वर्षकी है। और पतिकी उम्र कितनी पतिदेव की ५ महीने से इस तत्त्वज्ञानकी ओर दृष्टि हुई है, अपने आत्मकल्याणकी सुध हुई है इसलिए उनकी आयु ५ महीने की है। और स्वासूर बोले-महाराज हम तो ६० सालके बूढ़े हैं, बाल भी सफेद हो गए फिर भी यह कह रही कि अभी स्वसुर साहब तो पैदा ही नहीं हुए, तो इसका मतलब क्या? तो बहूँ ने कहा—महाराज, अगर किसी को आत्मज्ञानका प्रकाश न जगा हो तो कैसे हम उसे पैदा हुआ समझे। देखो स्वसुर साहब अभी भी नहीं समझें, उल्टा लड़ते है तो कैसे हम इन्हें पैदा हुआ समझें? इसे भी सेठ समझ गया। अब फिर सेठ बोला—महाराज मेरे घर में प्रतिदिन तीन बार ताजा भोजन बनता है, यह बहू ताजा खाना रोज रोज खाती है फिर भी यह क्यों कहती कि हमतो रोज बासी हीं खा रहे हैं? तो वहाँ फिर बहू बोली—देखिये महाराज सेठजी ने पूर्वभवमें दान पुण्य किया था, धर्म किया था, जिसके फलमें इन्हें सब कुछ मिला हुआ है पर आज इस जीवन में कोई नई कमाई कर नहीं रहे तो हम कैसे समझें कि ताजा खा रहे? वह तो बासी ही कहा जयगा। तो बात इतनी समझना है कि अपना जीवन माने ज्ञान-प्रकाश होनेपर। अगर मेरे को मेरे आत्माका ज्ञानप्रकाश हुआ है तो समझो कि मैंने जीवन पाया और एक ज्ञान प्रकाश नहीं है तो मेरा कोई जीवन नही है तो यह ही मोक्षमार्गके प्रयोजन भूत ७ तत्त्वको बात कहीं जा रही है।

रागको चिकनाई में कर्मरजका आस्रव:—यहां आश्रव तत्त्वकी सिद्धि कर रहे हैं, आश्रव है क्योंकि इस आत्मामें भी क्रिया प्रदेश परिस्पंद होता है, उसका निमित्त पाकर द्रव्यकर्मका आश्रव होता है। देखो भाई इन बूढ़े आदमियोंको ये छोटे—छोटे बच्चे नाती पोते बड़ा हैरान किया करते है, और अब उन बच्चोंको भी मजा सा मिलता है, वे उस बूढ़ेके पास पहुँचते हैं, कहीं मूछ मरोड़ते; कहो हाथ झरझोरते, कहीं सिरपर चढ़ते, बड़ा हैरान करते, अब वह बूढ़ा बड़ा दुखी होता है, रोता है। कभी वह बूढ़ा रोषभी करता है तो बच्चोंको यह इच्छा होती है कि मैं इसका क्रोधभी देखता रहूँ। तो वे और भी हैरान करते हैं तो यह तो बतलाओ कि उस बूढ़ेको जो हैरानी आयी तो उसकी खुदकी गल्तीसे आयी या उन बच्चोंकी गल्तीसे? अरे वह बूढ़ा यदि उन बच्चोंसे राग न करें उन्हें पुचकारे

adopt.jinvaniprabhavika.trust@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं, उनको बुलावे नही तो वे उसके पास आयेंगे ही क्यों ? और फिर उस बूढ़ेकी सकल भी इस ढंगकी हो जाती है कि बच्चे लोग उसके पास जानेमें डरते हैं पर वह स्वयं ही उनसे राग करके अपने को हैरानीमें डाल लेता है । अगर वह बूढ़ा दुःखी न होना चाहे तो क्या करे कि उन बच्चोंसे राग करना छोड़ दे, इसी तरह हम आप भी जो हैरान हो रहे हैं वह क्यो हो रहे ? हम अपनेमें कल्पनायें करते और हैरान होते । हमें ऐसा बनना है, यह इस तरह क्यों चलता है, यह काम मेरा नहीं बनता, इसने मेरे काममें बाधा डाल दी । अरे तुम बाह्य पदार्थोंमें राग करते हो इसलिए दुःखी होते हैं । बाह्य पदार्थोंका राग छूट जाय फिर दुःखका कोई काम नहीं । देखो जिस भगवानके दर्शन करने आप मन्दिरमें आते वे भगवान एकाकी हैं, अकेले हैं, शरीर भी कुछ नही है सिद्धमें । विषय कषाय तो रंचमात्र भी नहीं हैं । अरहंतमें भी ऐसा एक अकेलापन है । अकेलेमें ही आनन्द है । किसी बाह्य पदार्थ के लगावमें आनन्द नहीं है । भ्रमकी गुत्थी सुलझ जाना एक सबसे बड़ा धर्म है । भ्रम लगा है तो जैसे समझ लीजिए एक चिकना घड़ा है, उस पर पानी की बूँद डालते हैं तो वह ढलक जाता है, रुकता नहीं, ठीक ऐसे ही बात रागकी चिकनाईमें लगी है, जहाँ रागकी चिकनाई लगी है वहां धर्म की बात शान्तिकी बात ठहर नहीं सकती, बह जाती है । यह सब सारा जंजाल है, सारा दुःख है । हमें अपने आपको आनन्दमें लगाना है तो रागद्वेष मोहसे अलग होना चाहिये । इसके लिए यह शस्त्र है सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयधर्म । इसका पालन करें तो क्लेश दूर होगे, सब संकट मिटेंगे । घरमें रहनेको हम मनाकी बात नहीं कह रहे किन्तु सत्यज्ञान प्रकाश चित्तमें लायें । घरमें रहेंगे तो शान्त रहेंगे और घर छोडकर रहेंगे तो शान्त रहेंगे, अगर यह सम्यक्त्व प्रकाश नही है तो घर छोड़कर भी यह शान्त नहीं रह सकता, और, सम्यक्त्व प्रकाश है तो घर रहकर भी पूरा शान्त तो नहीं रह सकते, मगर बहुत कुछ शान्तिका लाभ ले सकते । अगर सच्चा बोध नही है चित्तमें सहाय कोई नहीं, ठीक ज्ञान बने तो आपको आप सहाय हैं, आपको कोई दूसरा सहाय नहीं हो सकता । तो सही सत्यज्ञान भेदविज्ञानसे बनता । जीव अजीवमें भेदविज्ञान करना है उसके लिए पहिले समझ तो लीजिये कि हमने भेदविज्ञान नही किया, भ्रम बनाये रहें तो हमपर आपत्ति आयगी ही । आपत्ति ही आश्रव और बन्ध तत्वमें मिलेगा जीवके मोहभाव उठता है प्रदेशोंमें परिस्पंद होता है कर्मोका आश्रव होता है फिर यह आश्रव इसके दुःखका कारण बनता है ।

अपनी कल्पनाओसे स्वयंको बरबाद करनेका प्रयास—कोई कषायी बकरा लिए जा रहा था कषायी खानेमें । रास्तेमें एक वृक्षके नीचे वे बैठ गए । तो बकरीकी कुत्तोंकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऐसी आदत होती है कि जिस जगह बैठते उस जगह पैरोंसे जमीनको खरोच देने। तो बकरे ने वहां जमीन खरोच दी। वहाँ एक पैनी नई चाकू निकल आयी। रख गया होगा कोई। अब वह छुरी तो कषायी खानेमें थी इसीलिए वहां लिए जा रहा था, दूर रखी थी, लेकिन बकरेने वहीं छुरी निकाल दी तो अब उस कषायीको क्या देर थी वही उस बकरेका ढेर कर दिया। तो बकरेने अपने आप अपनी हत्याका साधन निकाल दिया। तो यों बकरेकी तरह हम आप सब संसारी प्राणी अपने आप अपनी हत्याका साधन निरन्तर बनाये रहते हैं। मोह रागद्वेषके परिणाम होनेके मायने है अपने आत्मा भगवानकी हत्या करना। जिस आत्मा भगवानके प्रसाद से निगोदसे निकलकर नाना योनियोंको पार करके एक मनुष्य हुए हैं तो मनुष्य बनकर बड़ी कला से यह आत्मा भगवान पर प्रहार कर रहा है। देखो पशु, गाय, भैंस, बैल, घोड़ा आदिक ये जब विषय भोगते हैं तो न ये महफिल बनाते हैं न गाना सुनते हैं न नाच देखना चाहते हैं, न रागरागनी सुनना चाहते हैं। उनके वेदना हुई तो वे अपनी प्रवृत्ति करने लगते हैं और प्रवृत्तिके बाद ६ ६ महीने तकको शान्त हो जाते हैं। मगर यह मनुष्य गाना भी चाहता संगीत भी चाहता और स्त्री भी ऐसी ढूढ़ते हैं विवाह के समयमें कि यह नृत्य करना जानती कि नहीं। अच्छा देखें तो सही कि इसका हावभाव बढ़िया है कि नहीं। देखते हैं किसलिए अरे ये कान पाये थे जिनवाणी की कथा सुनने के लिए और अपना मन पवित्र बनानेके लिए मगर इनका दुरुपयोग किया। विषय साधनोंमें इनका उपयोग किया। कविता बनायेंगे साहित्यरचना करेंगे तो ऐसा गायेंगे कि उसमें विषयोंका जोश उमड़े, कलाओं से ही यह अपने विषय कषायोंकी बात कर रहा है। यह तो यह आत्मा भगवान पर प्रहार है कि नहीं इस प्रहारका क्या फल होगा।

प्रभुसे बढ़कर चलनेके प्रयासकी विडम्बना—बड़ा भयंकर देखो जो बड़े से बढ़कर चलेगा वह तो गिरेगा किसी बड़ेकी होड़ करेगा ना? भाई उस सेठ के पास तो इतनी कार हैं, हमें भी कार लेना। उसके पास इतने साधन है, हम तो उससे बढ़कर चलेंगे। तो वहां क्या करेंगे? कहीं चोरी करेंगे, किसी तरह से धन लेंगे या लोगोंको सतायेंगे? तो वह तो उसे गिरायगा जो बड़ेसे होड़ करके चलेगा वह तो गिरेगा लेकिन ये संसारके मोही प्राणी भगवानसे भी बढ़कर चलना चाहते है। अब इसका क्या फल होगा? आप कहेंगे कि ये संसारी मोही प्राणी भगवानसे भी बढ़कर कैसे चलना चाह रहे? जरा समझाओ तो सुनो भगवान कैसा जानते है? जो जैसा है उसे वैसा जानते है। एक एक अणु एक एक जीव जिसकी जो पर्याय है जिसका जो गुण, जिसका जैसा

Report any errors at vkasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अस्तित्व वैसा जान रहे हैं और ये मोही प्राणी उससे बढकर और आगे बढ़ रहे हैं। जो जैसा नही है वैसा जानना चाहता। मकान किसीका है क्या ? नहीं, लेकिन यह जानता है कि मकान मेरा है। और सारी बातें समझलो इज्जत, यश, कीर्ति लोग ये सब कुछ मेरे नही भगवान तो ऐसा जाननेमें असमर्थ है। भगवानमें इतनी ताकत नहीं है कि वे समझ जायें कि यह मकान इसका है, लेकिन इन संसारी लोगोंमें इतती बड़ी ताकत है कि जो ताकत भगवानमें नही है। उस ताकतका अभिमान है। मकान मेरा है, इज्जत मेरी है, तो भगवान से बढ़कर जो चलेगा उसकी तो दुर्गति होगी। अरे जैसे भगवान चल रहे हैं, जो जैसा हे वैसा जान रहे है, एक पदार्थका दूसरा पदार्थ मालिक नहीं, एकका दूसरा भोगनहार भी नहीं, यह सब जान रहे हैं, ऐसा तुम भी जान लो तो तीन लोकके अधिपति हो जावोगे। अरे यह तो एक लज्जाकारक बात कही है। भगवान से बढ़कर कौन हो सकता। है ? तो सत्य ज्ञानका जो महत्व है बस वही एक वैभव है सत्य ज्ञान। सत्य ज्ञान ही मेरा सर्वस्व है। बाहरी पदार्थ मेरा सर्वस्व है। बाहरी पदार्थ मेरा कुछ नहीं है। ऐसी समझलावो और इस तत्वज्ञानके मार्गमें आगे बढ़ो तो अपूर्व ज्ञानप्रकाश मिलेगा और यह जीवन भी शान्तिमें जायगा और अगले जो भव शेष हैं वे भी शान्तिमें जायेंगे और अन्तमें परम शान्ति प्राप्त होगी।

आस्रवकी योगनिमित्तका दिग्दर्शन—जीवादिक ७ तत्त्वों के श्रद्धान करने को सम्यग्दर्शन कहते हैं। बार बार अनेक दृष्टियों से इन ७ तत्त्वों पर विचार किया जा रहा है। जीव अनेक हैं। जो पदार्थ अनेक होते हैं उनमें क्रिया देखी जा रही है। जो क्षेत्र से क्षेत्रान्तर होते दिख रहे हैं उनमें क्रिया स्पष्ट है। क्रिया है तब आश्रव है। यदि प्रदेश परिस्पंदन हो तो कर्मोका आश्रव नहीं हो सकता। वह आश्रव होता है मन, वचन, कायके प्रदेश परिस्पंद होने का निमित्त पाकर। आत्माके प्रदेश परिस्पंद होने को योग कहते हैं। यह ही आश्रव कहलाता है। जो लोग जीवको व्यापक मानते हैं, समस्त संसारमें व्यापक है ऐसा जो मानते हैं उनके सिद्धान्तमें जीवमें परिस्पंद नही हो सकता, और आश्रव नहीं हो सकता। जीव असर्वगत है। व्यापक नहीं है, क्योंकि परस्पर विरुद्ध नाना क्रियाका वह कारण है, वह अनेक है। जीव एक नहीं है। क्योंकि सम्वेदनसे एसा ही सिद्ध होना है और अनेक द्रव्य कार्य देखे जा रहे हैं, आप सुखी हैं, हम दुखी हैं, आप ज्यांदह ज्ञानवान है, हम कम ज्ञानवान है, ऐसा जीवोंमें जो परस्पर विरोध पाया जाता उससे ही यह सिद्ध है कि जीव सर्वव्यापक नहीं, किन्तु अपने अपने पाये हुए देहके प्रमाण है, देखो जीव शरीर प्रमाण

Version 1

है, चीटीका जीव चीटी के शरीर प्रमाण में फैला है, उसे सुख दुःखका अनुभव उतने में ही होता है, हाथीका जीव हाथीके शरीर प्रमाण फैला है, जीव तो सब एक समान हैं और वह एक असंख्यात प्रदेशी है, लेकिन जैसे दीपकको किसी घड़में रख दिया जाय तो उसको प्रकाश घड़के आकार प्रमाण फैलता है और यदि उसे किसी कमरेमें रख दिया जाय तो कमरेके आकार बराबर प्रकाश है, इसी प्रकार यह जीव जिस देहमें पहुंचता है उस देह के आकार हो जाता है।

वेदनासमुद्धा, कषायसमुद्घात,तैजस समुद्घात व मारणन्तिक समुद्घात में जीवप्रदेशोंकी क्रिया—कुछ स्थितियां ऐसी होती है कि जिन स्थितियों में इस देहके बाहर भी आत्म प्रदेश जाते हैं। जैसे कोई बड़ा तेज क्रोई करे तो वह ऐसा तमतमा जाता है कि उसके आत्मा के प्रदेश कुछ शरीर से बाहर भी निकल जाते हैं। तो लोग कह भी बैठते हैं अजी आप आपेसे बाहर क्यों हो रहें ? तो आत्मा जो देह प्रमांण है उससे भी ज्यादह जीवके प्रदेश फैल गए तो हो गया ना समुद्घास। कभी वेदना तेज होती हैं, बड़ा तीव्र बुखार चढ़ा है, तपतपी लग रही है, कठिन वेदना है, उस समय भी आत्मा के प्रदेश शरीर से कुछ बाहर जाते हैं। देखो बहुत दूर नहीं जा पाते, केवल शरीर से तिगुने प्रमाण बाहर जा सकते। कषायमें तिगुने प्रमाण जा सकते। विक्रिया समुद्घात, जैसे विष्णुकुमार मुनिको विक्रिया हुई थी तो देहसे बाहर भी उनके प्रदेश चले गये। तैजस समुद्घात जब मुनि के दाहिने कंधेसे तेजस निकलता है और उसका प्रसार जहां तक होता है वहां तक किसी जीव को रोग नहीं रह सकता दुर्भिक्ष नहीं रह सकता, आधि व्याधि कोई नहीं टिक सकता है। सब जगह आनन्द आ जाता है और जब मुनिके कोई संक्लेश परिणाम होता है तो उनके बांये कंधे से तैजस निकलता है वहां तकका सब कुछ भस्म हो जाता है। तो अशुभ तेजस निकलने पर फिर वह मुनि मुनि नही रहतां, वह अज्ञानी मिथ्या दृष्टि हो जाता हैं। बात यह बतला रहे कि तैजस समुद्घातमें भी कुछ प्रदेश बाहर निकल जाते। ऐसा ही एक मारणान्तिक समुद्घात होता है। किसी किसी जीव में होता है कि मरने पर आत्माके प्रदेश जन्मस्थान तक छू आते हैं, फिर वहां से वापिस आकर देहमें समा जाते हैं, फिर इकट्ठे सब निकलते हैं वह मरण है, लो कुछ स्थितियां है ऐसी कि जिन स्थितियोंमें ये आत्मप्रदेश इस शरीरसे बाहर भी निकल जाते हैं।

केवली समुद्घातमें जीव प्रदेशोंकी क्रिया—एक समुद्घात है केवली समुद्घात। केवली समुद्घातमें सशरीर भगवान की जब आयुकर्म तो थोडा रह गया हो और बाकी तीन कर्म में नाम कर्म जो शरीरका कारण है, गोत्र कर्म जो गोत्रका कारण हैं वेदनीय कर्म जो साता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

असाताका कारण है इन तीन कर्मोकी स्थिति ज्यादह रह गयी हो। तो देखो मोक्ष जब होता है तो सारे कर्म एक साथ समाप्त होते तब मुक्ति है। उन चार कर्मोमें ऐसा नहीं है कि कोई कर्म पहिले खिरे, कोई बादमें खिरे। चारों घातियां कर्म एक साथ खिरते हैं। आयु किसीकी मानो आध घंटे की है और बाकी तीन कर्मो की स्थिति हजारों वर्षकी है तो कैसे आयुके बराबर होती ? सो सुनिये यह तो होता नहीं कि आयु भीं उनके बराबर हजार वर्षकी हो जायगी ऐसी उल्टी गंगा न बहेगी। बाकी तीन कर्म आयुके बराबर होंगे। जैसे अरहंत भगवान कायोत्सर्ग सहित हैं तो शरीरके बराबर प्रदेश मोटे फैलकर नीचे से उपर तक फैल जाते है। वातलनय कर्म १४ राजू फैल जायेंगे। नरकसे नीचेकी जगह से लेकर और सिद्ध लोककी जगह तक फैल जायेंगे सिद्धलोकमें अभी न फैलेंगे। जहाँ तक बात बलय है उसके पहिले तक फैल जायेगे। एक समय में। दूसरे समयमें अगल बगल फैलेंगे। जहां तक बातबलय मिलती है, तीसरे समय में आगे पीछे फैल गया जहां तक बात बलय रहती है और चौथे समयमें बातवलयके प्रदेशों तक पहूँच जायगा इसे कहते है लोक पूरण समुद्घात। इस स्थितिमें सशरीर केवली अरहंत भगवान सारे लोकमें व्यापक होते केवल एक समयके लिए। फिर ५ वे समयमें जो प्रतरकी स्थिति थी याने उससे पहले जो स्थिति थी उतना ही फेल पायेंगे याने संकोच हो जायेगा, फिर पूरे समय में कपाटाकार अगल बगल जो फैले थे वे रह जायेंगे। और ७ वें समयमें डंडाकार जैसे सबसे पहिले फैला था सो रह जावेगा। और ८ वें समयमें शरीर प्रमाणु रह जायगा। उतनी क्रिया होनेके अन्दर ही वे बाकी तीन कर्म प्रायः आयुके बराबर हो जाते है। जो थोड़ा बहुत अन्तर रह जायगा सो इसके बाद अपने आप यह मिट जाता है फिर एक साथ मुक्त होता है।

आहारककाययोग व सुगम जन्मजाति में जीव प्रदेशों की क्रिया –एक आहारक समुद्घात होता है। आहारक ऋद्धिधारी मुनिश्वरके कोई तत्वकी शंका हो तो उनके मस्तकसे एक हाथका आहारक शरीर निकलता है और जहाँ तीर्थंकर केवलीं के दर्शन हों वहां तक जाता है, दर्शन होते ही वह वापिस लौट आता है। इतनेमें उनकी शंकाका समाधान हो जाता है। देखो यह आहारक शरीर पवित्र है, ऋद्धिधारी मुनिश्वर के निकलता है, पर थोड़ा थोड़ा अंदाज करलो, जब कोई सन्देह हो जाता है कि इसके बाद कौन सा श्लोक है तो आप कुछ विचारमें आते है ना, या मानलो बम्बई की खबर आ गई तो आपको ऐसा लगता है कि हमारा दिमाग बम्बई पहूँच गया, और बादमें जब काम निपट गया, बम्बईका काम समाप्त हुआ तो यहां फिर आ जाता है। यह तो यहां की बात है। जाता कुछ नहीं, दिमाग पर लगता है ऐसा, लेकिन वहां आहारक शरीर बराबर जाता है, तो कुछ स्थितियोंमें आत्मा के प्रदेश शरीरसे बाहर भी हो जाते हैं पर अन्य सभी समयों

http://sahjanandvarnishastra.org/

मेंआत्माके प्रदेश शरीर प्रमाण रहते है। एक स्थिति है। जब किसी प्राणीका मरण होता है और दूसरी जगह इसका जन्म होता है और वह जन्मकी जगह बिल्कुल सीध में हो, ऊपर हो या पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि किसी दिशामें हो या नीचे हो मगर बिल्कुल सीध में वह जन्म स्थान पड़ता है तो उसके प्रदेश एक साथ इतना फेल जाते है कि मरण स्थान से जन्म स्थान तक पूरे व्याप जाते है और तुरन्त सिकुड़ कर जन्म स्थान पर पहुच जाते है। एक स्थिसि ऐसी होती है कि जो शरीरसे बाहर प्रदेश फैले हुए होते है। शरीर प्रमाण भी नही रहते। सिद्ध प्रभुके आत्म प्रदेश जिस शरीरसे मुक्त होते हैं उस शरीरके प्रमाण रहते है। कारण क्या है कि आत्माके प्रदेश ज्यादह फैलें या सिकुड़कर थोड़े रह जायें इसका कारण है कर्मका उदय। जब कर्म सब नष्ट हो चुके तो वे प्रदेश अब न ज्यादह फैल सकते और न सिकुड़ सकते है। तो आकार में प्रदेश है निर्वाणके समयमें उतने ही प्रदेश सिद्ध भगवानकें होते है और अनन्तकाल तक ऐसी स्थिति होती है। इसे कहते है स्वभाव द्रव्य व्यवजन पर्याय यों जीव नाना है, क्रियावान है, उनकें प्रदेश में परिस्पंद होता है, योग होता है वही आश्रव है।

कर्माश्रवणके प्रोग्रामकी अहितकारिता—आस्रव एक द्वारा है कर्मोंके आनेका। आश्रवको द्वार कहते हैं। जैसे पानीमें नाव है और उसमें छेद हो तो पानीके आनेका द्वार है। क्या होगा वह द्वार खुला रह गया, पानी आता रहेगा तो नाव डूब जायगीं, ऐसे ही हम आपके आश्रवके द्वार हैं तो कर्म आते रहते हैं और हम डूड़े डूबे हुए हैं। अगर कर्मोका बोझ न होता इस पर तो उर्द्धगति स्वभाव से यह तो सिद्ध लोकमें विराजमान रहता और वहांसे चलायामन नही होता इसका स्वभाव है अर्द्धगमनका। जैसे तूभी में कीचड़ मिट्टी भर दी जाय और उसको पानी में डाल दिया जाय तो वह नीचे बैठ जाती है पर धीरे धीरे कीचड़ पानीके मेलसे घुलता जाता है और वह तूभी ऊपर आ जाती है। इसी प्रकार हम आपके आत्मामें बड़ा कीचड़ लगा हुआ है इसलिए इस संसार समुद्र में हम नीचे डुबे पड़े हुए हैं। जिस दिन यह कीचड़ निकल जायगा, जैसे भगवान सिद्धके कीचड़ नहीं है। कीचड़ जब कर्मका समाप्त हो जायगा तब यह जीव सिद्ध प्रभु हो जायगा। या सब कोई अपना प्रोग्राम बनाये रहते हैं। मुझको जिन्दगीमें यह काम करना है। सबके निराले—निराले प्रोग्राम हैं। मुझको इतने फर्म वाला बनना है, इतने कारखाने खोलकर रहना है, मुझे लड़कों को पढ़ाकर ऐसा योग्य बना देना है। मुझे सोसाइटीमें नगरपालिकामें अपनी इज्जत पाना है यों कुछ न कुछ प्रोग्राम बनाये रहते हैं, मगर वे सब प्रोग्राम गड़बड़ हैं, खोंटे हैं, उन पर अधिकार ही नहीं है कि जैसा जीव नें सोचा वैसा हो जाय, क्योंकि वे सब परभाव हैं, पर तत्त्व हैं, पर—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थ हैं। किसी भी पदार्थका दूसरे पदार्थ पर अधिकार नहीं होता परिणमते हैं सब। अपने आपसे परिणमते हैं। भले ही विकार होते हैं तो अन्य निमित्त पाकर होते हैं मगर परिणमन तो निमित्त नै नहीं दिया। प्रत्येक पदार्थ अपना स्वतन्त्र स्वरूप रखते हैं। हां तो अधिकार तो नहीं मगर प्रोग्राम जुदा—जुदा सबके चित्तमें बसे हुए हैं।

निजस्वरूपकी सम्हाल करके दुःखरहित होनेंका अनुरोध—दुःख और किस बात का है ? है तो यह भगवानके समान सहज अनन्त आनन्द स्वरूप। आत्माका स्वरूप तो देखो, जैसा सिद्धका स्वरूप है मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान किन्तु आशबश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान। है तो हम आप अनन्त शाक्ति रखने वाले परन्तु पर पदार्थोंकी आश लगा लगाकर अपने ज्ञानको खो दिया है और निपट अज्ञानी बना फिर रहा हूँ। तो यह आश्रवद्वार खुल गयो, कर्म दनादन आ गए और इस संसारमें रूलते रहे रुलाते रहै। इतनी तो विपत्ति में पड़े हैं। देखो अगर किसीके चारों ओर जंगल में आग लगी हो, आग उसकी ओर बढ़ती ही आ रही हो, उसके बचने की कोई आशा न हो, फिरभी वह चाहे कि मूझे रसगुल्ले खानेको मिलें तो यह कितने अचम्भेकी बात है। तो यों ही हम आप चारों ओरसे राग आगमें जल रहे हैं, प्रदेश एकदम क्षुब्ध हैं। इच्छाओं नेमेरे इस आत्मा भगवानको हिला डाला उससे हम क्षुब्ध हो रहे हैं, ऐसी तो यहां बिपत्ति है और यह जीव कहता हैं कि मुझे तो स्पर्शन तो इन्द्रि—यका विषय चाहिए, विवाह चाहिए, भोजन मीण चाहिए, हमें सनीमा चाहिए। यों पन्चेन्द्रियके विषयोंकी आशा बनी हुई है और यह राग आग में जलता हुआ दुःख भोगता हैं। ऐसी स्थिति बन रही है कि बना भिखारी निपट अजान। तो भाई अच्छा बनना है। सुखी बनना है, पवित्र बनना है, उत्कृष्ट बनना है, महान बनना है, तो किसीं बाहरी पदार्थ की कृपासे न बन सकेंगे। ये बाहरी अन्य जीव या अन्य जड़ वभव, इनका जब तक लगाव है तब इस जीवकी दुर्गति है। अपने आपका सहारा लेना होगा। तो भूतार्थनयसे वह मैं अपने आप क्या हूँ, इसकी समझ करानेके लिए ही जीवादिक ७ तत्वोंका वर्णन चल रहा है।

वास्तविक आरामका स्थान निज वस्तुत्व—आखिर हम कहां जायें कि आरामसे ठहरे ? देखो मानो एक अहमदाबादका बड़ा आदमी इंगलैण्ड गया। वह इंगलेण्डसे वापिस आना चाह रहा है। उसकी इच्छा हुई कि मैं घर जाकर थोड़ा विश्राम लेलूं। तो इग्लेण्ड से जब वह चलता है तो वह तो है योरोप में, तो वहां लोग पूछते हैं कि बाबूजी कहाँ जा रहे हो ? तो वह कहता है कि एशिया में जा रहे हैं। अब एशियाके किनारे आया तों वहां के लोग पुछते हैं कि बाबूजी आप कहां जा रहे हैं ? ··· इंडिया। इन्डिया आने पर लोग पूछते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव--जीव हैं। अब सब जीवों से हटकर खुदके जीवपर आता है और केन्द्रित हो गया अब खुदके जीवपर आया तो यहाँ अभी यहां अटक गए कि मैं मनुष्य हूँ, मैं व्यापारी हूँ, मैं घर वाला हूँ, इस तरह अपने जीवपर आये, लेकिन यहां भी आराम का स्थान नहीं मिलनेका। अभी इसे और अन्दर जाना है। तो वह उपयोग जो ज्ञानोपयोग हैं समझदार वह वहां से चल उठा, तो मानो कोई पूछता है कि बाबू जी कहां जाना है? उपयोग महाराज कहां जावोगे? तो इसका जबाब मिलेगा कि मैं अपने गुणके श्रंगारके स्थानमें जाऊंगा। हां हमें अपने गुणश्रंगार में जाना है। ये जो बाहरी द्रव्यव्यञ्जन पर्यायें हैं मनुष्य का आकार, इन सब में आ आकर तो हमें विश्राम का स्थान नही मिल रहा। हमें तो इस आकार वाले शरीर प्रदेशोंसे हटकर अपने गुणपर्यायके क्षेत्रमें जाना है। वहाँ पहुंचे गुणोंकी नाना पर्यायें हैं। तो यहां पर भी इसकी दृष्टि नहीं मिली। यहां से भी चल रहा। — कहां जा रहे बाबू जी? हम अपने गुण वैभवके क्षेत्रमें पहुचे तो वहाँ, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आनन्द वीर्य आदिक अनेक गुण हैं उन गुणों को गिन रहे, उनको देख रहे, उनमें लगरहे, इसमें भी चैन नहीं मिल रही। वहां से हटकर अब जाता है। उपयोग महाराज कहां जा रहे हैं? हम जा रहे है अभेदस्वभाव में। उन समस्त गुणों का जो एक अभेदतत्त्व है वही यह चित्स्वभाव में है उसमें जा रहे, यह उपयोग यों चित्स्वभावमें पहुचता है तो वहां उसे परम विश्राम मिलता है। तो कितना बाहर से हट-हट कर हमें किधर जाकर विश्राम लेना है?एक अपने धाम में।

निजधामका परिचय:—जिन, शिव, ईश्वर, ब्रह्माराम, विष्णु, बुद्ध हरि जिसके नाम। राग त्यागि पहुचूं निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम? देखिये इस छन्दमें बड़ा मर्म भरा हुआ है। साधारणतया लोग इसे सुनकर यों खुश हो जाते है कि इसमें हमारे देवकी पूजा की गई, पर इतना फैलाव नहीं कर रहा यह देव। अन्य देवताओं का फैलाव करते समय भी इसे अनुभूति नहीं जगती। जो भगवान का स्वरूप जानता है वह पूछे कि जरा आप सच्चाई के साथ तो बताओ कि क्या ऋषभदेव भगवान नहीं हैं? अरे तब क्या भगवान है? वह तो नाभिराजाका पुत्र है, मरूदेवी का पुत्र है, इक्ष्वाकुवशंका है, वह भगवान नहीं, तो फिर क्या भगवान है? अरे भाई ये ऋषभदेव जिनका नाम ऋषभ रखा गया वह एक व्यक्ति है, उसके अन्दर रहने वाला जो एक जीव है वह पारिणामिक भाव, वह चैतन्यस्वरूप वह जीवत्वभाव, यह जहां कलंक रहित हो गया, जो एक चित्स्वरूप है वह है भगवान। ऋषभदेव भगवान नहीं है, ऋषभदेवके शरीरके अन्दर विद्यमान आत्माने अपने स्वरूपका दर्शन करके जो एक प्रभुता प्राप्त की ऐसा विश्लेषण करके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जो एक शुद्ध परमार्थ प्रभुताको निरखता है वह कहता है कि ऋषभदेव भगवान नहीं किन्तु ऋषभदेव के अन्दर रहने वाला जो शुद्ध चितस्वरूप है वह भगवान है। भगवान के नाना नाम नहीं होते। तुम तो शिव, ईश्वर, ब्रह्मा आदिक के नाम कहते। किन्तु भगवानके तो २४ नाम हैं जो २४ तीर्थंकर हुए हैं हम नाम लेते हैं महावीर तो झट ध्यानमें आता है कि जो त्रिलानन्देन है सिद्धार्थ का सुत है वह भगवान। अरे भगवान वह नहीं है। भगवान तो एक आत्मा है। वह तो एक महापुरुष हुए, तीर्थंकर हुए हैं उनका जो आत्मा है, जिसका चित्सामान्यस्वभाव प्रकट हो गया वह चित्स्वरुप भगवान है तो इस शरीरके अन्दर आपका एक चित्स्वरूप नजर आयगा वह भगवान है। और अगर यह दृष्टि डाला कि यह ७०० धनुषके यह ५०— धनुषके यह २५० धनुषके, अमुक रंगके ये जो हैं सो भगवान हैं, अगर ऐसी दृष्टि रही तो यह दृष्टि गलत हो गई। ऐसी दृष्टि देकर जिसे आप देख रहे वह भगवान नहींवह एक आकार है, वह एक मुद्रा है। उसके अन्दर रहने वाला जो एक सामान्य चितप्रकाश है वह भगवान है। आप भगवान की बात समझना चाहैं तो कहां से समझेंगे? समवशरण के अन्दर साक्षात् विराजमान जो अरहंत भगवान है, जिनकामुख चारों ओर से दिख रहा है जिसकी दिव्यध्वनि खिर रही है जो आंखोंसे दिख रहा है वह भगवान नहीं किन्तु वहाँ ज्ञानके बलसे अपने आपके अन्तः विराजमान अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दमय जो एक चितप्रकाश है वह भगवान है। तो लो, ज्ञानके द्वारा आप भगवान के दर्शन कर सकते। तों उस समवशरणमें भी किसे निरखा एक अपने चित्स्वरुप को। यो दखो जिनशिव ईश्वर ब्रह्मारांम, विष्णु बुद्धहरि जिसके नाम ये जिसके नाम हैं। उस धाममें पहुँचनेपर फिर आकुलता नहीं रहती

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम विष्णु बुद्ध के भावमें परमधाम दर्शन—एक इस आत्माकी बात चल रही है। जिस आत्माके ये नाम हैं–जिन जो रागद्वेषको जीते उसे जिन कहते हैं। रागद्वेषको जीतने वाला कौन? यह मेरा ही चितप्रकाश शिव—जो कल्याणस्वरूप हो सो शिव। कौन है कल्याणस्वरूप? कौन है मंगलमय! यह भगवान आत्मा ईश्वर जो सृष्टि करनेमें स्वतन्त्र हो उसको ईश्वर बोलते हैं। हम आपकी जो सृष्टि बन रही हैं उसको कौन बना रहा है? तो उसके करने वाला कोई दूसरा नही, कोई नया ईश्वर नहीं! आपकी सृष्टि करने वाले आप ही हैं। यह आत्मा ही अपने आपकी सृष्टि कर रहा है। लोकमें जो यह बात फैली है कि कोंई एक ईश्वर जगतको रचता है, सो बात कसे फैली? उसका कारण समझो जगतमें जितने जीव हैं वे सब अपनी सृष्टि को निरन्तर बनाते चले जा रहे हैं। तथ्य तो यह है। अब चूँकि जीवके भाव बिना कुछ भी नहीं बनता

Version 1

http://sanjanaidvarnishastra.org/

जीवके सम्पर्क बिना तो ये बांस कपड़ा आदिक भी नही बनते । पेड़ था, जीवका सम्पर्क था बन गया । तो यह सब जीवके द्वारा की गई सृष्टि है । तो इस तरह के कितने जीव है ? अनन्त जीव हैं, उन सब अनन्त जीवोंके द्वारा अपनी अपनी मर्यादित सृष्टि चल रही है । लेकिन जब उन सब जीवोंको एक स्वरूपकी दृष्टिसे देखातो बोलनेमें आया कि सब एक सबरूर हैं, सृष्टिके करने वाले अनन्त जीव या अनन्त जीवोंका स्वरुप है एक । जैसे पृथ्वी का पिण्ड बन रहा ना इसतरहसे कुछ पुरुषोंने डोरको यहां से सीधी लगा दी, यह ईश्वरने सृष्टि की सृष्टि की उन अनन्त जीवोंने और अनन्त जीवोंका स्वरुप है एक समान । तो यो कहते, जैसे अभी कहा कि ईश्वरने सृष्टि की है । तो की है अनन्त जीवोंने अपने आपकी सृष्टि तो यह ही मैं आत्मा ईश्वर हुं । क्योंकि मैं अपनी सृष्टि को करनेमें स्वतंत्र हुं । उस ही को ईश्वर बोलते है । ब्रह्मा वह है जो सृष्टि करे । अब सृष्टि कौन कर रहा है ! यही आत्मा अतः यह आत्मा ही ब्रह्म है । यह आत्मा ही राम है । कैसे राम है कि देखिये—रमन्ते योगिन अस्मिन इति राम अर्थात् योगीजन जहां रमण करते हैं उसे राम कहते हैं । योगी-जन कहां रमण करते हैं ? इस चैतन्यस्वरुपमें अपने आपके अन्तस्वरुपमें । उस अंतस्तत्त्वके प्रसादसे उनकी समाधि बनती है तो राम कौन है ? यह भगवान आत्मा विष्णु मायने जो व्यापक हो, सर्वत्र फैला हो, ऐसा कौन है ! यह ज्ञान वह ही आत्मा । ज्ञानद्वारा यह सारे लोकमें फैला हुआ है । बुद्ध—जो ज्ञानमय हो सो बुद्ध । ऐसा ज्ञानमय कौन है ? यही आत्मा भगवान ।

आत्माकी पापहरण स्वभावता—हरि जो पापोंको हरे । पापोंको कोन हरता है ? यही भगवान आत्मा । जब भाव बिगड़ता है तो पाप बँधता है और जब भाव सुधरते है तो पाप दूर हो जाते है । बंगालमें एक धनिक की लडकी द्रोपदी थी उसका विवाह हो गया दूसरे धनिक के लड़के के साथ । वह दुर्भाग्यसे विधवा हो गई तो उसे स्वसुराल वालोंनें अपने घर न रखा, और, वह पिताके घर रहने लगी । रहने लगी । कोई ऐसा कुयोग हुआ कि उसका आचरण बिगड गया । और ऐसा आचरण बिगाड़ा कि गांव भरमें सब जगह उसकी चर्चा फैल गई । अब विबाह हुए तो कई वर्ष गुजर गए उसके आचरण बिगड़ जान का प्रभाव यह हुआ कि उस द्रोपदीके पिताने उसे बगीचा दे रखा था उसके सारेफल कड़वे हो गए उसके अन्दर बनीं बावड़ीका जल कड़वा हो गया । कुछ समय बाद उसके चित्तमें ग्लानि आयी ओह मैंने बड़ा दुष्कर्म किया, मेंने अपने आपको ही बरबाद किया । प्रभुके ध्यानमें उसका चित्त लगा, प्रभुकी उपासनामें उसकी धुन बनने लगी और कुछ वर्ष तक साधना करनेके बाद उसे ख्याल आया कि में अमुक तीर्थमें जाऊंगी औरमैं अमुक देवतापर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जल ढोलूंगी और वहां मेरे प्राण विसर्जित हो जायेंगे। तो उसने अपने पिता से कहा— पिता जी हमारा तो ऐसा भाव हुआ है कि मैं बैजनाथतीर्थ धाम जाऊ और वहां जाकर मूर्तिमें जलधारा ढुलाऊं और वहां ही मेरे प्राण विसर्जित हो। तो उसके पिता ने सब प्रोग्राम बना दिया सब साधन बना दिया और गांव वालोंको बुला दिया कि मेरी बेटी आज तीर्थधामको जा रही है और वहां अपने प्राण विसर्जरा करेगी वहां बहुत से लोग जुड़े। वहां बहुत से लोग कह रहे थे देखो १०० चूहों कों मारकर बिल्ली हज्ज करने जा रही है। सब जानते थे कि इतना दुराचार करने वाली लड़की तीर्थधाम करने क्या जायगी मगर चलते समय उस द्रोपदीने यही कहा कि अब मैं वह द्रोपदी नहीं हूँ जो पहिले थी, जिसपर आप लोग मजाक कर रहे हैं। अब तो मेरा प्रभुके चरणोंमें ध्यान है मैं वहां जाऊंगी जल धारा ढुलाऊंगी, वहा मेरे प्राण विसर्जित होंगे। यदि आप लोगो को विश्वास न हो तो जाइये, हमारे बगीचेके फल खाइये, बावड़ीका पानी पीजिए, वे सब अब मीठे हो गए हैं। लोग बगीचेमें गए तो देखा कि सचमुच आम वगैरह फल मीठे हो गए हैं और बावडीका पानी भी मीठा हो गया है। यह था उस द्रोपदीके परिणाम बदलनेका प्रभाव आखिर द्रोपदीके साथ बहुत से लोग उस तीर्थधाममें भी गए। उन्होंने देखा कि सचमुच ही द्रोपदीने वहां जल ढुलाया और वहीं उसके प्राण विसर्जित हो गए। तो बात यहां यह कह रहे है कि जो अपन द्वारा किए गए पापोंको हरे सो हरि।

आत्मदेवकी हरिरुपता—मेरे किए हुए पापोंको कोई दूसरा हरने आयगा क्या! अरे मैंने ही पाप किया और में हीं अपने परिणाम सुधारूं तो पापोंको दूर कर सकता हूँ। प्रथम तो भाई यह बात चाहिए कि मैं पापोंसे दूर रहूँ। थोड़े समयको पापके भाव आते है उस समय अगर न सम्हले तो उसकी श्रृंखला बन जाती है और उस समय अपनेको सम्हाल लिया तो बड़ी शान्तिपूर्वक अपने आपमें बड़ा आराम पावोगे। तो पहिली बात है कि पापके काम हमसे बनें नहीं और कदाचित कर्मविपाकवश बन जायें तो भी धैर्यपूर्वक उन्हें छोंड़ दें। उन पापोंको भी कौन दूर कर सकता? जैसे कोई लोग कहने लगते कि हमने तो जिन्दगी भर पाप किया, अब हमारा उद्धार नहीं हो सकता ऐसा न सोचें। अरे कठिन से भी कठिन पाप हो गए हों तो भी इस आत्मस्वरूप के लक्ष्य में इस प्रभुताके ज्ञानमें वह सामर्थ्य है कि जैसे बहुत बड़ेईंधनके ढेरको अग्नि की एक मणिका जला कर भष्म कर देती है इसीप्रकार जब भी भाव सुधरे तो आपके भव—भवके बांधे हुए कर्म भी झड़ सकते है। हिम्मत बनाना चाहिए तो परिणामोंकी निर्मलता ही हम आपका धन है इसके अतिरिक्त हम आप के लिए अन्य कुछ भी शरण नहीं है। ऐसा

http://sahjanandvarnishastra.org/

समझकर "जिन शिव ईश्वर ब्रह्माराम, विष्णु बुद्धहरी जिसके नाम, जिसके ये नाम हैं उस निजधाममें राग त्याग कर पहुंच जाऊं तो वहां फिर आकुलता का क्या काम है। देखो इस छन्दका कितना गम्भीर और कितना आंतरिकमें पहुँचाने वाला अर्थ है। यहां पहुंचे तो बेड़ा पार। जब तक अपने आपके अन्तस्तत्त्वमें पहुचते नहीं है तब तक उपयोगकी भट-कना है।

बन्धतत्त्वका परिचय—७ तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहा जाने पर ७ तत्त्वोंका नाम बताने वाले इस चौथे सूत्रमें जीव अजीव और आश्रवके सम्बन्ध में काफी प्रकाश आ गया है। अब बंध तत्व की बात निरखोबंध यह एक तत्त्व है क्योंकि यह जीव का धर्म है पुद्गलका भी धर्म है। धर्म मायने शाश्वत स्वभाव की बात नहीं। धर्म मायने धर्ममें एक बात पायी जाती। जेने कहने लगते ना कि बिच्छूका धर्म क्या है ? काटना, तो काटना कोई धर्म कहलाया क्या ? वह तो बिच्छूकी बात है, इसी-प्रकार धर्म जो बंध है वह पुरुषकी बात है। यह बात क्यों कहनी पड़ी कि कोई दार्शनिक मानता है कि बंध जीवमें नही है किन्तु प्रकृतिमें है। अब बतलाओ प्रकृतिमें अकेलेमें बंध कैसे ? बंध तो दो में होता है। दो के बिना बन्धन क्या ? एक में बंध नहीं होता। तो अकेले जो प्रकृतिमें बंध मानते याने बंध अजीवमें मानते, जीवमें नहीं होता, यह बात एक तो यो ठीक नहीं कि बंध अगर अजीव में हुआ तो बंध का फल भी अजीव भोगे, और बन्ध का विकार भी अजीव में रहे। जीवके फिर क्यों मोक्षका उपदेश देते हो ? फिर तो प्रकृति को मोक्षका उपदेश दो। यद्यपि ऐसी बात जैन सिद्धान्त में भी आयी है कि बंध जो होता है तो वह कर्मका कर्मके साथ होता है, इसे कहते हैं द्रव्यबन्ध याने पहिले सत्ता में जो कर्म पड़े हैं उनके साथ नवीन कर्मोंका बंध होता है तो हुआ गठ जोड़ाका बंध, मगर निमित्त नैमित्तिक भाव तो जीव के साथ कर्मका है ना ? ऐसा भी बंध वे सांख्यजन नहीं मानते। तो कहते हैं कि बन्ध भी जीवका धर्म है तब ही तो तत्व की बात कही गई। यहां धर्मके मायने कोई गूण हो, कोई पर्याय हो, कोई बात आती हो उसको धर्म कहते हैं और इस हिसाब से राग भी जीवका तत्त्व है, पर अर्थ भली प्रकार समझ लेना। जीवमें कुछ बात गुजरती हो उसीके मायने है, तत्त्व या धर्न। यहां धर्मका इतना अर्थ है धर्मका यहां अर्थ यह नहीं है कि जो निरपेक्ष हो, स्वभाव हो, शाश्वत हो। वहां तो द्रव्यकी सिद्धिकी जा रहीं है। उस प्रसंगसे घटनाकी बात कही जा रही है। बन्ध जो है वह पुरुष धर्म है, प्रकृति धर्म नहीं हे अथवा प्रकृतिधर्म है, दोनों का धर्म है। केवल एक में बन्धकी बात असम्भव है। एक का क्या बंधन ? प्रधानके ही बन्धन रहे, यह बात यों सम्भव नहीं कि बन्धन होता है दो चीजोंमें अब जीवका भी धर्म है ऐसा मानना चाहिए क्योंकि जीवका बंध अगर न मानोगें, पुरुषका बन्ध बिल्कुल हीं

Report any errors at vikasnil@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न मानोंगे तो बन्धका अनुभव भी जीवमें न बन सकेगा। और, जब जीवमें बन्धका अनुभव न बना तो मोक्षकी जरूरत ही क्या रही? इसलिए बन्ध जीवमें है, केवल प्रधानमें नहीं है।

सत्य असत्यके परिचयसे सत्य की महिमाका अङ्कन—यह ७ तत्त्वोंकी बात कही जा रही। देखो अपने—अपने घर घरकी कुछ बात बनालें उससे उसकी बात कुछ ज्यादह स्पष्ट नहीं होती और न उसका कुछ महत्व जाना जाता है। अपना लड़का बहुत अच्छा उदार है, ठीक है इतना ही भर देखो और शेष बच्चोंको न देखो जो अधिक ऊधमी हैं या उद्दण्ड हैं, दुराचारी हैं उनको न देखो तो अपने बालककी महिमा अधिक चित्तमें न समायगी। यह बच्चा बहुत बढ़िया है, यह बात तब समझमें आयगी जब दूसरेके गंदे बच्चे देखें। ये ७ तत्त्व कैसे रखे गए हैं मोक्षतत्त्वके प्रयोजनभूत जो कम नहीं, अधिक नहीं, यह हीं है इसका रहस्य तो जब सब दार्शनिकों के तत्त्वोंका कुछ परिचय हो तब यह महिमा आयगीं कि धन्य है इन आचार्योंकी सूझ। और, जैन आचार्योंने भी वैद्यक ग्रन्थ बनाया है और अजैन तो अनेक वैद्यक ग्रन्थ हैं, किन्तु जब जैनाचार्योंके लिखे हुए वैद्यकी ग्रन्थोंको देखेंगे तो उसका क्रम, उसकी बात एक बहुत ही विलक्षण समझमें आयगी। उस वैद्यक ग्रन्थके शुरू शुरूमें जीवके परिचयसे उठाया है। इस जीवका परिचय पहिले कराया। जीव क्या है, कैसे आया है, उसमें जाति स्मरण भी कैसे होते हैं जाति स्मरणके भी अनेक प्रसंग बताये हैं ऐसे ढंग से प्रस्तावना उठायी है कि जीवका मूलरूप यहाँ से चला और ऐसा यह जीव ऐसे बना, ऐसे सम्बन्ध हुआ, ऐसे कर्मका बन्ध हुआ। रोग क्यों होता है, कर्मका उदय कैसे आता है, यहां से बात उठायी गई है जैन वैद्यक ग्रन्थोंमें। फिर उसके बाद जो दवाइयोंका सिलसिला बताया है वह किस ढंगसे आता है। रोगका निदान बताया है तो कैसे बताया है कि कोई आदमी वैद्यक ग्रन्थोंको पढ़कर भी जैन धर्मपर श्रद्धाकर जायगा। ऐसा एक विलक्षण अपूर्व उसमें कथन हैं तो मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्व हैं। यह बात समझने के लिए कुछ अन्य दार्शनिकोंके तत्त्वकी बात कही जा रही है।

जीवमें बन्धनपरिणति—बंध प्रकृतिका धर्म नहीं किन्तु जीवनिष्ठ है ऐसा यहां कहा जा रहा है। अच्छा इससे सिद्ध हुआ कि बन्धन जीवमें तो स्वभाव विभावका है और कर्म कर्ममें पुद्गलका बन्धन है और जीवके साथ पुद्गलका जो बन्धन है वह निमित्त नैमित्तिक स्वभावका है और निमित्त नैमित्तिक भावका बन्धन यह बड़ा दुःखकारी बन्धन है। अभी गायका एक दिनका बछड़ा हुआ हो, उस गायको किसी दूसरे गांवके किसी व्यक्तिने खरीद लिया तो बतावो उस गायको वह कैसे ले जायगा? रस्सी बांधकर ले जायगा, मगर रस्सी

Version 1

https://sahajanandvarnishastra.org/

बांधने की भी जरूरत नहीं, वह बछड़ेको आगे आगे अपने कंधे पर रखकर ले जाता है और गाय पीछे भागती हुई चली आती है बताओ वहां गाय किससे बँधी है ? कहीं गाय का गला बछड़ा या उस पुरूष के गले से नहीं बाँध दी गई किन्तु ऐसा ही निमित्त, नैमित्तिक भावका बन्धन है, मोहका बन्धन है तो यो ही जीवका पुद्गल कर्मके साथ जो बन्धन है वह निमित्त नैमित्तिक भावका बन्धन है, गठजोड़े का जो बन्धन है वह पुद्गलके साथ है। इसीपर तो लोग कहते हैं कि बतलावो आकाशमें किसी चीजका बन्धन हो सकता क्या ? आकाशमें कोई कर्म बंध सकते क्या ? अरे आकाश तो निर्लेप है, अमूर्त है, उसमें दूसरी चीजका बन्धन क्या ? तो आकाशकी तरह आत्मा भी अमूर्तु है तो अमूर्त आत्माके साथ पुद्गल कर्मका बन्धन कैसा ! बात तो ठीक है मगर यह जोव है चेतन, जाननहार। विकल्प करता है कुछ विशेषता तो है आकाशकी अपेक्षा तो विकल्प करने वाले जीवका उस कर्मके साथ निमित्त नैमित्तिक बन्धन हों जायगा। तो निमित्त नैमित्तिक बन्धन तो यह कठिन बन्धन है। अभी कहीं कोई पंचायत हो रहीं हो तो वहां देखो रिस्तेदारके साथ कितना पक्षपात किया जाता। रिस्तेदारके साथ वन्धन लगा है। काहेका बन्धन है ! हाथमें हाथ नहीं फसा, सिरमें सिर नही फसा, पैरमें पैर नहीं फसे काहेका बन्धन है ? अरे वह भावका बन्धन लगा है, जिससे राग किया जाता। तो निमित्त नैमित्तिक का बन्धन बड़ा निकट बंधन होता है तो यह बंध जो है वह जीवका धर्म है, केवल प्रकृतिका धर्म है, प्रधानका धर्म है सो बात नहीं कहो यह जीवमें बंध होता है ?

संवरतत्व निर्जरा तत्व व मोक्षतत्वका परिचय—अब बंधके बाद कहा है सम्बर। सम्बर कहते हैं द्रव्यकर्मके आनेका। भावकर्मका न आना सो भाव सम्बर रागद्वेष विकल्प विषय इनका न आना सो इसको कहते है सम्बर, मायने गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, चारित्र आदिक जो परिणाम हैं वह है भाव सम्बर। तो यह सम्बर जीवका धर्म है और निर्जरा भी जीवका धर्म है। विभावका झड़ना सो निर्जरा है। तो जीवमें भीं झडना होता है और अजीवमें भी झड़ना होता है, इसीतरह मोक्ष भी जीवमें भी मोक्ष है और कर्ममें भी मोक्ष है। जब जींव कर्म बंधे हुए हैं छुटकारा हो तो दोनोंका ही हो देखो जब बिद्यालय लगा हुआ हैं, चार बजे छूट्टी की घंटी बजी तो बच्चे लोग कितना खुश होकर उछलते कूदते भागते हैं। उनको मानो अब कोई परवाह ही नहीं है, छूटकर एकदम जा रहे हैं। तो उस छुट्टीमें जैसी प्रसन्नता उन बच्चोंको है वैसी ही मास्टरको नहीं है क्या ? मास्टर तो बड़े आरामसे जाते हैं, वे बच्चों की भांति हाथ पर उछालते हुए नहीं जाते हैं, पैर प्रसन्नता उनको भी है। तो यह बच्चोंकी उनकी उस अवस्थाकी बात है। अभी किसी बच्चे से कहें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि जरा यह चिट्ठी लेटर बाक्स में डाल आना तो वह सीधे न जायगा, वह तो उछलता कूदता ही जायगा, यह उसकी अवस्था की बात है, और अगर किसी पुरूषसे कहा जाय तो सीधे सादे ढंगसे जायगा। तो अवस्था भेदसे प्रसन्नताके बाहरी चिन्हमें भेद आ गया मगर छुट्टी होनेसे दोनों ही खुश हैं। तो ऐसे ही जब छुट्टी होती है तो कर्म भी स्वतन्त्र हो गए और जीव भी स्वतँत्र हो गया। दोनोंमें प्रसाद आ गया। तो मोक्ष दोनोंका धर्म है। इसी तरह धर्मी और धर्म स्वरूप ये तत्व हैं। धर्मी तो २ हैं जीव और अजीव और धर्म ५ हैं आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष यहां धर्मके मायने वह धर्म न समझना कि जिसका पालन करने से मुक्ति मिलती। वह तो धर्म हैं ही और छोड़ा जाय वह भी धर्म है। यहां पालन शब्दका अर्थ इसतरह लिया गया है कि जैसे द्रव्यमें अनेक शक्तियां है, अनेक पर्यायें हैं और शक्ति और पर्यायका समूह द्रव्य कहलाता है तो द्रव्य तो कहलाया धर्मी और शक्ति और पर्याय जितने है वे सब कहलाये धर्म। यह न्याय दर्शनकी दृष्टिका धर्म है। तो इस प्रकार ये ७ तत्व हुए जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, दिर्जरा और मोक्ष ये ७ तत्त्व है।

सात तत्वसे भिन्न अन्य तत्वके अभावरुप तत्वकी सातमें गर्भितता—अब एक बात और विलक्षण आपके सामने आती है एक कोई दार्शनिक कहता है कि आपने जो ७ तत्व कहा उनमें एक बात और छूट गई। कहना चाहिए। कोन सी छूटी ? वह यह छूटी कि तुम कह रहे कि तत्व ७ ही है, अन्य नहीं है, तो अन्य नहीं है यह बात तुमने इसमें नहीं जोड़ा। ८ है तत्व। जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष और ८ वां है इसके अतिरिक्त ओर कुछ नहीं है। तुमने जो ८ तत्व कहे वह संख्या तुम्हारी ठीक नहीं है, क्योंकि अन्य तत्त्वोंका अभावरूप तत्व और है, यह एक शंका रखी। सुननेमें तो बात ऐसी लगती होगी कि हां बात तो ठीक है, ८ वीं बात छोड़ दी गई है, मगर ८ वीं बात छूटी नही है और उसके कहनेकी जरूरत भी नहीं है। कैसे नहीं छूटी ? अन्य तत्व नहीं है ऐसा जो अभाव है वह ७ तत्वोंमें सामिल है, इतना ही कहना पर्याप्त है। जैसे इस चौकीको देखो यह पलंग नहीं, पत्थर नहीं, भंडय नहीं, दरी नहीं, ये सब बातें हैं ना ? ती ये सब नहीं है, ये सब इसकी सत्ता रूप है। इसकी सत्ताके मायवे है कि अन्य पदार्थ नहीं है। तो अन्य पदार्थका अभाव उस पदार्थकी सत्तारूप पड़ता है इसलिए अभावको कहनेकी अलग से जरूरत नहीं है। कोई अभाव सर्वथा तुक्छ नहीं होता, मायने किसी के सद्भावरूप होता है इसलिए ७ तत्त्वोंसे छोड़कर अन्य का अभाव ७ तत्वरूप ही पड़ता है, उसमें तत्वकी संख्याका कीई विघटन नहीं होता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सात तत्त्वोंके परिचयसे प्रयोजनकी सिद्धि होनेसे अधिक संख्या माननेकी व्यर्थता- अब एक नई बात और भी देखिये—नैयायिक लोग १६ तत्त्व मानते हैं। ७ से दूने मानते हैं, तो वे तो जैनियों से दूने हो गए कि नहीं दुगुना ज्यादह मान लिया। अरे तो ज्यादह मानने से क्या होता है उसका प्रयोजन तो देखिये- तत्त्वोंका प्रयोजन क्या है ? इस तरह से उसकी श्रद्धाके क्षेत्रका श्रद्धान करनेसे मोक्ष मार्गकी प्राप्ति होती है, इसीलिए पदार्थका स्वरूप कहा जाता है। जैसे बच्चोंको पढ़ाते हैं कि द्रव्य ६ हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। वे बच्चे नहीं समझते कि यह किसलिए पढ़ाया जा रहा है, उन्हें भार सा लगता है, ६ द्रव्य रटानेका क्या मतलब है ? किन्तु मतलब तो बहुत ऊंचा है। यह जानना है कि ये ६ दव्य आपसमें एक दूसरेका आपसमें सदुभाव नहीं है अत्यन्त भिन्न हैं परस्परमें, इसलिए ममता त्यागों। ममत. एक महान पाप है। ममता ही क्लेश है। ममता को छोड़कर दूसरा कोई क्लेश नहीं, वह ममता पाप मिटे तो धर्म बने तो ममता का पाप कैसे मिटे ? भेदविज्ञान करें तो ममताका पाप मिटे। भेदविज्ञान कब बने कि जिनका भेदविज्ञान करना है उनका सही—सही स्वरूप समझें, तो जानने में आयगा सब पदार्थ स्वतंत्र हैं, अपनी अपनी सत्ताको लिए हुए हैं, एक में दूसरे का प्रवेश नही है, आप ऐसी बात मानें जब मैं मोह करता हुं किसी पर पदार्थ में तो वह पूरी बेवकूफी है। पूरी मूढ़ता है। पूरा मोह है। अब यहां किसीसे कहें कि तुम बड़े मूर्ख हो तो वह झट नाराज हो जाता। अरे काहें को गरम होते ! सच बात है। सब मूर्ख है क्योंकि अपने आत्माके सिवाय बाकी जितने पदार्थ है उनका लगाव लगा रहे है कि ये मेरे कुछ है। लगाव लगानेकी गुंजा इस कुछ नही है, और लगा रहे तो मूर्ख हैं।

शब्दोकी सही अर्थबोध होनेपर अनेक आकुलतावोंकी समाप्ति—अरे भाई कोई कैसी ही गाली दे, उसका सही अर्थ लगा लें तो गुस्सा न आयगा। अव्वल तो जितनी गाली है वे सब प्रशंसा के शब्द है। प्रथम तो गाली का भी अर्थ आप समझें। गालीं भी बुरा शब्द नहीं, वह तो ऊंची चीज है। गाली में दो शब्द है गाली, अर्थात् मेरी कीर्ति गाली, यह कहा जा रहा है। अब गाली भी बुरी बात नहीं है। अव्वल तो गाली शब्द ही एक स्तुतिकारक शब्द है, कोई बुरी वात नहीं। अब गालीके जितने नाम देंगे उन सबमें स्तुतिकी बात भरी हुई है। लोग ध्यान नहीं देते उसपर और बुरा मान जाते है। बुरा माननेकी प्रथा कबसे चली ! ये गाली के शब्द जैसे लोग बोलते है ना, उचक्का, लफंगा, बेवफूक, नंगा, लुच्चा आदि तो इनको सुनकर लोग बुरा न मानते थे, क्योंकि ये तो प्रशंसा के शब्द हैं मगर जब प्रशंसाकी ऊंची बात छोटे आदमीसे कही तो उसने यह महसूस किया

Rationality enjoy at vidyasha@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि हम इस लायक तो हैं नहीं, यह हमसे बड़ी ऊँची बात कह रहे तो ये मजाक कर रहे, उस दिनसे गाली बन गई। जैसे उचक्का। उच्चैः शब्दमें स्वार्थे, कः इस सूत्रसे क प्रत्यय लगा उचक्का का अर्थ है ऊँचा पुरूष, याने उचक्का कहकर तो उसकी प्रशंसा की जा रही आप तो पूरे उचक्का हैं याने आप बड़े ऊंचे पुरूष है, मगर वह बुरा मान जाता। क्यों बुरा मानता है कि वह इतना ऊंचा है नहीं इसलिए वह महसूस करता है कि यह तो हमारी मजाक उड़ा रहा है। लफंगाका अर्थ क्या है ? मार्दवधर्म का पालन करने वाला। नम्रता विनयशील, उसे कहते हैं लफंगा। लफ गए हैं अंग जिसके, अर्थात् नम्र हो गया है सिर जिसका जो बड़ा नम्र हो गया है, जिसके अन्दर मान कषाय नहीं रह गई है ऐसे नम्र पुरूपको ऐसे विनयशील पुरूष को लफंगा कहते हैं। अब इतना नम्र तो कोई हो नहीं और उसे लफंगा कह दिया जाय तो वह तो अपनी मजाक ही समझेगा। बुरा ही मानेगा, पर गाली का एक भी शब्द ऐसा नहीं है जिसका अर्थ बुरा हो। हां जो लोग उस गालीके शब्दके साथ मां बहिन आदिकी बात जोड़ देते हैं बह तो कोई शब्द की बात नहीं है। वह तो शब्दसे अलग बात है शब्द तो इकहरा होता है। वह तो जितने भी शब्द मिलेंगे उन सबमें प्रशंसा भरी हुई है। जैसे कहा बेवकूफ तो इस बेवकूफ शब्दमें भी दो शब्द हैं वे और बकूफ बकूफ उर्दूमें वाकिफको भी कहते हैं। वाफिकका अर्थ है बुद्धि और बे का अर्थ उबल से है। याने जिसकी बुद्धि डबल हो, जिसका डवल ज्ञान हो जो डबल समझदार हो उसे कहते हैं बेवकूफ। तो गालीका कौनसा शब्द ऐसा है कि जिसमें निन्दा भरी हो ? लेकिन जो छोटा आदमी है उसे बडी बात कही जाय तो वह बुरा मान जाता है और वह गाली बन जाती है अब कोई बड़ा निर्धन हो और उसे देखकर कोई कहे कि आइये कुबेर साहब तो वह तो गाली समझेगा। कुबेर शब्द बड़ा है, किया तो उसने प्रशंसा मगर हल्के आदमी को कहा इसलिए वह बुरा बन गया। इस तरह गाली बन जाती है।

योगाभिमतः १९ तत्वोंमें मुक्ति प्रयोजकता का अभाव—यहां बात यह बतलायी जा रही है कि तत्त्वों में सब बात गर्भित हो जाती है। अन्य तत्व माननेकी आवश्यकता नहीं है। तत्वके सद्भावमें ही तत्वान्तरका अभाव गर्भित हो जाता है। नैयायिक नैयायिक जो १६ पदार्थ मानते उनके नाम सुनोगे तो पहिले नाम सुनते ही आपको ऐसा लगेगा कि क्या नाम तत्त्वमें रखा गया ? देखो कुछ तो अच्छा है, कुछ बुरा है। जो लोग नकली कोई चोज बेचते हैं तो एकदम नकली तो नहीं बेच सकते। सरसोंका तैल बेच रहे, मान लो मूंगफलीका तैल सस्ता है तो खालिस मूगंफली का तैल रखले और कहे कि लो सरसोंका तैल तो क्या इसे कोई मान लेगा ? न मानेगा और सरसोंके तैलमें मूगंफली का तेल मिला-

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर बेचे तो चल जायगा। कुछ असल भी हो, कुछ नकल भी हो तो वह कुछ चल जायगा पूरा विपरीत न चलेगा। तो १६ पदार्थ माने हैं, उनमें कुछ तो ठीक हैं, और कुछ अप्रयोजक देखेंगे। इनके क्या नाम हैं ? प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, बात, जल्प, बितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह ये १६ पदार्थ माने गए हैं। किसी से वादविवाद हो रहा हैं और छल करके अर्थका अनर्थ लगा करके या उसे झेंपा करके डाटकी बात कहकर हरा दे तो इसको भी तत्त्व माना गया है। अब समझ लो कहां तो क्या तत्त्वकी परिभाषा की है। इन १६ तत्त्वोंमें बात तो यह है कि तत्त्वकी परिभाषामें ज्यादह नहीं चला जा रहा है। तत्त्व की संख्या ऐसी नही रखी गई जिसमें सारी बात आ जाय। संशय रखें तो विपर्यय अनध्यवसाय न आ सका याने खूब अच्छा सारी बातोंका संग्रह तो आ जाना चाहिए था, वह नही हो सकता तो ये १६ बातें कहना भी व्यवस्थित नहीं बनता। एक बात और देखिये नैयायिक और वैशेषिक कुछ ऐसे पास पासके दार्शनिक हैं जैसे दिगम्बर और श्वेताम्बर एक दो जगह में हैं, कोई अधिक भेदकी बात तो नहीं है। इस तरह तो नहीं है जैसे श्वेताम्बर और मुसलमान, दिगम्बर और मुसलमान। दिगम्बर और श्वेताम्बर इनका कुछ सम्बन्ध तो है। जैसे णमोकार मंत्र है, चोबीसो भगवान के नाम हैं, कुछ कुछ बात तो व्यवस्थाकी चल रही है। इसी तरह नैयायिक और वैशेषिक ये बहुत निकट के जीव हैं, लेकिन देखो तो सही कि वैशेषिक ने जो एक अभाव नाम का तत्त्व माना है कि अभाव भी एक पदार्थ है उस अभावका तो जिकर इन १६ पदार्थोंमें आया ही नहीं। जो मित्र हैं उनका एक तत्त्व तो एकदम छोड़ दिया। और कुछ तत्त्व डबल डबल आ गए तो १६ तत्त्व वाली जो संख्या है वह कोई व्यवस्थित संख्या नहीं है।

अन्य प्रकारसे वैशेषिका भित सात तत्वका बिचार—वैशेषिका ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये ६ तो भावात्मक तत्व माने और एक अभावात्मक तत्व माना। ७ पदार्थ माना है, उनकी भी बहुत कुछ बात कही थी और सामान्यतया यह समझें कि ये कोई ६ अलग-अलग नहीं हैं। पदार्थ एक है। उसीकी शक्ति, उसी की परिणतियों को भी दृष्टि में लेकर जोड़ा है तो ये द्रव्य, कर्म आदिक चीजें बन गई है। नहीं तो क्या है ? पदार्थ है यह, उसमें रहने वाली शक्तियों का नाम गुण है। उसमें होने वाली क्रिया का नाम कर्म है, उसमें होने वाले चूंकि पदार्थ बहुत हैं तो सब पदार्थोंमें पाया जाने वाला जो एक सामान्य धर्म है, जो समझमें आ रहा है वह सामान्य है, एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में अन्तर है, विशेषता है, इसको समझाने वाला जो धर्म है वह विशेष है और चूंकि

Reproduction permitted only if non-commercial use. Email: sahjanand.varnishastra@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बुद्धिमें हमने द्रव्य से गुणको न्यारा समझा तो अब बिल्कुल न्यारा तो कैसे हुआ ? उसीमें है तादात्म्यरूप से उस सम्बन्धको बतानेका नाम समवाय है। तो किसी भी तरह से समझ लो, यह कोई अलग तत्त्व नही है। इस तरह भिन्न भिन्न रूप से अनेक तत्त्वोंका प्रतिपादन किया है। वह तत्व नहीं, किन्तु मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत तो ये जीवादिक ७ तत्व हैं, इनमें से कम किया जाय तो मोक्षमार्गकी बात स्पष्ट समझ में न आयगी और इससे अगर ज्यादह किया जाय तो वह भी समझमें न आयगा। अब यहाँ कोई जिज्ञासु यह बात रख रहा है कि आपने जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर निर्जरा और मोक्ष ये ७ तत्व कहे हैं तो इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनका तो संग्रह हो न पाया इस कारण यद्यपि यह सर्वज्ञ के आमनायसे चला आया हुआ कथन है। जीवादिक ७ तत्व हैं, मगर हमें तो युक्ति संगत नहीं जचते। इसमें अभी तीन और धरो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। कम से कम १० तो मान लो। देखो भैया ! जिज्ञासु ने अभी मर्म की बात नहीं समझी। अरे सम्यग्दर्शन के विषयभूत तत्त्व ही तो बताये जा रहे हैं, तो सम्यग्दर्शनका ग्रहण कैसे नहीं होता ? सम्यग्दर्शनका विषयभूत तो ये ७ तत्व हैं। ग्रहण कैसे नहीं होता ? जो जाना गया जीव तत्व उसमें ही तो उपयोगको स्थिर करना है। सम्यक्चारित्रका ग्रहण कैसे नही हुआ ? तो यहां यह समझना चाहिए कि रत्नत्रयक आधार-भूत जो जीव तत्व है, जीवतत्व है जीवत्तव सम्बर तत्व निर्जरा तत्तव, तो इसमें तो रत्नत्रय शामिल हो गया। रत्नत्रय इसके अलावा क्या ? जीव सम्वर और निर्जरा ये ही तो हो गए सम्यक्चारित्र जीव द्रव्यके अनन्त गुण है, अनन्त पर्यायें हैं उनमें अनेक धर्म हैं पर इन सबका जो पिण्ड है उसीके मायने जीवतत्व है। सम्बर और निर्जरा तत्तव भी रत्नत्रय से भिन्न चीज नहीं है। और, देखो आश्रव में तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक मनोवर्गणा ये जो पुण्य प्रकृतियां है ये सम्यग्दर्शनके बिना हो सकती हैं क्या ? सम्यग्दृष्ठिके ही तो तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होता है। तो आश्रवतत्व में भी रत्नत्रयकी कोई न कोई प्रकाशकी बात आयी। छूट कैसे गया रत्नत्रय ? जो यह शंका कर रहे हो कि जीव आदिक ७ पदार्थ तो तुमने कहा मगर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र छूट गए, छूट कहां से गए ? इसमें बराबर रत्नत्रय भी आ गया हैं। तो यह जो चौथा सूत्र कहा गया है, इसमें जीवतत्से जीव द्रव्य ही या जीवकी पर्यायका ही ग्रहण नहीं है। जीव की विशेष पर्याय जो भी हो, रत्नत्रय भी हो वह भी आ गया यों भी वह रत्नत्रय आ गया, मगर जीव कह दिया तो जीव की सारी बात तो जीवमें ली जायगी, रत्नत्रय भी जीवमें लिया जायगा। यों देख लीजिए। तत्त्वकी ७ संख्या पूर्ण म्यवस्थित है अब मोक्षमार्गके

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रयोजनभूत सप्त तत्वोंको जानकर जिज्ञासा होती हैं कि तत्वका वर्णन व्यवहार किस तरहसे होता है ? तो इसके समाधानमें चौथे सूत्रका अवतार है। नाम स्थापना द्रव्यभाव तन्न्यासः

श्रुतार्थनयसे विज्ञान मोक्षमार्गके प्रयोजनभुत सप्त तत्तव आदिक **निक्षेपद्वारा व्यवहार**—नामस्थापना द्रव्य भाव इन चार निक्षेपोंसे जीवादिक ७ तत्वोंका सम्यग्दर्शन आदिक का सभीका व्यवहार होता है, नामनिक्षेपका अर्थ हैं कि गुण क्रिया आदिककी अपेक्षा न रखकर जो एक संज्ञाके अर्थ नाम का व्यवहार किया जाता है वह नामनिक्षेप है। जिसका नाम रखा उसमें वाच्यकी स्थापना करनेका नाम स्थापना निक्षेप है जिस वस्तूका लक्ष्य किया उसकी भूत भावी पर्यायोंका आरोप करनेका नाम द्रव्य निक्षेप है और वर्त्तमानमें वस्तु जिस पर्यायमें रहती है उस पर्यायका व्यपदेश करना सो भाव निक्षेप है। इन चार निक्षेपोंसे ही सब पदार्थोंका व्यवहार होता है। अब इसे आत्मामें भी देखो तो आत्मा एक नाम है और इसकी स्थापना हुई है चेतने वाले पदार्थ में। और इसका नाम व्यवहार किया जाता है संसारी मुक्त आदिक जीवों में तो उसमें भी जिस पदार्थ से युक्त हो उस पर्याय रूप में ही इस आत्म तत्व को निहारने को भाव निक्षेप कहते हैं। आत्मा का व्यवहार करने के बाद हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम आत्मा को पदार्थ समझें और इसकी धुन में रहे। मेरी धुन आत्मा में ही रहने की हो, उसमें ही रमण करने की हो। दूसरा कोई उपाय नहीं है कि जिससे आत्मा का हित हो सके। तो इस आत्मा का श्रद्धान कैसे हो इसके लिए प्रयोजन भूत ७ तत्वों की बात कहीं गई है। जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष। तो बात तो समझा दी गई। इन ७ यत्वों का स्वरूप क्या है ? यह बता दिय गया लेकिन एक विधिपूर्वक यह बात समझना है कि इन ७ तत्वों का या सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र को या दुनिया के किसी भी पदार्थ का जो बोध होता है, जो वर्णन होता है, वह वर्णन किस दृष्टि से चलता है ?

निक्षेपोंके स्वरूपदर्शनमें वस्तुत्वका दिग्दर्शन—जैन दर्शन यह कहता है कि नाम निक्षेप, स्थांपना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप और भाव निक्षेप इनमें जीवादिक ६ तत्वों का निक्षेप होता है। निर्णय में जुड़ाव दिया हुआ है। प्रतिपादन की पद्धति होती है। नाम निक्षेप के मायने हैं किसी का नाम रख दिया। अब व्यवहार चल रहा है फलाने चन्द हैं, फलाने लाल हैं। स्थापना निक्षेप के मायने है कि किसी भी पदार्थ में किसी दूसरे पदार्थ की स्थापना कर दो, जैसे मूर्ति में भगवान की स्थापना कर दी, ताश के पत्तों में वजीर, बादशाह आदि की स्थापना कर दी। द्रव्य निक्षेप वह कहलाता है कि जो बात पहले हुई जो बात आगे होगी, उसका वर्तमान में भी निक्षेप

Report any errors at vkasad@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करना, कह डालना यह द्रव्य निक्षेप है। और वर्तमान में वर्तमान की ही बात कहना भाव निक्षेप है। यह चार निक्षेपों का स्वरूप है।

निक्षेपोंकी संख्याके विषयमें दार्शनिकोंका विवाद—निक्षेपोंके सम्बन्धमें शब्दब्रहम वादी का यह कहना है कि दुनियां में कोई पदार्थ है ही नहीं, केवल एक शब्द ही सब कुछ है। शब्द के ही द्वारा सारा निर्णय होता है। केवल एक ही निक्षेप माना, जिसके द्वारा जगत के समस्त पदार्थों का परिचय होता है। तो शब्द ब्रहमवादी यहां यह कह रहे कि दुनियां में जो कुछ है सो शब्द ही शब्द है। शब्द के सिवाय और कुछ नहीं। तो जैसे आप सोचते होगें कि यह धूल दिख रही है। ये आदमी दिख रहे, ये चौकी पत्थर आदिक दिख रही, क्या ये चीजें नहीं हैं। तो शब्द ब्रह्म ब्रहवादियों का कहना है कि इन चीजों में शब्द घुसे हुए हैं और जब ज्ञान करते हैं तो भीतर में उसके नाम के शब्द उठ आते हैं—जैसे भींट कहा तो भी और ट ये जो शब्द हैं ये वास्तविक हैं, ये शब्द उस भींट में बिधे हुए हैं इसलिए सही जान रहे। उनका कहना है कि दुनियां में शब्द ही है, और कुछ नहीं है, इसे कहते हैं नाम निक्षेप। शब्द ब्रहम अनादि से हैं तो शब्द ब्रहम का जिससे तादात्म्य है उसी का ज्ञान होता है, याने जिसका ज्ञान किया उसका शब्द जरूर नियत होता है। उन शब्दों से इसका तादात्म्य है तब ज्ञान होता है, यह कह रहे हैं शब्द ब्रहमवादी। बात सब पदार्थ नाम रूप है, इसलिए नाम रूप से ही व्यवहार होता है। जीव की प्रवृति का प्रधान कारण शब्द है दूसरा नहीं है इसलिए शब्द ही एक निक्षेप है मात्र नाम निक्षेप ही सही है। चार निक्षेप मत बताओ। तो कोई कहता है नहीं। सब कुछ एक स्थापना ही स्थापना है हम कल्पना में कूछ बात सोचते है तो हमें चीज मालूम होती है। एक कल्पना की भीट है यहीं है वास्तविक बात, भींट वास्तविक चीज नहीं है। स्थापना ही वास्तविक है, और देखो—भविष्य में राजपुत्र राजा बनेगा, हम अभी से कुछ समझ रहे हैं तो सब हमारी कल्पना की बात है नाम भी कल्पना में आ गया। किसी का कोई नाम धरे तो कल्पना ही तो करेगा कि यह फलाने चन्द हैं, तो यह स्थापना की बात क्या रही हैं? स्थापना में नाम भी आया, द्रव्य भी आया, और भाव भी आया। स्थापना के सिवाय और कुछ तत्व नहीं है ऐसा एक स्थापनावादियों का कल्पनावादियों का मंतव्य है। तो कोई कहता है कि नही, एक-एक द्रव्य ही द्रव्य तत्व। देखते हैं कि कोई बात होगी यह बात चित्त में समायी रहती है तो कोई कहता है कि यह भाव ही जीव है। वर्तमान पर्याय का कथन करना यह ही तत्व है। तो इन चार में से एक-एक मानते हैं लोग, तो उनकी समस्या का समाधान करने के लिए इस पंचमसूत्रका

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

अवतार हुआ है नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः

नामनिक्षेपकी प्रथमावश्यकताका दिग्दर्शन—देखो नामनिक्षेप माना गया है नाम धरनेकी किसीका नाम रख दिया जैसे देवदत्त, जिनदत्त तो उसे जिनेन्द्र भगवान ने दिया क्या ? या किसी देव नें दिया क्या ? जो उस लड़के का नाम इस तरहसे रखा गया। नाम जो धरा जाता है उसमें गुणकी अपेक्षा नहीं होती है, और नाम कोई अपना हल्का नहीं पसंद करता है। पहिले जमानेमें तो लोगों का नाम घसीटे मल, करोड़ेमल आदि रखा जाता था, पर आज कल इस तरहके नाम रखना कोई नहीं पसंद करता। ऊंचा से ऊंचा नाम रखते हैं जैसे पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ वगैरह तो ऊंचा नाम धर देनेसे कहीं उसमें वे गुण तो न आ जायेंगे। यह नाम अपेक्षा से बात कहीं गई है। अगर गुण हो जाय वैसे जैसाकि किसीका नाम धर दिया मानो राजसिंह तब तो फिर यहां एक भी आदमी न बच सकेगा। तो गुणकी कोई अपेक्षा नहीं होती नाम में नाम निक्षेप तो केवल इस परिचयके लिए है कि कोई चीज उठाना है, कोई व्यवहार करना है तो उसमें यह काम देता है एक कल्पना करो कि नाम किसीका न हो और काम कोई करे तो कैसे करेगा ? अब आपको मंडप बांधना हैं तो कह दिया फलाने चंद तुम यह कर आवो, फलाने लाल तुम यह चीज ले आवो, इस तरहसे व्यवहारकी सारी व्यवस्था बन जाती है, और अगर कोई नाम किसीका न रखा जाय तो कौन किससें क्या कह सकेगा ? सब गुंगे जैसे बैठे रहेंगे। तो नाम निक्षेपमें केवल नामकी प्रधानता है, गुणकी प्रधानता नहीं है। नाम धरे बिना कोई बात आगे नहीं चलती जब कोई संस्था बनाते हैं तो उसमें भी सबसे पहिले संस्थाका नाम रखा जाता हैं, बादमें बाकी सारे काम किए जाते हैं, तभी उस संस्थाकी व्यवस्था बन पाती हैं।

नामनिक्षेपमें नाम पद्धतिका विवरण—जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष, इन ७ तत्वोका यथावत श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है, तो इन ७ तत्वोंका ज्ञान कैसे हो ? इसके सम्बंधमें कुछ सूत्र कह रहे हैं। सबसे पहले तो लोकव्यवहार की बात कही जा रही है कि इन ७ तत्वोंका प्रतिपादन का व्यवहार कैसे हों ! नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप द्रव्यनिक्षेप और भाव निक्षेप इन चार निक्षेपोंके द्वारा सारा व्यवहार चलता है, इस लोकमें देख लो, नाम निक्षेपसे तो नाम धर दिया, कोई एक निमित्त रहा नाम धरनेका अथवा न रहा ? कुछ तो अभिप्राय रहा नाम धरनेका, बाकी और कोई अभिप्राय नहीं, ऐसी दृष्टिमें नाम धरा जाता। और, नाम तो केवल एक यह पहिचाननेके लिए रखा जाता कि इसकी बात कही जा रही है, चाहे गड़बड़ नाम धरो चाहे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अच्छा नाम धरो, सभी नाम रखनेका प्रयोजन इतना है कि लोगोंको ज्ञात हो जाय कि इस नामके कहनेसे इस चीजकी बात कही जा रही है एक दूसरेसे विशिष्टता करनेके लिए नाम की बात होती है, जैसे मान लो सभीका एक नाम अगर होवे तो फिर लोकव्यवहार चल सकता है क्या ? किसको पुकार रहे ? मानलो सब भाइयोंका नाम घसीटेमल रख लिया, अब घसीटेमल बोला तो कौन हूका बनाये ? और फिर जो दान व्यवहार चलता है कि इसने फर्स बनवाया तो एक नाम जब सबका है तो दान के लिए भी उमंग न चलेगी तो नाम जो रखे जाते हैं वे अन्यसे निराले करके किसी एक के पहिचानने के लिए रखे जाते हैं। जब एक नाम से काम नहीं चलता तो उसके पिताका भी नाम साथमें जोड़ा जाता और सायद पिताका भी दो व्यक्तियोंका एक ही नाम हों तो कोई तीसरी बात भी जोड़ी जाती है। तब तक नाम जोड़ा जाता है जब तक कि सबसे निराले किसीका ज्ञान न किया जा सके। तो यों नाम निक्षेप से सर्वप्रथम व्यवहार चलता है अब नाम धरने का कोई कारण भी होता है कोई जातिवाचक नाम हैं कोई गुणवाचक नाम है कोई व्यक्ति-वाचक नाम है तो व्यक्तिवाचक नाममें तो कोई निमित्तभव नाम नही आता अथवा आता भी है। जैसे कोई क्रोध करता हो तो नाम धर दिया जाता ज्वालाप्रशाद, अग्निप्रसाद, पर यह नियम तो नही है। शान्त आदमी का भी नाम ज्वाला प्रसाद रख दिया जाता है। तो गुण की अपेक्षा न रखकर जो एक व्यवहार चलानेके लिए नाम रखा जाता है उसे नाम निक्षेप कहते हैं। जब नाम धरा जाय वस्तुका तब आगे और निक्षेपकी बात चलती है।

व्यवहारमें स्थापनानिक्षेपकी अनिवार्यता—स्थापना निक्षेप तदाकार या अतदा-कार वस्तु की स्थापना करना स्थापना निक्षेप है। पहिले तो किसी शरीरमें यह स्थापना किया कि यह इस नाम वाला है तो वह स्थापना हो गई फिर कोई तासके पत्तों में या फोटोंमें स्थापना कर देते कि यह गुलाम है यह वजीर है, यह बादशाह है, यह स्थापना हो गई। भगवानकी प्रतिमा में भी स्थापना करते कि यह पार्श्वनाथ है यह नेमिनाथ हैं आदि यह तो हो गई उनकी स्थापना। तो हम आप लोग स्थापना के द्वारा बड़े—बड़े काम निकाल लेते हैं देखो कितने ही लोग मूर्तिका निषेध करते हैं कि मूर्तिको क्यों पूजा जाता हैं, उससे कौन सी बात मिलती तो बात सही है। मूर्ति या पत्थर के पूजनेसे कोई बात नहीं मिलती लेकिन मूर्ति या पत्थरको वे कहां पूजते ? वे तो मूर्तिमें भगवानकी स्थापना करके भगवानको पूजते है। मूर्तिको कोई नहीं पूजता। कोई भी ऐसी बिनती या स्तुति नहीं गाते कि हे मूर्ति तुम जयपुर की बनी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो, फला कारीगर की बनी हो, धातुकी बनी हो, वह तो यही कहेगा कि हे पार्श्वनाथ, हे वीतराग जिनेन्द्र देव, हे सर्वज्ञदेव : : : : यों वह भगवानकी ही कोई बात कहेगा तो पहिले तो यह समझना चाहिए कि मूर्तिमें भगवानको निरखकर भगवान की पूजाका भाव होता है। मूर्तिकी कोई पूजा नहीं करता। दूसरी बात यह देखें कि व्यवहारसे मूर्ति बिना कोई काम चलता है क्या ! ये अक्षर लिखे है तो ये मूर्ति नहीं है तो और क्या है ? इन अक्षरों को देखकर ही तो भगवानसें व्यवहार किया जाता है। तो वह एक मूर्ति ही तो है, म कैसे लिखा गया, ग कैंसे लिखा गया, इस तरह से सभी अक्षरोंको देखकर उनका ज्ञान करके ही तो सारा व्यवहार चलता है। मूर्तिके बिना किसीका काम न चलेगा। जो मूर्ति का निषेध करते वे भी तो अपने गुरूवोकी फोटो उतरवाते, उन्हें पूजते, तो वह फोटो एक मूर्ति ही तो है। मूर्ति बिना कहां काम चलता ! जब कोई मुद्रा बनती है तो उसमें भी कोई न कोई फोटो बनती है, तो वह फोटो एक मूर्ति ही तो है, बिना उस मूर्तिके उस मुद्राकी कौई कीमत नहीं होती। और विशेषतया देखें तो किसी का नाम धरा और फिर यह ज्ञान किया कि इसका बनाने वाला यह है तो यह भी स्थापना हुई। तो नाम और स्थापना ये दोनों सम्बन्धित है। नाम बिना स्थापना किसकी ? तथा स्थापना बिना व्यवहार कैसे चले

मूर्तिमें ही प्रभुस्थापना करनेका रहस्य—एक बात और नई समझिये कि भगवानकी स्थापना जैन शासनके अनुसार अजीवमें तो कर दी जायगी, जैसे पाषणाकी मूर्ति बनाकर पीतल आदिक धातु की मूर्ति बनाकर उसमें तो भगवानकी स्थाप्रना कर दी जायगी मगर किसी बालक में या किसी रागी पुरूष में भगवानकी स्थापना न की जायगी। क्योंकि स्थापना करनेका लक्ष्य तो यह कि स्थापनाके अनुसार कुछ शिक्षा तो हमें मिले। रागी बालक को या किसी पुरुष को कह दिया जाय कि यह बने नेमिनाथ, यह बने महावीर तो कोई भी नाटक रचा जाय या कुछ भी हो तो भगवान की स्थापना किसी रागी में नहीं की जाती। किसींकी फोटो वहां रख ली जाय तो वहां भगवानकी स्थापना मान ली जायगी मगर चिसी रागी मोही पुरुषमें भगवान की स्थापना नहीं होती, क्योंकि भगवानमें सर्वप्रथम बात है वीतरागता रागद्वेष न होना चाहिए। तों यद्यपि अजीव ज्ञानवान नहीं है मगर कमसे कम इतनी बात तो देखनेमें आती कि वह रागद्वेष नहीं करता। ज्ञान नहीं है तो रागद्वेष भी नहीं है। तो उसमें स्थापना और ज्ञानवान और वोतरागकी की गई है मगर कुछ बात तो आदर्श के लिए होना चाहिए। लड़के बच्चोमें प्रभुकी स्थापना कैसे की जा सकती है। वे तो रागद्वेष किए हुए है, ज्ञानमें भी नहीं है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसमें कैसे भगवानकी स्थापना हो ? तो स्थापना भी की जाती है तो किसी पात्रमें की जाती, अपात्रमें नहीं होती। तो यह लोक व्यवहारकी बात कह रहे हैं कि नाम निक्षेपसे व्यवहार होता है और स्थापना निक्षेपसे व्यवहार होता है

व्यवहारमें द्रव्यनिक्षेपकी उपयोगिता और कुबुद्धिमें दुरुपयोग—तीसरा है व्यवहारसाधक द्रव्यनिक्षेप। लोकव्यवहार की बात देख लीजिए जैसे सिद्ध भगवान को लोग जीव कह देते। अब जीवका अर्थ है—जो १० प्राणोंसे जीवे सो जीव लेकिन अब उनमें प्राण तो नहीं रहे। वे तो प्राण से अतीत भगवान हो गए, लेकिन स्थापना निक्षेपसे उन्हें हम जीव कह सकते हैं। जैसे कोई कोतवाल तो अब नहीं रहा पर उसे भी लोग कोतवाल कहते हैं: तो एक लोकव्यवहारकी एक दिशा बता रहे हैं जिससे कि आगे पहिचान बने कि जीव क्या, अजीव क्या ? आश्रव बन्ध क्या ? अपनेको जरा पहिचानें और अपना व्यवहार बनावें। मैं क्या ? कोई नाम तो रखना पड़ेगा। मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञाता हूँ, चेतन हूँ, बस यह ही मेरा परिचय है। जैसे कोई कहता है कि भाई इनका परिचय देना तो लोग ऐसा परिचय देते हैं कि जिससे उसकी बदनामी जाहिर होती है। जैसे कोई सेठ हैं। उसका परिचय देना है तो लोग क्या परिचय देते हैं कि साहब यह तो बड़ा सेठ है, इसकी बड़ी हवेली है, हवेली का बहुत बड़ा द्वार है, उसमें ऐसी नक्काशी खुदी है कि जिसे देख कर लोग अचरज करते हैं। क्या कर रहे हैं। सेठका परिचय दे रहे हैं कि सेठका अपमान कर रहे हैं। अरे इस परिचय देनेका तो अर्थ यह होता है कि उन ईंट पत्थरो में तो बड़ी कला है पर उस सेठमें कोई कला नहीं। कहा तो यह जा रहा है मगर सेठ भी सुनकर खुश हो रहा है और भी परिचय दिया जाता है कि साहब इस सेंठका क्या कहना है ? इनके ४ लड़के है। एक लड़का तो मिनिष्टर है, एक ऊंचा डाक्टर है, एक लड़का कालेजका बड़ा प्रोफेसर है, और एक लड़का कलेक्टर है। इन सेठजी का क्या कहना है। तो बतलाओ इसमें सेठ जी की प्रशंसाकी गई या अपमान किया गया। अरे उसका सीधा अर्थ यह है कि सेठजीके लड़कोंमें तो इतना गुण है कि वे ऐसे ऐसे ओहदो पर पहुंच गए मगर सैठ जी में कोई कला नहीं है। अगर सेठजी में कोई कला होती तो सेठ के गुणकी कोई बात बताई जाती। तो लोग खुश होते हैं अपने आपकी कोई प्रशंसाकी बात सुनकर, मगर वास्तविक प्रशंसा तो आत्मा के गुणोंकी प्रशंसा है। शरीरकी प्रशंसासे आत्माकी कोई प्रशंसा नहीं होती एक गुण अगर आत्मदर्शनका आ जाय कि मैं क्या हुं, में एक चैतन्य ज्योति सामान्यरूप आत्मा, और कुछ मैं नहीं हूँ। तो उसकी सारी विकल्प बाधायें दूर हो जायेंगी मैं ज्ञानी हुँ, ज्ञानमात्र हूँ। जानन देखनहार हुं जानन देखन मेरा कार्य है, इसके अतिरिक्त मेरे लिए कोई कार्य नही

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं तो ज्ञाता का व्यवहार चलेगा उससे अगर अपने आपको मानें कि मैं ज्ञानस्वरूप हूँ तो ज्ञातारूप व्यवहार चलेगा। और अपनेको माने कोई कि मैं अमुक रोजिगार वांला हूँ तो उस प्रकारका विकल्प करेगा। जैसी अपने आपमें श्रद्धा करता है उसके अनुसार अपने विकल्प चलाता है जीवमें यह खासियत पायी जाती है। देखो भैया अपने को अगर शान्त बनाना है, संसारके संकटोंसे छूटना है तो अपने आपके सही स्वरूपकी श्रद्धा लावो। आत्म-श्रद्धा बिना धर्मका कोई कदम नहीं चल सकता। आत्मश्रद्धा करो। मैं वह हु जैसे कि सब जीव हूँ। मैं सब जीवोंसे विलक्षण अधिक कुछ नहीं हूँ। मैं हूँ चेतन्यस्वरूप जैसे कि सब हैं। तो देखों उसे क्रोध न आयगा मान न होगा, छल कपट न होगा। लोभ न आयगा। जिसको आत्मदर्शन हुआ, जिसने अपने आपके सच्चे स्वरूप की पहिचान की वह क्यों क्रोध करेगा दूसरेपर ? जानता है कि क्रोध करने से खुदका बिगाड़ है और क्रोध क्यों किया जाता ? वह भी एक परमात्मस्वरुप है। उसने क्या बिगाड़ किया है ? उसका कोई सनर्थ नहीं किया दूसरे ने। तो ज्ञान एक ऐसा अद्भुत तत्त्व है कि इस ज्ञानकलाके बलसे यह जीव सुखी शान्त हो जाता है। देखो जीवन में शान्त रहनेकी कला हो नम्रता से रहनेकी बोलनेकी प्रकृति हो, छल कपट लोभसे दूर रहें, एक भगवानसे लौ हो, अपने स्वरूपमें मग्न हों और उसकी आराधनामें रहें तो उसे सर्व वैभवोंकी प्राप्ति होगी, ऋद्धि सिद्धि उसके ही होती है जिसने अपने आपके स्वरुपका सही निर्णय किया है। यह हूँ मैं ज्ञानमात्र

कषायोंका भार दूर करनेकी आवश्यकता—देखिये धर्मप्राप्तिके लिए कितनीं ही कुर्बानी करनी होगी। कोई विषय कषाय करता रहे और मोक्षके जानेकी बात सोचता रहे तो वह त्रिकाल असम्भव है। बलिदान कर दो अपने कषाय परिणामोंका यही महत्व है, बड़प्पन है। इसमें क्या कि किसी समय कोई घटना पाकर क्रोध आता हो और क्रोध न आने दों, अपने मनको समझा लें तो यह एक बहुत बड़ा भारी पौरुष है। क्रोध करना कायरोंका काम है और क्रोध तजना शूरोंका काम है। भोग भोगना कायरोंका काम है और भोग तजना शूरों का काम है। तो यह सब कषायोंका त्याग विषयोंका त्याग मूलतत्व ही बन सकता है जब अपने आपका ऐसा विश्वास हो कि विषय कषाय रहित मेरा स्वरुप है। उस स्वरुपका आदर हो तो कषायें न जगेंगी। अपने आपकी बात अपने आपके समझमें न आये यह तो एक अन्धेरा है और यह अन्धेर मच रहा है अपने भ्रमसे, अज्ञान से। भ्रम मिटा कि सब स्पष्ट ज्ञान होने लगता है। भैया, एक घुड़सवार था, तो वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

घोड़ेपर चला जा रहा था, उसे रास्तेमें एक बुढ़िया मिली, जो अपने सिर पर ठाठरी लादे हुए थी। तो बुढ़िया बोली भाई मेरी गर्दन दुःख ने लगी है तुम मेरी गठरी रख लो घोड़े पर। तो वह घुड़सवार बोला जा तेरी गठरी रखने के लिए मेरा घोडा नहीं है। आगे गया तो एक फर्लांग की दूरी पर वह घुड़सवार सोचने लगा कि मैंने बड़ी गल्ती की। उस बुढ़िया की गठरी में कोई वजनदार वस्तु है तभी तो वह रखनेको कह रही थी। यदि मैं रख लेता और घोड़ेको भगा ले जाता तब तो वह वस्तु मेरीं हो जाती। यह सोच कर वह घुड़सवार बुढ़ियाके पास लौट आया और कहा ऐ बुढ़िया मां लावो मैं तुम्हारी गठरी रख लूंगा। तो वहां वह बुढ़िया बोली अब मैं तुम्हें अपनी गठरी न दूँगी। तुमने मेरे मनकी बात जान ली और मैंने तुम्हारे मनकी बात जान ली। अगर भ्रममें रहें और अपने आपको सत्य बोध हो तो समझ लो कि सबकी यथार्थ बात हम जान सकते हैं। मायाचार छल कपट, बस इस व्यवहार ने ही तो हम आपको बहका रखा है। बोझ है हम आप पर तो कषायोंका है। देखो जब कोई शल्य हो जाती है, मानो कोई बात में फस गए, हजार पांच सौ का नुकशान होनेको है तो वह जो बोझ लद जाता वह किस चीजका बोझ है? जीवमें किसी परवस्तुका बोझ लद सकता है क्या? जैसे लोग कहते कि हमपर बच्चोंका स्त्री का घरका दूकानका बोझ है। बतलाओ आपपर दूकानका बोझ है क्या? आत्मा तो आकाशकी तरह अमूर्त है। उस पर किसी भी पुद्गलका बोझ नहीं लद सकता। किसी भी बाह्य वस्तुका बोझ नहीं लद सकता। बोझ लगता है तो इसपर अपने कषाय विकल्प का ही लद सकता है। जैसे लोग कहते हैं कि आस्तीनका सांप जैसे बांह में आस्तीनमें सांप है तो बड़े आरामसे वहां पड़ा है और इस ले, ऐसे ही हमारे जो ये विषय कषायके परिणाम हैं तो मेरा घात करनेके लिए यों हैं जैसे कि आस्तीनका सांप

भावनानुसार प्रवृत्ति—सब जीवोंपर क्षमा करें। कोई जीव हमारा बिगाड़ नहीं कर सकता। जो मनमें रहता है कि हमको इसने ऐसा दुःखीं किया, मेरे साथ इसने यों बर्ताव किया, अरे मुझे दुःखीं करने वाला नहीं, मेरे अन्दर जो ये विषय कषाय रूपी सर्प हैं ये ही हमें दुःखी करते, दूसरा कोई नहीं दुःखी करता। अपनेको शान्त बनानेकी भावना हो तो भीतरमें ही कोई सही निर्णय बनालों कि निग्रह अनुग्रहसे शान्ति नहीं मिलने की। अपने ही अन्दर दर्शन करो अपने आपके अन्तास्तत्त्वका। यह ही हूँ मैं, और कुछ नहीं हूँ। श्रद्धाका हीं फल मिलता है, गप्प करनेसे कुछ लाभ नहीं मिलता। अगर संकल्प कर लिया श्रद्धा हो गई, एक दृढ़ निर्णय कर लिया कि मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, और कुछ नहीं हुं तो उसे शल्य, न सतायगी, मेरा काम जानने का है। जाननेके सिवाय और कुछ मेरा काम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं। क्रोध, मान, माया, लोभ ये मेरे कुलसे बाहर की चीजें हैं, मेरे कुल की रीति नहीं है कि कषाय करूं। जरा ऐसा भाव तो भरो, कषायमें फर्क आ जायगा। जैसा सोचेंगे वैसी ही बात बनती है। जैसी अपने मनमें भावना बनायेंगे वैसी ही बात बन जाती है। बरुवा सागर की एक कथा है कि कोई एक सेठ और एक बाबू जी में झांसी में मुकदमा चलता था। तो बाबू जी के पास कोई अच्छा साधन न था, वह वकील कहां से करें! और भी मुकदमे का सारा खर्च न कर सकता था। सेठ तो वकील भी कर सकता था, मुकदमे के पीछे बड़ा धन भी खर्च कर सकता था। जब बाबू जी ने जाना कि जीत का पक्ष तो मेरा है पर में किसी तरहसे सेठ पर काबू नहीं पा सकता। तो उसके मनमें क्या बात आयी कि मुकदमे की जो पहली तारीख थी उस दिन झांसी जाना था सेठ को, बाबू जी ने तांगे वाले को एक दो रूपये दिया और कहा कि देखो अमुक सेठ इस रास्तेसे आयगा, उसे अपने तांगेपर बिठा लेना, वह जो कुछ भी दे उससे ले लेना, मांगना कुछ नहीं, रास्तेमें उससे यह कहना कि क्या बात है सेठ जी, आज आपके कुछ हरारत है क्या? आपका चेहरा बड़ा उदास है, आपकी तबियत खराब है क्या? यही बात बाबू जीने कुलियों से कह दी, यही बात टिकट देने वाले से भी कह दी। यह सब इन्तजाम बाबूजी ने पहिले ही कर दिया। जब सेठ उस रास्तेसे आया तो वह तांगावाला झट उसके पास आया। जब सेठ ने कहा भाई स्टेशन तक ले चलनेका क्या लोगे? ४ आने : : : दो आने लोगे ? : : : अच्छा चलो। तो जब सेठ उस तांगे पर बैठा हुआ जा रहा था तो वहां कुलीनें कहां—सेठजी क्या बात है? आपका चेहरा आज कुछ गिरा सा मालूम होता है, आपके चेहरेमें कुछ हरारत मालूम होती है। आप की तबियत खराब चल रही है क्या? सेठ तांगे वालेकी यह बात सुनकर बड़ा हैरान हो गया। आगे गया तो कुलियों ने भी वही बात कहीं, टिकट बांटने वाले ने भी वही बात कही। अब तो सभी के द्वारा वही सुनकर सेठका चित्त बिगड़ गया, सचमुच बीमार हो गया उस दिन वह स्टेशन से ही घर वापस लौट गया। मुकदमें में न गया। वह तारीख ऐसी थी कि यदि कोई न जाय तो उसके विरूद्ध फैसला होगा। आखिर सेठ मुकदमा हार गया। तो जो जैसी भावना बनाता है उसको वैसी बात बन जाती है।

सर्व प्राणियोंको आत्मवत देखतेमें पाण्डित्य—बहुत से लोग किसी बीमारके पास जाते हैं तो उसके सामने ऐसी बात कहते हैं कि जिससे उसके अन्दर और घबड़ाहट बढ़े। वे तो समझते हैं कि हम सहानुभूति दिखा रहे मगर होता है उसका उल्टा। अरे उस बीमार व्यक्तिको तो धैर्य दिलाना चाहिए जैसे अरे तुम ठीक हो जाओगे, किसी तरहकी

Reserved - e-mail: vidyarthi.vinod@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चिन्ता न करो : : : : । मित्र वास्तवमें वहां है जो अपने मन, वचन, कायकी ऐसी चेष्टा करे कि जिससे दूसरोंको पाप कार्योंसे दूर होनेकी प्रेरणा मिले और जिसे देखकर सुनकर दूसरे जीव प्रसन्न हों। सब जीवोंको एक समान मानें। नीतिहै, आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः। जो सर्वप्राणियोंको अपनी तरह देखता है उसे कहते हैं पंडित। शान्त रहें, क्रोधन जगे। देखो जो ज्ञानी पुरुष होता है उसके क्रोध भी जगे तो भी उससे दूसरोंके अहितका कार्यनहीं हो सकता और जो अज्ञानी पुरूष है वह मित्र भी बन जाय तो भी उससे हानिकी सम्भावना रहती है एक कथानक आया है कि एक राजाने अपने सोते समयके लिए पहरेदार एक बन्दरको बनाया। बन्दर बड़े समझदार होते हैं, भैया वह बन्दर बड़ा अच्छा पहरा करता था। एक तो वैसे ही बन्दरकी सकल देखकर लोग डर जायें और दूसरे उसके हाथमें थी तलवार। एक दिन राजाकी नाकपर एक मक्खी बार बार उसी जगहपर आ आकर बैठे। बंदर उसे बार बार उडा देता था। यों जब कई बार उडाया और बार बार उसी जगहपर बैठे तो उस बंदरको मक्खीपर क्रोध आया उसने सोचा कि यदि मैं इस राजा की नाक ही उड़ा दूँ तो फिर यह कहां बैठेगी। यह सोचकर उसने तलवार उठाया और राजाकी नाक उड़ा दिया। तो भाई मित्र मूर्ख हो वह भी अधिक खतरनाक होता है। और, देखो एक अपभ्रन्शमें बोलते हैं पंडितः शत्रुर्भलो न मूर्खो हितकारकः। अच्छा अब पंडितकी बात सुनो एक चिरोंजाबाई जी थी जिन्होंने हमारे गुरू श्री गणेशप्रसाद जी वर्णीको पढ़ाया था। तो चिरोंजाबाई की नन्दका नाम ललिता था। वह ललिता पढ़ी लिखी न थी सो बाईजी ने कहा ललितासे कि तुम झाड़ा समेटीका काम करते हो तो अगर कोई कागज नीचे पड़ा मिल जाया करे तो उसे उठाकर आलेमें रख दिया करो, न जाने उसमें क्या लिखा हो। अब एक दिन गल्तीसे एक कागज दरवाजेमें नीचे चला आया और बाई जी जैसे ही मन्दिरसे आयी और कागज पड़ा देखा तो उसमें भक्तामरका एक श्लोक लिखा था। अब उन्हें ललितापर बड़ा गुस्सा आया। वह बड़ी धर्मात्मा थी उन जैसा होना बड़ा कठिन है आज के समयमें। वह बड़ी सरल थी और बड़ी प्रतिभा वाली थीं मगर उन्हें उस समय ललितापर गुस्सा आ गया, तो ऊपर अटारीपर चढ़ी और ललिताके झोंटा पकड़ कर गुस्सामें आकर भींटमें उसका मार दिया। तो कैसे मारा कि अपना हाथ भींटमें लगा लिया और उसपर सिर मारा तो देखो गुस्सा आयी, उस गुस्साको रोक न सकी मगर ज्ञान था, विवेक था तो भींटमें हाथ लगाया। अब बताओ किसको लगा ? अपने हाथको भले ही लगा अपने हाथमें मगर भीतर यह बात बराबर प्रकाशमें थी कि कहीं इसका सिर न फूट जाय। तो यह ही बात कह रहे—पंडितः शत्रुर्भलो, न मूर्खो हितकारकः। क्योंकि जो ज्ञानी पुरूष

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है वह जानता है कि किसीका क्या बिगाड़ करना ? कोई परिस्थिति बन गई तो तुरन्त मनमोटाव हो गया, इतनी बात है मगर भीतरमें भलाईकी बात नहीं भूल सकता ज्ञानी, क्योंकि सब प्राणियोंमें अपने आत्माका स्वरूप देखता है। देखो बात बातमें स्थापना मिलती है। स्थापना ही तो की जा रही है, जैसामैं वैसा यह। स्थापनाकी ही तो बात है। जो दूसरे जीवको अपने स्वरूपकी तरह देखेगा उसे विषय कषायोंकी आपत्ति न सतायेगी।

अपने प्रशस्तभावसे अपना उत्थान—देखो लोग कहते हैं कि यह बहुत सुन्दर है, बहुत अच्छी सकलका है। मगर सुन्दर कौन है बतलाओ ? किसी पुरुषका या स्त्रीके कोई सकल रूपकी बात कहे तो क्या उसके भीतर हड्डी चाम आदि नहीं है ? जरा उस ऊपर चमड़ीके अन्दरकी चीज ध्यानमें तो लावो तो सारा पता पड़ जायगा। लेकिन जब ऊपरसे राग भाव है तब यह सुन्दर लगता है और जब रागभाव नहीं उठता तब सुन्दर नहीं लगता तो बाहरमें कोई न सुन्दर है न असुन्दर। आ का रागभाव सुन्दर बना देता और द्वेषभाव असुन्दर बना देता। जो चक्की चल रहीं है वह अपनेमें चल रही है। जो कुछ बीत रही है वह अपने आपमें बीत रही है। अपना भला करना हो, इस जीवनमें भी अपनेको सुखी रखना हो, परलोकमें भी अपनेको सुखी बनाना हो तो कषायों का परिहार करो अभी कषाय मूलसे नष्ट तो न होगी। मगर इन कषायोंपर विजय प्राप्त करो। मुझे नहीं करना है क्रोध क्रोधके कारण मैं तुरन्त दुःखी होऊंगा और जिससे बोलेंगे वह भी दुःखी हो जायगा। शान्त रहनेमें कितना आनन्द आप पायेंगे और क्रोध करनेमें तुरन्त अशान्त। दूसरेकी प्रशंसा करनेमें आप तुरन्त आनन्द पायेंगे और दूसरेकी निन्दा करनेमें आप आनन्द न पायेंगे। मोहसे भले ही कोई आनन्द मानता हो। गप्पाष्ठकमें बैठनेमें तो रातमें १२ बजा देते हैं। भले ही ऐसा करें, लेकिन उस गप्पमें होता क्या हाँ बस दूसरोंकी निन्दा करना। जहां किसी न किसीकी निन्दा भरी बात हो वहीं गप्पवाद कहलाता है। अब देखो किसीकी निन्दा करते हैं, किसीको गाली देते है तो भीतरमें कई घंटे पहिलेसे सोचना पड़ेगा, विकल्प करना पडेगा, एक हिम्मत बनानी पड़ती है, क्योंकि वह अन्यायकी बात है। तो पहले अपनेको दुःखी कर डालेगा तब कहीं वह दूसरेकी निन्दा कर सकेगा और अगर किसीकी प्रशंसा करें तो बड़ी प्रशंसासे बोल सकते। और, जो सुनेगा वह भी खुश हो जायगा आपको हाथों उठा लिया जायगा। तो देखलो जो द्वेषकी बात है, उसके करनेमें कितना विकल्प मचाना पड़ता है बहुत पहलेसे। तो बताओ उस कामसे क्या फायदा, जिससे खुदको भी दुःख हो और दूसरेको भी दुःखी होना पड़े ? अपना सद्व्यवहार बनायें। क्या है। अरे भाई बड़ें से तो हर एक कोई दब जाता है। बड़ें को तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो चाहे क्षमा कर देता, क्षमा भी क्या करता ? वश नही चलता मगर अपनेसे छोटोको क्षमा करे, अपनेसे छोटोको आदर दे, अपनेसे छोटोको साथ लेकर चले तो उसे कितनी प्रसन्नता होती है ? कितना आपका प्रशस्त भाव भरा रहता है । आपकी सही करतूत बिना दूसरा आपको कोई बड़प्पन देने वाला नहीं । क्षमाशील बनो । यह बात तब बन सकती है जब अपने आपके स्वरूपका दर्शन हो ।

स्वरूपदर्शन बिना परमार्थविश्रामकी असंभवता—जब तक अपने स्वरूपका ठीक परिचय नही है तब तक बाहरमें करने करनेके विकल्प लगाये रहते कि मुझे यह करना है । यह काम करनेको पड़ा है, मगर यह तो सोचो कि काम करनेसे शान्ति मिलती है या काम न करनेसे शन्ति मिलती ? इसी बातपर विचार कर लो । मेरेको यह काम करनेको पड़ा है, यह करनेको पड़ा है, जब तक यह विकल्प रहेगा तब तक शान्ति न मिलेगी । देखो हम आत्माकी बात कह रहे कि बाहरी पदार्थ हमसे अत्यन्त जुदा है । उसमें हम कोई परिणति नहीं कर सकते । हम केवल अपने परिणाम कर सकते, दूसरेका परिणाम नहीं कर सकते । तो जब यह ध्यानमें आता है कि बाहरी पदार्थ अपना उत्पाद अपना व्यय कर रहा है उस प्रवृत्ति को मैं करने वाला नहीं हूँ तो उसको स्वतन्त्रताका बोध होता है, मेरे करने को कुछ काम नहीं रहा कृतकृत्य है ऐसा भीतरमें बोध होता है तो उससे शान्ति मिलती है । एक आप मकान बनवा रहे हैं तो जब तक वह मकान नहीं बन जाता तब तक आपको कितनी आकुलता रहती है । परमिट मगाना है, इंटें लाना है, लोहा लाना है, इंजीनियर बुलाना है कामके समय भी सोचते आरामके समय भी सोचते । और जब मकान बन जाता है तो उस समय आपको आराम मिलता है या नहीं ? मिलता है । क्यों ? यह ध्यानमें आया कि मेरे को अब मकान बनानेका काम नहीं पड़ा इस ख्यालका आनन्द आया । खूब भली भांति विचारपूर्वक सोचो, उस पुरुषको मकान बनानेका आनन्द नहीं आया किन्तु मेरेको अब मकान बनानेका काम नहीं रहा इस कारण आनन्द आया । अब जो भाव मकान बननेके बाद किया वही भाव अगर मकान बननेसे पहिले करलें तो क्या वह खुश न होगा साधुजन ज्ञानीजन पहलेसे ही यह भाव करते है कि मेरेको दुनियामें कुछ करनेको नहीं पड़ा है अपने भाव सुधारना अपनी दृष्टि बनाना, यह ही काम मेरे करनेको हैं बाकी कोई काम मेरे करनेको नही पड़ा । तो देखो अपने आप में सुखी शान्त हो गया कि नहीं ? तो भाई विरागतामें आनन्द आता । है, रागमें आनन्द नही आता राग । त्यागि पहूँचूं निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम राग त्यागकर मैं अपने धाममें पहुच जाऊं, मैं अपने ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्वमें पहुच जाऊं तो फिर वहां आकुलताका कोई काम नहीं रहता आकुलता वहां होती है जहां यह बात बैठी है कि यह मैं हूँ, यह मेरे करनेका काम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, मेरेको काम करना पड़ेगा ऐसी बात कर्तृत्वकी भोक्तृत्वकी अहंकारकी ममकारकी बात चित्तमें समायी हो तो वहां अवश्य ही कष्ट होगा। तो कष्ट दूर होनेकी बहुत सरल विधि है, करते बनें तो करलें, केवल ज्ञानसाध्य बात है। आत्मानुशासनमें लिखा है कि हे सुकुमार पुरुष यदि तुमसे तपश्चरणका कष्ट नहीं किया जा सकता है तो मत करो, किन्तु कषाय वैरियोंको तो जीतना ज्ञानसाध्य है सो ज्ञानसाध्य यह कार्य यदि नहीं कर सकते तो यह तुम्हारी मूढता है।

स्थापना निक्षेपके प्रकारोंपर विहंगमदृष्टि—७ तत्त्वोंका व और भी अन्य पदार्थोंका लोकमें व्यवहार किस तरह होता है, कैसे लोग उसके बारेमें समझते है, उसका उपाय क्या है ? इस बातकी चर्चा चल रही है। नामस्थापना द्रव्य और भाव, इन चार निक्षेपों से पदार्थके प्रतिपादनका व्यवहार होता है जैसे जानते हैं नाम न रखें तो व्यवहार कैसे चलेगा, किसको बोलना किसको क्या समझाना ? तो नाम निक्षेप तो पहले ही आवश्यक हो गया फिर स्थापना न हो तो कैसे परिचय हों कि यह वही है। देखिये स्थापना दो तरह से समझना है एक तो समझना है साकार ढंग से और एक समझना है जो नित्यप्रति हमारे प्रयोगमें आता है उस ढंग से अथवा एक तमेंद्भावस्थापना और एक अतद्भाव स्थापना भगवानके आकारकी तरह मूर्ति बनाकर उसमें यह मानना कि यह भगवान हैं यह है तद्भाव स्थापना और तास, कंकड़ वगैरह अतदाकारमें बादशाह वजीर आदि की स्थापना करना अतद्भाव स्थापना है। अब जरा मुख करके निरन्तर प्रयोगमें आने वाली स्थापना देखो जैसे किसी पुरुषको देखकर यह निर्णय होता है कि यह फलाने चन्द हैं यह तो स्थापना हो गई। जान गए कि यह इसका नाम है। किसी पदार्थमें थाप देनेका नाम स्थापना है। तो जब पहिले नामनिक्षेप धर लिया गया संज्ञा जिसकी रख ली गई तब उसमें कोई स्थापना बनती हैं, और वह स्थापना दो प्रकार से है, देखिये प्रयोगके रूपसे तो सबमें स्थापना चलती है अन्यथा बात भी नहीं कर सकते। नाम जान लिया फलाने चन्द, यह तो नाम हुआ, अगर यह है फलाने चन्द, इस तरहका बोध न हो तो कोई काम चलेगा क्या ? जब स्थापना हों गई तो अब स्थापनानिक्षेपकी बात चल रही है। यह स्थायी स्वरूप ऐसा यों जो आरोपित है उसे स्थापित कहते हैं। जैसे वास्तवमें इन्द्र तो वह है जिसके देव आयुका उदय है जैसे स्वर्गके देवोंका इन्द्र है यह भी इन्द्र है तो वास्तवमें इन्द्र वह है लेकिन किसी काठकी पत्थरकी मूर्तिमें इन्द्र की स्थापना करना यह कहलाती है स्थापना यह वह है, यह इन्द्र है, इस तरहकी प्रतिष्ठा हुई तो वह है तद्भाव स्थापना तो अब यहां देखिये कि जो मनमें कल्पना की है वह तो है भावइन्द्र और जो द्रव्य है जो साक्षात् देव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आयु वाले की जाति वाला है और एक मूर्तिमें उस इन्द्रकी स्थापना की तो यह हुई उसकी प्रतिष्ठा। तद्भावप्रतिष्ठा, अतद्भाव प्रतिष्ठा।

नामनिक्षेप व स्थापनानिक्षेपमें अन्तर:—देखो नामनिक्षेप और स्थापना निक्षेपमें अन्तर क्या है? किसी का नाम भी धर लिया—यह महावीर और प्रतिमामें स्थापित करे यह महावीर, तो इन दोनों महावीरोंमें अन्तर है। नामके महावीरमें तो आदर नहीं है। वह तो मात्र एक नाम रख लिया गया। नाम तो रख लेवे कोई महावीर और इसके कर्म हो बहुत खोटे तो वह नामनिक्षेपकी ही तो बात रही। पर मूर्तिमें महावीर स्वामीकी स्थापना की तो उस मूर्तिका आदर करते कि नहीं? तो स्थापनामें आदर होता है, नाममें आदर नही होता। जैसे लोकमें भी देखलो जैसे मानो कोई राजा है, राष्ट्रपति है, जिसका कि कुछ नाम है ना—जैसे कि कुछ नाम हैं ना—जैसे आजकल गिरि नाम हैं' तो उस गिरिकी कोई फोटो हो और उसपर कोई कालिमा पोत दे या नीचे गिरा दे या जूता चप्पल मार दे तब तो यहांझगड़ा खड़ा हो जाता है ना, और मान लो यहां इसी मुहल्लेमें किसी लड़केका नाम गिरि रख दिया जाय तो उसे तो चाहे कोई लाठी मारे, चाहे नालीमें ठकेल दे फिर भी किसीको बुरा तो नहीं लगता। उसपर तो कोई देशद्रोहका अपराध नहीं है। और जो राष्ट्रपति है उसके फोटोपर कोई अविनय करे तो उसपर देशद्रोहका अपराध गाया जाता है। तो नाम और स्थापनाका अन्तर तो सही दिख रहा है। किसीका नामाधर दिया बर्द्धमान, तो भले ही नाम धर दिया, बच्चा है, उसे जो चाहे थप्पड़ मारे, कुछ भी करे, तो उसपर कोई बुरा मानता है क्या? बुरा तो नहीं मानता, और यदि कोई वीतराग जिनेन्द्र देव २४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर का प्रतिबिम्ब है उसपर कोई कुछ उपद्रव करे तो उसपर कितना विवाद खड़ा हो जाता है। तो स्थापना में तो आदर है, नाममें आदर नही होता। नाम तो एक बात के लिए होता है।

वस्तुके परिच्छेदनकी व्यवस्थापक षड्खंड चक्र:—देखो एक थोड़ी सैद्धान्तिक विधिसे इतराभिमत बात कह रहे हैं जो लोग मानते हैं कि सारा जगत एक है, सत्स्वरूप है, अब उनकी ओरसे देखो चलो तो मानों एक सत्स्वरूप जगत कोई भी पदार्थ हो वह ६ बातोंमें परखा जायगा—नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, क्षेत्र और काल। ६ तरहसे परखा जायगा। जैसे यह घडी है तो 'घड़ी' नाम हो गया और केवल इस वस्तुमें घड़ीका नाम धरा यह स्थापना हो गई अब घड़ीमें आगे पीछेकी जो पर्याय समझमें आती उस प्रकार आरोप किया लो द्रव्य हो गया। घड़ीकी वर्तमान बात समझमें आती वह भाव हो गया

http://sahjanandvarnishastra.org/

और घड़ी कितनी जगहको रोके है, घड़ीके जो निजी प्रदेश हैं वह क्षेत्र हो गया और घड़ी की वर्तमान स्थिति क्या है वह काल हो गया। तो एक कल्पनासे अवगत सत् जगत एक ही रूप है मानलो सद्रूप है तो उसकी परख जब हम ६ प्रकारसे करेंगे तो देखो उसमें ६ द्रव्योंकी झांकी आ जायगी। नामसत्, स्थापना सत्। द्रव्यसत्, भावसत्, क्षेत्रसत् कालसत्। नामसत्—नामका काम है चलाना, नाम बिना कुछ चलता तो नहीं। जैसे लोगों ने देखा होगा कि जब बहुत सी महिलायें बैठ जाती हैं गान करनेके लिए, मगर कोई नहीं गाती तो वे कहती हैं—अरी जीजी, अरी बुआ, तुम नाम तो धरो मायने गीत उठाओ तो सही, हम फिर सम्हाल लेंगी। तो देखो नामका काम चलाना है। नाम न धरें तो क्या चलेगा? इतने सब भाई हैं, अगर किसी का कुछ नाम न हो तो बतलाओ व्यवहारका काम चल सकेगा क्या? कोई व्यवस्था बन सकेगी क्या? कुछ भी व्यवस्था नहीं चल सकती। तो नामका काम चलाना है। जो चलनेमें सहायक है उसे कहते हैं धर्मद्रव्य तो जब हमने नामकी बिधिसे पदार्थको देखा तो हमें वहां धर्मद्रव्यकी झांकी हुई। स्थापना सत्–स्थाप देवे, फिट कर देवे तो ऐसा फिट करने वाला है अधर्म द्रव्य। चलते हुए कोई ठहर जाय। स्थापनासत् बोला तो उसमें अधर्म द्रव्यकी झांकी हुई। द्रव्यसत् बोला तो उसमें पुद्गल की झांकी हुई, द्रव्य, वस्तु, पिण्ड, गुण पर्यायका पिण्ड, पिण्डरूप देखा, द्रव्य, दृष्टि से। भावसे देखा तो जीवद्रव्य आया। क्षेत्रसत् में आकाशद्रव्य आ गया और कालसत में समस्त समय अर्थात् काल द्रव्य आ गया। तो ऐसे अतर्क्य और कल्पना की विधियों से परखा जाता है तो छह द्रव्य आगये। उस एकको परखनेको कला की बात कह रहे हैं। एक सत है, एक सत उसके इस तरह ६ रूप वर्तमान हैं, यह कहनेका प्रयोजन नहीं, किन्तु समझनेका प्रयोजन और सभी बातों का निर्णय इन ६ दृष्टियोंसे होता है। उनमें से ४ ये निक्षेप हैं—नामनिक्षेप, स्थापनानिक्षेप, द्रव्य निक्षेप और भावनिक्षेप। त नाम कुछ भी धर दो, आखिर एक परिचय ही तो कराना है और कभी कभी कोई कोई नाम जाति, गुण, कर्म आदिक की वजह से भी रखे जाते है। तो भी उसमें अन्य निमित्त नहीं होत और कोई निमित्त की बात ही नहीं मालूम होती। कोई नाम रखा जाता है। जैसे बहुत से नाम धर देते-टिक्कू, छिद्दू तो बताओ उनमें कौन सी खासियत थी? और, पशुओंका नाम भी है कि जिनकी जाति है गाम, भैंस वगैरह, अब जिनके ये नाम धर दिया, उनमें स्थापनाकी बात चलती है। नाम धरे बिन स्थापना की बात नहीं चलती, तो नाम और स्थापना में यह अन्तर है कि नाम में तो आईन्दा आदत नहीं और स्थापना में आदर अपमान की वृत्ति उठा करती है। एक बात, दूसरी बात यह है कि नरम धरा और परखा कि

Report any errors at vikasnsv@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसका यह नाम है, यह तो एक दूसरा ज्ञान हुआ ना तो वहां स्थापना हो गई। तो जहां यह बुद्धि हुई कि वह यह है इसीको स्थापना कहते हैं।

निक्षेपविधिसे लोकव्यहार करनेकी सकलजवनप्रवृत्तिः—देखो पदार्थ के ज्ञान करनेकी तरकीबचल रही है। इस विधिसे हम जानते हैं और यह प्रयोग जीवनमें आता रहता है देखो जैसे कोई लोग अनेकान्तका खण्डन करते हैं तो अनेकान्तका (स्याद्वादका) खण्डन करने वाले स्वयं अनेकान्तका आश्रय रखते हैं, रात दिन रखते हैं, उससे वे अलग नहीं हो सकते, भले ही खण्डन करें, जैसे कौन नहीं प्रयोग करता लेन देन का ? किसीने किसीको कुछ रुपया उधार दिया और एक साल बाद उससे व्याजसहित लेता है तो बुद्धि में दोनो बातें सम्भव हैं कि नहीं, यह वही आदमी है जिसको यह उधार दिया था, इस तरह समझमें आया ना। और, यह अब १२ वमाहका आदमी है। जिस दिन दिया था उसी दिन से जिस ढंगमें था उसीमें रहे और ये १२ महीने न आयें तो उससे कुछ लेन देन किया जायगा क्या ? अपरिणामी तत्त्वसे कुछ कभी लेन देन होता क्या ? रात दिनके व्यवहारमें लोग अनेकान्तका आश्रय ले रहे। बच्चे हैं, जवान हुए, बूढे हुए, अब माता बच्चे से बच्चे, जैसा प्रेम करती है। उस बच्चे के जवान हो जानेपर वह मां–बच्चे जैसा प्रेम उससे नहीं करती। कुछ प्रेमतो रहता ही है। प्रेम क्यों रहता कि उसे यह बोध है कि यह तो मेरा वही बेटा है, और बच्चे जैसा ख्याल क्यों नहीं आता कि वहा अवस्था भेद हो गया। तो नित्य और अनित्य दोनों बातें सामने आयीं कि नहीं। किसी मनुष्य का परिचय कोई करता है तो अनेक दृष्टियों से करता है। यह इसका मामा है, यह इसका चाचा है——यों सभी बातें समझमें आती हैं कि नहीं ? और कर रहे हैं अनेकान्तका उपयोग और वे अनेकान्तका खण्डन करें मगर अनेकान्तका विनाश तो नहीं होना। स्याद्वाद को मना कैसे कर सकते, नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव इन चार निक्षेपोंका बराबर प्रयोग करते हैं निक्षेपप्रयोग व्यवहारमें आता है, पर नहीं जानते तो मत जानों, प्रयोगमें तो आ रहा है। तो यह वह है, यह वही है, इस प्रकार स्थापना करनेका नाम है स्थापना द्रव्यनिक्षेप। निक्षेपका अर्थ है किसी निर्णयमें रख देवे। तो स्थापना निक्षेपसे यह सब समझा, फोटोमें कोई स्थापना होती है यह हमारा पिता है, यह हमारा गुरु है और कोई उठाकर नीचे पटक दे, नालीमें डाल दे तो बड़ा तेज झगड़ा हो जाता है। और उस नाम वाले आदमीको मानों कोई नीचे डाल दे तब तो कोई झगड़ा खड़ा नहीं होगा। तो स्थापनामें आदर अपमान, आकांक्षा, भावना ये सब रहते हैं। अनिवार्य स्थापना देखो जब नाम रखा जाता है तब किसी का दर्शन होने पर वहां स्थापना की जाती है, अन्यथा कोई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह कहे कि किसीका नाम न भी रखा जाय, जिसका नाम नहीं जाना है, ऐसे पदार्थ को देखने पर भी तो तस्वीर या पुष्प आदिकमें यह वही है ऐसा ज्ञान हो जायो ना। तो बिना नामके तो स्थापना नहीं होती। वहां पर भी किसी न किसी तरह का नाम पहिले आया तब स्थापना हुई। नाम शब्द पहले आता है, इसी बातपर एक दर्शन स्वतंत्र बना शब्दा द्वैत। एक भींटका ज्ञान हुआ तो उसमें भीं और ट ये दो शब्द जरूर आ जाते हैं। कोई भी ज्ञान करे, कुछ भी परिचय बनाये तो नाम पहले आता है। तो जब नाम रखा तब जाकर प्रतिमा बनती है और स्थापना होती है।

अनिवारित प्रायोगिक स्थापनाः—अनिवारित स्थापनाकी बातको प्रायोगिक स्थापनाके बारेमें ध्यानसे सुनना है कि हम जो अपने आपमें स्थापना किया करते हैं, मैं बड़ा पुरूष हूँ, मनुष्य हूँ, साधु हूँ, त्यागी हूं, अमुक हूं, आदिक जो अपने आपमें जब किसी पर्याय की स्थापना बनाते हैं कल्पनामें उस थापनेमें इस जीवको सन्मार्ग नहीं मिल पाता और ऐसी स्थापना करो, ऐसा थापो, थापना के मायने बैठालना भी है। आव्हान करना भी है, स्थापना करना भी है। तो स्थापनाके मायने है बैठालना। तो अपने आपका जो निज निरपेक्ष परमपारिणामिक भाव चैतन्यस्वरूप ज्ञानमात्र शुद्ध ज्योति है उसमें अपने आपकी प्रतिष्ठा बनावें, यह हूं मैं, और कुछ नहीं। देखो यदि अपने चैतन्य सामान्यमें आत्मप्रतिष्ठा हो जाय तो उसी समय दुःख दूर हो जाता है। कितनी बड़ी अचम्भेकी बात हो रही है संसार में कि जो बात है, निरपेक्ष जो अपना स्वरूपमें अपनी प्रतिष्ठा नहीं कर पाता और पर्यायमें आत्मप्रतिष्ठा कर रहा है, यह मैं हूं, इस मेरे की शान घट न जाय और उसकी यद्वा तद्वा सभा भी होती है। एक राजा की सभा बैंठी थी, राजा भी विद्वान था और उस सभामें आने वाले भी विद्वान आते थे। एक आन्तरिक सभा होती थी उसमें कवि लोग अपनी कविता बोलकर प्रसन्न रहते थे, दूसरोंको प्रसन्न करते थे। तो एक बार राजा ने कहाकि ऐ कवियों आज कोई ऐसी कविता दिखाओ जिसने कभी देखी सुनी न हो, ऐसी विलक्षण कविता हो, तो एक कवि ने अपनी जेब से कोरा कागज लिया और कहा महाराज देखिये आप जैसी कविता देखना चाहते हैं वैसी तो यह कविता है, मगर यह कविता उसीको दिख सकेगी जो असल बापका हो। जब राजानै वह कागज लिया तो मन मे बड़ा गुस्सा आया क्योंकि उसमें कुछ लिखा तो था नहीं, मगर उसने सोचा कि यदि में यह कहुंगा कि इसमें तो कुछ लिखा ही नहीं तो लोग समझ जायेंगे कि यह राजा अपनै असल बापका नहीं हैं। इसलिए कह उठा हां सचमुच यह बड़ी विलक्षण कविता है। अब राजाने पासमें बैठे किसी विद्वान कविसे कहा-जरा देखना कविता अच्छी है ना!? तो उसने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपने हाथमें वह कागज लिया और देखा कि उसमें तो कुछ भी न लिखा था। उसे भी गुस्सा आया मगर सोचा कि यदि मैं कहूँगा कि इसमें कुछ लिखा हो नहीं, तो इसमें मेरी हंसी होगी, यह सोचकर उसने भी कहा–वाह–वाह बड़ी सुन्दर कविता है। इसी तरहसे वहां बैठे सभी विद्वान कवियोंने देखा कि सचमुच आज तो इस कविने सबको धोखा दिया, लिखा कुछ नहीं है, मगर यह सोचकर कि यदि कह दें कि इसमें तो कुछ लिखा ही नहीं है तो लोग समझेंगे कि यह तो नकली बापका है असल बापका नहीं है, सबने कहा–वाह वाह यह तो बहुत ही सुन्दर विलक्षण कविता है। अब देखिये अपनी प्रतिष्ठामें आकर ही तो उस कोरे कागजमें कविताकी प्रशंसा की। तो इस पर्यायमें आत्मरूपकी स्थापना करने की बडी–बड़ी विडम्बनायें हैं। इसीको कहते हैं मिथ्यात्व, मोह।

सम्यक् ज्ञान सहित आत्मप्रतिष्ठामें कल्याणलाभ––अरे भाई जो मैं हूँ, मेरी जो सहज प्रतिकृति है उसमें स्थापना कर ली, यह है परमात्मा, यह है भगवान, जीवमें रहने वाला चैतन्यस्वरूप है, अपने आपमें शाश्वत प्रकाशमान स्वभाव है। परंतु अपने सहजस्वरूप की प्रतिष्ठा न करके जो पर्याय है, विनश्वर है जो मेरी बन नही सकती उसको मान लिया कि यह मैं हूं तो ऐसी आपाकी स्थापना करनेका फल बहुत बुरा होता है, हम क्या कर रहे, सिवाय इसके कि कोई प्रतीति बनाये रहते हैं, बाह्य पदार्थोंका हम क्या परिणमन कर सकें ? बाह्य पदार्थ तो बाह्य हैं, भिन्न हैं, मुझसे अत्यन्त जुदे हैं, उनका हम कुछ कर नहीं पाते। बस एक प्रतीति बनाये रहते हैं, कल्पना बनाये रहते, बस यही काम कर पाते हैं,। तो ऐसी प्रतीति करें जिससे कि शान्ति मिले। देखो नुकशानकी बात कुछ भी नहीं कही जा रही जैसे लाभ मिले वही बात कही जा रही है, जो सच है उसके जाननेमें कभी भी कोई हानि नहीं है, लाभ ही लाभ है। जो मिथ्या है, उसको अन्य रूप समझनेमें हानि है, धोखा ही धोखा है। और देखो–जीवकी प्रकृति भी ऐसी है कि वह सच समझनेकी आकांक्षा रखता है, बालक हो तो, जवान हो तो, वृद्ध हो तो, कोई घटना हो, कुछ बात हो तो उसमें सच–सच समझनेकी भावना रखते हैं। सच सच समझनेमें कहीं आपत्ति नहीं है। आत्माका सत्य है आत्माका निरपेक्ष चैतन्यस्वरूप अब उसमें आत्माकी प्रतीति करें कि यह हूँ मैं, इसमें लाभ ही लाभ है, पापका क्षय होता है पुण्यरस बढ़ता है, मोक्षमार्ग मिलता है, तत्काल शान्ति होती है और समाजमें भी बहुत व्यवस्था रहती है, आदर होता है शान्तिकी स्थापना होती है, धर्मके लिए यही कहा जा रहा है कि भाई अपने आपका जो यथार्थ स्वरूप है उस स्वरूपको मानलें कि यह हूँ मैं परमात्मास्वरूप, सिद्ध हो जायगा, सब ऋद्धि सिद्धि हो जायगी। एक सत्य समझ लें कि यह हूँ मैं एक चैतन्यस्वरूप मात्र। कितना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बड़ा झगड़ा है मोहमें कि दूसरेसे लेन देन नहीं, सम्बन्ध नहीं, कुछ उससे आधार नहीं, सभी जीव चाहे लड़का हो, लडकी हो, स्त्री हो, कोई हो, कुछ भी आधार नहीं, कुछ भी सम्पर्क नहीं, अत्यन्त भिन्न पदार्थ हैं, लेकिन चित्तमें जब यह बैठ रहा है कि मेरे सर्वस्व तो ये ही है तो वहां वह बड़े अन्धकारमें रहता है, उसमें यह जीव अशान्त रहता है, व्याकुल रहता है, मार्ग ही नहीं मिल रहा, और एक सत्य बात समझ लीजिए कि सर्व जीव स्वतन्त्र हैं, सबके अपने अपने कर्म जुदे–जुदे हैं, सबका पालन पोषण उनका उनके कर्मानुसार होता है। कोई जीव किसी जीवका कुछ करने हरने वाला नहीं है, ऐसा पार्थक्य देखें, ऐसी स्वतन्त्रता देखें तो घरमें जब तक रहेंगे तब तक कैसा शानसे रहेंगे और कैसा शान्तिसे रहेंगे, वहां भी आनन्द आनन्द आयगा। और, किसीने घर त्याग दिया हो और यह सत्य स्वरूप समझमें आया हो तो उसे वहां सत्य शान्तिका उन्नयन है ही। शान्तिका कारण एक सम्यग्ज्ञान है। सच्चा बोध करें, मोह हटावें।

मोहमें और रागमें अन्तर—देखो मोह और राग ये अलग अलग चीजें हैं। आप लोगोंका हमारे प्रति लगाव है तो इसको मोह कहेंगे कि राग ? मोह न कहा जायगा, मोहमें अन्धेरा छाया रहता है, कुछ विवेक नहीं रहता, उसे तो राग कह सकते और किसी मोही को अपने पुत्रमें जो आशक्ति है प्रेम रहता है उसमें मोह है। तो मोह और रागमें अन्तर है कि नहीं ? मोहमें विवेक नहीं जग सकता यहां विवेक जग सकता, है। तो मोह छोड़कर भी घरमें रहा जा सकता है, विवेकपूर्वक जब तक राग विद्यमान है रहा जा सकता है और उसकी व्यवस्था बहुत उत्तम बन सकती है। एक बात निर्णयमें रखें कि हमें तो मोह को त्यागना ही है। अभी त्यागना है, तुरन्त त्यागना है, और उसमें जरा भी गुंजाइस नही रखना कि थोड़ा मोह किसीसे रखे तो रहें स्त्रीसे या धनसे या बच्चोंसे। यह आपको हानि की बात नहीं कह रहे। मोह त्याग देंगे तो उससे कहीं आपका घर नहीं बिगडता। आपके परिवारका जो संचालन है वह भी बिगड़ता बिल्कुल नहीं, बल्कि उत्तमता आती है, घरमें रहें निर्मोह होकर। तो अपने आपका जो निरपेक्ष सत्य सहज स्वरूप है उसमें अपने आपकी स्थापना करना वह है इस जीवके भलेका उपाय। और बाह्य पदार्थोंमें अपने आपकी इस स्थाप्य पर्यायमें आपाकी बुद्धि करे तो यह ही इस जीवके लिए है महान कष्ट और विडम्बना की बात, ज्ञानी ज्ञानसुधारस पीजो, प्रियतम ज्ञानसुधारज पीजो आप लोगोंने क्या कभी प्रियतम देखा है ? प्रियतम का ही बिगड़ करके बना है प्रीतमा-प्रीतम शब्दसे किसे कहा गया, लोक में प्रिय वस्तुतः कौन है सो परखिये और स्वामीका सैंया रूप बिगड़ गया। सैंया कहो, स्वामी कहो, ये तो स्त्रियोंके होते होंगे स्वामी सैंया वगैरह ? अरे पुरुषोंके भी होते हैं, प्रत्येक

Report any errors at vikash@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीवके होते हैं। सैंया भी प्रत्येक जीवके है, प्रीतम भी प्रत्येक जीवके है, मगर परवा नहीं कि मेरा सैंया कौन ? मेरा प्रीतम कौन है ? प्रीतम जो जगतमें सर्व पदार्थोंसे प्यारा हो उसका नाम है प्रियतन प्रिय प्रियतर प्रियतम तो जो सर्वाधिक प्रिय हो उसे प्रियतम कहते हैं। तो आपको सर्वाधिक प्रिय चीज क्या है ? अपना आत्मा। और उसमें भी जो मिटने वाला है ऐसा पर्यायरूप नहीं किन्तु जो शाश्वत विशुद्ध आनन्दमय निज स्वभावरूप है, ऐसा अपने आपका जो स्वरूप है वह प्रियतम है। वह प्रियतम आपका आपमें है, स्त्री पर्यायमें रहने वाले जीवोंका उनका उनमें है । और कीड़ा मकोड़ा आदिक पर्यायोके जो जीव हैं उनका उनमें है, और वह ही उनका सैंया है वह ही उनका प्रियतम है, वह ही उनका मालिक है। जो जिसका निज स्व है, स्वरूप है, वही उसका स्वामी है। मेरा स्व है ज्ञान-स्वरूप, मैं हूँ इस ज्ञानस्वरूपका स्वामी। जिसका जो स्वरूप है वही उसका स्वामी है दूसरा और कोई स्वामी नहीं हो सकता। तो ऐसे अपने स्वामीमें अपनी स्थापना करना कि यह हुँ मैं, अन्य कोई मैं नहीं हूँ, स्वामी बल्लभ पियतम यह सब अपने आपका जो अपनेमें विराजमान एक ब्रह्मस्वरुप है, शुद्ध चैतन्यमात्र वह है मेरा सब कुछ शरण, मेरा रक्षक मेरा हितकारी, मेरा सर्वस्व यही मात्र एक है। इसको भूल करके इस जीवने अनादिसे लेकर अब तक यहां कष्ट भोगा। जिसको भूलकर बड़ी दुर्गतियां पायीं उसको भूलकर यह जीवन बितानेमें कोई लाभ है क्या ? महा अनर्थ होगा। आये तो हरि भजन को ओटन लगे कपास ऐसी एक कहावत है ना। भाई इस नर जीवनमें आये तो थे हरि भजनको हरि मायने जो पापोंको हरे पापोंको कौन हरने वाला हें ? अपना आत्मा अपना सदृभूत शुद्ध ब्रह्मा तो आये तो थे ब्रह्मस्वरुपकी उपासनाके लिए मगर करने क्या लगे ! कपास ओटने लगे। देखो कपास ओटनेकी ही बात क्यों कहीं गई ? और बात क्यों नहीं कहीं गई ? तो देखिये कपास ओटना एक ऐसा बहूदा काम है कि कहीं दिनभर कपास ओटा जाय तो मुश्किल से ? किलो ओट पाता है। कपासके फलोंसे पहिले कपासको बहुत धीरे धीरे अलग किया जाता है फिर उस कपासको रहटामें ओटा जाता है तो यह काम एक ऐसा है कि जिसके करने में समय तो अधिक लगता है पर फल कम मिलता है। जैसे ओटा तो दिन भर मगर मुश्किलसे १ किलो ओट पाया। इसीलिए कहते हैं ओटन लगे कपास आये तो थे निज आत्मा रामकी उपासनाके लिए और करने लगे विषय कषायोंकी सेवा तो आप यह बतलावो कि इस नर जीवनका लाभ क्या लिया ! जो मिटने वाला है जो मेरेसे भिन्न है जो मेरे लिए शरण नहीं है, जो मेरी बरबादीका साधन बनता है। उसका मोह करना, उसका लगाव करना इससे बढ़कर और मूढ़ता क्या कही जा सकती है ? अन्दरमें बिल्कुल स्पष्ट होना

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

चाहिए कि मैं ज्ञानमात्र हूँ ज्ञानस्वरूपके सिवाय कुछ और नहीं उसीसे निरन्तर ज्ञान होता रहता है, ज्ञान प्रज्वलित रहता है, ज्ञान निरन्तर प्रकाशित रहता है यह ही मेरा व्यापार है, और कोई मेरा व्यापार नहीं और ऐसे इस विशुद्ध ज्ञानका अनुभव होता रहता है, मेरेमें बस यह ही मेरा कुटुम्ब है, यही भोग है, उपभोग है अन्य और कोई मेरा भार नहीं, ऐसी एक निजिकी निधिमें आइये।

आत्मदर्शन होनेपर विषयविषका परिहार व सत्यका आग्रह—पर खलो, इस समयसारके जाने बिना आज तक बड़ी बड़ी विडम्बनायें सहीं इस भवमें पूर्वभवमें जो आपके पिता हो गया मां हो गई, स्त्री हुई, कोई हुआ उनका कुछ उठता है क्या! आपको कोई आराम मिल रहा है क्या? तो पूर्वभवके कुटुम्बसे मेरेको इस समय कुछ फायदा नहीं और देखो फायदा ही नहीं, मगर उनका जो पूर्वभवमें मोह बस आया था उसके कारण यह वासना संस्कार ऐसा लगा कि निरन्तर बेचैन रहना पड़ता तो उल्टा नुकशान ही हुआ, तो ऐसे ही समझिये कि इस भवमें भी जो समागम है धन वैभव स्त्री पुत्रादिक इनके मोहमें इनके लगावमें आत्मा पायगा क्या? अगले भवमें जाकर यह आत्मा पाप्त क्या कर लेगा? कुछ भी नहीं कर सकता और उल्टा नुकशान ही होगा। तो भाई नुकशान वाली बात अब न करें आत्मप्रकाश लें अपने आपमें अपने आपकी स्थापना करें यह हुं मैं अन्य कुछ मैं नहीं हूँ ऐसी आत्मामें आत्मबुद्धि हो तो इसका सारा नक्शा पलट जायगा। ज्ञान होते ही सर्व बोध हो जायगा। जब तक नहीं है ज्ञान भले ही विषय विषमें प्रीति जग रही थी। आत्मदर्शन होनेपर अन्तस्तत्त्वका अनुराग उमड़ जाता है। जैसे कि किसी सेठका लड़का नाबालिग था। सेठ तो अपनी कई लाखोंकी सम्पत्ति छोड़कर मर गया सरकारने क्या किया कि उस सेठकी सारी जायदाद कोर्ट कर ली और सेठके उस नाबालिग बेटेको सरकार ५००) माहवार भेजने लगी। उसकी सेवाके लिए एक नौकरानी भी रख दी। जब वह बालक कुछ बड़ा हुआ तो सरकारके बड़ा गुण गा रहा था अहो सरकार बड़ी दयालु है वह घर बैठे मुझे ५००) माहवार भेज रही है। उसे अभी तक अपनी लाखोंकी निधिका पता न था। और जब वह १८-२० वर्ष का हुआ उसे अपनी कई लाखोंकी सम्पत्तिका पता पड़ गया तो उसने सरकारको सूचित कर दिया कि मैं मुझे अब ये ५००) माह नहीं चाहिए अब बालिग हो गया हूँ। मेरी सारी सम्पति मुझे दी जाय। तो भाई बात यह कही जा रही थी कि जब सही जान हो जाता है आत्मामें आत्मबुद्धि जागृत हो जाती है तो इस जीवको सर्वबोध हो जाता है और द्रव्यकर्मके उपहारोंको यह ठुकरा देता है एवं अपनी निज निधिको पानेका सत्य आग्रह करता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नामनिक्षेप व स्थापना निक्षेपका उपसंहार—मोक्षशास्त्र का सूत्र चल रहा है" नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः नामनिक्षेप, स्थापनानिक्षेप, द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप इन चार निक्षेपोंसे जीवादिक तत्त्वोंका सम्यग्दर्शनका प्रतिपादन व्यवहार होता है। कोई किसीको समझाने चले तो कुछ नाम ही न हो तो क्या समझे। कौन समझायें किसे समझाये क्या समझायें ? तो सबसे पहिले आवश्यक है सम्यग्दर्शनकी बात कहना, जीवकी बात कहना तत्त्वकी बात कहना, तो नाम तो लेना ही पड़ेगा, तो नामके बिना कुछ नहीं चल सकता, इसलिए नामनिक्षेप तो अत्यन्त आवश्यक है। नामके बिना व्यवहार नहीं, नामके बिना परिचय नहीं, नामके बिना एक शब्द भी नहीं उठ सकता। तो नामनिक्षेपकी बड़ी आवश्यकता है और नामनिक्षेपसे लोकव्यवहार चलता है। स्थापनानिक्षेप, स्थापना किए बिना भी काम नहीं चलता। पुरूष में इसका यह नाम है यों इसका यह नाम है यों इस नाम को स्थापना दिया यह भी स्थापना है, क्योंकि कुछ भी बात कही जा रही हो बात बातमें स्थापना चलती रहती है वह यही है। जिसका ऐसा बोध हो कि वह यही है वह स्थापना है। जैसे मूर्तिको यह पार्श्वनाथ ही है यह वर्द्धमान ही है, इसतरह प्रतिमामें जो स्थाप किया यह स्थापना हो गई। ऐसी स्थापना होवे तो वह स्थापना कहलाती है।

द्रव्यनिक्षेपमें अनिवारित प्रक्रियाकी उद्बोधकता—अब द्रव्यनिक्षेपकी बात कह रहे हैं। द्रव्य किसे कहते हैं ? जो स्वतः नवीन पर्यायके अभिमुख हो उसे द्रव्य कहते हैं और फिर उसको लोकव्यवहार करना द्रव्यनिक्षेप है। देखो दुनियामे जितने भी पदार्थ हैं ? वे पदार्थ अपने आपमें ऐसे दौडे जा रहे हैं अपनी परिणति पानेके लिए कि बिजली क्या दौड़ेगी। जिससे यह द्रव्य पहले समयकी पर्यायके बाद अगले समयकी पर्यायको पानेके लिये एकदम दौड़ता है। द्रव्यका यह फर्ज है कि वह अगली पर्यायके सन्मुख रहे। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि थोड़े समयसे आराम कर लिया मैंने अब कुछ समय तक परिणमन न करूंगा, तो ऐसा विश्राम द्रव्यमें नहीं मिलता। द्रव्यका स्वभाव है कि वह अगले समयमें पर्याय पाने के लिए प्रतिसमय तैयार रहता है अगली पर्यायमें अभिमुख होनेके लिए तो जो अगली पर्यायके लिए अभिमुख हो सो द्रव्य है और उसका लोकव्यवहार करनाः बताना सो द्रव्य निक्षेप है जैसे कि आप जीव हैं, इस समय जो कुछ भी है अगली समयकी पर्याय पानेके लिए आप निरन्तर तैयार रहते हैं। बस आपमें अगली अगली बातें होती जाती हैं। । तो जो स्वतः भविष्यकी पर्यायके अभिमुख हो उसको द्रव्य कहते हैं। द्रव्यका लक्षण यद्यपि यह भी कहा—जैसे पहले पर्याय पाया वर्तमानमें पर्याय पा रहे, आगे पर्याय पायेंगे, उसे द्रव्य कहते हैं लेकिन भविष्यकी पर्यायके अभिमुख जो है उसे हम कहते है, ऐसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहनेमें सबका अन्तर्भाव है। जो अगली पर्याय पानेके अभिमुख है वह द्रव्य है। देखो किसी भी पहली पर्यायसे पहले भी तो द्रव्यथा उसकी अभिमुखता तो पहिले थी ही। उसके पहिले भी तो भूत पर्याय थी, तो वहां भी यह स्वभाव था कि पर्याय पानेके अभिमुख है तो इसमें सब लक्षण गर्भित हो जाते हैं। दूसरी बात यह लोग कहते हैं कि गई सो गई अब आगे की सम्हालो। द्रव्यमें गुजर गया सो गुजर गया, अब जरा आगेकी देखो। प्रत्येक पदार्थ आगेकी पर्याय के अभिमुख रहता है। अब यह बात दूसरी कि हम आप बरबादीके अभिमुख रहें या उन्नतिके, यह तो अपने परिणामोंकी बात है, मगर परिणमें बिना कोई नहीं रह सकता। नियमसे अगली पर्यायके तुरन्त अभिमुख हैं। यह अपनी एक विवेककी बात है कि हम अच्छे विचार करते हैं तो अच्छीं पर्याय पायेंगे, खोंटा विचार करते हैं तो खोंटी पर्याय पायेंगे। सब भीतरी बातसे बात है। ऊपरमें कोई कुछ कर रहा हो मगर जैसा ऊपर कर रहा हो वैसा ही भीतरमें भी सद्भाव है तो उसका भला है। ऊपरमें मानो कोई ब्रततप तो बहुत बहुत कर रहा पर भीतर में कोई मोक्ष मार्गकी बात नहीं है और बात यह है कि हमारे बच्चे प्रसन्न रहें, घरके सभी लोग प्रसन्न रहें, इसलिए व्रत करना चाहिए, इस भाव से करे तो उसे सही लाभ नहीं है और कोई मुक्तिकी अभिलाषासे करे कि मेरा स्वभाव तो निराहार है, तो मैं अपने उस स्वरूपसे देखूं ऐसी बात करे तो उसका व्रत तय सार्थक है।

सर्वपरिस्थितियोंमें भावकी महिमा—सर्वत्र भावकी महिमा है कहो भगवानकी पूजा कर रहे और भाव खोंटा हो, कहो दूकानपर बैठे हों और भाव प्रभुमें लग रहे हों। एक कथानक है कि कोई दो भाई थे एक बड़ा और एक छोटा। उस दिन थो पूजाकी बारी और उसी दिन रसोई के लिये लड़कियोंकी जरूरत थी। तब बड़े भाईने कहा कि आज हम जंगल से रसोई घरके लिए लडकियां तोड़े लायेंगे और तुम आज मंदिरमें पूजा करके बारीका काम निपटा देना। सो बड़ा भाई तो गया जंगलमें लकड़ियां तोड़ने और छोटा भाई मंदिरमें पूजन करने चला गया। अब लकड़ियां तोड़ने वाला तो सोचता है कि अरे हम कहां आज फस गये ? हमारा छोटा भाई तो प्रभुकी स्तुति कर रहा होगा, प्रभु का गुणगान करके आनन्द विभोर हो रहा होगा: : :। और इधर वह पूजन करने वाला क्या सोच रहा था कि कहाँ हम आज फस गये ? हमारा बड़ा भाई तो जंगलमें धूम रहा होगा, जामुन आम आदिके वृक्षों पर चढ़—चढ़कर फल खा रहा होगा, फिल्मी गाना गा रहा होगा: : :। अब देखिये भावोंकी ही तो बात है। जंगलमें लकड़ियां तोड़ने वाले ने तो पुण्यबंध किया और पुजन करने वालेने पापबंध किया। तो भावोंके अनुसार होता है सब कुछ अगर अपना उद्धार करना हो तो अपने भाव सुधारों चाहे लेकिन धन जन वगैरहकी क्षति भी हो जाय, किन्तु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपने भाव मत बिगड़ने दें। हमारे भाव अच्छे रहेंगे तो पुण्य रहेगा, सम्पदा मिलेगी और अगर हमारे भाव बिगड़ गए तो पापबंध होगा वर्तमानके ये समागम कितने दिन तक साथ दे सकेंगे ? अपने भाव सुधारे रहें यह बात चाहिए। तो यह मैं आत्मद्रव्य सदा नाना पर्यायें होनेके अभिमुख रहता हूँ इसलिए द्रव्यनिक्षेपसे मैं कैसा हूँ ? अगले पर्यायमें पहुचूंगा ऐसा हूँ। जैसी अगलीं पर्याय होगी उस रूप अभेदको निरखते रहना सो यह द्रव्य निक्षेपका लोक व्यवहार है। यह बात कही जा रही है सैद्धान्ति दृष्टिसे। दृष्टान्तमें यह कहो जैसे पहले कोई कोतवाल था और अब वह रिटायर हो गया, कोतवाल अब नहीं रहा फिर भी उसे कहते हैं आइये कोतवाल साहब। तो यह बात आयी द्रव्यनिक्षेपसे। देखो द्रव्यनिक्षेप बिना भी किसीका गुजारा नहीं चलता। भविष्य का पर्याय कुछ तो चितमें रहता ही है।

भविष्य पर्यायोंत्सुक्यतःकी मानव प्रकृति—भविष्यकी बात चित्तमें कुछ भी कहो तो यहां वह रह सकता है क्या ? सबके मनमें आगेकी बात है। बल्कि इतनी इतनी आगे की बात है कि जो करना भी न चाहिए उसकी भी बात चित्तमें रहती है। एक कथा सुनी जाती है स्मश्रु नवनीत की मूछ मक्खन की कोई एक मूछ मक्खन नामका व्यक्ति था। वह प्रति दिन श्रावकोंके यहां मठ्ठा पीने जाया करता था। एक दिन मट्ठा पीनेके बाद उसने ज्योंही अपने मूछोंमें हाथ फेरा त्योंही उसके हाथमें काफी मक्खन लग गया। उसने विचार किया कि यदि इस तरहसे काफी घरोंमें मट्ठा पीकर मक्खन इकट्ठा कर लिया करूं तो कुछ ही दिनोंमें तो मालोमाल हो सकता हूँ। यह सोचकर वह प्रतिदिन बहुत से घरोंमें जाकर मट्ठा पी आता था और अपने मूछोंमें हाथ फेर कर एक कटोरीमें यक्खन इकट्ठा कर लिया करता था। साल दो साल इस तरह करते करते उसके पास करीब १ किलो घी जुड़ गया। एक दिन जाड़ेके दिनोंमें अपनी झोपड़ीमें बैठा हुआ आग ताप रहा था, ऊपर छींकेपर छींका डबला रखा हुआ था। आग तापते हुए में वह कुछ इस ढंगका विचार करने लगा कि कलके दिन अमुक बाजारमें मैं इस घी को बेच दूंगा। जितने में बिकेगा उससे फिर बकरी खरीदूंगा। उस बकरी से बच्चे होंगे, फिर दूध बेंच कर, बकरीको भी बेंचकर गाय खरीदूंगा इस ही विचार धारा में पड़कर उसे कुछ निद्रा सी आने लगी। उसी जगह लेट गया। विचारधारा लगातार चलती रही हां तो गाय से फिर भैंस खरीदूंगा, बेल लूंगा, फिर कुछ जमीन खरीद लूंगा, विवाह करूंगा बच्चे होंगे। उन बच्चोमें से कोई बच्चा मानो कहने लगा कि चलो पिताजी मां नें खाने के लिए बुलाया है: :अरे अभी नहीं जाता दूसरी बार भी चर्चा हुई तोंसरी बार फिर वही बात लड़केने कहा तो गुस्सा आया व लातफठकार कर कहा—अरे हट अभी नहीं जाता। उसकी लात लगी ऊपर टंगे घी

https://sahjanandvarnishastra.org/

के डबलेपर डबला नीचे गिरा, फूट गया घी आगमें गिर गया, आग जल उठी, वह चिल्ला उठा, लोग जुड़े, वह झोपड़ीसे निकलकर चिल्ला रहा था अरे दौड़ो मेरे बच्चे मरे, मेरी स्त्री मरी, मेरे गाय बैल भैंस आदि मरे। लोग सुनकर हैरान हुए-पूछा-कल तक तो तुम मांगते थे- आज यह क्या कह रहे ? तो उसने प्रारम्भसे अन्त तक सारी बात कह सुनायी। वहां एक सेठ जी खड़े थे, वह बोले अरे तू क्यो दुःखी हो रहा ? तेरे वे कुछ थे तो नहीं ? तू कल्पनासे ही तो उन्हें अपना मान रहा था, वह सब तेरा ख्याल ही ख्याल तो था। तो वहीं खड़े हुए एक पंडित जी बोले सेठजी यही हाल तो तुम्हारा भी हे। तुम भी तो व्यर्थ ही अपनी मूर्खता से दुःखी हो रहे। तुम ख्याल ख्याल ही तो बनाते हो कि ये स्त्री पुत्रादिक परिजन, ये धन वैभव मेरे हैं, तो तुम्हारे कुछ नहीं, पर उनके पीछे तुम व्यर्थ ही ख्याल बना कर दुःखी रहते तो यह तुम्हारी भी तो मूर्खता है। तो यह मन ऐसी दौड़ लगाता है कि जो असम्भव बात है उसे भी सम्भव करना चाहता है। तो भावी सिद्धिके लिए भी मन कुछ न कुछ जानना चाहता है कि क्या होगा ? जैसे मानो जिसे कहीं बाहर जाना है तो उसे ख्याल आयगा कि मैं मोटर से जाऊंगा, वहां से यों जाऊंगा। मान ली हम प्रवचन कर रहे तो हमें यह ख्याल रहता कि इसके बाद यह कहना चाहिए, इसके बाद यह। तो यों सभी पदार्थ अपनी अपली पर्यायके लिए तैयार रहते हैं। एक समयका भी अन्तर नहीं रहता इसलिए इसे कहते हैं द्रव्य। लोक व्यवहारकी बात कही जाती है उसे कहते हैं द्रव्यनिक्षेप। तो द्रव्य-निक्षेपसे लोक व्यवहार होता है

द्रव्यनिक्षेपके भेद—यह बात मोक्षशास्त्रकी कही जा रही है। आप लोग रोज-रोज सूत्र जी का पाठ कर लेते हैं, अष्टमी चौदस को पढ़ते हैं, व्रतके दिनोंमें पढ़ते हैं, पाठ तो पढ़ जाते हैं पर यह नहीं जान पाते कि उसमें क्या चीज बसी है। उसमें कुछ तत्त्व ग्रहण करनेकी बात तो तब बनेगी जब कि उसका अर्थ समझें, उसका भाव समझें। थोड़ा समय लगायें, थोडी हिम्मत बनायें तब समझ सकेंगे। यों ही बिना अर्थ समझें पढ़ते जा रहे हैं तो उसका मर्म तो न मिलेगा। लोग तो ऐसा मानते कि जो इन दसों अध्यायोंको पढ़ले उसको तो एक उपवास का फल मिलेगा लेकिन ऐसा पढ़नेसे फल नहीं मिलता। और यो समझो कि यदि इस तरहसे पाठ करनेसे एक उपवासका फल मिलता है तो अर्थ समझकर भाव समझकर पढ़े तो उसे हजार उपवासका फल मिलेगा। जैसे बताते हैं कि जब राम रावणका युद्ध हुआ था तो बंदरोंने समुद्रको लांघ लिया था। तो लांघ लिया समुद्र इतने पर भी उन्हें इसका पता तो न पड़ सका कि उस समुद्रमें कैसे कैसे रत्न भरे पड़े हैं। तो ऐसे ही पढ़ गया कोई सूत्र मगर उसमें क्या तत्व बसा है, यह बात तो न ध्यानमें आयी। तो

Report any errors at vikash@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यहां बतला रहे द्रव्यनिक्षेपकी बात। वह द्रव्य होता है दो तरहका (१) आगमद्रव्य और (२) नो आगमद्रव्य। आगमद्रव्य की बात, तत्वकी बात, शास्त्रकी बात कोई जानता तो हो, मगर उपयोगमें न लेता हो तो वह कहलाता है आगमद्रव्य जैसे कोई १० भाषायें जानता है, वह एक भाषा पढ़ रहा, ९ भाषाओंको उपयोगमें नहीं ले रहा तो वह ९ भाषाओंका आगमद्रव्य भाषामें जाना कहलाता। ऐसे ही जो जीव आगमके तत्वको जानता है, पर उपयोगमें नहीं ले रहा तो वह कहलायगा आगमद्रव्य अब देखो इसमें पर्यायकी बात कैसे आयी? जो आगामी पर्यायके अभिमुख हो उसे द्रव्य कहते हैं। वह अभी लगा तो नहीं, पर आगे लगेगा। जिसने शास्त्रको जाना वह इस समय नहीं लग रहा उसके उपयोगमें मगर जानकारी तो है, लग जायगा, आगे का पर्याय उसे ज्ञात है इसलिए उसे आगम कहते हैं, और नो आगम क्या है? ये नो आगम तीन तरहके हैं-(१) ज्ञायक शरीर (२) भावी और (३) तदव्यतिरिक्त याने जानने वालेका शरीर, जो जानता है आगमको उसका शरीर शरीरमें रहने वाला जीव तो आगे जानेगा तो वह हो गया आगमद्रव्य वे ज्ञायक शरीर (३) तरहके होते हैं भूत, वर्तमान और भविष्य। भूत होते हैं तीन तरहके। च्युत, च्यावित व त्यक्त, एक तो वह जो समतासे शरीर छोड़ी जाय और एक वह जो संक्लेश से छोड़ जाय और एक यों ही छोड़े। तो ऐसा यह ज्ञायक शरीर। और जो कुछ आगे जानेगा वह है भावी नो आगम। तदव्यतिरिक्त नो आगम कौन? तदव्यतिरिक्त नो आगम द्रव्यनिक्षेप कर्म और नोकर्म इन दो में विभक्त करना यह सब नोआगमद्रव्य निक्षेप है। तो ये जितने पदार्थ बताये जा रहे हैं वे आगामी पर्यायके प्रति अभिमुख रहते हैं। यह बात सबके अन्दर पायी जाती है, जितने भी पदार्थ होते हैं वे सब पूर्वपर्यायको नष्ट करके अगली पर्यायको पैदा करते और वे द्रव्यरूपसे स्वभावरूपसे सदा रहते हैं। जैसे जीव है तो उसने पहली तो नष्ट की। वर्तमान बन गया, यह पर्याय उत्पन्न की और अब आगे मनुष्य पर्यायको नष्ट करेगा, अगली पर्याय उत्पन्न करेगा और मैं वहीं का वही हूँ। जो पहिले था तो अब हुआ, सो ही आगे रहेगा। जिसे यह ज्ञान हुआ सो हीं कल्याण की इच्छा करेगा। में ऐसा भाव बनाऊं कि मेरा कल्याण हो जाय। अगर ऐसा भाव न बनाऊं तो आगे पर्याय बुरी मिलेगी। फिर पछतायेंगे। अरे आगेकी पर्याय इससे तो अच्छी मिले। जैसी आज पर्याय मिली है उससे बुरी पर्याय यदि मिल गई तो हम बरबाद हो गए। देखिये जो द्रव्यनिक्षेपकी भावना रखता है उसके कल्याण की बात मनमें आयगी। अच्छा काम करे जिससे कि ठीक पर्याय हो। तो ऐसे प्रत्येक पदार्थमें उत्पाद व्यय-ध्रौव्य हैं,

सदा अनन्त भावो पर्यायोंसे संयुक्तता—अब कोई दार्शनिक कहता है कि भावो

Version

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर्याय को कोई पाता नहीं, क्योंकि सब वस्तुवें क्षणिक हैं, सत् होने से क्षणिकवादी लोग मानते हैंकि आत्मा एक नहीं है शरीरमें सुबह तो और कोई आत्मा था, अब और हो गया, यों एक दिनमें करोड़ों आत्मा एक शरीरमें आ गए। ऐसा बौद्धोंका कहना है। तो अब उनका यह कहना है कि जब द्रव्य आगे रहता ही नहीं तो द्रव्यका यह लक्षण कैसे घटिता होगा? समाधान जो सत् है वह नियमसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है। जो है उसमें कुछ परिणामन जरुर होता है और अर्थ क्रिया उनकी उनमें है। प्रत्येक पदार्थ में क्रम और युगपत् दोनों विधिसे विशेषतायें पायी जाती हैं अर्थात् जितने भी पदार्थ हैं उन सबमें अर्थ क्रिया तब पायी जा सकती है जबकि बाह सदा रहे और पूर्व पर्यायको विलीन करे व उत्तर्पा-ययको प्राप्त करे देखों उत्पादव्यय ध्रौव्य बिना कुछ भी चीज नहीं है, कोई मनुष्य है तो उसमें पहले बचपन है, बचपन मिटा तो जवानी आयी, जवानी मिटी तो बुढ़ापा आया और बुढ़ाप मिटातो नई पर्यायमें आ गए। तो यह जीव पुरानी पर्याय मिटाता है और नवीन पर्याय पैदा करता जाता है, तो ऐसा यह सत् है तो यह द्रव्य हुआ ना। मैं सदा रहने वाला हूँ। वही हुँ, अन्यथा संतान न बन सकेंगे। जिस चाहे को एकदम मान लिया तो मैं एक हूँ, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यय वाला हूँ, जब मेरा उत्पादव्यय ध्रौव्य होता हैं तो हमें ऐसा करना चाहिए कि जिससे हमारी आगे अच्छी पर्याय बने। यह सब एक अपनी-अपनी प्रतिभा की बात होती है। प्रतिभा है तो वह सम्पग्दर्शन पा सकता है। जब पशु पक्षियों को भी संम्पक्त्व मिल जाता है तो इसे न मिले ऐसी कौनसी बात है। आखिर मनुष्य है, इसकी कषाय मंद हों, कल्याण की भावना हो, समागमोंसे वैराग्य जगा हो, मुक्तिकी इच्छा हो, आत्म कल्याणकी भावना हो उसे सम्यक्त्व जगेगा, तत्त्वाभ्यास करेगा, तत्त्वजानेगा, और इस पर्यायको ऐसे ही खो दिया विषय कषायों में तो उसे क्या मिलेगा? कुछ न मिलेगा। किसी सेठके चार बहुवें थीं तो सेठने सोचा कि घर की व्यवस्था तो स्त्रियोंसे बनती है तो किस बहूंको भार सौंपे घरका? घरमें हुकुमत किस बहूकी चले और बाकी तीन बहुवें जिसकी हुकूमत से चले अगर चारो बहुओं की हुकूमत चलेगी तो घर चल नहीं सकता। उससे तो घर बिगड़ता है। जिस घरमें एक होगा हुकूमत करने वाला वह घर सुखी रहेगा। तो सेठने सोचा कि किस बहूको घरकी हुकूमत दी जाय? तो उसने एक उपाय सोच निकाला। धानके ८० दाने (छिलका सहित चावल) लिए और २०-२० दानों की चार पुड़िया बना लिया। सबसे पहिले सबसे बड़ी बहूको बुलाया और कहा देखों बहू जी तुम हमारी यह पुड़िया अपनी पास रखो, इसे हम जब मांगे तब दे देना। बहू ने लेलिया और बाहर जाकर देखा क्या कि वे धानके २० दाने थे सोचा कि पिताजी तो अमानत के लिए कह रहे और यह भी कहा कि

Report any errors at rikaand@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

जब मागेंगे तब दे देना, तो इन्हे सम्हालकर धरने की क्या जरूरत ? जब मांगेंगे तब इतने दाने उन्हे दे देंगे, यह सोचकर उसने वह पुडियायों ही बाहर फेंक दिया। सेठने उससे छोटी बहू को बुलाया और कहा बहूजी तुम यह पुडिया अपने पास अमानत के रूपमें रखो, जब हम मांगें तब दे देना। उसने भी पुडियां खोलकर देखा तो उसमें धानके २० दाने थे। सोचा कि इन्हे मैं सम्हालकर कहां रक्खू। इन्हे चोखकर देखलूं जब पिताजी मांगेंगे तोऐसी ही स्वाद वाले बीस दाने उठाकर दे दूंगी। यह सोचकर उसने उनको दांतों से कुचल कर चबाकर देखा, देखिये इसने तो कुछ बुद्धि भी लगाया, सोचा कि जब पिताजी मागेंगे तब मैं इसी तरह के स्वाद वाले दाने दे दूंगी। सेठ ने अपनी तीसरी बहूको बुलाया और कहा बहूजी हमारी यह धरोहर अपने पास रखो, जब हम मांगेंगे तब देदेना। उस बहू ने खोल कर देखा तो उसमें धान के बीस दाने थे। सोचा कि सेठजी कोई मूर्ख तो हैं नहीं, उन्होंने कुछ सोचा जरूर होगा, इसलिए उस पुड़िया को तिजोड़ीमें रखकर सुरक्षित करदेना चाहिए यह सोचकर उसने उस पुड़ियां को ज्यों का त्यों तिजोड़ीमें धर दिया। अब सेठने सबसे छोटी बहूको बुलाया, उसे भी वह पुडिया देकर कहा देखो बहूजी तुम यह पुडियां अपने पास अमानत रूपमें रखो, जब हम मांगें तब देदेना। जब उस बहूने वह पुडियां खोलकर देखा तो उसमें धानके बीस दाने थे। उसने अपनी बुद्धिसे सोचा कि इसमें कुछ खास बात अवश्य होगी। अब उसकी प्रतिभा देखिये कि उसने उन बीस दानों को जमीन में एक जगह बो दिया, उनमें मानो बीस पौधे बन गए। उन बीस पौधों में कोई ४-५ पौधे, और उसके हर पौधे के साथ निकली हर पौधे में एक-एक वाली आयी। हर बालीमें करीब ४०—५० दाने आये। इस तरह से करीब दो हजार दाने एक वर्ष में ही पैदा हो गए। दूसरे वर्ष उन सब दानों को बोदिया फिर तो दो तीन गाडी भर धान पैदा हो गए, उन सब दानों को भी बो दिया तो अब बीसों गाडी धान पैदा हो गये। अब तीन वर्ष के बाद सेठने अपनी सभी बहुओ से अपनी धरोहर वापिस करने को कहा। सबसे पहलेबडी बहूको बुलाया और अपनो धरोहर मांगा। तो उस बहूने धान के बीस दाने कही से उठाकर पुड़ियां बनाकर सेठ को दे दी। और यह भी बता दिया कि हमने तो उन्हे फेक दिया था। तो वहां सेठने कहा देख बहूँ तू किसी चीजको इधर से उधर फेकना अच्छा जानती है अतः तू घरमें झाडू बौहारी का काम सम्हालना। दूसरी बहू को बुलाया तो उसने भो उसी स्वाद वाले बीस धानके दाने कही से उठाकर दे दिए। वहां सेठने यही कहा कि ऐ बहू तू किसी भी चीजका स्वाद लेना अच्छा जानती है इसलिए तू आज से रसोई घरमें भोजन बनाने का इन्तजाम रखना सेठने तीसरी बहूको बुलाया तो उसने अपनी तिजोरी से वहीं के वही धान सेठको दे दिया।

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

तो सेठने उस बहूसे कहा कि देख बहू तू चीजको सम्हालकर रखना अच्छा जानती है अतः तू आजसे तिजोड़ी सम्हालनेका (कोषाध्यक्षका) काम करना, जब सेठने सबसे छोटी बहू को बुलाया तो वहां बहू ने यही कहाकि पिताजी आपकी धरोहर तो बीस गाड़ियों बिना न आ पावेगी। आप अपनी धरोहर को बीसों गाड़ियों में लदाकर मगा लीजिये। तो वहां सेठने कहा कि ऐ बहू तेरी अन्दर बड़ी बुद्धि है, प्रतिभा है अतः आज से तुझे घरका प्रेसीडेन्ट (प्रधान), हुकूमत करने वाला बनाया जाता है। तो देखिये एक प्रतिभाकी ही तो बात है। ऐसे ही यहां समझें कि हमकों अगर ऐसी प्रतिभा हो गई कि हम अपने स्वरूपको देखें अपने भावी परिणामनोंको देखे भविष्यमें मैं क्या होऊंगा ? मुझे क्या करना चाहिए, क्योंकि हमें निरन्तर अगली पर्याय अभिमुख रहती है। मायने उसके बिना यह रह नहीं सकता। ऐसे देखें तो उसे द्रव्य निक्षेप कहते है, ऐसा द्रव्यदृष्टिसे जो लोक व्यवहार करे, निक्षेप करे उसे द्रव्यनिक्षेय कहते हे।

द्रव्यकी भाविपर्यायाभिमुखताके वर्णनसेः—द्रव्यनिक्षेपसे लोकव्यवहार होता है। और यह द्रव्य कैसे समझा ? उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे। मैं हूँ तो आगे कोई पर्याय पाऊंगा ही ऐसी उसकी श्रद्धा रहे। अब इस सम्बन्धमें मोटे रूपसे यह बात समझना कि द्रव्यनिक्षेपसे भावी पर्यायकी बात मुख्यतया ली जाती है द्रव्यकी भाविपर्यायाभिमुखताका स्वभाव भूतकाल में भी था क्योंकि गुजरी पर्यायमें भी यह रीति रही थी कि आगे निक्षेपपर्याय होगी वहां भी भावीपर्यायकी पद्धति इस तरह का भावी पर्यायका सम्बन्ध द्रव्यमें निक्षेपको कहता है। नहीं तो क्या है ? यह सोचे कोई कि जीव तोजीव ही रहेगा। उसमें द्रव्य निक्षेप कैसे होगा अरे उस पारिणामिक भावका इस चैतन्यस्वरूपमें निक्षेप नहीं दिखाया जाहै रहा। वहां तो नभ, निक्षेपका अवकाश ही नहीं है, किन्तु जो जीवमें पर्याय हो रही उनकी बात चल रही है कि यह कहलाता है द्रव्यनिक्षेय जैसे कोई अपने बच्चेकों जब खिलाता है तो वह कहता है कि मेरा बेटा तो राजा बनेगा, वह बड़ा होगा तो मुझे कमा कर खिलायगा, मेरी सेवा करेगा— —, अरे क्या पता कि वह सेवा करेगा कि डंडा मारेगा ? देखो–किसी भी पदार्थ के प्रति, भावी पर्यायके प्रति अभिमुखताका भाव प्रत्येक के रहता है तो यों पर्याय अपेक्षा से यह निक्षेपकीबात चल रही है। तो यह द्रव्य निक्षेपसे जीवकी बाततो भली भांति समझमें आ गई, पर ऐसी ही अजीबकी बात है। अजीवका भी जीवसे सम्बन्ध है। कर्मसे भी और शरीर से भी—। कर्म और शरीरकी भावी पर्याय होती है। एक शरीर और कर्मसहित जो है उसकी पर्याय होती है, इस तरह द्रव्य निक्षेप में भावी पर्यायाभिमुखेन की बात देखी जाती है और उससे लोकव्यवहार होता है। किसी को रुपये उधार दिया हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो उसके चित्त में यह बात बसी रहती है कि एक सालमें हमको इससे इतना मिलेगा। अथवा कोई बैंकमें रुपये जमा करता है तो उसके चित्तमें यह बात बसी रहती है कि ६ परसेन्ट के हिसाबसे एक सालमें इतना रुपया हमें मिलेगा। तो भावी बात कुछ न कुछ जरूर रहती है इसीलिए द्रव्यनिक्षेप की उपयोगिता कहलाता है। इसदृष्टि से व्यवहार किया जाय उसे कहते हैं द्रव्यनिक्षेप। द्रव्यमें यह बात भली भांति समझमें आयगी कि अन्वय है। अब है, आगे होगी, यह बात समझमें आती है उन सबके प्रति। तो इस तरह द्रव्यनिक्षेप में यह बात कही गई है कि हममें भावी पर्याय तो अवश्य होगी। पर्याय हमारी होती रहेगी पर ऐसा काम करें जिसमें हमारा अनन्त हित हो।

पञ्चमसूत्रके सम्बन्धमें पूर्व के समस्त सूत्रोंकी भूमिका रूपता:—मोक्षशास्त्रमें सबसे पहले बताया है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी एकता मोक्षका मार्ग है, याने आत्माका सही सहज निरपेक्षस्वरूप में विश्वास होना और अपने उपयोग को इस ही सहज स्वरूपमें लगाना और यहां ही रमण करना, लीन होना सो मोक्षका मार्ग है फिर द्वितीय सूत्रमें कहा कि सम्यग्दर्शन कहते किसे हैं? सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका अर्थ है सही मानना और भली प्रकार आचरण करना, किन्तु सम्यग्दर्शन शब्दका सीधा अर्थ नहीं निकलता सम्यक्त्वरूप, क्योंकि दर्शन मायने आंखों से देखना है, तब इस कारण से सम्यग्दर्शन का स्वरूप बतानेको अलगसे सूत्र बनाया है, नहीं तो आशंका हो सकती थी कि सम्यग्ज्ञान का स्वरूप क्यो नहीं कहा इस मोक्षशास्त्र के प्रथम अध्यायमें सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्रका स्वरूप क्यो नहीं कहा? उनका स्वरूप तो कहा नहीं लेकिन सम्यग्दर्शनका स्वरूप बताया हैं, उसका कारण है कि सम्यग्दर्शन में जो दर्शनशब्द है उसका अर्थ साधारणतय। प्रसिद्धतया आंखो से देखना हैं अत्तएवं सूत्रमें कहना पड़ा कि वस्तुस्वरूप सहित तत्त्वका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। फिर तृतीय सूत्र में बताया कि बह सम्यग्दर्शन स्वभाब से भी होता है और उपदेशसे भी होता है। अर्थात् उस पर्यायमें उपदेश पाये बिना भी होता है और उपदेश पाकर भी होता है फिर चतुर्थसूत्र में कहा कि इस सबका प्रयोजनभूत जो जीवादिक ७ तत्त्व हैंवे कौन-कौन हैं—जीब, अजीव, आश्रव, बंध सम्बर, निर्जरा और मोक्ष। तो फिर इस पंचम सूत्रमें यह कह रहे हैं कि इन सब तत्बोका लोक व्यवहार किस तरह होता है? अर्थात् जीवादिक पदार्थोकी जानकारी और दूसरों की समझाना यह किस प्रकार हो सकता है? उसका खुलासा किया है पंचम सूत्रमें नामस्थापना द्रव्यभावलस्तन्यासः नामनिक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्यनिक्षेप, और भावनिक्षेप,। इन चारनिक्षेपोंसे तत्त्वका, सम्यग्दर्शन आदिकका लोकव्यवहार होता है। खुद समझलेना और दूसरे को समझादेना इसके लिए जो व्यवहार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चाहिए उसका नाम है न्यास ।

नाम स्थापना व द्रव्य निक्षेपके विषयका पुनः दिग्दर्शनः—नामनिक्षेप का अर्थ है नाम रख देना । गुण उस में हो अथवा नहीं, जो नाम रखा जा रहा है उस नाम द्वारा वाच्य गुण वहां हो अथवा न हो, किन्तु किसी अभिप्रायको लेकर नाम रख देनेकानाम है नामनिक्षेप । जीव अजीव पदार्थके भी नाम रखे जाते हैं और मनुष्य आदिकके भी नाम रखे जाते हैं । यह है नामनिक्षेप । स्थापनानिक्षेप किसी पदार्थमें किसी अन्य पदार्थ की स्थापना करना स्थापनानिक्षेप है । स्थापनानिक्षेपका इतना ही अर्थ नहीं है कि जैसे मूर्ति में या तदाकार उस भगवान की या अन्य पदार्थ की स्थापना करना यह या अतदाकार में स्थापना करना इतना ही अर्थ नहीं, किन्तु जिसका नाम धरा गया उसके बारेमें यह ख्याल आये कि इस नामका यह वही व्यक्ति है ऐसा जहांज्ञान किया जाय उस सबको स्थापना निक्षेप कहते हैं । जैसे मूर्ति को देखकर ज्ञान होता है कि यह पार्श्वनाथ हैं, यह शान्तिनाथ हैं, इसीतरह अन्यमें अन्यकी स्थापना किए बिना भी एक ही पदार्थके बारेमें कुछ भावकी स्थापना करना वह भी स्थापनानिक्षेप है । तो देखो नामसे व्यवहार चलता कि नहीं । किसीका नाम न रखा जाय तो व्यवहार कैसे चले ? स्थापना बिना भी व्यवहार कैसे चले ? तो एक है तीसरा द्रव्यनिक्षेप याने जो पर्याय अभी हुई नहीं, अभी होने वाली है उस द्रव्यका व्यवहार करना सो द्रव्यनिक्षेप है । जैसे कुन्दकुन्दचार्य को कुन्दकुन्द भगवान कह देते हैं । होंगे कभी भगवान अथवा श्रेणीमें रहने वाले मुनियोंको भगवान भी कह देते हैं । भक्ति में आकर यहां भी तो किसी ज्ञानी पुरुषको देखकर लोग कह देते हैं कि यह तो भगवान हैं । जैसे अभी कोई राजपुत्र है, अभी वह राजा नहीं हुआ मगर उसे लोग राजा कह देते हैं, यह तो एक मोटी व्यवहारकी बात कही, पर यहां यह समझना है कि जो भी वस्तु है वह भावी पर्यायकी ओर अभिमुख होती है जैसे कोई चंचल घोड़ा लगाम लगी होने से दौड़ तो नहीं सकता पर वह दौड़ने के अभिमुख ही होता है, इसी प्रकार कुछ भी द्रव्य हो, अगर वह है तो वह भविष्य पर्यायके अभिमुख होता है, यह कहलाता है द्रव्य का स्वरूप देखो दनादन सारे पदार्थ नवीनपर्यायकी ओर लगे हैं, ऐसा कभी अन्तर न आयगा कि कोई पदार्थ कोई द्रव्य भावी पर्याय की ओर अभिमुख न हो और कोई अन्तर पड़ जाय कि पर्याय न हो एक समय को ऐसा कोई स्वरूप नहीं । द्रव्यनिक्षेपकास्वरूप कहा ।

भावनिक्षेपका विवरणः—अब भावनिक्षेपका स्वरूप कह रहे हैं । वर्तमान में जो पर्यायको लेकर प्रतिपादन करना, व्यवहार करना सो भावनिक्षेप है । जैसे जब राजा हो तब ही उसे राजा कहना यह राजाका व्यवहार भावनिक्षेपका व्यवहार है तो ऐसा भाव-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निक्षेप दो प्रकार का है—(१) आगम भाव और—(२] नो आगमभाव अर्थात् जो जीव सम्यग्दर्शन पर्याय में है पर सम्यग्दर्शन के बिषयमें उपयुक्त हो गया वह तो हुआ आगम भावनिक्षेप से सम्यग्दर्शन। और जो सम्यग्दर्शन पर्याय करके सहित हैवह है नोआगमभाव सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यग्दशन बताने वाले शास्त्र का उपयोग कर रहे हों तो वह है आगम-भाव और जो सम्यग्दर्शन पर्याययुक्त है वह है नोआगमभाव। देखिये यह सब महाशास्त्र की बातें समझने के लिए उपाय कहे जा रहे हैं, यह सब इस महाशास्त्र की भूमिका चल रही है, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्पक् चारित्रका वर्णन आगे बहुत विस्तारमें चलेगा, पर अभी बताया जा रहा कि उन सबको समझने का उपाय क्या है? यह कहलाता है भावनिक्षेप, जो वर्तमान समयकी बात को उस समग्र पदार्थ में बताये सो है भावनिक्षेप। देखिये भावी वस्तु है लेकिन जो बात अभी नहीं हुई है, आगे होगी, वह आगे के लिए भाव है, जो बात पहले हो चुकी उस समयमें वह बात होवे वह वर्तमानका भाव है, भावको छोड़कर वस्तु ठहर नहीं सकता। इस प्रकार भाव असत्य नहीं। ये चार प्रकारके निक्षेप-नाम स्थापना, द्रव्य, और भाव, इनसे पदार्थका व्यवहार किया जाता है।

न्यासकी निक्षेपोंसे कथंचित् भिन्नता व कथंचित् अभिन्नता:—देखिये सूत्र के अर्थ की ही बात कही जा रही है। न्यास किया जाता। व्यवहार किया जाता, परिचय किया जाता परिचय कराया जाता तो परिचय करना कराना इन चारों से अलग है या अभिन्न है? एक ऐसी मनमें जिज्ञासा बन सकती है। अगर अभिन्न है तो फिर न्यास शब्द अलग कहना न चाहिए। अगर भिन्न है तो कभी न्यास बन सकता। न्यासका अर्थ है लोकव्यवहार तो अन्तर आयगा अनेकान्तसे कथंचित् भिन्न है, कथंचित् अभिन्न है, क्योंकि व्यवहारमें प्रयुक्त यह ही बनता है इसलिए अभेद है पर इसका न्यास किया जा रहा है। पहिले न्यास न था, अब न्यास हो गया, ऐसा भेद पड़ जाने से यह भेदरूप है इस तरह यहां बताया गया है कि नाम स्थापना द्रव्य भाव इन चार निक्षेपोंसे तत्त्व आदिका न्यास होता है। किसी भी पदार्थ को आप जानना चाहे तो उसमें चार चीजों की आवश्यकता पड़नी है। जैसे समझा कि यह घड़ी है, तो घड़ी है, तो घड़ी यह नाम रखे बिना घड़ी के बारे में कोई व्यवहार चलेगा क्या? नाम रखना प्रथम आवश्यक है, और जिसका नाम रखा वह यह है इस तरह की स्थापना भी जरूरी है, और जिस समय जो बात कह रहे हैं उस समयको बाद वह बात आपके कानोंमें पहुची और जब कानोंमें पहुची उसके बाद उसके बारेमें विचार आगे करें तो आप कहेगे कि जब समझा तब चीज नहीं, जब चीज चित्तमें आयी तब वह शब्द नहीं तो काम कैसे चले? उस समस्याको निपटाता है यह द्रव्यनिक्षेप और भाव—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में वर्तमान की बात वर्तमान में ही कहीं गई, इस तरह से समझने की बात होती है तो चार निक्षेपोंसे समस्त लोकव्यवहार होता है।

तन्न्यास पदमें तत् शब्दके ग्रहणकी सार्थकता:—अब एक बात और थोड़ी व्याकरण सम्बन्धी कही जा रही है। 'नामस्थापनाद्रव्य भावतः तत्न्यासः, उसका न्यास होता है। तो यहां एक शंका होती है कि अगर यहां तत शब्द न कहते, यहां केवल इतना कहते—नाम-स्थापना द्रव्यभावतः न्यासः, इन चार निक्षेपो से लोक व्यवहार होता है ? तो पहले कहा गया है जिसे सूत्रमें उसका हो जायगा। तत् शब्द डालने की क्या जरूरत है ? अर्थात् जो पास में बात आयी है पहले जीवादिक ७ तत्व, उसका व्यवहार हो जायगा और देखिये प्रधान और अप्रधान दो बातें आयीं अब तक, प्रधान तो है सम्यग्दर्शन, और सम्यग् सम्यग्ज्ञान चारित्र, जिसको कि मोक्षमार्ग समझना इस शास्त्रमें चल रहा है और अप्रधान हैं जीवादिक ७ तत्व, क्योंकि वे सम्यक्त्वके विषयभूत हैं तो प्रधानका भी ज्ञान हो जायगा। कभी प्रत्यासत्तिका, समीपका भी ज्ञान हो जायगा, फिर तत शब्द बोलना क्यों जरूरी हो गया ? वह तुम्हारी शंका ठीक है और तत शब्द व्यर्थ है, लेकिन यहां दो झगड़े आते हैं। कोई कहेगा कि हम तो जीवादिक ७ तत्वों का न्यास होना यही अर्थ लगायेंगे क्योंकि जो पासमें आयी हो बात उसे ही लेना सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तो पहिले सूत्रमें आया है, बहुत पहिलेके शब्द हम न ग्रहण करेंगे पासमें जो बात कही गई हो उसका ही होगा। जैसे कल जिन जिनका नाम लिया है और आज हम बात कहें कि बैठें तो क्या उनका ग्रहण हो गया ? अरे जो सामने हैं उनका ग्रहण हो गया। तो तत्त्व ही ग्रहणमें आते तो कोई यह झगड़ा करता कि प्रधान तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र हैं, उनका ग्रहण होना चाहिए। जब यह झगड़ा खड़ा हो जाता है तो यह तत शब्द निपटारा करता है कि देखो हम जब व्यर्थ ही इस सूत्रमें पड़े हैं तो हमें तत शब्दको व्यर्थ मत समझें। तुम दोनों झगड़ों मत। दोनों को ही यहां ग्रहण होगा। अर्थात् जो कुछ भी पदार्थ हो, वस्तु हो, सम्यक्त्व हो, तत्व हो सबका लोकव्यवहार इन चार निक्षेपोंसे होता है। देखिये यह सब एक बड़ा परिचय करानेको बात कही गई है। वास्तवमें परिचय कराना किसका है ? अपने आपमें विराजमान अनादि अनन्त शाश्वत प्रकाशमान जो एक चैतन्यस्वरूप है उसका परिचय कराना है। एक इस अपने आत्म भगवानका परिचय नहीं है सो दर दर ठोकरें खाते रहते हैं। जो क्लेश आता है, जो विपत्ति है, जो विडम्बना बनती है, यह चोट है। जहां ही यह चित्त गया जहां ही आशा बनी, बस उसीके उपासक बन जाते है। इससे अशान्ति उत्पन्न होती है। इस अशान्तिको दूर करनेका सदाके लिए संकटोंको दूर कर देनेका उपाय है तो एक अपने आपमें विराजमान अद्वैत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

अंतः प्रकाशमान भगवान आत्मस्वरूपके दर्शन करना है। यही एक सार है, यह बात बहुत दृढ़ता से समझ लेनेकी है। यह बाहरी चेतन अचेतनका सारा समागम मेरे लिए शरण नहीं है, सारभूत नहीं है। मेरे काम न आयगा, बल्कि इसके सम्बंधसे जो मेरेमें रागद्वेष मोह उठता है वह मेरी बरबादीका ही कारण बनेगा। देखो कितनी स्पष्ट बात है कि जो भी समागम हैं वे मेरे हित के कारण तो हो नहीं सकते और होंगे तो अहितके कारण बनेंगे, फिर भी इन सब बातों में पड़ता ही रहा है, कैसी हमारी कमजोरी है हम वर्तमान पर्यायमें उसका त्याग करनेमें समर्थ नहीं हैं। भूख प्यास ढंढी गर्मी आदिक नाना बात की आपत्तियां आती हैं, इस लिए घरमें रहना आवश्यक बन गया है, इस लिए घरमें रहना आवश्यक बन गया है, निर्बल जीवोंको, और जब घरमें रहना जरूरी हो गया। ये सब बातें आवश्यक बन गई हैं, फिर भी कमाई करना परिस्थितिके लिए आवश्यक है, मेरे आत्माके लिए आवश्यक नहीं है, ऐसा विश्वास रखना जरूरी है। भाई जैसे लोग कहते हैं ना—भाई दूकान चलाना आवश्यक है, अरे दूकान चलाना आवश्यक है परिस्थितिवश किन्तु मेरे आत्माके लिए आवश्यक तो है अपने आत्माका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण। एक यह ही आत्मा भगवान मेरे उपयोग में रहे, इतना मात्र मेरेको आवश्यक है, मगर परिस्थितियां, ये आवश्यकतायें बना देती हैं। तो परिस्थिति से आवश्यकतायें बनी हैं, मेरेको आवश्यकता नहीं है ऐसा एक श्रद्धान रखना चाहिए। यह श्रद्धान रहेगा तो ममता न रहेगी, क्योंकि परिस्थिति के लिए आवश्यक नहीं हैं, इस कारण से मेरा उनमें कोई ममत्वभाव नहीं है। यह मेरे कुछ नहीं है, मेरा तो मात्र मैं ज्ञान प्रकाश हूँ। तो अपने आत्माके स्वरूप का निर्णय किए बिना आत्मामें धर्मका अंकुर नहीं आ सकता। तो यही बात समझना है यह ही विषय है सम्यग्दर्शनका। और इसी विषयका परिचय कराना है तो सम्यग्दर्शनकी भी हमें समझ आवेगी और सम्यग्दर्शनके विषयभूत ७ तत्त्वोकी भी दृढश्रद्धा प्रायोगिक होगी। तब तक हम अपने आत्मा में गुप्त पड़े हुए, मूर्छित पड़े हुए इस चैतन्यदेव को पा सकेंगे।

शरणभूत परमब्रह्मकी सुध करनेका अनुरोधः—देखो जैसे जिसकी शरण गहे बिना जिन्दगी न चलेगी, गुजारा नही होता उसको ढूढ़नेके लिए आप कितनी कोशिश करते हैं, कहां गया भैया मेरा,कहां गया दादा मेरा, मिल नहीं रहा, कहां चला गया। उनसे कोई काम पड़े तो झट उसकी शरणमें पहुचते कि नहीं, उसे ढूढेंगे, जहां मिलजाय वहां ही दर्शन करके, मिलकर अपनेको सन्तुष्ट मान लेता तो भाई यहां यह समझिये कि अपने आपमें बिराजमान जो एक शुद्ध ज्योति है, ज्ञानप्रकाश है, जो मेरा सहजस्वरूप है अपने आप स्वतः, बिना दूसरे की दया के बिना दूसरे के सम्पर्क के जो मेरा स्वरूप है उसस्वरूपका दर्शन ही शरण है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सार है, कर्मोंको नाश करने वाला है, उस स्वरूपकी खोजमें चले तो खोजते खोजते कहां मिलेगा ? बाहर खोजें तो कहीं नहीं मिलता। बाहर खोजने चले तो परिश्रम रहेंगा मेरा शरणभूत सारतत्व मेरेको बाहरमें कहीं न मिलेगा। अच्छा,घरमें खोजा तो यहां भी विश्राम न मिला, अपने भगवान आत्माका मिलन हो तो वहां परम विश्राम अवश्य होता है, उसकी क्या निशानी है ? वह परम विश्राम कहां मिलता ? कुछ न कुछ चिन्ताशल्य ये सब बातें बनी ही तो रहती हैं। विकल्प बने ही तो रहते हैं। जैसे पानी में रहने वाली मछली को कोई पानीसे उठाकर बाहर फेंक दे तो उस मछली की क्या हालत होती है ? वह तो छट-पटाती है. बरबाद सी होती रहती है, दुःखी होती रहती है, इसी प्रकार ज्ञानसमुद्रमें रहने वाला यह अंतस्तत्व है। इस अंतस्तत्व को अगर ज्ञानसमुद्रसे बाहर फैंक दिया गया, जीव अनादिकाल से फिरा हुआ है। इस उपयोग को इस ज्ञानसमुद्रसे बाहर फैंक दिया गया तो यह उपयोग, यह अंतस्तत्व कितना छटपटाता है। जिस भवमें गया वहां ही कोई नवीन पदार्थों का समागम होता है और कैसा मेलकर बैठता। न इस भवसे पहिले इसका परिचय पाया और न इस भवके मरणके बाद इसका परिचय रहेगा। थोड़े वर्षोंके लिए, सामने न कुछ सी चीज, पर उसमें इतना लीन हो जाता है कि बस उसे अपनी फिकर नहीं। उसे आत्माकी सुध नहीं रहती है। तो यह विपत्ति कम है क्या ? अज्ञानकी विपत्ति सबसे भारी विपत्ति है। ज्ञान प्रकाश आ जाय तो वह इतना बड़ा वैभव है कि तीन लोक की सम्पदा भी सामने पड़ी हो तो भी उस वैभवका कोई मूल्य है क्या ? तो पहिले यह समझना होगा कि जो हमें वैभव मिला, घर मिला, सम्पदा मिली, इनका कोई मूल्य मेरे लिए नहीं है ये सब तो परिस्थिति के लिए आवश्यक चीजें है। इनकी मेरे लिए कोई कीमत नहीं। यह बात ध्यान में लाने की है। फिर अपने आपके चिन्तनकी ओर चलें, वहां शान्ति मिलेगी। जहां अपना स्वरूप अपने ज्ञानमें आया कि नियमतः शान्ति मिलेगी।

परानायत्त पुरुषके कर्तव्यकी आवश्यकसंज्ञा:—लोग कहते हैं कि मुझको बहुत से आवश्यक काम पड़े हैं, ठीक बात है, जरा आवश्यकका अर्थ तो समझो। बोलते तो सभी हैं आवश्यक है, आवश्यकता है, पर आवश्यकका अर्थ क्या है सो तो बतलाओ। तो वह कहेगा कि जरूरी अर्थ है कोई कहेगा आवश्यक, आवश्यकता, नेसेसरी, यह कोई अर्थ नही है आवश्-कता। आवश्यकका अर्थ वास्तव में क्या किया है सो। ध्यान दो। मूलमें यह दो शब्दों से बनता है अ और वश, अ मायने नहीं, वश मायने आधीन, पहिले लगाओ अवश, अवश मायने जो वश नहीं, आधीन नहीं, जो बाह्य पदार्थ विषयकषायोंके आधीन नहीं ऐसे पुरूषका नाम है अवश। अवश पुरूष कौन ? ज्ञानी। सम्यग्दृष्टि, मुनिराज ये कहलाते हैं अवश। जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इन्द्रिय विषयोंके वशमें नहीं हैं उन पुरूषोंका नाम है अवश। और अवशास्मभावः अवश्यं, और अवश का जो स्वरूप है उसे कहते हैं आवश्यक और क प्रत्यय लगा है उसका अर्थ वही रहता है तो आवश्यक मायने अवश पुरूषका नाम है आवश्यक। अब बतलाओ इस अवश पुरूषको कोई तकलीफ है क्या ? जो विषय कषायोंके आधीन नहीं है ऐसे अवशपुरूषका काम क्या सो तो बतलाओ। अवश पुरूषका काम है आत्मभगवानकी सुध रखना। आत्मभगवानके विकाशके लिए ही क्रिया करना यह आवश्यक है, तब ही आवश्यक के केवल ६ भेद किए हैं समता, वन्दना, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, स्तुति और कायोत्सर्ग ये ही ६ आवश्यक है। दूकान आवश्यक नहीं बताया। ६ आवश्यकोंमें घर आवश्यक नहीं बताया, कुटुम्ब आवश्यक नहीं बताया। वे आवश्यक हैं ही नहीं आवश्यक तो आत्माकी सुध रखना, दर्शन, ज्ञान, चारित्र धर्म हैं आवश्यक। जो शब्दमें है केवल वह बात बतला रहे हैं। अगर कोई पुरुष शब्दमें रहने वाले भावको देखे तो बहुत सी समस्यायें बड़ी जल्दी सुलझ सकती हैं। शब्दशास्त्र एक बहुत अनोखा है। यह यों ही नहीं बनता, यह भावको लेकर बना है। हिन्दीमें भी बहुत से ऐसे शब्द हैं जो स्वरूप परिचयके लिये रखे गए हैं। जैसे चौकी। चौकीका अर्थ है जिसमें ४ कोने हैं। तिपाई-जिसके तीन पाये हों सो तिपाई। चटाई-चट आई, जिसे उठालो और झट धर दो उसे चटाई कहते हैं। दरी, इसका पहले देराई नाम था। जो देर से आये सो देराई उसकी घटी करें फिर उठाकर लावें, ऐसी देर करके जो आवे सो दरी। तो जितने भी नाम लिखे गए हैं उन सब में उनका अर्थ पड़ा हुआ है, पर वे रूढ़िमें बन गए हैं। आत्मा सततं अतति जानाति इति आत्मा जो निरन्तर जानता है सो आत्मा। कोई समय ऐसा नहीं आयगा जो जाने बिना रहें उसे कहते हैं आत्मा। सो जो निरन्तर जानता रहे वह मैं जीव पदार्थ हूँ। तो नाम रखा गया है आत्मा अत् धातु से निस्पन्न शब्द है और उनमें उनकी जाननक्रिया निरंतर पायी जाती है तो इसी तरह यह हम आवश्यक शब्दका अर्थ लगा रहे हैं। आवश्यकका अर्थ क्या है ? स्वतंत्र, ज्ञानी, मुनिराज महंत महर्षि देवके जो कर्तव्य हैं वे आवश्यक हैं। वे कितने आवश्यक हैं ? अब लगाओ जरूरीका अर्थ। वह कितना जरूरी है ? बस वह जरूरी है और कुछ जरूरी नहीं है। तो समझो, आवश्यक तो है वह मगर जिसने अपने लिए जिसको जरुरी समझा उस कामके लिए आवश्यक शब्दका प्रयोग करने लगा, यह है आवश्यक। आवश्यक वह नहीं।

बाह्यमें उपयोग जुटानेपर भी अन्तःपरिचयमें ज्ञानीके अन्तराय का अभाव—यहाँ परिचय कराया जा रहा है अपने आत्मामें विराजमान स्वरुपका। जिस स्वरुपको जिस निरपेक्ष सहज स्वरुप को यह मैं हूँ ऐसा कोई मानले तो संसार सागर से पार हो जायगा। अब तक यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव जिस चाहेको मान रहा कि यह मैं हूँ। व्यापारी मैं हूँ, जो इसका पिता है सो ही यह मैं हूँ जो इसका पुत्र है सो यह मैं हूँ, जो यह मनुष्याकार है सो यह मैं हूँ और जिसने इतना ज्ञान पाया, संगीत पढ़ा और कुछ जाना इतनी विद्यायें जिसने सीखली वह मैं हूँ, इस तरह किस किसमें मैं लगा रहा हूँ लेकिन मैं तो बहुत अन्दर छूपा हुआ हूँ, वास्तवमें मैं क्या हूँ कि जो अनादिसे अनन्त काल तक रहने वाला है, सदा जिसकी सत्ता रहा करती है, ऐसा एक जो चैतन्यस्वरुप है सो मैं हूँ, और ये बाहरी दंद फंद कुछ भी मैं नहीं हुं। मैं हूँ एक शुद्ध चैतन्यस्वरुप। ऐसा जो मान लेगा उसके ममता न रहेगी। और जिसके ममतान रही उसका भला हो जायगा। उसे फिर कही दुःख न आ सकेगा। कहीं विपत्ति नहीं आ सकती निर्मोह पुरुषपर कदाचित् घर जल गया, परिवार का कोई सदस्य गुजर गया, या कोई भी बड़ी से बड़ी घटना घट गई तो वहां ज्ञानी पुरुष सावधान रहता है। उन स्थितियो में वह घवड़ाता नहीं है। वह जानता है कि यह तो पुद्गल की पर्याय है। जब जैसा होना है हो रहा है। उन सभी स्थितियोंका वह केवल जाननहार रहता है। उसे अंतरंगमें दुःख नहीं होता जिसके मोह नहीं रहा। ऐसा निर्मोह होने पर भी जब तक पर्यायमें इतना बल प्रकट न हो कि वह स्वतंत्र रह सके तब तक वह घर बसा कर रहता है। तो उसे परिस्थितियोंका दास बना रहना पड़ता है और उन परिस्थितियों के कारण बहुत से काम उसे करने पड़ रहे है मगर यथार्थ समझ ज्ञानी पुरुषके बनी रहती है। यह मैं मात्र चैतन्यस्वरुप हूं। चैतन्य ही मेरा काम है, अन्य कुछ मेरा कर्तव्य नहीं है। यह बात समझने के लिए यह सब तत्वों का परिचय करायो जा रहा है। तो इस तरह इन निक्षेपों के द्वारा इन सबका वर्णन आगे बताया जायगा। किस किस प्रकारसे पदार्थ जाननेमें आता है।

निक्षेपोंद्वारा आत्माका संक्षिप्त परिचयः—अब अपने आपके स्वरुप में इन निक्षेपों को कुछ समझने की बात देखें। नाम रखा अपना। मैं क्या हूँ ? मैं जीव हुँ, कैसाजीव हुँ ? जिसमें परिणमन होते रहते हैं ऐसा मैं जीव हूँ। कोई कहता-नहीं, ऐसे जीवको व्यवहार नही बताया गया, क्योंकि अनादि अनन्त शाश्वत अहेतुक अपरिणामी है ऐसा ही यह जीव है, उसका ही यह व्यवहार है। अच्छा, तो क्षणिकवादीयों कहते हैं कि अन्य जीवकी यहां चर्चा नहीं की गई है किन्तु जो आत्मा क्षण-क्षणमें नया-नया बनता है उस जीवकी बात कही जा रही है, समाधान अगर जीवको ऐसा माना जाय कि यह सदा अपरिणामी है इसमें कोई बात बनती ही नहीं है, सदा ध्रुव नित्य है तो वहां अर्थ क्रिया नहीं बन सकती, अपना इसमें कोई काम नहीं बन सकता। अज्ञानसे हटकर ज्ञानमें आयें, अनित्यसे हटकर नित्यमें आयें। यह बात निरखिये कि जो अनित्य चीज है उसमें नित्यता बना करती और जो नित्य

Reprinted with permission of Satikkhan@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है उसमें अनित्यताबना करती। क्योंकि जो बंध था वह मिट गया। अब मोक्ष किसको दिलाना ? तो ऐसा मैं जीव हूँ जो सदा रहता हूँ और प्रति समय अपनी नवीन-नवीन दशायें बनाया करता हूँ उसे मोक्ष दिलाना है। मेरेमें सामर्थ है कि मैं अपने सहज स्वरुपका दर्शन करुं तो अज्ञान दशासे हटकर मैं ज्ञानदशामें पहुंच जाऊंगा। ऐसे इस जीवकी यहां चर्चा की है।

सत्य शरण गहनेकी उत्सुकता:—हम आप सब जीवों की एक प्रकृति रहा करती है कि किसीको अपना रक्षक माने, शरण समझें और उसकी छायामें रहे। कितना भी बड़ा कोई हो, यह आदत सबमें पायी जाती है। तब यहां यह परख करें कि जगत में कौन ऐसा है जो मेरा शरण है, सहारा करता हो, सारभूत हो ? भली प्रकार सोचकर यह निर्णय पा लेंगे कि कोई भी जीव ऐसा नहीं है। कुछ भी पदार्थ ऐसा नहीं है बाहर जो मेरा शरण है, सहारा करना हो, रक्षक हो, सारभूत हो ? भली प्रकार सोचकर यह निर्णय पा लेंगे कि कोई भी जीव ऐसा नही है। कुछ भी पदार्थ ऐसा नहीं है बाहर जो मेरा शरण हो। बल्कि जिस जिसका शरण गहने को यह जीव जाता है वहीं से इसे चोट मिलती है। अगर समागम भला है तो वियोग की चोट मिलती है और अगर दुष्ट है तो उसके संयोगमें समय समय पर चोट रहा करती है। तो कोई भी बाहरी पद र्थ ऐसा नहीं जो मेरा शरण हो। बाहरी पदार्थों की शरण गह–गह कर ही अब तक जीवन बिताया है, अशान्त रहे हैं, आकुलित रहे हैं, मिलेगा क्या ? लाखों करोड़ों का वैभव भी मिल जाय तो क्या ? तीनों लोक की सारी सम्पदा भी मिल जाय तो क्या ? इस आत्मस्वरूप से अतिरिक्त यह समस्त बाहरी वैभव कुछ भी हित नहीं कर सकता। बल्कि देखो जिसके पास जितना अधिक परिग्रह है वह उतना ही अधिक अशान्त है। इन बाहरी बातों से अपने सुख शान्ति के निर्णयकी आदत छोड़ देना चाहिये। परिस्थितिवश करना सब पड़ रहा है, करें, मगर निर्णय यह रखें कि बाहर में कोई भी पदार्थ ऐसा नही है जो मेरे आत्माको शान्तिपहुचा सकता है। तब कौन है मेरा शरण ? कौन है मेरा रक्षक ?

वास्तविक व्यावहारमंगल और परमार्थमंगल:—देखिये आचार्योंने एकदम सारभूत बात अपने उपदेशमें बता दिया। बल्कि आप जब प्रभुस्तुति करते हैं और णमोकारमंत्र पढ़नेके बाद जब चतारिदण्डकका पाठ पढ़ते हैं तो इसमें सब आगया। चत्तारिमंगल,अरहंता मंगलं, सिद्धामंगलं, साहू मंगलं, केवलियण्णात्तोधम्मो मंगलं। चार चीजें लोक में मंगल हैं अर्हंत, सिद्ध, साधु और धर्म। अब विचार करो अरहंत, सिद्ध और साधु ये तो आत्मासे भिन्न जीव है। हमसे निराले हैं अरहंत में अरहंत हैं, सिद्धमें सिद्ध हैं, साधुमें साधु है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनका द्रव्य निराला है। वे अपने ज्ञानानन्द के स्वामी है वे मेरा कुछ नहीं करते। लेकिन हम जब उनका ध्यान करते हैं, उनके स्वरुप की उपासना कहते हैं तो हमें अपने स्वरुप की सुध होती है और मार्गदर्शन होता है। जब जिनेन्द्र प्रतिमा के दर्शन करते तो यह अन्तः आवाज हो उठती है कि शान्त हैं तो यह और शान्ति का मार्ग है तो यह बाकी सब बेकार हमारी अन्तः आवाज हो उठती है। तो अरहंत भगवान मंगल हैं, क्योंकि वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं, अनन्त आनन्द के धनी हैं। और देखो यदि ऐसा मैं नहीं हो सकता तो फिर ऐसे भगवान को मानने की जरूरत कुछ न रहेगी। यदि में परमात्मास्वरुप नहीं बन सकता तो परमात्मा को भजने की जरुरत क्या है ? बोलो क्या जरुरत है ? परमात्मा हमारा कर्ता धर्ता है नहीं। सभी पदार्थ अपना स्वरुप लिए हुए हैं और इसी कारण उनका उत्पाद व्यय ध्रौव्य होता रहता है। तो बाहर में तो मेरी कुछ बात परिणति होती नहीं और परमात्म-स्वरुप में हो सकता नहीं फिर कारण बतलावो-क्यों भगवान को पूजा जाय ? भगवान को पूजने का एक यही प्रयोजन है कि जैसा प्रभु का स्वरुप है वैसा ही मेरा स्वरुप है, और जिस मार्ग से प्रभु बने हैं उस मार्ग से मैं भी प्रभु हो सकता हूं और शरण सार उत्कृष्ट धाम यही है। तो मंगल क्या ? जो पापों को गलाये, सुख को पैदा करे उसे मंगल कहते हैं तो अरहंत भगवान का स्मरण पाप को गलाता है और सुख को उत्पन्न करता है, इसलिए अरहंत भगवान मंगल हैं। घर में बच्चों का पालन करें, उनसे रागकी बात भी कहें, पर निर्णय यह रखें कि ये मेरे लिए मंगल नहीं हैं। इनसे मेरा उत्थान नहीं होने का बल्कि इनके पीछे विकल्प बना बनाकर इस संसार में परिभ्रमण करते रहने का उपाय रच रहे हैं। मंगल बाहर में कोई नहीं है। मंगल है तो अरहंत भगवान मंगल है। दूसरा बताया सिद्ध मंगल है। सिद्ध भगवान के मायने क्या ? शरीर रहित भगवान। देखिये तीन बातें माने बिना तो काम चलेगा नही, बाहर की बात कह रहे हैं। साधु और शरीर सहित भगवान और शरीर रहित भगवान। तीन बातें होती हैं, किसी भी सम्प्रदाय में साधु न माना जाय तो किसी को धर्म के मार्ग की बात नहीं मिल सकती, नहीं निभ सकती। साधुवों को सब मानते हैं। जो अपनी प्रभुता पाने के मार्ग में लगे हों सो साधु और साधु तपश्चरण करता है, अपने ज्ञान की साधना करता है, इसका परिणाम क्या है कि उनमें सर्वज्ञता प्रकट होगी, वीतरागता, निदर्षिता प्रकट होगी। हां हो गई, मगर शरीर तो अभी साथ लगा है। इसी को कहते है शरीर सहित भगवान और शरीर सहित भगवान कब तक शरीर सहित रहेंगे ? क्या शरीर सहित वे सदा रह सकेंगे ? यह शरीर कोई आत्मा के लिए भली चीज है क्या जिससे कि शरीर सदा के लिए चाहते हो ? अरे वे तो शरीर में

Report any errors at vkjain4@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहकर भी शरीर से अलग है, निर्लेप हैं। शरीर की स्थिति जब तक है। यह बात प्रभु में पायी जाती है कि यह औदारिक शरीर जब छूटता है प्रभु का तो कपूरवत उड़ जाता है। देखिये वैक्रियक शरीर भी यों ही उड़ जाता है। नहीं तो वैक्रियक शरीरों का बहुत बड़ा ढेर लग जाय। प्रभु का शरीर भी कपूरवत उड़ जाता है। केवल नख और केश रहते हैं, क्यों रहते कि इनमें जीव प्रदेश नहीं हैं, इसीलिए रहते हैं। और बाहर जो नख बढ़े हुए हैं इनमें जीव प्रदेश नहीं हैं तब ही तो नाखून नाई से बड़े शोक से कटा लेते हैं और बाहर में जो बाल निकल आये है उन्हें भी आप नाई से बड़े शोक से कटा लेते है। तो जहां जीव नहीं है, सम्पर्क नहीं है वे स्कंध पड़े रहेंगे मगर जहां-जहां पर प्रदेश का संबंध है वे सारे अणु कपूरवत उड़ जाते हैं। तो शरीर सहित भगवान माने बिना गुजारा न होगा। स्थिति है सचमुच ऐसी इसलिए कहा जा रहा है। शरीर न रहा तब शरीर रहित भगवान हो गये। इसके अतिरिक्त दूसरी कुछ स्थिति न रहेगी इसी को कहेंगे सिद्ध। तो कल्याण के मार्ग में ये तीन बातें हैं–अरहंत सिद्ध और साधु तथा परमार्थ है धर्म। ये चारों मंगल है।

धर्म की मंगल रूपता की मूर्ति सशरीर परमात्म:— आत्म स्वरुप जो शाश्वत शुद्ध अविकार ज्योतिर्मय अपने आपके सत्व के कारण जो स्वयं में है उसका जो साधन करता है, उसकी जो दृष्टि बनाता है, निरन्तर उसकी धुन में जो रहता हो वह कहलाया है साधु। तो साधु मंगल हैं वे पाप को हरेंगे और सुख को उत्पन्न करेंगे। यों ३ तो भिन्न चीजें है–अरहंत, सिद्ध, साधु और धर्म अपना अभिन्न स्वरुप है। धर्म आत्मा का चितस्वरुप शाश्वत टंकोत्कीर्णवत् निश्चल उसकी उपासना करना धर्म है। तो साक्षात मंगल रुप वह आत्मा है। आत्मा की पवित्रता किस बात में है कषाय न हो, अन्याय की बात न आये हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह की भावना न बने, ऐसा जो पवित्र बना है यह पुरुष साक्षात-धर्मरुप है, मंगलमय है। देखिये-जगत का कुछ मिलना तो है ही नहीं। मिट सब जायगा, वियोग सबका होगा। जब ऐसी अनिवार्य स्थिति है तो क्यों न ऐसा कार्य किया जाय कि जिससे मेरे आत्माका निश्चित उद्धार हो और देखो यह धर्मका कार्य ऐसा प्रभावक है कि जब तक संसारमें रहना पड़ेगा तब तक धन धान्य वैभव ऋद्धि सिद्धि से सम्पन्न होते हुए रहेंगे। भला जैसे किसीको विदेश भेजना है मानो अमेरिका भेजना है तो आप उसका बड़ा स्वागत करते हैं। उसको बड़े आनन्दमें पहुचाने जाते हैं, टीका करते हैं, कुछ भेंट देते हैं, सब में लम्बी बात करते हैं, तो भला बतलाओ जो पवित्र आत्मा, इस शरीरको छोड़ कर जाय, शरीरका सदा के लिए सम्बन्ध छोड़ कर जो मुक्त अवस्थामें जाय, जो सिद्धालयमें जाने वाला हो उसका अगर देव इन्द्रआदिक आदर करें, बड़े बड़े लोग

Version

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसका उत्सव मनायें तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ? वह आत्मा ऐसा प्रभावक है, समवशरण में रहने वाले जिनेन्द देव जिनकी सेवामें १६ वें स्वर्गोंसे देवदेवियां आकर नमस्कार करते हैं, स्वर्ग खाली हो जाता है, मूल वैक्रियक शरीर मात्रा स्वर्ग में हाजिर रहता है, तो भला बतलाओं उसमें किसका आकर्षण है ? जो यहां एक मनुष्यकी सेवामें आये, अरहंत पुरुष ही तो हैं, परमात्मा हो गए, पर कहलाते अभी मनुष्य हैं जब तक कि वे शरीर सहित हैं। शरीररहित हो जाने पर मनुष्य नहीं कहलता, तो उन बड़े बड़े देवेन्द्रो को क्या आकर्षण हुआ, कौन सी विवशता हुई कि वे सब अपने अपने धाम छोड़कर बडे उमंगके साथ गान तान करते हुए समवशरण में पहुचते हैं। क्या उनसे कोई धनकी आशा लगी ? क्या उनके ये रिस्तेदार लगते हैं ? बस वीतरागता का प्रभाव है। परमात्मा-स्वरूप जो निर्मल सर्वज्ञ हुए हैं उसका प्रभाव है कि देखो सभी इन्द्र वहां आ आकर प्रभुके चरणोंमें नमस्कार करते हैं। प्रभुके चरणोंमें पशुपक्षी भी पहुचे, मनुष्यों कां समूह भी पहुचे तो वह क्या है ? प्रभुका स्वरूप ऐसा प्रभावक है कि उसकी सुधसबको रहती है।

स्वरूपदर्शनमें सहानुशूतिः—जैसे किसी भूखे भिखारी को देखकर आपको दया आती है आप उसे बैठालते हैं, उसे भर पेट खाना खिलाते हैं, तो बतलाओं क्यों दया आती ? किसी भूखे मनुष्यको देख कर जो उसकी सेवामें आप लग जाते तो क्यों लग जाते. क्या कारण है ? असली कारण है ? असली करण तो यह है कि उस भूखेको देकर एक सहानुभूति हृदयमें आती है कि मेरे ही स्वरूपके समान इसका स्वरूप हैं। हमारा और इसका आत्मा एक समान है, ऐसा वह बेतारका तार लगा है कि एक दम सहानुभूति आती है और वहां खुदमें वेदना पैदा होती है। खुदमें दुःख उत्पन्न होता है, तो अपना दुःख शान्त करनेके लिए आप उस भूखेकी सेवा करते हैं, तो ऐसे ही प्रभुकी सेवा करने को बड़े बड़े पुरुष देव इन्द्र क्यों जाते हैं कि उनके स्वरूपके समान खुदका स्वरूप है सो अपनेमें खुद समझ बनती है और आना पड़ता है। तो अपने स्वरुपकी आराधना करना यही धर्मपालन है, तो ऐसे धर्म का जिसने पालम किया वह पवित्र मूर्ति है। अपने जीवन को ऐसा स्वच्छ बनाना चाहिए कि धुन तो रहे अपने आत्मस्वरुप की। मैं एक ज्ञान ज्योति स्वरुप हूं 'अन्य रुप मैं नहीं हूं" ज्ञानज्योति ही मेरा वैभव है. अन्य कुछ मेरा वैभव नहीं, ऐसा तो अन्तरंग में निर्णय रहे और वाहय प्रवृति हो ऐसी कि किसी का दिल न दुःखायें, किसी पर अन्याय न करें, किसी की निन्दा न करें, कि कोई खोटी व्यसन की बात चित में न लायें, अगर कहीं कुछ अन्याय किया जाने पर धन की प्राप्ति होती नजर आती हो तो उस धन का मौज छोड़ दें, उसे लेकर क्या करेंगे ? पर भीतर में अगर खोटे भाव आते हैं तो फिर

Report any errors at vkasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भव भवमें उसे वैभव न मिलेगा। जो खोंटे विकारभाव लायगा उसे ऋद्धि सिद्धि न मिलेगी हालांकि वर्तमानमें मानते हैं कि हमको इतना लाभ हो रहा, अरे पुण्यका उदय है तो हो गया, मगर खोंटे भाव करनेसे वह वैभव कम हो गया। खोटा रोजिगार करने से पैसा बहुत आता है यह बात तो सामने देखते हैं, न करें तो क्या करें। तो ऐसा विश्वास गलत है, सिद्धान्तसे वाह्य है। शुद्ध भाव रखेंगे तो भला हो जांयगा मगर ऋद्धि सिद्धि उसके पास अतुल आयगी। देखो बात तो यह है कि क्या करना है वैभव? बहुत से लोग तो कह देते है कि इससे बहुत बड़ा यश मिलता है।..... अरे उस यशका करना क्या है? यहां कोई किसीका मदद कर सकने वाला है क्या? क्या वे मेरे कोई परमेश्वर हैं, प्रभु हैं कि वे प्रसन्न हों जायें मुझपर, उनके अच्छा कहलवाने से कहीं मेरा उद्धार हो जायगा क्या? नहीं हो सकता, तो फिर भावना अपनी पवित्र रखें, शुद्ध प्रवृत्तिसे चलना चाहिए, यह है अलौकिक आनन्द पानेका मार्ग तो मंगल चीज चार हैं।

अरहंत सिद्ध साधू व धर्मकी लोकोत्तमता:— लोकमें उत्तम चीजें भी चार हैं— चत्तारिलोगत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहूलोत्तागुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। याने लोकमें उत्तम चार हैं अरहंत, सिद्ध, साधु और धर्म जो धर्मके मार्ग में चलना चाहे, उसे बाहर में इस ३ का ज्ञान करना आवश्यक है कि साधु ऐसे होते हैं और उसके बाद शरीर सहित भगवान बनते हैं। फिर शरीर रहित भगवान कहलाते हैं। और इतनी बात अगर ज्ञान में नहीं है तो वह क्या करेगा आनेका प्रोग्राम करही नही सकता। कोई ऐसा डर कर कि मैं ऐसी क्रिया करुं तो भगवान दुःख देगा, ऐसा डर कर अगर कोई धार्मिक क्रिया काण्ड करे तो वह धार्मिक न होगा। यह तो उस तरह है कि जैसे लोग सरकार के कानूनको तोड़ तो नहीं सकते इसलिए उनके पीछे लगे रहते हैं, वे विवश है जानते हैं कि इसीमें मेरा भला है। ऐसे हीं अगर कोई धर्मके मार्गमें भी लगे तो वह वास्तविक धर्मात्मा न कहलायगा। तो जिसको अरहंत सिद्ध साधुका विश्वास है वह धर्म के मार्गमें लगा है। लोकमें चार उत्तम हैं, अरहंत, सिद्ध, साधु और अपने आपमें अनादि अनन्त शाश्वत प्रकाशमान चैतन्यमात्र आत्मस्वरुप उसकी दृष्टि लोकमें उत्तम है। अपना प्रियतम कौन है! यह ज्ञानदर्शनस्वभावी, ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा, यह ही अपना प्रियतम है। इससे बढ़कर और कोई प्रिय नहीं होता। अगर और कुछ प्रियतम होता तो वह तो मोहका प्रताप है। बाहरमें माने कोई प्रियतम तो यह तो उसके मोहका प्रभाव है। एक सेठ के यहां एक नौकरानी थी। वह अभी दो चार दिन पहले ही उसके घर आयी थी। सेठानी का कोई ८–९ सालका एक बालक था जो किसी विद्यालयमें पढ़ने जाता था। एक दिन वह दोपहरका नास्ता न ले गया तो सेठानी ने नौकरानी से कहा–अरी नौकरानी-मेरा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बालक अमुक विद्यालयमें पढ़ता है उसे नास्ता दे आ। तो नौकरानी बोली में तो अभी आपके बच्चेको अच्छीतरह पहचानती भी नहीं। ::: अरे मेरे बच्चेको क्या पहचानना। विद्यालयमें जो सबसे सुन्दर बच्चा दिखे वही मेरा बच्चा है, उसे दे आना। इसप्रकारके गर्वभरे शब्दोंमें सेठानी बोली नौकरानी नास्ना लेकर विद्यालय गई। उसी विद्यालयमें उस नौकरानी का भी बच्चा पढ़ता था। तो सेठानीने विद्यालयके सभी बच्चोंको देखा मगर सब में से सुन्दर उसे उसका ही बच्चा दिखा सो वह उसीको नास्ता देकर चली आयी। जब सेठानीका बालक शामको घर आया तो सेठानीसे बोला-मांजी आज आपने मेरे वास्ते नास्ता न भेजा था !::: अरे भेजा तो था बेटा (नौकरानी को बुलाकर) अरे तू ने मेरे बेटेको आज नास्ता नहीं दिया ! नौकरानी—अरे दिया था। तुमने यही तो कहा था न कि उस विद्यालयमें जो सबसे सुन्दर बच्चा दिखे वही मेरा बच्चा है, उसे दे आना, तो मैंने विद्यालयके सारे बच्चे देखा, पर मुझे तो मेरा ही बच्चा सबसे सुन्दर दिखा, सो उसीको नास्ता देकर में चली आयी। देखिये—कैसा ही हो अपना बच्चा भले ही काला हो, फटे पुराने वस्त्र पहने हो मगर उसे तो अपना ही बच्चा सबसे सुन्दर जचेगा। वस्तुतः देखो तो अपने को कुछ भी बाहरमें प्रिय नहीं है, क्योंकि किसी भी बाह्यय पदार्थकी दृष्टि रखनेसे इस आत्मामें शान्तिकी प्राप्ति नहीं होती।

आत्मस्वरूपके चिन्तनका महत्त्व—बस, सोऽहं, जो प्रभु है सो में हूँ। ऐसा जब चिन्तन चलता है और प्रभुके स्वरुपकी स्थापना अपनेमें होती है और उस रहस्यका भान करके अपने अन्तस्तत्त्वमें लीन हो जाता है अहं रह जाता है, व उस अहंकी अनुभूति में जो आनन्द झरता है वह अकथनीय है, कर्म कटते हैं आनन्दसे, कष्टसे नहीं, मगर सांसारिक सुखको आनन्द न बोलें अरे निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न होने वाला जो आत्मीय सत्य आनन्द है वही भव-भवके कर्मोको नष्ट करता है। कष्ट करनेसे कर्म नहीं नष्ट हुआ करते बड़े--बड़े तपस्वी साधु पुरुष तपस्या करते हुए बड़े-बड़े कष्टोंका अनुभव करते हैं किन्तु अपने अन्तःस्वरुपको निरख निरखकर बड़े तृप्त होते हैं। लोगोंको ऐसा दिखता है कि गर्मीमें पहाड़पर बैठे हैं बेचारे, कितना कष्ट सह रहे हैं, पर वहा तो वे भीतरमें आनन्द ले रहे हैं। वहां उन्हें कोई कष्ट नही होता। कष्ट सहने से कर्म नहीं कटते किन्तु आत्मीय आनन्द प्राप्त करनेसे कर्म कटते है। अपने आपके भीतर यह बात बसी हो कि विशुद्ध आनन्द स्वभावका आनन्द कैसे मिले ! उसका उपाय बनाये। सभी गृहस्थ लोग अपने घरके सभी लोगोंको धर्मके रंगमें रंगदे एक ऐसा धार्मिक वातावरण घरमें बनाये कि सब धर्ममें लगे रहें। आपको सहयोग मिलेगा शुद्ध वातावरण बनानेसे। अपना उपयोग शुद्ध धर्ममय हो।

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो ज्ञानानन्द स्वभाव है वही मेरा वैभव है। ज्ञानानन्द के परिणमन के सिवाय मैं और कुछ करता नहीं हूँ। और अनुभवन भी ज्ञानानन्द का किया करता हूँ। जब ऐसी मेरेमें अपने आपपर बीत रही तो किसी दूसरेसे मेरा सम्बंध क्या! यह बात सोचना चाहिए। और इसीके परिचयके लिए बड़े—बड़े शास्त्र रचे गए हैं तब ही तो मोक्षशास्त्र में जब जीवादिक ७ तत्वोंका वर्णन किया जायगा उससे पहले के सारे उपाय बताये जा रहे हैं कैसे तुम लोक-व्यवहार करो, कैसे तुम तत्वका परिचय करो, कैसे तुम उन तत्वोंके काममें लगे वह परिचय करना, अपने आपके स्वरूपका अनुभव पाना बहुत आवश्यक है। तो ऐसा अपने आपको देखें अपनेमें प्रसन्न होने की एक आदत बनावें और बाहरमें ममताको ढीला करे। कुछ बिगड़ गया तो बिगड़ गया कुछ आ गया तो आ गया उससे मेरा कुछ विकास नहीं और कुछ चला गया तो मेरी कोई हानि नहीं। मैं तो उपयोग मात्र हूँ मेरा उपयोग निर्मल रहे तो मेरेको सब कुछ प्राप्त है और मेरा ही उपयोग बिगड़ गया तो मेरे को कुछ भी प्राप्त नहीं है। ऐसा अपने आपका विचार रखें और अपना जीवन सफल करे।

वास्तविक व्यवहार शरण व परमार्थ शरण—मेरेको शरण क्या है चत्तारिशरणं पव्वज्जामि। अरहंतशरणं पव्वज्जामि सिद्ध शरणं पव्वज्जामि साहूशरणं पव्वज्जामि केवलि पण्णत्तोधम्मो शरणं पव्वज्जामि। मैं ४ मैं अरहंतकी शरण को प्राप्त होता हूँ। मैं सिद्धकी शरणको प्राप्त होता हूँ साधुकी शरणको प्राप्त होता हुं और धर्मकी शरणको प्राप्त होता हुं। अरहंतकी शरण क्या अरहंत भगवान के स्वरुपका जो स्मरण है वह ही अपने लिए शरण है। निर्दोष वीतराग परमात्मा सर्व द्वंद फंदोंसे रहित है। वह भी मेरे ही समान पुरुष थे अथवा और पुरुष भी थे चारों गतियोंमें भटकने वाले भी थे लेकिन मनुष्य भव पाकर कैसा आत्मश्रद्धान आत्मज्ञान और आत्मरमण की रफ्तारकी कि वे परमात्मा हो गए। सदाके लिए संकटोंसे छूट गए। तो ऐसा क्या मैं नहीं हो सकता। जब हो सकता! तब ही सही मगर मार्गमें लगना चाहिए। भगवानके स्वरुपका स्मरण मेरे लिए शरण है अरहंत शरण हैं सिद्ध शरण हैं अरहंत पदवी किसी जीवके सदा नहीं रहती जब शरीर सहित हैं तब अरहंत है और जब शरीर रहित हो गए तब सिद्ध है। अरहंत सिद्ध तो यहां उपलब्ध नहीं हैं। उनका दर्शन कहां है! वर्तमान में समागम मिलेगा तो साधुजनोंका मिलेगा। तो साधुकी शरणको मे प्राप्त होता हूँ। साधुकी शरण गहनेसे बहुत उमंग और उत्साह जगता है। जैसे पुराणमें बहुत सी कथायें लिखी हैं इनमें उतना आदर नहीं बनता जितना कि यहां कोई महापुरुष दिख जाय उसमें बनाया जाता है। साधु तो यहां पाये जाते है ज्ञान ध्यानके तपश्चरणमें लीन रहते है विषय कषायोंसे दूर रहते हैं

Version

http://sahjanandvarnishastra.org/

आरम्भ परिग्रह को त्यागे रहते हैं तो ऐसे साधुओं की उपासना, साधुके भीतरी रत्नत्रय का आराधन यह हम आपके लिए शरण है। मैं साधुकी शरण को प्राप्त होता हूँ। ये हैं सब भिन्न जीव। मेरा स्वरूप मेरे ज्ञानमें बसा रहे तो मैं शरणको प्राप्त होता हूँ, मेंरे ज्ञानमें बाहर की कोई चीज आयी तो मैं अशरण हो गया। मैं मेरी दृष्टिमें रहूँ, ज्ञानानन्दस्वभाव यह अन्तः स्वरूप परमात्मा मेरेज्ञानमें रहे तो मेरेको शरण मिल रहा है। तो मंगल उत्तम शरण सब कुछ अपने आप में है। किसी भी समय अधीर होने की घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं, क्यों कि जो मेरा है वह मेरे से कभी अलग नहीं हो सकता। जो मेरा नहीं वह मेरे में कभी आयगा नहीं यह वस्तुका स्वरूप है, भ्रमको छोड़ो और प्रसन्न रहो।

लोकव्यवहारके मूलभूत चार निक्षेपों के वर्णनका उपसंहार:—पदार्थका लोकव्यवहार चार निक्षेपों से होता है नामनिक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप, भावनिक्षेप। नाम रख देना नाम निक्षेप है। किसीमें वस्तुकी स्थापना करना द्रव्य निक्षेप है और आगामी पर्यायके अभिमुख है यह द्रव्य, यह द्रव्य आगामी पर्याय उत्पन्न करेगा। इस प्रकार की बुद्धि व्यवहारको द्रव्यनिक्षे कहते हैं, और जो पदार्थ वर्तमानमें जिस पर्यायरूपमें है उसही रूपमें परिचय व्यवहार करना भावनिक्षेप है। इन चार निक्षेपोंमें परस्पर कोई विरोध नहीं कि जब नामनिक्षेप है तो तीन निक्षेप न रह सकेंगें। सबकी अलग-अलग दृष्टियां हैं, अलग-अलग प्रयोजन हैं। उन दृष्टियोंके कारण चारों का एक साथ वर्तन हो सकता है। अब जरा प्रयोजन देखो अगर नाम निक्षेप न माना जाय तो जब किसीका नाम ही नहीं तो फिर कौन किसे बुलायगा? कौन किसे समझायगा? किसका क्या परिचय है, न फिर कमाई रहेगी, न खानापीना बनेगा, न घर गृहस्थीमें रहेंगे,। तो नाम होने पर ही तो व्यवहार होता है, नाम न रहे तो व्यवहार करना नहीं चल सकता। सब एक तरह के पत्थर जैसे हो गये। फिर कोई व्यवहार ही नहीं हो सकता। तो नामनिक्षेप लोक व्यवहारमें आवश्यक है। स्थापना निक्षेप, देखते ही हैं फोटो बनवाते हैं तो उसमें पिताकी यादगारी रहती है। अथवा प्रतिमामें भगवान की स्थापना करते हैं और कितना अधिक लाभ लूट लेते हैं अथवा नाम भी रख दियो पर इस नाम वाला यह व्यक्ति इस प्रकार की बुद्धि हुए बिना वह व्यवहार नहीं चल सकता। यह सब तो द्रव्यनिक्षेप है। जिसमें आगमपर्यायकी बात चित्तमें आती हो वह है द्रव्यनिक्षेप द्रव्यनिक्षेप न हो तो कोई कुछ काम ही नहीं कर सकता। आप रोटी बनाने बैठे तो आप आटा सानकर रोटी बनाते हैं। आप समझते हैं कि इस तरह रोटी बनेगी। तो नई पर्याय के अभिमुख है द्रव्य यह बात ध्यानमें है तब तो कोई कार्य करता है। तो द्रव्यनिक्षेप न हो तो कोई कुछ कर ही न सकेगा और

Report any errors at vitasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और भावनिक्षेप तो स्पष्ट बात है। वस्तुस्वरुप है, जो जिस समय में, जिस पर्याय में है उस पर्यायरुप में उस सम्बन्ध में निरखना भावनिक्षेप है। इस तरह चार निक्षेपों के द्वारा जीवादिनक ७ तत्वों का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का और सभी का लोक व्यवहार होता है। इस तरह एक प्रतिपादन चलता है। समझने समझाने का एक व्यवहार चले उसके उपाय को बताकर अब यह जिज्ञासा की जा रही है कि इन चार निक्षेपों के द्वारा जिनका लोक व्यहार कराया जाता है उनका परिचय अधिगम विज्ञान किस प्रकार होता है जिससे कि यह लोक प्रसिद्ध व्यवहार की बात चली, लेकिन अधिगम न हो तो लोकव्यवहार भी कैसे चल सकता ? तो वस्तु का पहिले अधिगम तो बनायें, जानकारी तो बनायें। कैसा पदार्थ है ? क्या ढंग है ? तो उस पदार्थ के बारे में व्यवहार भी यह ठीक बन सकेगा। तो जितने व्यवहार किए गए उनके अधिगम की बात कही जा रही कि उन सबके जानने का उपाय क्या है।

प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥ वस्तु व वस्तुत्व के अधिगम का उपाय प्रमाण और नय— तत्व का सम्यग्दर्शन आदिका अधिगम होता है, प्रमाण और नयों के द्वारा। जानकारी बनती है इन दो उपायों से नयों के द्वारा। जानकारी बनती है इन दो उपायों से वस्तु के सर्व देशों की जानकारी होना प्रमाण है और वस्तु के एक देश की जानकारी होना सो नय है। प्रमाण के द्वारा वस्तु का परिचय होता है नयों के द्वारा भी परिचय होता है अब एक आशंका की जा सकती है— क्या कहा गया इस सूत्र में कि प्रमाण और नयो के द्वारा वस्तु की जानकारी होती है। तो यह बतलाओ कि उस जानकारी की जानकारी कैसे होगी। प्रमाण और नय के द्वारा तो वस्तु की जानकारी होती और उस जानकारी की जानकारी कैसे होती ? तो जानकारी की जानकारी नही बनती याने ज्ञान से ज्ञान नहीं बनता। तो लो जिस ज्ञान के द्वारा हम वस्तुकों जानेंगे। जब वह ज्ञान ही हमारे ज्ञानमें नहीं है तो वस्तुको हम ज्ञान क्या सकेंगे ? जिसके द्वारा द्रव्यका ज्ञान होता है इसका ही ज्ञान नहीं है तो हम अन्य पदार्थको कैसे समझावे ? तो अब बताओ कि उस जानकारी की जानकारी कैसे होती है ? कहेंगे कि अन्य प्रमाण नयोंसे होती है तो उसकी जानकारी अन्य प्रमाणोंसे होगी यों तो अनवस्था दोष आयगा। यदि कहो कि प्रमाण और नयोंसे वस्तुस्वरूप की जानकारी हुई और यह जानकारी स्वयमेव हुई ऐसे ही पदार्थ स्वयमेव क्यों नहीं जाननेमें आ गया ? एक ऐसी आशंका रखी गई है। आशंका रखने वाला कुछभी कह सकता। यह एक आपत्ति दी, लेकिन यह आपत्ति यहां नहीं आ सकती। देखो प्रमाण और नयसे जीवादिक ७ तत्त्वोंकी जानकारी हुई, अब इस जानकारी की जानकारी कैसे होती है ? तो

Version 1.1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देखिये कि अगर जानकारी अभ्यस्त विषयक है तो स्वतः हो जाती है और जानकारी अभ्यस्त विषयक नहीं है तो दूसरी जानकारीसे होता है मगर अनवस्था दोष न आयगा। दो चार के जाननेके बाद ऐसा अवसर आयगा कि हमें खूब परिचय है और इसी को कहते हैं अभ्यास दशा और थोड़ा यह दार्शनिक विषय है, समझनेकी चीज है। हम झट कह तो देते हैं कि प्रमाण और नयोंके द्वारा तत्वका अधिगम होता है, पर इस अधिगमका अधिगम कैसे होता है ? जब तक हम इस अधिगमका परिचय न पायें तो उस अधिगमके द्वारा हम वस्तुको भी कैसे जान सकते ?

अभ्यास दशामें स्वतः ब अभ्यास दशामें परतः प्रामण्योत्पत्ति—तो देखिये जानने की दो स्थितियां होती हैं- (१) अभ्यास की स्थिति और एक अनभ्यास की स्थिति। जैसे आप किसी दूसरे गांवको जा रहे हैं जहां आप कभी गए नहीं, चल दिया। रास्तेमें प्यास लगी। आप पानी की तलाश करते हैं, वहां आप कुवा बावड़ी अथवा तालाब आदिकी तलाश करते हैं। चलते-चलते कहीं मेढ़कों की टर्र टर्रकी आवाज सुनाई दी, तो आपने अन्दाज लगाया कि यहां कहीं पानी होना चाहिए। अब देखो ज्ञान तो हो गया, मगर वह अनभ्यास स्थिति हैं। यहा तालाब है, इस तरह का परिचय हुआ मगर उस परिचयमें भी एक जिज्ञासा होती है कि मेरा ज्ञान सही है कि नहीं। उस ज्ञानके सहीपने को जाननेकी भी उसको इच्छा होती है ना अनभ्यास स्थितिमें। तो कुछ समय बाद और चले तो फूटे घड़े कहीं मिले उससे कुछ और दृढ़ता हुई कि हां यहां कहीं पानी तो जरूर होना चाहिए। थोड़ी दूरी जाने पर उसे पानी दिखने लगा तो वहां उसे पूरी दृढ़ता हुई। अब उसकी जानकारीमें कुछ कमजोरी तो नहीं रहती। कुछ समय तक तो कमजोरी रही जब तक पानी न दिखा अब कमजोरी नहीं रही क्योंकि पानीका परिचय तो हमारा अभ्यास है जब अभ्यास वाला अवसर आता है तब जानकारीका तात्ता नहीं लगता कि किसके द्वारा जानकारी हुई, जहां अभ्यास होने जैसी स्थिति आती है तो जानकारी परिपूर्ण हों जाती है। तो प्रमाण नयोंके द्वारा जीवादिक तत्वोंका अधिगम हुआ। अब यह अधिगम सही है कि नहीं। इस अधिगम में भी अधिगम करनेके लिए कुछ और युक्तियां आने लगती कि अभ्यास जैसी स्थिति बन जाती है पर वहां अनवस्था नहीं होती। तो देखिये कुछभी वस्तुको हमने जाना तो जाननेमें जो प्रामाण्य आया उसकी उत्पत्ति तो परसे हुई मगर प्रमाणमें प्रमाणताकी जानकारी (ज्ञप्ति) अभ्यास दशामें स्वयं हो जाती है और अनभ्यास दशामें परसे हुआ करती है। यों अधिगमका भी अधिगम हो जाता है प्रकृणमें यह बात कहीं जा रही कि जीवादिक तत्वोंका और सम्यग्दर्शन आदिकका अधिगम प्रमाण और नयोंके द्वारा होता है। प्रमाणका

Report any errors at vikasd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थ क्या है ? वस्तुके सर्व देशोसे जानना प्रमाण है और वस्तुके अन्शको जानना नय हैं यह मूल लक्षण है प्रमाण और नयका सर्वदेश वस्तुका जानना प्रमाण है और एक देश वस्तुको जानना नय है। प्रमाणके द्वारा भी वस्तुका परिचय होता और नयके द्वारा भी वस्तुका परिचय होता है।

नयको अल्पस्वरपना होनेसे प्रसंग बोलनेका प्रसग होनेपय पूज्यताके कारण प्रमाण का प्रथम निर्देशन—अब इस सूत्रमें कुछ व्याकरण सम्बंधी बात कह रहे हैं कि प्रमाण और नय ये दो चीजें बतलाया न, तो अब यह बतलाओ कि कठिन शब्द किसमें है ? केवल वर्ण की वात कह रहे हैं। प्रमाण यह कठिन लग रहा कि नय सुननेमें बोलनेमें नय तो कठिन नहीं है, प्रमाण शब्द जरा कठिन है, क्योंकि प्रमाण में तीन स्वर हैं प्र में अ म में अ और ण में अ और नयमें २ स्वर हैं। तो जिसमें कम स्वर हैं उसका नाम पहिले रखना चाहिए, और जिसमें ज्यादह स्वर हैं उसको बादमें रखना चाहिए। यों बनाना था नय प्रमाणैरधिगमः एक शंका रखी गई है कि प्रमाणको पहले क्यों रखा ? देखो जब बोलचाल भी अपना करते है कई लड़कोके कई नाम हैं और उन लड़कोंको जब हम बुलाते हैं, नाम पुकारते हैं एक साथ क्रमशः निरन्तर तो छोटे अक्षर वाले नामको पहले बोल देते हैं और बड़े अक्षर वाले नामको बाद में बोला करते हैं कुछ ऐसी प्रकृति भी है लोक व्यवहार की। वैसे भी देखो अगर किसी लोहारके यहां दो आदमी जायें एक को बनवानी है कड़ाही और एकको बनवानी है सूई तो अब आप ही बताओ वह पहले क्या बनायेगा ? सूई, क्योंकि वह छोटा काम है, उसे बना देगा। कड़ाही बनानेमें तो कोई चार दिन लगेंगे और सूई बनानेमें कोई चार मिनट लगेंगे। तो वह सोचता है कि पहले इस सूई वालेका काम निपटा दूं, इसे अधिक बैठाने से फायदा क्या ? बादमें कड़ाही बनानेका काम करता रहूँगा। तो पहले छोटा काम निपटा दिया जाना है, बादमें बड़े कामको मौका दिया जाता है। तो प्रमाण और नय इनमें छोटा है नय और बड़ा है प्रमाण तो नयका नाम पहले रखना चाहिए और प्रमाणको बादमें रखना चाहिए "नयप्रमाणैरधिगमः" आशंका ही तो है शंका जो चाहे रख सकता है, पर समाधान यह है कि भले ही कोई शंकाकार की बात ठीक लग रही है लेकिन प्रमाण और नयमें पूज्य तो प्रमाण है, बड़ा तो प्रमाण है। जो सर्वदेश वस्तुको जाने उसकी महत्ता है या जो एक देश वस्तुको जाने उसकी महत्ता है ? देखो एक देश वस्तुको जानने वाला नय सच्चा भी होता है, खोंटा भी होता है। अगर प्रमाणका सहारा छोड़े दें प्रमाणका आलम्बन छोड़ दें तो नय मिथ्या कहलाता है और प्रमाणकी बुद्धि बनी हो और तब नय कहा जाय तो वह समीचीन होता है तो देखो नयको सिद्ध करने के लिए भी प्रमाण आधार है इसलिए

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी पूज्य है और प्रमाण सर्वदेश जानता है इसलिए भी पूज्य है। तो पूज्यका नाम पहले लेना या साधारणका नाम पहले रखना ? पूज्यका नाम पहले रखना योग्य है इसीकारण प्रमाणको पहले कहा है और नय को बादमे। प्रमाणनैयरधिगमः अब प्रमाण और नवके द्वारा पदार्थका अधिगम होता है जो वस्तुके सर्वदेश को जाने ऐसे ज्ञानको कहते हैं प्रमाण और जो वस्तुके एक देशको जाने ऐसे ज्ञानको कहते है नय। देखो नय भी ज्ञान है और प्रमाण भी ज्ञान है, मगर सकल ग्राही ज्ञानको तो कहते है प्रमाण और एक देश ग्राही ज्ञान को कहते है नय। तो यहां यह शंका हो सकती है कि एक देश जाना तो भी ज्ञान ही तो है और सर्वदेश जाने तो भी ज्ञान ही तो है एक देश जाना तो वहां एक देशका निश्चय हुआ जितना जाना वही प्रमाणभूत होना चाहिये। समाधान एक देश जाना उतना ही तो। सत नहीं है वह संद्श है। संद्श ग्राही ज्ञान प्रमाण नहीं होता। प्रमाण से ग्रहण किये गये सत्में सदंशको जानने पर वह प्रमाणांश कहा जा सकता। प्रमाणसे ग्रहण न किये गये हो फिर सदंश जाने तो वह मिथ्याज्ञान है।

प्रमाणवत नयमें स्वापूर्वार्थका निश्चय होनेसे नयमें प्रमाणता न होनेके कारणकी जिज्ञासा—प्रमाणके लक्षणमें यह बात कही जाती है कि जो अपना निश्चय करे और अपूर्व अर्थका निश्चय करे उसे प्रमाण कहते हैं। तो सकलता ग्राही ज्ञान स्व और परका निश्चय करता है उसीप्रकार विकलग्राही ज्ञान भी नयके स्वका और अपूर्व अर्थका निश्चय करता है। स्वके निश्चयके मायने क्या है कि जिस ज्ञानके द्वारा कोई पदार्थ जाना गया है वह ज्ञान एक सच है यह पदार्थ भी ऐसा ही है ऐसा दोनों तरफ निर्णय होनेका नाम है स्व और पर का निश्चय यहां स्वके मायने आत्मा न लेना किन्तु जिस ज्ञानके द्वारा हम जान रहे हैं वह ज्ञान तो है स्व और जो वस्तु जाननेमें आती है वह वस्तु है पर अर्थ। तो जैसे हमने समझा कि यह प्रमाण है तो सही जान लिया हमने अब सही को सही जाननेमें प्रमाणमें दो बातें आयीं कि यह घड़ी ही है और इसका जानने वाला जो ज्ञान है वह सच ही है। दोनों तरफ दृढ़ता होती है कि नहीं। पदार्थके अधिगम मे भी दृढ़ता है और जिसके द्वारा जाना गया है उस ज्ञानमे भी दृढ़ता है। और इसको जानने वाला जो ज्ञान है वह सच ही है दोनों तरफ दृढ़ता है कि नहीं। पदार्थके अधिगम में भीं दृढ़ता है और जिस ज्ञानके द्वारा हमने पदार्थ जाना उसमें भी दृढ़ता है। क्या ऐसा होता है कि कोई पदार्थको दृढ़तासे जाने यह घड़ी ही है और कुछ नहीं है। यह तो दृढ़ता से जाना है और यह शंका करें कि यह मेरा ज्ञान सही हे कि नहीं ? ऐसा तो नहीं होता दृढ़तासे होता है तो दोनों तरफ होता है और संशय होता है तो दोनों तरफ होता है। तो एकके मायने ज्ञान हैं जिस ज्ञानके द्वारा

Copyright Errors: vidvat@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हमने पदार्थको जाना वह ज्ञान है स्व और जो पदार्थ जाना गया है वह है अपूर्वार्थ तो जो स्व और अपूर्वार्थका अधिगम करे सो प्रमाण है। तो देखो जैसे सकल ग्राही ज्ञानमें स्व और अर्थकी निश्चयता है इसीप्रेकार नयसे जाने हुए प्रसंगमें भी स्व और अर्थकों जाननेकी निश्चयता है। तो पमाण नय को भी कह देना चाहिए। यह शंका ता ठीक लग रही ना ?

नयमें प्रमाणत्व और अप्रमाणत्व न होकर प्रमाणांशत्वकी उपपत्ति—उक्त शंकाका समाधान यह है कि हम नयको प्रमाण नहीं कह सकते। एक तो यह प्रमाण एक देश नहीं है एक देश प्रमाणका कोई मूल्य नहीं है। एक देश प्रमाणका अर्थ है कुछ प्रमाण बाकी अप्रमाण कुछ प्रमाण और कुछ अप्रमाण हो ऐसा कुछ पमाण नहीं होता है। प्रमाण जो होता है। वह तो पूरा ही होता है अब यहां बात यह देखना है कि नयका लक्षण तो यह है कि अपना और पदार्थका एक देश रूप से निर्णय करना और प्रमाणका लक्षण है पूर्ण रूपसे अपने को और पदार्थको जानना तो अपनेको और पदार्थको एक देशरूपसे जानना यह ज्ञानमें तो आ जायगा मगर यह प्रमाणमें न आयगा। कह सकेंगे तो प्रमाणका अंश कहेंगे। एक देश ज्ञान प्रमाण नहीं, किन्तु प्रमाणका अंश है। जैसे कोई पूछे कि बतलाओ समुद्रकी जो एक बूंद है वह समुद्र है या असमुद्र ? समुद्रकी एक बूंद या मानो थोंड़ा पानी लिया और पूछते हैं बतलाओ यह जल समुद्र है या असमुद्र है ? अगर कोई कहे कि यह जल समुद्र है तो यह बात सम्पूर्ण गलत सी लग रही कि बूंद है। यदि इतना पानी समुद्र है यानि समद्र की एक बूंद भी अगर समुद्र है तो एक जो बड़ा भारी समुद्र दिख रहा उसे एक समुद्र नहीं कहेंगे। ये तो अनगिनते समुद्र हैं, यह बोलना चाहिए। तो यह नहीं कह सकते कि जो एक बूंद है वह समुद्र है। और, यह भी नही कह सकते कि जो यह चुल्ल भर जल है या एक बूंद पानी है वह असमुद्र है। अगर यह जल की बूंद असमुद्र है तो दूसरा बूंद भी, फिर तीसरा बूंद भी यों सारे बूंद असमुद्र है। तो असमुद्र का जो समुद्र है वह तो असमुद्र रह गया, वह समुद्र नहीं बन सकता। तब क्या कहा जायगा ? भाई सुनो-यह जो बूंद है सो यह समुद्र नहीं असमुद्र नहीं, किन्तु समुद्र का अंश है। अब समुद्र का अंश एक बूंद भी है। समुद्र का अंश यह अन्य बूंद भी है। ऐसे नाना अंशों का जो समुदाय हो गया वह समुद्र है। इसी प्रकार नय प्रमाण का अंश है—निश्चयनय भी प्रमाण का अंश है, व्यवहारनय भी प्रमाण का अंश है, और दोनों नयों से जो पूर्ण है सो प्रमाण है। यहां एक बात और समझना चाहिये कि निश्चयनय का जो विषय है वह पूर्ण वस्तु नहीं, व्यवहारनय का जो विषय है वह पूर्ण वस्तु नहीं, किसी भी नय का विषय पूर्ण वस्तु नहीं कहलाता, क्योंकि नयका विषय ही वस्तु का एक अंश है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रमाण से संतुलित होने पर नयकी उपयोगिता:— यद्यपि यह बात बताई गई है कि निश्चयनयका विषय जो एक स्वरुप है, स्वभाव है, पारिणामिक भाव है उसका आश्रय करें तो हमको मुक्ति का मार्ग सुगम होता है यह बात जरूर है मगर यह हमको कब है जब कि प्रमाण से सब तरह की बात का निर्णय करने वाला पुरुष निश्चयनयका आलम्बन ले तो उसके मोक्ष का मार्ग बनेगा। जहां प्रमाण ही ठीक नहीं है और निश्चयनय के विषय को ही समग्र वस्तु मान लिया वह अंधेरे में है, ऐसे ही तो एकांत अद्वैतवाद हैं। एक ब्रह्म है अपरिणामी है हिलता डुलता भी नहीं, परिणमन भी नहीं होता, अवस्था भी उसकी नहीं, ऐसा एक ब्रह्म है। यह है निश्चयन के एकान्त का सिद्धान्त याने निश्चयनय के विषय को ही पूर्ण वस्तु मानने का यह परिणाम है। वस्तु पूर्ण न तो निश्चयनयका विषयभूत है और न व्यवहारनयका विषयभूत है। वह तो प्रमाण का विषयाभूत है। अब रही एक कल्याण मार्ग के पाने की बात। तो देखिये-निश्चयनय का विषय जानकर जैसे कल्याण मार्ग पाने में सहयोग है वैसे ही व्यवहार का विषय जानकर भी कल्याण का मार्ग दृष्ट होता है? स्वभाव दृष्टि स्वभावालम्बन स्वभाव रुप अपने आपका निश्चय करना सो निश्चयनय। निश्चयनय से चलेंगे तो स्वभावदृष्टि में सहयोग मिलता है यह तो स्पष्ट है, परन्तु व्यवहारनय से चलते हैं तो भी स्वभावदृष्टि के लिये परमशुद्धनायका विषय पाने के लिये सहयोग मिलता है। जहां यह जाना कि ये रागादिक भाव औपाधिक हैं, मेरे स्वरुप नहीं हैं। तो इतना निश्चय हो गया कि मेरे स्वरुप में रागादिक नहीं हैं। तब क्या हैं? बस एक चैतन्यस्वभाव है, औपाधिकभाव है, मेरा नहीं है। ऐसा निषेध करने में व्यवहारनयका प्रमुख हाथ है, क्योंकि विभाव औपाधिक है, अतएव मेरा नहीं है इस विधि से चैतन्य स्वरूप पर पहुंच हुई योंनय से भी हमको स्वभावदर्शन में सहायता मिलती है। इतनी बात अवश्य है कि व्यवहारनय से हम निश्चयनय का उपाय पाते हैं और निश्चयनय के उपाय के बाद हम अनुभव का उपाय पाते हैं, फिर अनुभूति आती है, अनुभव में न निश्चयनय है, न व्यवहारनय है। अनुभव ही एक सर्वोपरि तत्व है।

नय के प्रमाणत्व व अप्रमाणत्व का निर्णय— यहां यह बात बतलायी जा रही है कि नय प्रमाण है या अप्रमाण। नय को न प्रमाण कह सकते न अप्रमाण कह सकते। अगर नय अप्रमाण है तो सब नयों का जो विषय है वह सब जानने के बाद भी प्रमाण नहीं रह सकता। अगर कहो कि नय प्रमाण है तो एक वस्तु में कितनी वस्तु घुस जायगी? एक वस्तु में मान लो ७ नयों के द्वारा इसमें ७ विषय देखा तो वे ७ वस्तु बन बैठेंगे। क्योंकि प्रमाण मानलिया और प्रमाण का जो विषय है वह वस्तु कहलाता है। तब नय क्या है? प्रमाण नहीं, अप्रमाण नहीं, किन्तु प्रमाण का अंश है। देखो इस प्रसंग

Report any errors at vidyasagar@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में अपने लाभ की एक बात मिलती है। नयका हठवाद करके जो एक विवाद उठा रखा है वह विवाद समाप्त हो जाता है। अरे नय की मुख्यता मत दो प्रमाण को मुख्यता दो। हां प्रमाण से जानने के बाद फिर नय के विषयभूत तत्व का आलम्बन लेकर आप कल्याणमार्ग में बढ़ेंगे। बढ़ जायेंगे, ठीक है मगर उसमें भी आधार प्रमाण है। तो सकलग्राही जो ज्ञान है वह प्रमाण है विकलग्राही ज्ञान नय है। प्रमाण में विशुद्धि अधिक है नयकों जो मूल कारण विशुद्धि है ना वह प्रमाणसंस्कार केवल पर है विशुद्धि से ही तो हमारा परिचय बनता है तो नय में उतनी अधिक विशुद्धि नहीं, प्रमाण में अधिक विशुद्धि है। नयका तो ज्ञान प्रायः सभी लोग करते हैं पर प्रमाण के ज्ञान बिना वे सब नय कुनय कहलाते हैं। जो निरपेक्ष नय है वह मिथ्या है, सापेक्ष नय सम्यक है। तो सापेक्षता के मायने क्या कि प्रमाण का संस्कार जिस जीव में पड़ा हुआ है, प्रमाण से जिस पुरुष ने पदार्थ का निर्णय कर रखा है उस पुरुष को जो एक नयका ज्ञान होता है वह तो है सम्यक। और प्रमाण से पदार्थ को ग्रहण ही नहीं किया गया और एक नय से ज्ञान किया वह है मिथ्या।

निरपेक्षनय के प्रयोग का एक उदाहरण— जैसे पर्याय दृष्टि से यह जाना जाता है कि जीव क्षणिक हैं। क्षण-क्षण में नया-नया जीव है कहिये ऋजु सूत्रनय। जैसे कोई मनुष्य पहले देव हो, अब हो गया मनुष्य, तो कहते हैं कि अब यह मनुष्य हैं, देव नहीं रहा अब पहिले वाला जीव न रही, यह दूसरा जीव है। अच्छा जैसे कोई बालक हो, अब हो गया जबान तो कहते हैं कि अब वह बेटा न रहा अब वह दूसरा बेटा है। क्योंजी अगर पहिला बेटा माने उस जवान बेटे का तो एक व्यवहारमें मां और बेटा एक साथ तो नहीं सोते, जबान बेटा हो और मां हो तो वे एक साथ सोते है क्या ? नहीं। जो छोटा बच्चा है मां के साथ सोता है, अगर जवानको भी मान लिया जाय कि यह तो वही बेटा है, एकान्त कर लिया जाय तो अन्यायकी बात आती कि नहीं ? इससे जाना जाता कि अब वह नहीं रहा, नया हो गया, प्रतिक्षण नया नया होता है, यह है पर्यायार्थिकनयका विषय यह उसके तीन पनकी बात कही अब एक पनमें ही बात देखो—जो सुबह है वह साम नहीं। सुबह दूसरा था क्योंकि जो परिणमन नया नया बनता रहता है सो नया नया जीव है, यह पर्याय दृष्टिसे कह रहे हैं। जिह दृष्टिसे जो बात कही जाय वह सामने रखी जाना चाहिए, जैसे जब गुण-स्थान और मार्गणाओंके अनुसार परिचय कराया जाता। अच्छा बताओ—तिर्यञ्चं गतिमें गुणस्थान कितने हैं ? जीवस्थान कितने हैं, पर्याप्ति कितनी हैं ? तो जितनी भी उत्तर पूछे जायेंगे उनका उत्तर देनेके लिए तिर्यञ्चं गति सामने रखी रहना चाहिए। अगर तिर्यञ्चं गतिकी दृष्टि हटा दें उत्तर देने लगे तो कोई देवगतिका उत्तर देगा कोई परिहार विशुद्धि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाला उत्तर देगा, तो वे सब उत्तर गलत हो जायेंगे जिसकी बात पूछी जा रही हो, जो दृष्टि परखी जा रही हो वह दृष्टि सामने रखना चाहिए, फिर कोई विरोधकी विवादकी बात नही रहती। पर विवाद करने वाले लोग करते क्या हैं कि किसी दृष्टिसे प्रारम्भ किया बोलना वे फिर दूसरी दृष्टिसे बात निरखने लगते हैं इसलिए वह विरुद्ध हो जाता है।

सर्वनयोंका आशय रखकर विवक्षित नयको विवक्षितनयकी दृष्टिमें सुननेपर विवाद का अनअवसर—निश्चय दृष्टिसे देखना तो कहिये द्रव्यसे पर्याय होती है, अपने आप होती है, अपनेसे होती है, अपने द्वारा होती रहती है, बराबर चलती रहती है, तोता बना रहता है, निश्चय दृष्टिसे यह बात बोल रहे हैं और उसीमें छेड़ दें कि दूसरा कोई निमित्त नहीं हैं। अरे यह बोलनेकी क्या आवश्यकता थी ? तुम निश्चय दृष्टि की बात कह रहे तो एक दृष्टिसे देखते जावो। निमित्तकी बात मत छेड़ो। अगर निमित्तसे छेड़ें तो यह दूसरी बात आ गई। अब उससे बात करें फिर प्रमाण से बात करें जिस दृष्टिसे जो बात कही जा रही है उसको सामने रखकर जवाब दें तो वह सही है और अगर दूसरी दृष्टि करके जवाब दिया जायगा तो वह बात गलत हो जायगी। यह बात तो स्पष्ट है, कोई कठिन बात तो नहीं है। हां जैसे जब पर्यायदृष्टिसे चलते है तो क्षण—क्षण ही देखिये उस समय द्रव्य-दृष्टिको गौण कर दीजिए हां ठीक है, बौद्ध हमारे मित्र हैं क्षणिकवादी हमारे साथी हैं। जिस समय हम प्रर्यायदृष्टिमें बने रहते हैं तुम बहुत ठीक कह रहे, क्षण-क्षण मे जीव नया-नया उत्पन्न होता है, अगले क्षण वह रहता ही नहीं है, यह कहां कहा जा रहा है ? प्रर्यायदृष्टिमें लेकिन प्रर्यायदृष्टि नय है। इस नय का विषयभूत जो पदार्थ है, तत्व है वह पूर्ण वस्तु नहीं, इसीतरह द्रव्यदृष्टिसे जीव एक स्वभाय मात्र है, वह अपरिणामी स्यभावमात्र है। तो ठीक है, इस दृष्टिमें ये वेदान्ती ब्रह्मा द्वैतवादी हमारे मित्र बन गए जो तुम कहते सो मैं कहता हूँ पर ऐसा कहते—कहते इतनी ही तो पूरी वस्तु न हो जायगी। वह तो एक निश्चयनय का विषयभूत तत्त्व है। वह समग्र वस्तु नहीं है, अब उसीको ही समग्रवस्तु मान लिया तो वह एकान्तवाद हो गया। आत्मा है, स्वभाव में ऐसा है मगर बीत क्या रही है ? बन्धन है ना, रागद्वेष है ना, परिणमन चल रहे हैं, आकुलता हो रही है, कहेंगे कि नहीं ? हो रही तो फिर छूटने का प्रयास क्यों करते ? धर्म किसलिए बताया गया ? ज्ञानाभ्यास क्यों करते ? कुछ भी तो तथ्य होगा। कहेंगे कि भ्रम हो गया था, उसको दूर करनेके लिए हम ज्ञाना-भ्यास करते हैं। भ्रम मिटा कि हम मुक्त हो गए। तो भ्रम भी तो एक इसमें लद गया, जिसे मिटानेके लिए ज्ञानाभ्यास करना पड़ता। तो भ्रम तो है रागद्वेषका बाप। रागद्वेष को उत्पन्न करने वाला भ्रम है, इतनी बड़ी गड़बड़ी लगी है, ऐसा तो मान रहे ताकि उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भ्रमको दूर करनेके लिए हम ज्ञानाभ्यास करें' उसके नाती पोते रागद्वेषादिक का निषेध करते। आत्मामें रागद्वेष हैं ना ? आत्मामें रागद्वेषका बोझ धरा है और कहते कि राग-द्वेष नहीं है, तो केवल स्वभाव माननेसे बात न चलेगी। स्वभाव है, द्रव्य है, पर्याय है और द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु है, तो प्रमाणका विषयभूत पदार्थ है वस्तुमें वस्तुको जानें, वह है प्रमाणका विषय तो देखो प्रमाणके द्वारा भी तत्त्वका अधिगम हुआ और नयोंके द्वारा भी तत्वका अधिगम हुआ। पर नयोंके द्वारा जो अधिगम है यह है प्रमाणका अंश और सकल ग्राही ज्ञान के द्वारा जो वस्तुका अधिगम हो वह है प्रमाण। यों प्रमाण और नयोंके द्वारा जीवादिक ७ तत्योंका और रत्नत्रयका और भी वस्तुओंका जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदि समग्र वस्तुओंका प्रमाण और नयोंसे अधिगम होता है।

पुष्ट कार्य के लिय बिवेकियोंको विलम्बका प्रसन्नता से सहन— देखिये वस्तु को एकदम जानकारी में लिया जाना तो अच्छा था ना, मगर वह बात एक सही ढंग से बने, सही बने फिर इसमें कोई कमी नहीं रहे, सत्य अनुभव हो, बाधा न आये, इसे लौटकर न आना पड़े, इसके लिए पहिले तो जानकारी के उपाय की बात कही जा रही है। जो एक मूलतः चलता है नीव बनाकर मकान खड़ा करता है उसको फिर लौटकर नहीं आना पड़ता। और, मान लो, नीव तो रखी नहीं और एकदम जमीन पर ही भींट चिनने लगे तो कुछ दिन चिनने के बाद अगर सद्बुद्धि हो गई और कोई इंजीनियर समझायेगा कि भाई क्या कर रहे ? नीव पहले रखो तब मकान बनाओ। यदि नीव डाले बिना भींट खड़ी कर दिया तो उसे भींट हटा देना पड़ेगा, पहली स्थिति में आना पड़ेगा। नीव खोदनी होगी फिर उस पर भींट बनेगी, और कोई न माने और एकदम भींट करदे, जब १०-१२ फिट हो गई, केवल छत डालने का काम है, मानो छत भी पड़ गई, तो उसमें कुछ समय बाद वह मकान जमीन में धसने लगेगा, क्रेक हो जायगा और जल्दी ही ढह जायगा, इसलिए ऐसा करो कि चाहे थोड़ी देर लग जाय लेकिन पहले उसकी नीव मजबूत भरो, जब नीव मजबूत हो जायगी तो फिर उस पर बनी भींट बढ़िया और मजबूत बनेगी, इसी तरह जीवादिक ७ तत्वों की जानकारी करना है तो जानकारी तो करायी जायगी दूसरे अध्याय से पहिले अध्याय से तत्व की जानकारी के उपाय की जानकारी शुरू की गई। यद्यपि कहा जाता है कि पहिले चार अध्यायों में जीव तत्व का वर्णन है, लेकिन जो जीव तत्व की या अन्य सभी तत्त्वों के वर्णन के जो उपाय तो जीव स्वरुप ही हैं ना इसलिए कह दिया है कि चार तत्वों में जीव का वर्णन है, पर असल में जो जीव तत्वों की जानकारी करायी। तो दूसरे तीसरे चोथे अध्याय में, ५ वें में है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अजीवका वर्णन, और छटे ७ वें में है आश्रव का वर्णन, ८ वें में है बंध का वर्णन, ९ वें में है सम्बर निर्जरा का वर्णन और १० वें में है मोक्ष का वर्णन और जनाव पहले में किसका ? हम सबको जानने का जो ढंग है उसका वर्णन है पहले अध्याय में

अधिगमके उपायोंके अधिगमसे वस्तुका पुष्ट अधिगम— अच्छा तो इतना ज्यादह समय क्यों लगा रहे हैं पहले अध्याय में देखा ही होगा। नीव बनाने में कितनी देर लगती है ? जिस पर भींट तो बनेगी, जिस पर छत आ जायगी वह भींट तो चार कारीगर लग जायेंगे एक भींट उठाने के लिए तो वे कोई दो दिन में उठा ले जायेंगे। अधिक समय न लगेगा, पर नीव भरने के लिए, नीव खोदने के लिए पहले दो चार दिन लगेंगे, फिर उसको भरने में, नाप तौल में, सकरी जगह है, वहां सूत डालना भी कठिन है, उसमें देर लगेगी। इतनी देर पसंद करते हैं विवेकी लोग। देर लगती है तो लगने दो, निर्माणकर्त्ता बड़े सन्तोष से चलता है, इसी तरह जीवादिक ७ तत्वों का वर्णन चलेगा दूसरे अध्याय से मगर उन सब वर्णनों को हम ठीक समझे, युक्ति से समझे, सही ढंग से जाने, इसके लिए जो उपाय बताया जा रहा है पहले अध्याय में, इसमें बहुत विलम्ब लगेगा उसकी जानकारी करो, समझ जावोगे। अब जिसे मात्र झोपड़ी बनाकर ही रहना है वह नीव का विलम्ब नहीं सह सकता। जिसको एक थोड़ी छाया करना है, मंडप जैसा थोड़ा बनाना है वह नीव का विलम्ब न सह सकेगा। उसमें खर्च भी अधिक है समय भी बहुत लगेगा। उसको बांसों में खड़ा कर दिया। उसके ऊपर बरसाती लगा दिया, काम बन गया। काम तो बन गया। उसका मगर सही आनन्द, सही ढंग, सदा के लिए बेफिक्री उसे न मिलेगी। वह तो झोपड़ी है, इसी तरह कोई कहे कि हमें क्या करया नय और नयका स्वरुप जान करके ? उसके समझने में हमें क्यों उलझन में फंसाते हो ? हमें तो जल्दी समझा दो जो दूसरे अध्याय में वर्णन है। कोई मर जाता है विग्रह गति कहलाती है। जीवयों जाता है, यों कहलाता है। बड़ी जल्दी बात समझ में आ जाती है। हमें तो जल्दी बात बता दो, हमें तो झोपड़ी पसंद है, अगर ऐसी झोंपड़ी पाकर न आनन्द रहेगा। न आगे के लिए निर्विघनता आयगी, इस लिए देर लगती है तो लगने दो। यह बताया जा रहा है कि प्रमाण और नयके द्वारा वस्तु तत्व का अधिगम होता है। देखिये इस विलम्ब में भी चूंकि सारा नीरस न बन जाय और प्रयोजन की सारी बात झलक जाय, यह प्रकरण यदि १५ दिन तक चले तो १५ दिन तक हम कैसे धीर रह सकेंगे ? कैसे हम वहां हितकी बात जान सकेंगे ? तो वह भी सब बात बीच-बीच में बताते जायेंगे, उसे भी सुनना, मगर एक बात तो यह जान लीजिए कि पदार्थ के जानने का जो उपाय है, प्रमाण और नय है वह एक कितनी ठोस चीज है, आप स्वयं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

कह उठेंगें । जिनेन्द्र देवकी वाणी, स्याद्वाद का दर्शन जयवन्त हो, जिसने इतनी बड़ी ठोस उपाय की भूमिका से लेकर हमें तत्व ज्ञान में पहुंचाया है बतलावो यह उपाय अन्यत्र कहां मिलता है ? बड़े-बड़े दार्शनिक शास्त्र भी हैं मगर हमारा ठोस उपाय कहां मिलता है ? थोड़ा कह देते हैं । पदार्थ की जानकरो का उपाय क्या है ? इन्द्रिय और पदार्थ, इन दो का मिलान हो गया कि जानकारी हो गई । जीव, शब्द और कान मिल गए, बस जानकारी हो गई । रूप और आंख दोनों आमने सामने हो गए, जानकारी हो गयी । नाक और गंध के परमाणु इनका स्पर्श हो गया, जानकारी हो गई, यों सीधें सादे ढंग से कहने वाले लोग तो बहुत हैं मगर क्या ढंग है ? कैसे प्रमाण बनता है ? प्रमाण करने वाला कौन है ! प्रमाण का विषय क्या है ? प्रमाण भी किसका स्वरूप है ? जरा इसका विशेष वर्णन चले तो एक बड़ी स्पष्ट जानकारी होती है कि पदार्थ का अधिगम इस ढंग से हुआ करता है ।

आर्षवचनों की श्रद्धाका प्रभाव— आत्मानुशासन में सम्यग्दर्शन के जो १० भेद किए गए हैं वे आज्ञा सम्यक्त्व, बीज सम्यक्त्व आदिक १० भेद आये हैं ना, उसका क्या प्रयोजन है ? कितने ही पुरुष तो भगवान ने कहा है, उनकी आज्ञा मान करके वे जब चलते हैं तो जिनकी आज्ञा मानकर चलते उसके जानने में ही एक चैतन्य प्रकाश होता है, अनुभव होता है, तो ऐसे सम्यग्दर्शन का नाम है आज्ञा सम्यक्त्व तो अब देखिये करणानुयोग के ग्रन्थों में धवल महाधवल षट्खन्डागम, इनमें कोई थोड़ा प्रवेश पाले, थोड़ा जीवस्थान को समझले तो प्रवेश पा सकता है । तो जब गुण स्थानों में वर्णन आता है कि किस समय काम हुआ, जहां एक-एक समय में एक-एक बात बतायी जाती है, ८ वें ९ वें गुणस्थान में एक एक समय के निषेक बताये जाते हैं, पहिले समय में कितने निषेक आये, दूसरे समय में कितने आये, तीसरे किस समय में आये । किस समय में कहां क्या बात आती है ? जहां यह बात चलती है और एक सामने उतरती है तो वही एक सम्यक्त्वका आधार बन जाता है । भक्ति भी सम्यक्त्वका आधार बन जाती है जब कभी बहुत तीव्र अतुल भक्ति होती है, प्रभु के स्वरूपमें गदगद हो जाते हैं और गद्गद होनेका चिन्ह है उसकी आंखोंमें प्रसन्नताके भक्तिके अश्रु आ जाते हैं और उन गदगद भावोंके समय अगर कोई स्तवन बोले तो उसके अक्षर स्पष्ट न बनेंगे । गदगद वाणीमें अस्पष्ट वाणी में जहां आनन्द के अश्रु ऐसा झलक रहे हैं जहां मानो मोह को धो डाला है ऐसे अश्रुवोंसे स्नान किया है मुख जिसने, ऐसा जो गदगद होकर भगवानकी अस्पष्ट वाणीमें जो स्तुति कर रहा है ऐसा पुरुष उस भगवानके स्वरूपमें प्रवेश होने के प्रतापसे वहां सम्यक्त्व पानेका अवसर पा लेता है । तो यह समझ लीजिए—जैन शासन की कुछभी बात कही जाय, सुना जाय ढंग से तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वही इसके सम्यक्त्वका कारण होता है। पर कोई ऐसा ही नियम करके बैठ जाय कि हमें तो मन्दिर जाना ही नहीं, हमें तो व्याख्यान सुनना ही नहीं, हमें तो कुछ करना ही नहीं, ऐसा निर्णय करके बैठ जाये तो उसे इसका अवसर कहां से मिलेगा ?

स्याद्वादगर्भित जिनवाणीकी उपासनामें आत्मबोधाभ्युद्ध— एक सड़क के किनारे एक मन्दिर था, उस मन्दिर के सामने एक चबूतरे पर रोज जैनशास्त्रों का व्याख्यान होता था। एक धर्मविमुख जिसे जैनधर्म से विद्रोह था वह प्रतिदिन उसी समय उस सड़क से निकलता था उसे जैन धर्म से इतना द्वेष था कि जब वह उस शास्त्र सभा के पास से निकलता था तो अपने कानोंमें अंगुलियां लगा लिया करता था। इस तरह करते करते बहुत दिन हो गए। एक दिन चलते हुए में उसके पैरों में कांटा लग गया, उसे उसी जगह बैठकर निकालने लगा। उस समय शास्त्र के कुछ शब्द उसके कान में पड़ गए। चर्चा यह चल रही थी कि देवों के, भूत प्रेतो के शरीर में छाया नहीं होती, ये शब्द उसके कान में आ गए और सुनकर आगे चल दिया था। वह बड़ा आदमी। जब वह अपने घर पहुँचा तो रात को अचानक ही उसके घर में एक ऐसी घटना घट गई कि उसके घर में ४ डाकू भूत प्रेतादिक जैसा भयानक रूप बनाकर उसे भयभीत करके धन हड़पने आ गए। पहले तो भूतप्रेत समझकर भयभीत होकर उससे भागना चाहा पर उसे कानों में पडे वे शब्द याद आये, भूत प्रेतों के शरीर में छाया नहीं होती, सोचा कि देखें तो सही कि इनकी छाया जमीन में पड़ती है या नहीं ? देखा तो उनकी छाया जमीन में पड़ रही थी। सोचा-अरे ये भूत प्रेत नहीं, ये तो मनुष्य है। बदमाश लोग हैं, फिर क्या था ? उसके पास शक्ति थी, साधन था। उन्हें भगा दिया। उसने सोचा कि देखो—एक ही वाक्य के शब्द सुनने मात्रसे हमारा धन बच गया, हमारा कितना उपकार हो गया, यदि जिन वाणी के वे शब्द अधिकाधिक सुने जांय तो उसके लाभका तो कहना ही क्या है ? उसे जैनधर्म में श्रद्धा हो गई, वह जैन तत्व ज्ञान का अभ्यासी हो गया। तो शास्त्र का वचन, जिनेन्द्रवाणी का वचन चाहे वह कठिन हो न्यायका हो, सिद्धान्त का हो, चरणानुयोग का हो, भक्तिका हो। कुछभी शब्द सुनकर वहीं आधार बन जाता है कि इसको सम्यग्दर्शन बन जाता है, पर ऐसा सम्यदर्शन बनेगा अपने ही ढ़ंग से। ज्ञान बढ़ेगा, विकल्प छूटेगा और अपने स्वरुपका अपने आपमें दर्शन होगा। अनुभव होगा और वह करने लगेगा। सहजआनन्दका अनुभव देखो कोई बहुत देर से भोजन बनाता है और बहुत देरसे तीन चार घंटे बनानेके बाद वह भोजन खाने में आता है और कोई कुशल व्यक्ति थोड़ी देर में भोजन बनाकर खा लेता है, खाना तो सब का हुआ मगर खाना जिस विधिसे होना चाहिए वह विधि तो सबकी हुई, लेना,

Report Copyright Violation: violation@jainqq.com

 http://www.jainkosh.org

मुखमें डालना, चबाना, गुटकना, पचाना वह सबको करना पड़ा, मगर किसीको उपाय तीन घन्टे करना पड़ा, किसीको १५ मिनट करना पड़ा, किसीको तत्क्षण करना पड़ा। यह तो अपने अपने अलग अलग भवितव्यकी बात है, मगर बिधि वही थी, ऐसे ही जो भक्ति मार्ग से, बड़े कठिन तत्त्वके जानकारीके मार्गसे अनेक तरहसे जो चलता है तो जिसका जैसा भवितव्य है वह सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है, तो सम्यग्दर्शन जिसको भी होता है सब को एक ही प्रकार से होता है, उसमें नाना विधियां नहीं है, पर उस एक प्रकार की विधिसे पहले नाना प्रकारकी विधियां हैं।

यथार्थ प्रतिभास का महत्त्व—पशुपक्षीको भी सम्यक्त्व हो जाता है। वे कहां ७ तत्वोंके नाम जान पाते हैं ? कहां इतना अध्ययन कर पाते हैं, बोलचाल भी नहीं है, गुरू शिष्य भी नहीं है, कल्पना करो कि कोई बैल बैठा है, खा पीकर बैठा है छायामें, जुगा लिया कर रहा है, मुख चला रहा है और उसके चिन्तनमें आ गया, उसके भी विशिष्ट मन है। कुछ चिन्तनमें आ गया अपने आपके भीतरकी बात सोचनेमें आ गई। देखो जाननेके लिए शब्द ज्ञानकी जरूरत नहीं है, जैसे एक बालक तुरन्त पैदा हुआ और वह जान रहा है कि भींट है उसे जान गया तो जाननेमें उस बालकको कुछ सिखानेकी जरूरत नहीं पड़ती मगर यह भींट है, उसका भींट नाम है, यह इसतरह से बनायीं जाती है, इन बातोंको सीखने के लिए नाम की जरूरत है, मगर पदार्थ प्रतिभास के लिए नामकी क्या जरूरत है ? सीधे यों ही हो गया, इसीतरह पशुओं को एक सीधा परिचय हो गया, सम्यग्दर्शन हो गया, जीव, अजीव, आश्रव बन्ध इनके नामके परिचयकी क्या जरूरत है ? तो इस नामके द्वारा जो भी जाना जाता है वह बिना नाम और शब्दके जाना जाता है। सम्यग्दर्शन होगा तो वह एक ही विधिसे होगा। उनका निमित्त है ७ प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम। तो तिर्यंचयके क्षय का तो दाम है नहीं ७ प्रकृतियोंका चिन्तन करते नहीं, भले ही तिर्यञ्चमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि पाये जाते हैं मगर क्षय नहीं करते। मनुष्यभवमें उनका क्षय किया और सम्यक्त्व प्रकृतिके क्षय करनेमें कुछ थोड़ीसी कमी रह गई, मृत्यु हो गई, तिर्यञ्चमें पैदा होना है वहां हो गयी पूर्णता, और क्षायिक सम्यक्त्व हो गया तो मरकर वह भोगभूमि तिर्यञ्चमें जायगा और क्षायक सम्यग्दृष्टि कहलायगा पहिले तिर्यंचायु बांधी हो पश्चात क्षायिक सम्यक्त्व हो तो मरकर भोग भूमिज तिर्यञ्च होगा। मगर कोई भी देव, कोई भी नारकी कोई तिर्यञ्च ७ प्रकृतियोंका क्षय नहीं करता, ७ प्रकृतियों का क्षय करनेका अवसर एक मनुष्यको ही है, आप सोचें तो सही कि यह मनुष्यभव कितना अमूल्य है कितने महत्त्वका पद है और इसको जैसे कहते हैं गाजर मूलोकी तरह काट दिया, इसीतरह इस मनुष्यभवको विषय कषायोमें यों गवा दिया तो ये

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इतने अमूल्य क्षण कैसे व्यर्थ जा रहे हैं ? क्या इसके लिए मनुष्य जीवन है ? मनुष्य जीवन इसके लिए नहीं है। आत्माका ऐसा परिचय पावो, ऐसा ज्ञान करो कि आत्माका सदाके लिये उद्धार हो जाय। तो उस आत्मतत्वके परिचयके लिए ७ तत्वोंकी बात कही जायगी। उन ७ तत्वोंका परिचय होता है प्रमाण और नयोंके द्वारा। प्रमाण कहते हैं वस्तुके सर्वांश ग्रहण करने वाले ज्ञानको, नय कहते हैं वस्तुके एक अंशको ग्रहण करने वाले ज्ञानको। इन दोनों में प्रमाणमें विशुद्धि अधिक है, प्रमाणमें पूज्यता है, इसी कारण प्रमाण नये रधिगमः में प्रमाण शब्द पहले दिया है। अर्थ हुआ प्रमाण और नयोंके द्वारा ७ तत्वोंका सम्यग्दर्शन आदिकका सर्व पदार्थोंका अधिगम होता है।

जिननाथके उपदेशमें प्रमाण और नयकी अनर्ध्य देन—मोक्ष शास्त्रके ६७ वें सूत्रमें यह प्रकरण चल रहा है कि समस्त तत्वोंका भावोंका, पदार्थोंका अधिगम परिचय प्रमाण और नयोंसे होता है, इस सम्बन्धमें प्रमाण और नयके स्वरूपकी बात थोड़ी कुछ कहीं गई है। अब जरा कुछ प्रमाणके विषय पर विचार कीजिए। नयको तो कोई दार्शनिक मानता नहीं। अन्य दार्शनिकों के यहां नय नहीं है प्रमाण ही प्रमाण है। प्रमाणरूप में अप्रमाण नहीं, किन्तु जो उन्होंने समझा एक देश, जो कुछभी समझा उनके लिए वही पूरा प्रमाण है, नय की बात वहां नहीं चलती है। स्याद्वाद में ही नय है, अन्यत्र नय नहीं है। अगर नय न हो तो स्याद्वाद न आयगा किसीने कोई एक देश जाना किसीने और कुछ जाना, फिर जो कुछ जाना उसकी दृष्टि बनी, उनका समुदाय तो न रहा तो यह सब झगड़ा बन जाता। स्याद्वादके विरोधी दार्शनिक नयोंको मान ही नहीं सकते। और नय मान लिया तो सब विवाद दूर हो जाता है। उसमें यह खुलासा होता है कि इन्होंने इस दृष्टिसे यह कहा इस दृष्टिसे यह कहा, दृष्टिकी गुंजाइस ही नहीं अन्य दार्शनिकोंके यहां। जो कहा कि पूरा प्रमाण समग्र वस्तु है तो इसमें प्रमाणका विषय क्या आया है ? प्रमाणका विषय बताया जा रहा था न कि सर्व देश का परिचय प्रमाण कहलाता है, याने समस्त अंशोंका समग्र अंशोंका जो परिज्ञान हुआ वह प्रमाण है। वस्तुके अंक्ष अंशका ज्ञान होना नय है और सर्वदेश वस्तुका परिचय करना प्रमाण है

क्षणिकवादियों द्वारा प्रमाण विषयभूत अन्शीके अभावका कथन—प्रमाणकी बात सुनकर क्षणिकवादी दार्शनिक यह कहते हैं कि तुम क्या उन्मत्तवत बात करते हो ? अंशी तो कोई होता ही नही है जो एक एक अन्श है वही एक पदार्थ है। न अन्श होता न अन्शी होता। जैसे एक एक प्रमाण पूरा पदार्थ है और परमाणु नहीं परमाणुमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श का समुदाय नहीं, किन्तु रूप परमाण स्वतन्त्र पदार्थ है, रस परमाणु स्वतन्त्र, गन्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमाणु स्वतन्त्र, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श जिसमें पाये जायें ऐसा कोई एक परमाणु हो सो भी नहीं, किन्तु सुलक्षण मात्र क्षण क्षण वर्ती ऐसा अभेद कोई जो अंश है, जिसे जैन लोग अलग अन्श कहते हो वही वस्तु है पूरी और उसका परिचय करना ही प्रमाण कहलाता है, अंशी कोई चीज नहीं। अंशी तो इसमें आरोपित है। जैसे गेहूँ का ढेर लगा है तो उसमें गेहूँ का ढेर आरोपित है, ढेर कोई वस्तु नहीं है। एक एक दाना है और बहुत से दानोंका एक पिण्ड बना तो वह आरोपित है, वास्तवमें वस्तु नहीं है, यह क्षणिकवादी कह रहे हैं। तो इसीतरह दुनियामें ये जो कुछभी भींट पत्थर वगैरह दिखते हैं ये सब आरोपित पदार्थ हैं, वास्तवमें तो रूप परमाणु, रस परमाणु ऐसे ऐसे द्रव्य हैं वे द्रव्य जरा पास पास आ गए तो उनको मान लिया गया, जैसे गेहूँ के दाने आपसमें आगए तो ढेर कोई चीज तो न रहेगी ढर तो एक काल्पनिक चीज हो गई, इसीतरह से ये रूप परमाणु पास पास आ गये तो लोग मान लेंगे कि यह स्कंध है, पिण्ड है, पदार्थ है स्कंध कोई चीज नही, अवयव कोई वस्तु नहीं, जो एक अणु है, अवयव है, अन्श सो ही पदार्थ है, और ये कोई पदार्थ नहीं।

क्षणिकवादीओं द्वारा अन्शीका आकार ज्ञानमें न सोंपा जानेके कारण अन्शीके अभाव का समर्थन—यहां एक बात और भी समझियेगा। क्षणिकवादी दार्शनिक कह रहे हैं कि ज्ञानमें जो चीज आती है तो किस तरह आती है, किस तरह ज्ञान बनता है कि ये बाहरी पदार्थ अपना आकार ज्ञानको सौंपते है तब यह ज्ञान उनको प्रत्यक्ष करता है, कैसा परस्परका लेन देन है कि ये बाहरी पदार्थ अगर स्मरण करते हैं-किसका ? ज्ञान साहबका तब यह ज्ञान साहब उन पदार्थोंको जाननेका आशीर्वाद देते हैं। इस तरह ज्ञान बनता है। देखिये क्षणिकवादकी बात चल रही है। सुननेमें तुरन्त भला लगेगा कि ठीक ही तो कह रहे हैं क्या बात है, जैसे दर्पणमें बाहरी पदार्थोंका आकार आता है तो उन पदार्थोंने अपना आकार सौंप दिया और दर्पणने उसको फिर व्यवस्थित कर दिया, झलका दिया, जना दिया ऐसे ही ये बाहरी पदार्थ इस ज्ञानको अपना आकार सौंपते हैं और यह ज्ञान फिर उन बाहरी पदार्थोंको स्पष्ट प्रत्यक्ष जानते है सो इसमें अन्शी अपना आकार नहीं सोंपते किन्तु ये अलग अलग अन्श ये ही अपना आकार सौंपते हैं इस तरह अन्श ही वस्तु है अन्शी कोई पदार्थ नहीं है। और देखो क्षणिकवादी दार्शनिक ही कहे जा रहे कि जब अन्शी अपना आकार नहीं सौंप सकता याने यह अणु ही अपना आकार सोंप रहे फिर उनसे इतना बड़ा है, लम्बा है, चौड़ा है ऐसा आरोप किया जाता है' तब समझ में आता है तो आकार सौंपते अन्श अन्शी आकार नहीं सौंपते। तो जब अन्शीने अपना आकार सौंपा तब ही अन्शीका परिचय हुआ, लेकिन जैन लोग या अन्य अन्य दार्शनिक तुम तो बिना मूल्यमें ही वस्तुको खरीदना चाहते।

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्शी जब अपना आकार ज्ञानको नहीं सौंपते और फिर उस सम्बन्धमें अन्शीको जानना कैसे बता सकते हो। अन्श अपना आकार सौंपते तब यह ज्ञान अन्शको जानता है। इसके अन्श ये कोई भी अपना आकार नहीं सौंपते और फिर भी उन अन्शीको जाननेकी बात सोचै तो तुमने तो यह मुफ्तमें खरीद लिया अन्शीका जानना इसलिए अन्श ही वास्तविक पदार्थ है। अन्शी पिण्ड यह कोई चीज नहीं। तब प्रमाणको यह कहना कि जो सर्वांशको जाने सो प्रमाण है। सर्वांशका तो ज्ञान होता ही नहीं अन्शोंके पिण्डका तो ज्ञान होता नहीं, ज्ञान होता है तो अंश अंशका होता है। यह ही पूर्ण पदार्थ है। जो सौगत सिद्धान्त है

प्रमाणविषयभूत अंशीकी सिद्धि—अब जरा क्षणिक वाद की उक्त दों आशंकाओं पर विचार करो। जब यहां हम कुछ नजर डालते हैं इन्द्रिय द्वारा जो हम इसे देखते हैं, जो परिचय बनता है तो बतलावो अणुका बनता है या पिण्ड का अंशीका ज्ञान होता है। परमाणु तक का भी हमें परिचय नही होता है। तो इतना स्पष्ट हो रहा है इन स्कंधोंका, अँशियोंका और कह रहे अंश ही वास्तविक पदार्थ है" अंशी तो आरोपित चीज है। अच्छा एक बात और देखो- अगर अंशी वास्तविक चोज नहीं है घड़ा वास्तविक चीज नही है बौद्धोंके सिद्धान्तमें किन्तु उसमें रहने वाला एक एक रूप, रस, अणु, अण्ड गन्ध अणु ये है वास्तविक पदार्थ। अगर ऐसी बात है ती फिर यह बतलावो कि वह रूप अणु से कोई पानी भर सकता? अरे घड़े से ही पानी भरकर वह दे सकेगा। अगर घड़ा कोई वास्तविक वस्तु नहीं है तो फिर उससे अर्थ क्रिया कैसे बनेगी? इस पर उन दार्शनिकोंका यह कहना है कि अर्थ क्रिया तो प्रत्येक अणुमें होती रहती है और सब अणुकी अर्थ क्रिया सब बराबर है। जैसे सेनामें सेना क्या चीज है? आरोपित है, सेना कोई वस्तु है क्या? प्रत्येक सिपाही प्रत्येक घोड़ा, प्रत्येक हाथी यह ही तो चीज है, सेना कोई वस्तु है क्या? अरे घोड़ा सिपाहो रथवाले इन सबका जो समूह है इसका नाम सेना है, तो यह बतलावो कि सेना मार पीट करती है या एक एक सिपाही? अर्थ किया वह सब सिपाहियों में हो रही है। तो देखिये सबमें काम एक सा बन रहा इसलिए कहते कि सेना अर्थ क्रिया करती है सेना ने इसका प्रध्वंस कर दिया! जैसे कहते हैं बाग फल देता है। अच्छा बताओ बाग कोई चीज है क्या? एक एक वृक्षका जो समुदाय है, अपनी कल्पनामें मान लिया कि हजार वृक्ष का जो समुदाय है वह बाग है ऐसी बात कल्पना में लाकर कहते हैं कि बाग फल देता है। यह आरोपित बात है। फल तो एक एक वृक्ष देता है तो इसी प्रकार घड़ेमें पानी भरा तो भ्रम है लोगोको कि घड़े ने पानी भरनेका काम किया। प्रत्येक अणु पानी भरनेका काम किया और वह काम चूंकि एक समान है इसलिए वह समस्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अणुओंका काम एक है यों भ्रम हो गया। इसलिए घट कोई चीज नहीं है किन्तु अणु अणु ही वास्तविक पदार्थ है।

स्कंधोंकी अणुबन्धरूपता—अभी जब अन्य दार्शनिकों की बात भी सुनेंगे समझेंगे कि आखिर वे किस दृष्टिसे कहते हैं वहां भी तो बड़े बड़े संत ऋषीजन हुए हैं दिमागसे ही तो उन्होंने कोई बात समझी है तो जब वहां प्रवेश करेंगे तो ऐसा जाहिर होगा कि यह ठीक ही तो कह रहे है इसमें गड़बड़ की क्या बात है ! जैन भी तो कहते हैं कि वास्तवमें एक एक परमाणु ही पदार्थ है और उन परमाणुओंका बन्ध हो गया स्कंध हो गया लदे हुए ये सब मायारूप ही हैं लेकिन कुछ जरा गम्भीरतासे विचारनेपर आपको जैनाचार्योंकी प्रतिभा का पता चलेगा। सुननेमें तो यह बड़ा अच्छा लगता है। यो तो सुननेमें जो सस्ता धर्म होता है वह कितना बढ़िया होता है, जिसमें त्यागकी गंध भी नहीं है। तो इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि जो सुननेमें सुहाये वह बढ़िया चीज है। सुननेमें तो पाप सुहा जाता। अब यहां पर विचार करें। उनका कहना है कि एक एक परमाणु अर्थ क्रिया करता है और वह समान है तो ये परमाणु क्या जुदे जुदे रहकर ऐसी विज्ञान अर्थ क्रिया करते हैं या पास पास रहकर अर्थ क्रिया कर सकते। न जुदे रहकर कर सकते है न पास रहकर कर सकते है। किन्तु बद्ध होकर ही कर सकते हैं। जब उन अणु अणु का भी परस्पर बन्ध हो जाय कि आप जैसे चौकीसे सरकायेंगे तो चौकी पूरी सरकेगी। कोई पास पास परमाणु नहीं हैं, पास पास रहें तो एक झूट सरकानेसे उतना ही सरकता, और न सरकता। आप सब लोग पास पास बैठे हैं तो इसके मायने यह तो नहीं कि अगर एक भाई को यहां बुलालें तो सारे भाई यहां खिच आयेंगे। पास पास बैठे हैं। भिन्न भिन्न हैं, मगर वे बंधे हों यह बात नहीं है। इन स्कंधोंमें तो सब अणुओंकी गुणसंकृति हो गई। अणुओंका जो एक स्वतन्त्र निरपेक्ष कार्य है वह अब नहीं जच रहा। यह तो कोई प्राकृतिक बात चल रही है। दूसरी बात जो क्षणिकवादी जन कहते हैं कि अंश ही अंश सर्व कुछ पदार्थ है अंशी नहीं और उसका वे प्रमाण क्या कहते हैं कि दूसरी कल्पना करने पर पहली कल्पना मिट जाय तो समझ लो कि वह कल्पना की ही चीज थी। उस कल्पनामें वास्तविक वस्तु न थी। एक उनकी इसमें दलील भी है, क्या ? जैसे बादल रहते हैं तो कभी बादलमें ऐसी कल्पना हो जाती है कि यह तो शिखर है, बादलका हीं एक आकार ऐसा बनता है कि लगाता कि यह शिखर है, और थोड़ी देरमें देखते हैं तो यों लगता है कि यह बादल अब मैदानसा बन गया, प्लेटफार्मसा बन गया। एक नई कल्पना बनी कि यह तो प्लेटफार्म है, पहली कल्पना नष्ट हो गई। पहली कल्पना भी है क्या ? तो नवीन कल्पना होने पर पहली कल्पना न रहे तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समझना चाहिए कि पहली कल्पना पर विषयभूत जो कुछ है सो भ्रम है, यह ही तो भ्रम होनेका एक समझनेका उपाय है ना। तो इसीतरह ये जो स्कंध है, अवयवी हैं, ये कल्पना मात्र हैं लेकिन जैन शासन समाधान देता है कि यहां तो बादलोंकी तरह बात नहीं दिखती नई कल्पना होनेपर पुरानी कल्पना मिट जाती है, जो तुमने समझा वह ज्ञान भी तुममें बना रहता है और कल्पना नई नई उठती है और तुम वही हो इसलिए अंशी आप अवस्तु नहीं है किन्तु अंशी भी एक प्रमाण का विषयभूत है। एक एक परमाणु में भी यह अंश है, यह समग्र अणु अंशी है यों वे परमाणु व्यक्त हो रहे और फिर उसमें और तरहका स्कंधका भी बन्धन हो गया है, तबऐसीबात वहां बन गई है।

भेदा भेदात्मकताकी प्रतिमूर्ति—यहां एक बात समझने की और है कि जैसे लोग गणेशकी मूर्ति बताते हैं ना एक पुरूष है जिसके गलेमें हाथी की सूंढ़ फिट हैं और चूहा उसकी सवारी है तो भला बतलाओ ऐसा कोई आदमी हुआ था क्या ? और बताते हैं कि वह पार्वतीका लड़का था और उस पर भी बताते ऐसा हैं कि पार्वती एक तालाबके पास बैठी बैठी अपने शरीरका मैल निकाल रही थी तो वह मैल इकट्ठा हो गया और उस मैल से फिर वह पुत्र पैदा हो गया। तो कोई ऐसा पुत्र था क्या ? अरे यह सब एक अलंकारिक चीज थी। कोई जमाना था कि बुद्धिमान लोग बहुत रहते थे। वे किसी बातको सीधी न कहकर अलंकार की भाषामें कहा करते थे। जैसे कि अब भी कुछ चतुर लोग ऐसे पाये जाते हैं कि सीधी बात नही कहते हैं किन्तु टेढ़ी टाढ़ी बात कहकर रागसे घड़का कर बोला करते है तो वहां एक अलंकार रूपमें बोलनेकी पृथा थी। वह गणेश भी क्या है ? वह एक स्याद्वादकी अनेकान्तकी मूर्ति है। स्याद्वादमें दो दृष्टियां होती हैं। (१) द्रव्यदृष्टि, (२) पर्याय पर्यायदृष्टि। अभेददृष्टिका प्रतीक तो वह गला हैं, सूंढ़ है कि देखो पुरूषका तो सूढ़में एक पना बना रहा है। जैसे खिलौना में अलग से लगा देते हैं वहां तो द्वैत है लेकिन यहां द्वैत न रहा एक ही पुरूष बन रहा ऐसा अभेद फिर होता है और चूहेकी जो सवारी है वह ऐसा भेद करती है कि जैसे चूहा किसी कागज या वस्त्र को कुतर कुतरकर इतने सूक्ष्म टुकड़े कर देता है कि जितने सूक्ष्म टुकड़े आप कतरनी वगैरह से भी नहीं कर सकते। तो ऐसा भेद करनेको प्रकृति है चूहेकी वह भेद तो हुआ चूहा और अभेद हुयी हाथीकी सूंढ़। यों भेद और अभेद दोनोंकी एकता से सम्बन्धित है ऐसा एक अनेकान्त मूर्तिका चित्रण है। तो वह मूर्ति भेद और अभेदका एक प्रतीक है। भेद केसे करते ? जैसे आत्मा एक है लेकिन एक घंटेमें जितने क्षण होते हैं उतने क्षणमें प्रतिक्षण नया नया आत्मा बनता रहता है वह कोई एक आत्मा नहीं है, ऐसे इस पर्याय में भी भेद कर दिया गया। यही एक पूर्ण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वस्तु है

वस्तुसीमा—भला अपने स्व सम्वेदन ज्ञानसे सोचो तो सही कि में आत्मा क्या मिट जाने वाला हूँ। वही में एक हूँ। जो पहले था वही मैं बाद में यद्यपि समझानेके लिए बहुत सी दलीलें अनेक वैज्ञानिको द्वारा दी जाती है और सम्भव है कि दलीलोंसे सत्यकी ओट भी हो जाय लेकिन जो विवेकी पुरूष है वह इस सब सत्य की ओट मिटा देता है। जैसे आजकल यह सिद्धान्त बन गया कि पथ्वी गोल है गेंद की तरह और वह चलती है। और चन्द्र कुछ थोड़ा थोड़ा चलता है उस आधार पर सब कुछ साबित कर दिया, अब देखो एक चीज स्थिर होना और एक चीज अस्थिर होना उसमें जो सिद्धान्त लगता है वही सिद्धान्त इसमें लगता है। जैसे एक दिन होता है १२ घंटेका और फिर एक रात होती है १२ घंटे को, यों २४ घंटेमें रात दिन पूरे हो गए। प्रातः सूर्य निकला और सामको डूब गया तो एक दिन हो गया। और सूर्य सामको डूबा और प्रातः काल उदय हुआ तो एक रात हो गई। एक सिद्धान्त यों अगर मान लें कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी चलतीं है तो चलते चलते पथ्वीका जब एक चक्कर पूरा हो गया तो वह एक दिन पूरा हो गया। देखिये माननेको तो कुछ भी माना जा सकता है पर वास्तविकता क्या है, इसके समझनेके लिए बहुत बुद्धि लगानी पड़ेगी बड़ी युक्तियोंसे समझना होगा तब समझमें बात आयगी कि वास्तविकता क्या है। यों समझने के लिए तो यह भी कहा जाता कि तेलकी एक एक बूंद जलती है, दीपक बनता है तो एक एक बूंदका एक एक दीपक बन जाता है, और नये नये सेकड़ों बूंद आ आकर वह एक एक दीपक बना है इसलिए मानना ऐसा पड़ता है कि वह एक दीप है इसीतरह इस शरीरमें समय-समयपर आत्मा पैदा होते रहते हैं तो वहां भ्रम ऐसा हुआ कि यों माना कि में आत्मा वही का वही एक हुं यह है एक आत्मा पर अनुभव सिद्ध तो यही है कि जितने अनुभव वाले है वे सब सत आत्मा है सत्ताका स्वरूप अनुभव से ही बनता उस स्वरुप ज्ञानाद्वारा सिद्ध बात सर्वत्र विदित हो जाती जब जितने अखंड परिणमन है उतने पदार्थ है। ठहर गया ना यह सिद्धान्त

अंशीकी सद्भूतता—इन अणुओंकी स्कन्धरूप बात देखकर क्षणिकवादी कहते हैं कि स्कन्ध कोई चीज नहीं, परमाणु ही परमाणु है और उस परमाणु ज्ञानका विषय है एक एक अणु स्कन्ध नहीं अणुमें भी परमाणु भी नही परमाणु तो एक पिण्ड है किसका पिन्ड है ? रुप, रस, गन्ध, स्पर्श इन चारका पिन्ड है। वास्तविक तो रुप अणू रस अणु ज्ञानाणु ज्ञानको भी अणु कहते है। एक एक कोई आत्मा ऐसा पूरा लम्बा चोडा नही है। किन्तु जो एक क्षणका एक ज्ञान हो वहां पूरा एक पदार्थ है इस तरह भेद दृष्टिका आधार बना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर चलने वाले क्षणिकवादी कह रहे हैं कि इन्द्रिय द्वारा अंशका ज्ञान होता है और अंशी की बात तो एक कल्पना में उठाई जाती है। भला बतलाओ इन्द्रियके द्वारा अंश का किसी में ज्ञान किया एक एक परमाणु कोई इन्द्रिय द्वारा जान सकता क्या? यह भी जाना जा रहा वह भी जाना जा रहा यह अब बद्ध परमाणुओंकी एक विकृत दशा है। विकृत दशामें रहने वाले अनेक परमाणु है वह भी एक दशा है। अच्छा थोडी देर को मान लो वह स्कंधकी बात है तो अब एक आत्म वस्तुमें परख कीजिए ना। एक आत्मा भेंदकान्त वादी कहते कि आत्मा एक नहीं है सुख परमाणु अलग है ज्ञानपरमाणू अलग है। ये सब अलग अलग पदार्थ हैं और वे पदार्थ एक जगह आ गए तो लोगोंको भ्रम हो गया कि आत्मा कोई वस्तु है। अब देखिये कितने काम उल्टे चल रहे हैं। जब कि यहां यह समझा जाता है कि आत्मा एक अखण्ड वस्तु है, उसे समझानेके लिए आत्मामें अंश किए गए हैं। आत्मामें ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, आनन्द है, यह तो समझानेके लिए भेद किया गया है। वास्तवमें वस्तु तो अखण्ड है। तब इसके विरुद्ध क्षणिकवादी क्या कहते है। ज्ञानाणू वह है वास्तविक वस्तु सुख अणु वह है वास्तविक वस्तु, यह है वास्तविक पदार्थ और एक आत्मा मान लेना यह आरोपित पदार्थ है। देखिये-क्षणिक वादियों ने भी आखिर अखण्ड को ही माना है वस्तु और ब्रह्माद्वैत वादियोंने भी अखण्डको माना है वस्तु, स्याद्वादियों ने भी अखण्ड को माना है वस्तु, मगर किसीने टुकड़े कर करके ऐसा आखिरी टुकड़ा हो जाय कि जिसका दूसरा टुकड़ा न हो उसे कह डाला अखन्ड, और किसीने अनेकका अभेद करके माना डाला अखंड किन्तु एक अखण्ड वह एक वस्तु है जिसका कोई दूसरा टुकड़ा नहीं किया जा सकता। बात यह चल रही है कि अंशका परिचय होना वह है नय लेकिन समग्र अंशीका परिज्ञान होवे वह है प्रमाणका काम देखिये जितने भी सम्प्रदाय हैं वे सब वस्तु स्वरूपके दर्शनके आधारपर विवादपन्न हैं। जैन दर्शन के सम्प्रदाय तो केवल चरणनुयोग, और बाहरी भेषभूषा के भेदके आधारपर है। जैनियोंके सिद्धान्त पर या बस्तुस्वरूपके आधारपर सम्प्रदायभेद नहीं, स्याद्वाद, अनेकान्त इन सबका दर्शन है। श्वेताम्बर हों, दिगम्बर हो ये भेद वस्तुके कथनमें भेद डालने पर नहीं बने, मगर बोद्धोंके वस्तु स्वरूपके कथनमें भेद डालनेमें चार सम्प्रदाय सम्प्रदाय बना। उनमें से एक सम्प्रदायकी यह बात कही जा रही थी कि वस्तु तो बाहरमें भी है, भीतरमें भी है, बाह्य पदार्थ भी है, ज्ञानवान जीव भी है मगर वह क्षणिक है और एक अंशमात्र है। अभी तो इस सम्प्रदायकी बात कही,

क्षणिकज्ञाना द्वैतवाद—अब दूसरे सम्प्रदायकी बात देखिये उसने यह कहाकि नहीं नहीं, बाहरमें कुछ नहीं है, जो कुछ है वह ज्ञान ही ज्ञान पदार्थ है, वह सब लग रहा है और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उनकी दलील क्या है कि जैसे आप सोते हुए में कोई स्वप्न देखते हैं तो बहुत पहाड़ देखते हैं, समुद्र भी देखते, बन्दर देखते, हाथी देखते, मगर देखते। दिख गये मगर वहां वास्तवमें क्या है ? ज्ञान ही ज्ञान है कि वह हाथी पहाड़ आदिक भी है ? तो जैसे स्वप्नमें ज्ञान ही ज्ञान वहां पदार्थ है, बाहर का कुछ पदार्थ नहीं है इसीतरह इस समयमें भी ज्ञान ही ज्ञान पदार्थ है, बाहरका यह कुछ पदार्थ नहीं, अच्छे लोग भी तो स्वप्नका दृष्टान्त दे करके अनेक बातोंसे समझाते है ना, देखो भाई जैसे स्वप्नमें देखी बात सारहीन है ऐसे ही वहां भी देखी बात सारहीन है। समझाते हैं ना स्वप्नको बात बता बताकर जैसे स्वप्नमें समझा कि यह राज्य मेरा है, पर है नहीं कुछ इसीतरह यहाँ भी यह ही बात है कि लोग समझते हैं कि घर मेरा है, फर्म मेरी है, पर है कुछ नहीं। स्वप्नका दृष्टान्त देकर यहांकी बात समझते हैं कि नहीं, तो एक यह भी समझ लो स्वप्नका दृष्टान्त देकर यह भी समझलो, जो जैसे स्वप्नमें देखते हैं कि पहाड़ है, पेड़ है, तालाब है, आदमी है, और है कुछ नहीं, ज्ञान ही ज्ञान है, इसीतरह यह समझलें कि यह बाहरमें जो कुछ दिखता है यह है कुछ नहीं। यह सब भी ज्ञान ही ज्ञान है। अच्छा कोई कहेगा कि हम तो हाथमें पकड़कर दिखाते हैं कि यह चश्मा धर है, हम छूकर दिखाते हैं कि यह भीट है। हम कैसे कहें कि स्वप्नकी तरह असार है, स्वप्नमें भी भींटको छूते कि नही। स्वप्नमें भी पर्वतपर पैर धर धर कर चढ़ते कि नही। वहां भी कोई चीज है क्या ? कहते हैं कि नहीं, छूनेपर भी, पकड़ने पर भी खाने पर भी, स्वप्नमें खीर भी तो खा लेते हैं, तो जैसे स्वप्नमें सब कुछ काम कर लेने पर भी वहां पदार्थ नहीं है इसीतरह यहां भी सब कुछ काम कर लेने पर भी ये पदार्थ कुछ नहीं है। यहां ज्ञान ही ज्ञान वस्तु है। यह विज्ञानाद्वैतवादी बौद्धों ने कहा उनका सिद्धान्त है कि स्वसम्वेदन ही अर्थ है साथ ही साथ अपनी क्षणिकता से, अपनी भेद दृष्टि को वे नहीं छोड़ रहे है। वहां भी यह कह रहे हैं कि ज्ञान ही तो सब कुछ है मगर ज्ञान इकट्ठा हो जाय, कोई एक ऐसा जीव बन जाय और वह ज्ञान बहुत काल तक रहने वाला हो सो बात नहीं है, किन्तु एक समय में जो ज्ञान हुआ, जो ज्योति हुई जो प्रकाश हुआ बस वही पदार्थ है। क्षणिक ज्ञान ही प्रकाश है, ज्ञान का प्रचय नहीं होता क्योंकि ज्ञान का प्रचय हो तो जैसे घट यह भ्रान्ति है, घट कोई चीज नहीं है उसमें परमाणु–परमाणु ही वास्तविक चीज है और उनसे बनकर घट बना है तब ही तो वह सदा नहीं रहता, इसी तरह से हमारा जो ज्ञान प्रचय है जीवन में शुरू से लेकर अब तक जितना जाना है वह ज्ञान प्रचय भी भ्रान्त है वह वास्तविक पदार्थ नहीं है। अगर वास्तविक होते तो वे सदा रहते कि नहीं, इसलिए वे भी भ्रान्त हैं। केवल एक क्षण में होने वाला जो ज्ञानप्रकाश है वही वस्तु है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और बाकी कल्याण के उपाय में सब दर्शनिको को प्रवृत्ति करना चाहिए। ऐसा सोचकर क्या कोई सन्तोष नहीं मिलता ? सिर्फ ज्ञान ही ज्ञान है, वह भी क्षणवर्ती ज्ञान है और कुछ है ही नहीं, ऐसा सोचकर भला बोझ कुछ कम होता कि नहीं ? जो घर का बोझ लदा है, विकल्पो का बोझ लदा है, बहुत से पदार्थों का विकल्प चढ़ा है ममता लगाये हुए है, ये सब बोझ दूर होते कि नही भेदकान्त वाद के अनुसार कुछ चिन्तन करने में ?

मूल वस्तु मानने पर ही क्षण-क्षणवर्त्ती परिणामों की चर्चा की समा चीनता— भेदैकान्त बाद में अन्तर यह है कि वह मूल द्रव्य नहीं है तो ऐसा क्षणिक स्पष्ट झलक गया। इतनी भर बात है। थोड़ी देर को तो सन्तोष हो जाता है। जैसे किसी का कोई इष्ट गुजर जाय और उसको समझाने वाले रिश्तेदार आते है और वे रिस्तेदोर थोड़ा समझाते हैं—भाई वह तो तुम्हारा कोई दुश्मन था, वह तो तुम्हें तकलीफ देने आया था, अपना बदला चुकाने आया था। वह तुमको तकलीफ देकर चला गया। वह तुम्हारा कुछ न था। इस तरह समझाते कि नहीं ? और इस तरह की समझावट में कुछ सन्तोष भी होता है। वह बड़ा दगाबाज, धोखेबाज था, दुःखी करने आया था यह सुनकर उसने थोड़ी देर को कुछ सन्तोष भी कर लिया मगर थोड़ी देर में वह रिस्तेदार तो चला गया। वह घर वाला वहीं आंसु बहाने लगता, किन्तु उसे मूल से सन्तोष नहीं होता। वह तो थोड़ी देर को ब्रेक लगा हुआ था, जैसे एलार्म की घंटी बजती है तो उसमें दो तरह की ब्रेक होती है। एक ब्रेक तो ऐसी कि बिल्कुल ही बन्द हो जाय और एक ब्रेक ऐसी कि थोडी बोले फिर बन्द हो जाय, फिर थोड़ा बोले फिर बन्द हो जाय तो ऐसी ब्रेक से यहां काम नहीं चलने का। मूल में ब्रेक लगे तब काम चलता है। तो वास्तविक तत्त्वज्ञान से काम चलेगा देखो यह स्पष्ट बोध है, पदार्थ जितने हैं वे अनादि से हैं, अन्नत काल तक हैं। जो सत् नही हैं वे कैसे सत् हो जायेंगे ? जो सत् है वह कैसे मिट जायगा मूल से ? जो कहते हैं कि आत्मा एक नही है, प्रति क्षण नया नया पैदा होता रहता है तो वे यह बतावें कि जो चीज है ही नही, जो असत् है वह कहां से पैदा हो जायगी ? आप कहेंगे कि जो दीपक तो था नहीं वह बन गया ? अरे कौन कहता ? वह तैल ही दीपक रूप परिणाम गया। तैल की जो बूंद पहुँचती है वही बूंद तो दीपक रूप बन जाती हे। तो पदार्थ तो हैं ही हे। अभी वह पदार्थ तैल रूपमें था अब वह उजेला रूप हो गया, अब वह पदार्थ तितर बितर होकर एक धुवां रूप हो गए, जरा और बिखर गए, तो जो अणु प्रचय था तेलमें वे अणु बिखर गए, चीज नहीं मिटी। तो जो वस्तु है वह अनादि से है, अनंत काल तक है, गुणपर्याय वान है, गुण और पर्याय तो अंश कहे जाते और गुणपर्यायका जो पिण्ड है वह द्रव्य कहा

Report any errors at vkasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है। उस द्रव्यको सर्वदेशसे जाना तो प्रमाण है और गुण और पर्याय रूपसे जाना तो वह नय कहलाता है। यह प्रमाण और नयकी बात चल रही है।

ज्ञान और ज्ञेयकी वास्तविकता—यहां विज्ञानाद्वैतवादी यह कहते हैं कि बस स्वसम्वेदन वही ज्ञान वही स्व और वही ज्ञानका जो वेदन है वह स्व इसके अतिरिक्त जगतमें कोई पदार्थ नहीं है। स्वसम्वेदन ही पदार्थ है बाकी तो सारे भ्रान्त है, लेकिन कहने सुनने में भले ही कुछ अच्छा लग रहा जब तक कि उसपर विचार नहीं किया जाता। विचार करेंगे तो ऐसा तितर बितर होकर इस एकान्तवाद का मंतव्य उड़ जायगा जैसे हवा चलने पर मामूली बादल उड़ जाया करते हैं स्व सम्वेदक ही मान लें, जैसे कि विज्ञानाद्वैतवादी कथन करेंगे तो स्व सम्वेदनको भी जब सिद्ध करने चलेंगे तब अंश और अंशी तो सिद्ध हो ही जायेगे। स्व सम्वेदन हो, स्वतन्त्र हो, अंशी तो आ ही जायगा। वहां पर भी आत्मा की सिद्धि हो गई और जो कहता है कि यह क्षणिक ज्ञान हुआ उसका कोई स्व सम्वेदन नहीं, मगर ज्ञान है तो वह इसीतरह होगा कि कोई ज्ञानमें आ रहा है ज्ञानातिरिक्त अन्य ज्ञेय है तब ज्ञान बनेगा, शंका कारने ज्ञेय माना हीं नहीं, तो अकेला ज्ञानका स्वरूप कैसे सिद्ध हो जायगा। यद्यपि यह बात है ज्ञानका स्वरूप स्वतः सिद्ध है। कोई ज्ञेयाकारके कारण से नहीं ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वतः सिद्ध वस्तु है मगर ज्ञानकी जो अर्थ क्रिया होतीं है वह इसी ढंगसे होगी, उसमें ज्ञेय कोई झलकेगा। इसमें यह बात बताया है कि बाह्य अर्थ भी कोई चीज है, तत्त्वज्ञान भी वस्तु बन सकेगी मगर बाह्य अर्थका अभाव कैसे कर देंगे। है ही नहीं कुछ तो इस ज्ञानको भी सिद्ध नहीं कर सकते। तो ये बाह्य पदार्थ भी हैं और ज्ञानभी है और बाह्य पदार्थ वास्तविक है और ज्ञानस्वरूप आत्मा भी वास्तविक है। यह हठ मत करें कि जो भेद करके अंश समझमें आया सो ही है वस्तु। कल्पना को बात और है।

कल्पनाभेद होनेपर वस्तुकी अभेद्यता—देखो यह बताया गया है कि जब कोई अरहंत भगवान सिद्ध बनता है तो वह एक समयमें ७ राजू गमन करके सिद्धालयमें विराजमान होता है एक समयमें और एक परमाणू एक समयमें १४ राजू गमन करता है। लोकके नीचे हो परमाणु और लोक के अन्तमें पहुंच जाय तो एक समयमें १४ राजू गमन करता है। अब जरा विचार करो समयसे छोटी तो कोई चीज है नहीं। जैसे घड़ी घंटा मिनट सेकेण्ड है और सेकेण्ड से छोटी है आवली और आवली से भी बहुत छोटा समय होता है। तो जिससे छोटा कोई काल न हो उसका नाम समय है। अब एक समयमें ७ राजू चलकर सिद्धालयमें विराजमान हैं, अच्छा एक परमाणु चलकर १४ राजू गमन करके ऊपर पहुंच जाता है। एक भाई यह कहते हैं कि जब एक परमाणु यहां से चला और १४ राजू तक

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

तक चलता गया, तो यहाँ भी चला, यहां भी चला तो क्रमसे तो चला होगा, और जब क्रम है तो उस समयके भी कई हिस्से हो जाने चाहिए । एक समयमें कैसे इतना पार कर गया ? उस समयके भी हिस्से हो जाना चाहिए । मगर समयके भी हिस्से नहीं पर कल्पना समय के भी हिस्से बना देती है हमारी आंपकी जो कल्पना है वह समयके हिस्से बनाती है । वह तो एक मतिकी बात है । जैसे ७ राजू जो गमन किया परमाणुने तो ७ राजू बहुत बड़ा होता है । एक राजू प्रतरप राजू में अनगिनते द्वीप समुद्र समा जाते है फिर भी पूरा राजू नहीं बनता । अनगिनते समुद्र जो बीचमें हैं जम्बूद्वीप एक लाख योजनाका एक योजन २००० कोंशका होता और एक कोश पौने तीन मीलका होता, एक लाख योजनका जम्बूद्वीप है, उससे घेरकर एक तरफ २ लाख योजनका लवण समुद्र है, उसकों घेरकर एक तरफ ४ लाख योजनका दूसरा द्वीप है, इस तरह दुगने दुगने विस्तारमें द्वीप समुद्र होते जाते हैं और वे अनगिनते हैं । तो अब समझिये कि इन सबका जितना विस्तार है वह एक राजू भी पूरा नहीं कर सका है । एक कागज जैसे फैला है प्रसार रूपमें है, अभी वह घन नहीं है ऐसा ७ राजू हैं वह गमन कर गयां एक ही समयमें तो जैसे एक समयमें भी कल्पना से खंड किये जाते है किन्तु वास्तवमें एकसमय के खंड किये जा सकते क्या ? कल्पना होनेपर भी एक समयका मूलका खंड नहीं होता, ऐसे ही एक वस्तुमें शक्ति भेद परिणति भेद माने जाने पर भी वस्तु अभेद्य ही है । इसप्रकार सिद्ध हुआ कि हम सब प्रत्येक आत्म हैं और ज्ञान उनका स्वभाव है । द्रव्य तो आत्म ही है ।

सम्यग्ज्ञानमें प्रमेयतत्त्वकी विविधता-- जोवका कल्याण रत्नत्रय भावमें है । सम्यग्-दर्शन से ही कल्याणका प्रारम्भ है । सम्यग्दर्शनका अर्थ क्या ? प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है । सम्यग्दर्शनकी कुछ और बात कहकर अब यह बताया जा रहा हैं इस सूत्रमें कि उन चार तत्त्वोंका सम्यग्दर्शन आदिकका अधिगम प्रमाण और नयसे होता है । प्रमाण कहते हैं जो सकलांशग्राही हो, ऐसे ज्ञानको नय कहते हैं जो वस्तुके एक अंशका ग्रहण करने वाला हो इस बातको सुनकर भिन्न-भिन्न दार्शनिकों ने अपना मंतव्य रखा था जिसका समाधान भी किया गया क्षणिक एकान्तवादी दार्शनिक कहते है कि अंश मात्र ही वस्तु है, अंशी कुछ नहीं हुआ करता इसलिए प्रमाणका विषय अंश है । अंशी नहीं । समग्र वस्तु नहीं अंश ही पूर्ण वस्तु है । तो उन्हीं अंशवा-दियोंमें से एक भेद वाले बोले कि बाह्य पदार्थ प्रमाण के विषय नहीं हैं, किन्तु केवल यह ज्ञान ही ज्ञान प्रमाणका विषय है और वह ज्ञान क्षणिक है । अपने ही समयमें रहने वाला है तो भेदवादियोंमें ही दूसरे सम्प्रदाय वाले एक और बोले प्रमाणको विषय अंशमात्र वस्तु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है सो भी मात्र विज्ञान ही है। इस अद्वैत विज्ञान में ग्राह्य ग्राहकपना नही है। इतनी भी बात नहीं हैं कि ज्ञानमें बाह्य पदार्थ झलके। बाह्य कुछ है ही नहीं। बस जो स्वज्ञान है उसी का सम्वेदन होता है, यही मात्र तत्त्व हैं। वह किसी बाह्य पदार्थको ग्रहण नहीं करता, किसी भी बाह्य वस्तु को नहीं जानता। इसे कहते हैं शुद्ध सम्वेदना—द्वैतवादी ग्राने बुद्धि बुद्धिको ही जानती हैं, बाह्य पदार्थ को नहीं जानती।

दृष्टिवाद अंगमें सब दृष्टियोंका आलोचन—देखिये जैन आगममें श्रुतज्ञानके १२ अंग कहे हैं। उनमें १२ वां दृष्टिवाद अंग है अदृष्टि वाद अंग सम्बन्धी दृष्टियोंका वर्णन है और दृष्टि वाद अंगका जितना विस्तार है, प्रमाण है उतना प्रमाण तो सब अंगोंका नहीं हो पाता है, दृष्टि वाद का भारी प्रमाण है। ग्यारह अंगका जितना प्रमाण है वह दृष्टि-वाद अंगके प्रमाणसे बहुत कम है। जितने भी दार्शनिक हैं वे सब दृष्टिवाद अंगके एकान्त से निकले हुए हैं। ऐसा कोई ज्ञान नहीं, ऐसा कोई बोध नहीं जो जैन शासन से न निकला हो और कहीं अन्यसे निकाल लिया गया हो। समग्र ज्ञानकी पूर्णता का विषय क्या है कि केवलज्ञान और श्रुतज्ञान दोनो पूर्णज्ञान हैं, फर्क प्रत्यक्ष और परोक्ष का है। केवल ज्ञान तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थोंको स्पष्ट प्रत्यक्ष जान लेता है। तो श्रुत ज्ञानने तीन लोक तीन काल के सारे पदार्थोंको अस्पष्ट जाना है। देखिये आत्मा कहने से ही तीन लोक तीन कालके सब पदार्थों का अस्तित्व है यह ज्ञानमें आ जाता है। आत्मा कहा तो उसका प्रतिपक्ष हुआ अनात्मा, आत्मा और अनात्मा, अनात्मा में देहादिक सब अचेतन आ गये और इसके सिवाय जितने भी जीव है, वे सब एकके लिये अनात्मा हैं, लो समग्र पदार्थ आ गए, और वस्तुतः असाधारण लक्षण के आधार पर द्रव्य ६ प्रकार के हैं, जीव, पुगोल धर्म, अधर्म, आकाश और काल। तो ज्ञान ज्ञान को भी कहें तो भी वैसा बोलकर भी समग्र वस्तुका ज्ञान करते हैं। श्रुत ज्ञानका बहुत बड़ा विषय है। दृष्ट वादका विषय तो बहुत ही अधिक है। जो ये शुद्ध सम्वेदनाद्वैत वादी यह कहते हैं, यहां ग्राह्यग्राहक भाव नहीं है कि बुद्धिमें कुछ जाना, ग्रहण किया और किसी दूसरे को जाना। किन्तु यह स्वयं अपने आपको जानता रहता है। देखो वह भी जैन शासन के सिवाय कहां से निकला? जैन शासन कहता है कि निश्चयसे ज्ञान अपने ही स्वरूप को जानता है, किसी पर पदार्थको नहीं जानता। ज्ञान पर पदार्थको जानता है, यह व्यवहार से कहा गया है, निश्चय से तो ज्ञान स्वयं अपने आपके परिणमनको जानता है। किन्तु यह एकान्त यथार्थ नहीं है। लेकिन इसका एकान्त कर लिया शुद्ध सम्वेदनाद्वैत वादियोंने कि बस ज्ञानमात्र ही पदार्थ है। ज्ञान ज्ञान को ही जानता है। बाह्य कोई वस्तु हीं नहीं है, बाह्य को यह जानता ही नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शुद्ध संवेदनाद्वैतवाद के एकान्त को मानने की अप्रयोजनता—शुद्ध सम्वेदनाद्वैत-वादियोंकी दलील यह है कि अगर यह ज्ञान बाहरी पदार्थोंको जाने तो बाहरी पदार्थ एक समयमें तो उत्पन्न हुए। तो जिस समयमें उत्पन्न हुए उसी समय में हम यह (ज्ञान) जान नही सकते, क्योंकि जो उत्पन्न हो रहा अभी वह वस्तु बनी ही कहां पूरी। और जब वह वस्तु पूरी बन गई। एक समय में वस्तु पूरी बन जाती है तब दूसरा ज्ञान आया। यह क्षणिक वादियोंका सिद्धान्त है। जब दूसरे समय को यह ज्ञान जानेगा तो जब ज्ञान जानने को तैयार हुआ तब वह वस्तु ही न रही, जानेगा कैसे ? तो यों ज्ञान किसी बाहरी पदार्थ को नहीं जानता। अगर कहो कि समस्त कालमें रहने वाले पदार्थ को जान लेंगे तो समस्त काल वर्ती पदार्थ तो सब स्वतंत्र हैं, उनमें ग्राह्य ग्राहक सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। इस तरह ज्ञान बुद्धि सम्वेदन किसी बाहरी पदार्थ को नहीं जानता। बाहरी पदार्थ है ही नहीं। केवल एक शुद्ध यह ज्ञानमात्र है। यह एकान्त करके शुद्ध सम्वेदनाद्वैतवादी कहते हैं कि प्रमाणका विषय यह है, तुम कहां लगा रहे हो कि ६ प्रकारके द्रव्य हैं, ७ तत्त्व हैं, सम्यग्-ज्ञान आदिक हैं, सम्यक्चारित्र आदिक हैं, कहां भूल रहे हो ? ऐसा शुद्ध सम्वेदना द्वैतवादी कहते हैं। सुनने में बड़ी भली लगती है ऐसी बात, जिसमें कि विषयों के प्रति प्रेरणा मिलती हो। परन्तु विचार करने पर वह सब खण्डित हो जाता है। भला वे कहते हैं कि बुद्धि के द्वारा बुद्धि ही अनुभवमें आती है सो ग्राह्य ग्राहकपना नहीं है, लेकिन ग्राह्य ग्राहकपना न हो तो इसमें ज्ञानका स्वरूप क्या रहा ? ज्ञानका काम जानना। जाननेमें आया क्या ? मात्र स्व ज्ञेय हो गया। चलो स्व की ही कल्पना करें तो वहां भी ज्ञेय ज्ञायकपना तो बन गया, और फिर जो प्रत्यक्ष से ज्ञात हो रहा इसका खण्डन कहां किया जा सकेगा ?

प्रत्येक पदार्थोंमें अद्वैतता—प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें शुद्ध है अपना यह ज्ञान अपने आपके स्वरूप में ज्ञानमय ही है, इसमें किसी अन्य पदार्थका प्रवेश नहीं है। अद्वैत तो यों है कि प्रत्येक पदार्थ केवल अपना ही स्वरूप लिए हुए है, किसी परके स्वरूप को लिए हुए नहीं है, इसलिए प्रत्येक पदार्थ अद्वैत हैं। सारे पदार्थ मिलकर कोई एक सत हो, ऐसा नहीं, किन्तु प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें अद्वैत है, यों मानकर चलें तो अद्वैतवाद सही हो गया। तो अगर ग्राह्य पदार्थ कुछ न रहे, बुद्धिमें कोई अन्य वस्तु अगर नहीं आती है तो उसका प्रकाश ही असम्भव है। तुमने कैसा जाना कि यह प्रमाण है ? वचन से, गुठसे, कैसे कैसे उपायोसे। तो क्या वे है नहीं। हैं ये सब तब तो जान पाया। देखते हैं कि दर्पण में बाह्य पदार्थ का प्रतिबिम्ब आता है, यद्यपि वह प्रतिबिम्ब दर्पण का ही परिणमन है, बाह्य पदार्थका परिणमन नहीं है, बाह्य पदार्थ दर्पणमें कुछ करता नहीं है लेकिन बाह्य पदार्थका

Ramjanandvarnishastri@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

सन्निधान पाकर निमित्त पाकर दर्पण स्वयं अपने स्वच्छ परिणमनको त्यागकर उतने प्रदेश में उसके अनुरूप छाया परिणति की उत्पन्न कर लेता है। तो कैसे जानें कि यह दर्पण है ? बहुत सा प्रतिबिम्ब आया, यह है, देखते हैं तब समझमें आता है कि यह दर्पण है, मगर बाहरी पदार्थका दर्पणमें प्रतिबिम्ब होता ही नहीं बाहरी पदार्थका अस्तित्व ही नहीं है, तो कैसे पता पड़े कि दर्पण है ? और फिर दर्पण और भींटमें अन्तर कैसे ज्ञात हो ? तो भाई विषयमें आकर बाह्य पदार्थ यदि ज्ञेय नहीं होता, तो उनका यह आत्मा ज्ञाता नहीं होता और फिर उस ज्ञानका प्रकाश ही असम्भव है—और भी देखिये जैसे आपके इस शरीर में शुद्ध सम्वेदनका ज्ञानका ताता लग रहा है, प्रतिक्षण नया-नया ज्ञान उत्पन्न हो रहा है। ऐसे ही इन दूसरे शरीरोंमें भी हो रहा है तो अब आप यहां का ही अनुभव क्यों करते हैं ? दूसरे देही के ज्ञानका अनुभव क्यों नहीं कर लेते ? तो है ना दूसरा कोई पदार्थ ? अगर न हो तो अनुभव सांकय हो जायेगा। एक सन्तान का ज्ञान दूसरे संतानका भी अनुभव बन जायेगा। इस तरह समझना कि शुद्ध सम्वेदनमात्र ज्ञान भी है, ज्ञेय भी है। देखो ज्ञान तो अपने लिए केवल आप हैं। और, ज्ञेय अपना आत्मा भी है दूसरा जीव भी है। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल भी है। तो ज्ञान तत्त्व तो एक है, और ज्ञेय पदार्थ अनेक है। अन्य तत्त्व का खण्डन करके, विरोध करके ज्ञान तत्त्वका आश्रय लेने में पुरुषार्थ नहीं, किन्तु सबको कबूल करके, सब हैं, सबकी सत्ता है। कोई अन्य ज्ञेय पदार्थका आलम्बन लेकर कल्याणका मार्ग नहीं मिलता, अतः उनको छोड़कर उपयोग इस निज ज्ञानतत्त्वका आलम्बन लेता हो ऐसी बात बनाओ, हितकर बात है यह, किनउ अन्य का अभाव नहीं। तो प्रमाणका विषय क्या है ? सर्व अंश समग्र वस्तुका परिचय पाना प्रमाण का काम है।

भेदा भेदात्मक वस्तुकी प्रमाणविषयता—प्रमाणविषयकबातकोसुनकर अभी क्षणिकवादियों ने यह बात रखी थी कि अंश अंश ही पूर्ण वस्तु है, अंशी कोई चीज नहीं कहलाती। कुछ इस पर विचार करने के बाद ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि केवल एक ही पदार्थ सर्वव्यापक है, अंशी ही अंशी है, अंश कोई वस्तु नहीं है। बाहरी पदार्थ कोई चीज नहीं। भिन्न-भिन्न पदार्थ कोई चीज नहीं, एक निज चित् व्यापक ब्रह्म ही सब कुछ है। लो विशेष को भी कबूल नहीं किया—क्षणिक वादियोंने, विशेष वादियों ने। ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि विशेष कोई तत्त्व नहीं, सामान्य ही समग्र अर्थ है, लेकिन उनकी यह बात फिट नहीं बैठती। बाह्य पदार्थ तो सामने दिखते। कैसे उनका निराकरण किया जायगा। दयालु कहते हैं ना कि जियो और जीने दो। कोई कहे कि जियो, जियो, जीने दो की बात ही न सोचे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो कैसा लगेगा ? अटपटा लगेगा। अरे जीने दो, जीने दो, यही बात सोचे जीने की बात न सोचे तो वहा भी कैसा लगेगा ? इसे भी तो कह देंगे अटपटा। ऐसे ही चेतन में देखिये– यह एक निज ज्ञान ही सर्वस्व है। वाह्य कुछ नहीं। यह भी खोंटी बात। बाह्य बाह्य ही सब कुछ, मैं कुछ नहीं, यह भी मिथ्या बात है। ज्ञानतत्व भी ज्ञेयतत्व भी है। अब उनमें से मात्र ज्ञेय तत्वका आलम्बन लेने चलें तो उसमें हमको कोई सारकी बात नहीं मिलती। सर्वत्र धोखा है। अपने आपका जो स्वरूप है, स्वयं है, उस ओर उपयोग आये, उसमें ज्ञान जगे, वहां जो शान्ति मिलती है बस वही शान्ति है। बाकी तो सब बातें बेकार चीज हैं। एक गांठका धनका व्यापारी हो और एक सट्टा का व्यापारी हो जैसे तो लोग इनमें किसका आदर करते हैं ? किसका महत्त्व देते हैं ? गांठका धनका व्यापारी का अधिक महत्त्व देते हैं। लोग उसका विश्वास करते हैं। भले ही वह लखपती नहीं है, कुछ ही हजार का व्यापारी है फिर भी उस पर लोगोंका विश्वास रहता है, पर जो सट्टेका व्यापारी है, उसके पास चाहे काफी धन हो फिर भी लोग उसका विश्वास नहीं करते। वे जानते हैं कि यह तो सट्टे में कहो एक ही दिनमें सब कुछ सफाया करदे। तो इसी तरह ज्ञान गांठका जो धन है ज्ञानानन्द वैभव, विश्वास तो उसका है सच्चा और जो बाहरी पदार्थ है, जिनका समागम हुआ है वे तो सट्टे के व्यापार की तरह हैं। उसका कोई विश्वास नहीं। कौन देख आया कि क्या होने को है।

निःस्वार्थतामें आत्ममहत्त्व–श्री रामचन्द्र जी का जब राज्याभिषेक होनेको हुआ तो उस समय कितनी खुशियां मनायी जा रही थीं। अयोध्यानगरी में सब जगह आनन्द छाया हुआ था। लेकिन देखिये क्षण भरमें ही क्या से क्या हो गया। जंगल जानेकी तैयारियां होने लगी। केकैई और दशरथ की गुप्त बात हो गई। कैकई ने राजा दशरथ से कहा–महाराज आपने जो मुझे वचन देने का वायदा लिया था उसे पूरा करो, क्या, कि मेरे पुत्र भरत को राज्यगद्दी दी जाय। भैया ! घटना वह हुई थी कि जब कैकेई का विवाह राजा दशरथ के साथ हुआ तो वहां राजा लोग आपस में झगड़ गए कि कैकेई का विवाह हमारे साथ क्यों न हुआ। वह झगड़ा इतना बढ़ा कि राजा दशरथको अन्य राजाओं से युद्ध करना पड़ा। उस युद्ध में कैकेई ने रथ हांका था, रथको ऐसी कलासे वीरतापूर्वक हांका था कि जिसमें राजा दशरथ पूर्ण रक्षित निकल गए थे और उस युद्धमें उनकी विजय हुई थी। वहां राजा दशरथ अपनी रानी केकई पर अति प्रसन्न हुए और कहा था कि तुम्हें जो वचन मांगना हो मांग लो। तो वहां केकई ने यही कहा था कि अभी आप अपने वचन अपने पास धरोहर रूप में रखें, हमें जब आवश्यकता होगी तब मांग लेंगे। तो रामके राज्याभिषेक के समय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

केकई ने अपना वर मांगा था–मेरे पुत्र भरत को राजगद्दी दी जाय। केकई ने यह वचन क्यों मांगा था ? केकई खोटे विचार वाली न थी। उसका यह भाव न था कि रामचन्द्र बन चले जायें। १२-१४ वर्षों का बनवास केकई ने नही कहा। न दशरथ ने हुक्म दिया कि बन (जंगल) जावो। केकई ने अपने पुत्र भरतको राज्य यो मांगा कि उस समय राजा दशरथ भी विरक्त हो रहे थे और पुत्र भरत भी। उसने सोचा कि अब तो मैं पति विहीन भी हो जाऊंगी और पुत्रविहीन भी। तब फिर मेरा कुछ भी न रहेगा, जगत शून्य हो जायगा। जब देखा कि पति और पुत्र दोनों ही विरक्त हो रहे, ये तो अपनी हठ में हैं, यों तो मानेंगे नहीं, इसीलिए केकई ने उस समय अपने पुत्र भरतको राजगद्दी मांग ली। सोचा कि कम से कम पुत्र तो हमारे पास रहेगा। अब बताओ किसी स्त्रीका ऐसा भाव हो जाय गृहस्थावस्थामें तो यह कोई बड़े अन्यायकी बात तो नहीं है। लेकिन केकई का पूर्णतया उदारभाव तो न था। फिर भी गृहस्थावस्था में किसी स्त्रीमें इतना परिणाम आये तो आता ही है। बस भरतको राजगद्दीका हुक्म सुना दिया गया। उस समय श्री रामने कहीं गुस्सा होकर जंगल जाना नहीं विचारा, किन्तु यह विचारकर जंगल जाना उचित समझा कि मेरे रहते हुए मेरे भाई भरत का प्रभाव न रहेगा। राजा होने के नातेसे तो प्रजामें कुछ प्रभाव होना ही चाहिए। तब ही तो राज्य अच्छी तरह चलेगा। तो ऐसा ख्याल करके वे स्वयं बन चले गए। अब भरतने भी क्या किया कि अपने बड़े भाई की भक्तिमें आकर ऐसा किया कि राज्य को बात तो सम्हाली मगर सिंहासन पर रामचन्द्र जी पादुका रख दी। देखो बात सब जगह भली रही। केकई ने भी बहुत बिगाड़की बात नहीं की अपनी बुद्धि के माफिक। रामचन्द्र जी ने भी कोई बिगाड़ नहीं किया, भरत ने भी कोई बिगाड़ नहीं किया। देखिये–बड़े पुरुषोंकी बड़ी बात होती है तब वे बड़े बनते हैं। कोई भी महापुरुष कभी भी संकट से घबड़ाये नहीं। संकट आते है तो आने दो।

आत्माके निःसंकट स्वरूपका स्मरण–भैया ! जितने भी संकट आते हैं ये तो कोई चीज नहीं है। हम अपना ज्ञान बिगाड़ते हैं, बुद्धि बिगाड़ते हैं, ज्ञानमें जो कई प्रकार की कल्पनायें करते हैं उससे हम अधीर होते हैं, दुःखी होते हैं, व्याकुल होते है। संकट कोई चीज नहीं। संकट क्यां बाहरमें ? धन बिगड़ गया तो धन धनमें है, न रहा न सही, मकान मकानकी बात है, न रहा न सही, घरमें किसी का वियोग हो गया। पति गुजर गया, माँ गुजर गई, स्त्री गुजर जाय, तो क्या है, ये सब भिन्न-भिन्न जीव हैं, अपने अपने कर्म लिए हुए हैं, अपने कर्मानुसार चलेंगे, क्या संकट आया ? ज्ञानमार्गसे चले तो संकटका कोई काम नहीं। और अगर कुबुद्धि से चले तो पद-पद पर संकट हैं। जैसे बेवकूफ मजीहतकी कथा

http://sahjanandvarnishastra.org/

सुनायी थी कि कोई दो मिया बीबी थे। मिया का तो नाम था बेवकूफ और बीबी का नाम फजीहत। उन दोनों में अक्सर करके लड़ाई हो जाया करती थी, पर शामको सुलह हो जाती है। एक दिन ऐसी लड़ाई हुई कि स्त्री कहीं भग गई। वह पुरुष अपने पड़ोसियों से पूछता फिरता था भाई तुमने कहीं मेरी फजीहत देखी ? तो वे झट समझ गए, बोले–मैंने तो नहीं देखी। यों उसने अनेक लोगोंसे पूछा, पर सभी ने यही कहा कि हमने तो नहीं देखा। एक बार वह किसी ऐसे आदमी से पूछ बैठा जो किसी दूसरे गांव का था। भाई तुमने हमारी फजीहत देखी ? वह कुछ समझ हो न सका। पूछा—आपका नाम क्या है ? ...बेवकूफ। ...अरे बेवकूफ होकर तुम फजीहत कहां पूछते फिरते ? बेवकूफ के लिए सब जगह फजीहत है। जहां ही कुछ गलत बोल दिया, अटपट बोल दिया वहां ही लात घूसे हाजिर हैं। तो जो अटपट काम करेगा वह खुद ही विपत्तियोंमें फसता जायगा। सुलझनेकी बात, धीरता की बात, क्षमाकी बात उसकी बुद्धिमें नहीं आ सकती। तो उसे फजीहत ही रहेगी। जहां दो गाली दी वहां जूता लाठी सब तैयार हैं। तो ऐसे ही हम आपमें जब किसी को कुबुद्धि आ जाय। बाह्य पदार्थोंको ये मेरे हैं, यह मैं हूँ इसके बिना मैं कुछ नहीं, ऐसी अगर कुबुद्धि आ जाय तो जगह–जगह संकट है। अगर आपको संकट न चाहिए, आप को शान्ति चाहिए तो भीतरमें ज्ञानप्रकाश स्वच्छ बनायें, मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानप्रकाशमात्र हूँ। ज्ञानवैभवके सिवाय मेरा और कुछ नहीं है। यह ही मेरा सर्वस्व हैं। यह ही मेरा दुनिया है, यह ही मेरी जय है, यह ही मेरा रक्षक यह ही मेरा स्वरूप, यह ही मेरी विधि। अपने आपमें अपने स्वरूप को अपनाना लीजिए। यह मैं हूँ। फिर आपको दुनियामें संकटका नाम भी नहीं है, लेकिन मोहका अगर विष ऐसा चढ़ा हो कि सुननेको तो सब सुन लीजिए और भीतरमें यह बोलें कि बात तो तुम्हारी सच है मगर चलेंगे हम ऐसा। तो उससे तो संकट नहीं मिटता। अरे जो सच है उस मार्ग पर थोड़ा बहुत तो चलें। ज्यादह नहीं चल सकते तो कभी तो सोचो। कभी अपने आपमें दृष्टि तो दो। कभी भीतर विराजमान भगवान स्वरूप परमात्माके दर्शन करके बाहर ही बाहर आंखें फाड़ फाड़कर आखोंको तकलीफ देना, मनको तकलीफ देना, यह ही बात मत करो। कुछ तो चिन्तन करो अपने आपमें कि मैं केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हूँ। अन्य मैं कुछ नहीं।

आत्माके निःसंकट होनेकी विधिका विचार—देखो जिस विधिसे जो काम होता है वह काम उसी विधिसे हो सकता है। शान्तिका काम तो ज्ञानको अपनानेकी विधिसे ही होता है, दूसरी और कोई विधि नहीं। अन्य विधि करके आप समझने की आशा करें तो वह व्यर्थकी चीज हैं। एक ऐसी कहीं चुटकुला लिखा है कि एक राजा साधुके पास गया,

Report copy error at www.jainkosha@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसके कोई सन्तान न थी। राजा हाथ जोड़कर पासमें बैठ गया। साधुने आशीर्वाद दिया और कहा बेटा क्या चाहते हो ? —राजा बोला, महाराज मेरे कोई सन्तान नहीं है, कृपा करके आप मुझे सन्तान होनेका आशीर्वाद दे दीजिए। ···अच्छा, हो जायगा। राजा अति प्रसन्न हुआ और अपने महलमें आकर सारी रानियोसे सारा समाचार कह सुनाया। राज घरानेमें प्रसन्नता छा गई। राजाने कहा—देखो अब तो संतान होनेका आशीर्वाद मिल ही गया, अब तो कुछ चिन्ता की बात नहीं, सन्तान अवश्य होगी, अब तो अपन लोगोंको खूब धर्मध्यानमें लगना चाहिए, संयमसे रहना चाहिए, ब्रह्मचर्यका निर्दोष पालन करना चाहिए। रहने लगे ब्रह्मचर्यादिकसे। दो तीन वर्ष बीत गए। पर कोई सन्तान न हुआ। राजा पुनः साधुके पास पहुंचा और बोला—महाराज जबसे आपने मुझे सन्तान होनेका आशीर्वाद दिया था तब से हम लोग खूब नियम संयमसे, ब्रह्मचर्यसे, बड़े धर्म ध्यानसे रहे, पर सन्तान तो नहीं हुआ ? ···अरे भाई सन्तान इस तरह से न होगा। जो काम जिस विधि से होता है वह उसी विधिसे होगा। सन्तान होनेकी विधि है उपद्रव। उपद्रव करो तो सन्तान होगी। संयमसे रहो तो शान्ति मिलेगी। ऐसे ही मोक्ष पाने की विधि है—ज्ञानको अपनायें, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञानातिरिक्त मैं और कुछ नहीं हूँ। मेरे में राग मत बसो। परिस्थिति है, घर में रहते है, भूख लगेगी, सारी बात करेंगे, पर श्रद्धामें रागका अंश भी न आये, मेरा कहीं कुछ नहीं। मेरा तो केवल मैं ज्ञानप्रकाशमात्र हूँ। किसीका लगाव मत हो, किसी पर राग मत हो, श्रद्धामें तो परमाणुमात्र राग न हो तथा पौरुष इसके अनुरूप हो। अरे सब जीव स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं, सब अपने अपने कर्म लिए हैं, जैसे आपके घरमें रहने वाले जीव वैसे ही दुनियामें रहने वाले जीव। कोई अन्तर नहीं है। मैं सबसे निराला हूँ। अपने ज्ञान-स्वरूप को देखें, उस ज्ञानभावको अपनायें, उससे एक ऐसी हिम्मत आयगी कि कठिन से कठिन संकट आने पर भी आप घबड़ायेंगे नहीं। जो बात बहुत-बहुत सिखाये जाने पर भी न आयगी वह बात इस ज्ञानस्वरूपमात्रको अपनानेसे अपने आप आ जायगी। ज्ञानमात्र यह मैं हूँ, अन्य कुछ नहीं हूँ। इसका अभ्यास बन जाय तो दूसरे को सताने की वृत्ति बनेगी ही नहीं। जो बात बहुत बहुत सिखाने से भी नहीं बनती वह बात एक ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वको निरख लिया जाय तो अपने आप बन जायगी।

कषाय न करनेमें महत्त्व—भाई किसी दूसरे की कोई बात सुनकर क्रोध न करें। अपने आप सोचलें, बोलें कम, धीरे बोलें। अपने मन को तो दुःखी चाहे करदें, मगर दूसरे को दुःखकारी मर्मभेदी वचन न बोलें—तुम अपने मनको दुःखी कर दोगे तो दूसरे ही मिनट में उसे मिटा भी तो सकते हो। तुम्हारा मन तुम्हारे पास है। तुम्हारे हाथ की बात है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानप्रकाश लावो और अपना दुःख दूर करलो। और, तुमने कोई कुवचन बोलकर दूसरे के मर्मको भेदने वाले वचन बोल दिये तो बताओ आप उसके दुःखको कैसे टाल सकेंगे ? उसके दुःखको टालना आपके वशकी बात नहीं है। अगर आप ने किसीको दुःखकारी वचन बोला तो क्या वह चुप रहेगा ? उसके भी कषाय है। वह आपको जवाब देगा। जैसे कहते हैं सेर को सवासेर मिल जाना। तो कुबुद्धि की तरह हठ मत करो। और ऐसा अपना जीवन बनाओ कि मुझे कुछ भी कष्ट हो, मैंने कोई भी कार्य प्रारम्भ किया हो मगर कोई मुझे समझा देता है कि इस बातमें भला नहीं है, उसको तुरन्त मेटनेमें तुम्हारा उपकार है। अब ऐसी हठ न करो कि हम तो दुनियामें ऐसा होकर ही रहेंगे। किसी भी बातका हठ न करो। घरमें, दुकानमें, समाजमें, देशमें कहीं भी हठ न करो। समझमें ज्ञान की बात आये तो उसे तुरन्त अपना लें, शरम छोड़ दें, लाज छोड़ दें। किसका कि इसने मुझे ऐसा कहा था, मुझे ऐसी बात बोल दिया। अगर मैं इसे मेंट दूँ तो लोग मेरेको क्या कहेंगे ? बड़ा पुरुष कोई यों नहीं बनता बड़ा बनना है तो कष्ट सहो और समता रखो। और दूसरों का भला सोचो। संकट सहो और दूसरोंका भला सोचो। यह वृत्ति रहेगी तो महत्ता बढ़ेगी, अन्य प्रकारकी वृत्तिमें महत्ता नहीं बढ़ती।

बड़ा होनेका उपाय कष्टसहिष्णुता—आज भी एक भोजन की चीज बनाते व बनवाते हैं ना—क्या ? बड़ा। आपको मालूम होगा कि वह 'बड़ा' कैसे बना ? यह यों बना कि पहले जब खेतमें खड़ा था, सुखाया, फिर बैलोंके पैरसे रुंधवाया, फिर चक्कीमें दला, फिर सामको वह उड़द पानीमें भिगोया, रातभर पानी में पड़े रहे। वहां कष्ट सहा। देखिये वह अजीव है, कष्ट नहीं है मगर एक अलंकारमें कह रहे हैं। तो रात भर पानीमें रहने के बाद सुबह पहिले उसे धोया गया, उसका छिलका उतारा गया, यह उस पर पांचवीं आपत्ति है। उसके बाद सिलबट्टे में पीसा गया, यह उसपर छठी आपत्ति हुई, फिर उसे फेंट फेंटकर उसकी सकल बिगाड़ा, यह उस पर सातवीं आपत्ति हुई, फिर उसे गोल मटोल बनाकर तपती हुई कड़ाही में पटक दिया, यह आठवी आपत्ति हुई। जब वह बड़ा खूब पककर फूल गया तो उसमें एक लोहे की सींक घुसेड़ दिया यह देखने के लिए कि कहीं वह कच्चा तो नहीं है। यह उस पर नवमी आपत्ति आयी। इतनी-इतनी आपत्तियां पाने के बाद उसका नाम 'बड़ा' हुआ। यहां कोई पुरुष चाहे कि मेरे को अच्छा आराम रहे, पद-पद पर रोज-रोज प्रशंसायें मिलें कष्ट न आये मेरे पर और मैं बड़ा कहलाऊ तो ऐसा हो नहीं सकता। दसों गालियां सुननी पड़ेगी, अनेक विपत्तिपां सहनी पड़ेंगी, और तुम धीर रह सके और दूसरो की भलाई की बात सोच सके तो तुम महान हो सकते हो। यह तो बत-

Report any errors at vrjain@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लाया है बाहर के लिए महान, मगर खुद के लिए भी महान कब बन सकते ? कष्ट सहिष्णुता एक बहुत बड़ा गुण है। कितने ही संकट आयें मगर उनको समता से सहनेकी प्रकृति बन जाय तो वह बड़ा बन जायगा। भगवान सुकौशल इसी तरह तो मोक्ष गए। उनकी साधना तो देखो कि कितना-कितना कष्ट सहने पर भी वे अधीर न हुए, तब उन्हें निर्वाण हुआ। शेरनी खा रही है तो भी उसे कुछ सोच ही नहीं रहे। अथवा मानो पहले सोचा भी हो तो भले ही सोचा हो, मगर उसका उपयोग बदल दिया, उपयोग निज ज्ञानानन्द स्वरूप पर जगा दिया और ज्ञानप्रकाश हो ज्ञानमें समा गया। प्रथम तो कुछ सोचा ही नहीं, अपने आत्माके स्वरूपमें मग्न रहें। ऐसे–ऐसे कष्टोंके सहने पर कहान होता है। देखो कष्ट सहने पर भी आनन्द रहता है। आप अगर शुद्ध भावसे कष्ट सहेंगे तो आप प्रसन्न रहेंगे। कष्ट तो तब कहलायगा जब संक्लेश करे। जब कष्ट सहते हुए में संक्लेश नहीं किया जा रहा है, भीतर प्रसन्न रहे तो फिर संकट क्या है ? तो अपने आपके उद्धार के लिए भी करना क्या ? कष्ट सहते रहे, कष्टसहिष्णु बने रहें। इसकी कमी गृहस्थमें है तो वह सफल नहीं हो सकता, त्यागी में है कमी तो वह भी सफल नहीं हो सकता। साधुमें है कमी तो वह भी सफल नहीं हो सकता। तो इस कष्ट सहिष्णुताका आदर करो। हमारी एक पुस्तक है "मनोहरपद्यावलि" वह गृहस्थावस्थाकी बनी हुई है। उसमें एक भजन है—"प्यारी विपदाओ आवो।" अर्थात ऐ विपदाओ, तुम मेरा वैभव हो, आवो खूब आवो। "सम्पत्तिको छल जान न पायो, याने बहुत रुलायो, प्यारी विपदाओ आवो।" मैंने सम्पदाका छल नहीं जान पाया, और इस सम्पदा ने मेरेको बहुत रुलाया, बहुत दुःखी किया है, इसलिए हे प्यारी विपदाओ आवो। विपत्ति पाकर पाण्डवोंका उद्धार हुआ, विपत्ति पाकर सुकुमाल सुकौशल का उद्धार हुआ। विपत्ति पाकर अनेक जीवों ने अपना कल्याण पाया। सम्पदा सम्पदामें रहकर मरकर तो लोग नरक ही गए। कोई चक्रवर्ती सम्पदा सम्पदा में रहा, ज्ञानमें वैराग्य की बात नहीं लाया, तो जिसमें बड़ा सामर्थ्य है, बड़ा पुण्य है, बड़ा पराक्रम है और वह त्याग की बात न लाये तो वह चक्रवर्ती नरक गया, यह बात बतायी गई। यहां तो सम्पदा हो क्या है। जरा जरा सी बातमें लोग मान बैठते हैं कि मेरे पास बहुत कुछ है, परन्तु है कुछ भी नहीं। तो सर्वप्रथम बात यह सीखें कि हमें तो अपने जीवन में कष्ट सहिष्णु बनना है और दूसरोका भला सोचना है। कितने ही कष्ट आयें मगर हमें दूसरों का बुरा नहीं सोचना है। एक प्रकाश मिलेगा, ज्योति मिलेगी। और खुद भी प्रसन्न रहेगा। दूसरों का भला सोचें। कष्ट जो आये तो उन्हें कष्ट मत जाने ऐसी स्थिति बने तो वहां जो जिसका आलम्बन लेकर आना होगा वह अपने आप आयगा। तो ज्ञानमात्र जो निज स्वरूप है उस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को अपना लें, यह मैं हूँ, अगर यह बात बन गई जो बात बहुत बहुत सिखाये जाने पर भी नहीं आती कि कष्ट सहिष्णु बनें, जिसने ज्ञान मात्रको अपना लिया उसे कष्ट सहिष्णु बनने में देर न लगेगी। जो बात सीख सीखकर नहीं आती वह बात बिना सिखाये आ जायगी। अगर एक भीतर का मन्त्र आ गया कि जो ज्ञानस्वभाव है, जो निरपेक्ष ज्ञानस्वरूप है वह मैं हूँ, इतनी अगर दृढ़ता आ गई तो आकुलतामें अन्तर आ जायगा, अनाकुल अनुभवकी वृद्धि होने लगेगी।

प्रमाण व नयों से प्रभुसम स्वभाव की परख द्वारा आत्मशुद्धि करने का अनुरोध– यह आत्मा जो अपने आप सुखी होता है, दुःखी होता है, संसारमें जगह-जगह जन्म लेकर मरण करके अपने अमूल्य क्षण व्यतीत करता, उस आत्माका कल्याण है तो आत्म-श्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मरमणमें है। यह बात चाहे आज करली जाय तो अबसे छुट्टी मिल जायगी संकटों से, या जब करने में आये तब से कर लीजिए। तब तक दुःख ही भोगना होगा। तो क्यों न बड़े उपयोग से बड़े पुरुषार्थ से अपने आपके कल्याण की बात अभी से करली जाय? देखिये—आत्महित और परिस्थितिवश गृहस्थीमें रहते हुए दोनोंमें विशेष विरोध न आयगा। मुक्ति के लिये साधक तो निर्ग्रन्थ अवस्था ही है सिद्धान्त की बात। घर में रहना, कामकाजमें रहना, सब कुछ करते रहना पर जरा साथमें आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मरमणका उपाय बनाते रहना यह वर्तन शान्तिका साधक है। वह आत्मश्रद्धान कैसे हो, उसके लिए ही यह सब प्रकरण चल रहा है कि वस्तुस्वरूपकी बहुत सच्ची समझ बनावें। वास्तव में तत्त्व कैसा है, जीव क्या है? अजीव क्या है? पदार्थका क्या स्वरूप है? सत्य ज्ञान बनावे। उसका उपाय चल रहा है—"प्रमाणनयैरधि गमः" तत्त्वका ज्ञान, पदार्थ का ज्ञान प्रमाण और नयोंके द्वारा होता है। नय तो जानता है अंश अंशको और प्रमाण जानता है सर्वांश अंशीको, अर्थात् जैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द पर्याय भिन्न भिन्न एक एक बात को समझें वह तो नयका विषय और समग्र आत्मा जैसा, वह है प्रमाणका विषय। तो इसमें भी अंश और अंशी देखिये—शक्ति और पर्यायका जो पिण्ड है वह द्रव्य कहलाता है। यहां तीन बातें समझना है—द्रव्य, गुण और पर्याय। जैसे देखिये—यह जो आत्मा पूरा पदार्थ है वह द्रव्य है और आत्मामें जो शक्तियां हैं—ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, चारित्र-शक्ति, आनन्दशक्ति आदिक ये सब गुण कहलाते हैं। और इस शक्ति का जो विकास है, परिणमन है वह पर्याय कहलाती है। द्रव्य गुण पर्याय की यथार्थ समझ होनां जरूरी है, भगवान में और अपने में कुछ, तब ही समझ पायेंगे जब हम द्रव्य, गुण, पर्यायका यथार्थ निर्णय करते हों। देखो प्रभु अरहंत और हम द्रव्यसे एक समान हैं, चेतन द्रव्य मैं हूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

http://www.jainkosh.org

चैतन्यप्रकाश, गुणपर्यायका पिण्ड मैं हूँ। गुणपर्यायका पिण्ड प्रभु है और गुणके भी समान हैं। मेरे आत्मामें जो शक्तियां हैं वे शक्तियां प्रभुमें हैं ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, आनन्दशक्ति, शक्तिसे भी हम और प्रभु समान हैं, द्रव्यसे भी हम व प्रभु समान हैं, अन्तर पड़ा है तो पर्यायमें अन्तर पड़ा है। "अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान।" हममें और प्रभुमें जो अन्तर है वह एक ऊपरी अन्तर है। ऊपरी अन्तर क्यों कहते ? है तो भीतरी अन्तर याने मुझमें रागद्वेष चल रहे हैं और प्रभुमें रागद्वेष नहीं हैं, तो ऐसा अन्तर है, पर ऊपरी अन्तर यों कहा कि स्वभावमें अन्तर नहीं है, स्वभाव है अन्दरकी चीज और पर्याय है ऊपरकी चीज। ऐसी बात दृष्टिमें रखकर समझना है कि भगवानमें और हममें पर्यायका अन्तर है।

अशुद्ध पर्यायका व्यय करके शुद्ध पर्यायका आविर्भाव करनेका सामर्थ्य—पर्याय तो हमारी वर्तमानमें खराब है। वह टाली जा सकती है और शुद्ध पर्याय आ सकती है। जैसे कोई पानी ठंडा रखा है एक कलशमें और एकमें गर्म पानी रखा हो तो पानी पानीकी अपेक्षा तो दोनों बराबर हैं—यह भी पानी वह भी पानी, और पानीका जो स्वभाव है उसे देखें तो वह बराबर है। जो गर्म पानी है उसे भी यह कहेंगे कि इसका स्वभाव ठंडा है और जो ठंडा रखा है उसको भी यही कहेंगे तो स्वभाव से भी बराबर दिख रहा, द्रव्यसे भी बराबर दिख रहा, पर लक्षणका अन्तर है। उसकी दशा ठंडी बन रही हैं और इसकी गरम। तो हममें और प्रभुमें जो अन्तर है वह पर्यायका अन्तर है। प्रभुकी दशा वीतराग की हो रही है और हमारी दशा रागद्वेष भरी हो रही है। यह अन्तर है, तो यह अन्तर टाला जा सकता है। यही कर्म हो गया। तो उसका कर्म ईन्धन टाला जा सकता है। उसको फैला दीजिए अथवा कोई ठंडी मशीन में रख दीजिए या हवा कर दीजिए, ठंडा हो जायगा। तो जो पर्यायमें बिगाड़ है वह बिगाड़ दूर किया जा सकता है। तो यहां यह विश्वासमें लेना है कि मेरे स्वभावमें बिगाड़ नहीं है, पर्यायमें बिगाड़ है, स्वभाव मेरा वह है जो प्रभुका है। द्रव्य मेरा वह है जो प्रभुका है, इसलिए उत्साह बने कि मैं प्रभुता पा सकता हूँ, जरा यहां के संसारके इन टुकड़ोंमें चित्त लगाकर अपने को बरबाद करना योग्य नहीं है। ये संसार के समागम ये सब क्या हैं ? धन वैभव क्या हैं ? ये टुकड़े ही हैं। बाह्य चीज हैं, मेरे से भिन्न हैं, मेरे काम में नहीं आते हैं। मेरे काम तो मेरा ज्ञान आयगा ज्ञान सही बनेगा तो शान्ति मिलेगी, ज्ञान विपरीत बन गया तो अशांति हो जायगी। तो मेरी शान्ति अशान्तिका जिम्मा तो ज्ञान पर निर्भर है, धन पर निर्भर नहीं। धन अधिक हो तो शान्ति मिलेगी यह कोई नियम नहीं बल्कि धन अधिक होनेसे और अशान्ति बढ़ेगी। धन कम हो तो क्या अशान्ति हो जायगी ? नहीं।

http://sahjanandvarnishastra.org/

अज्ञानीको अशान्ति है, अज्ञानीको तो हर स्थितिमें अशान्ति है और ज्ञानीको हर स्थिति शान्ति है। शान्तिका कारण है तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान। तो जो असली उपाय है शान्तिका उसमें हमें कितना समय लगाना चाहिए? कितना उद्यम करना चाहिए। जरा यह अपने आपको सोचने लगो, उस काममें कितना हम समय देते हैं और कितना उपयोग लगाते हैं। आवश्यक काम समझ रहे हैं दुकान जाना, घर बैठे रहना। अभी चाय पीना, नास्ता करना, भोजन करना आदिक बड़े आवश्यक मान रखा है और धर्मका काम, मन्दिर वगैरह जानेका काम प्रवचन सुनना, वत्त्व चिन्तन करना आदि इनको आवश्यक नहीं समझा। जब समय मिलेगा तब कर लेंगे, यह सोचते है, पर ज्ञानी को तो यह बात आनी चाहिए कि हमें तो अधिकाधिक इसके लिये जितना समय मिले उतना उपयोउ दें, बाकी समय अपने दुकान आदि धन्धोंमें लगावें। इतना समय तो ज्ञानार्जन के लिए धर्मसाधना के लिए, सत्संग के लिए है। बाकी जितना समय मिलेगा यह काम धन्धेमें लगायेंगे!

धर्मकी मुख्यतामें हितमार्गका लाभ—भैया! मुख्यता देनी चाहिये धर्मके काम की। जो आनन्द निर्मोह रहनेमें और मन्द कषाय रहनेमें है वह आनन्द कहीं मोहमें पाया जा सकता? क्या क्रोध, मान, माया, लोभमें पाया जा सकता? बड़ा एक ठंडे दिलसे, बड़ी गम्भीरतासे विचार करना चाहिये, और यह निर्णय करना चाहिए कि बस मेरा कर्तव्य तो यह है कि मोह तो रंच भी न करे, याने किसी पर पदार्थ को मैं अपना स्वरूप या अपना सर्वस्व न समझें। भिन्न जानते रहें। प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है, भिन्न है, किसी भी पदार्थसे मेरा सम्बन्ध नहीं है, लेकिन मोह मिटे, क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषायें घटायें, पर हिम्मत ऐसी बनावें कि क्रोध न जग सके। क्रोधमें बुद्धि जल जायगी, आपका खुदका कुछ बिगड़ जायगा। जिस विषयमें आपको क्रोध आ गया उस काममें आपका ही काम बिगड़ जायगा। और, की बात जाने दो, अदालतोंमें जो चतुर वकील होता है वह कोई ऐसी बात छोड़ देता है कि जिससे दूसरे वकीलको क्रोध आ जाय। दूसरे वकीलको क्रोध आया, बस उसका काम बन गया। क्योंकि क्रोधमें बुद्धि हर जाती क्रोधमें दिमाग नहीं चल सकता। क्रोधमें वह जो कुछ सोचता होगा वह भी न सोच पायगा। बस उसकाकाम बिगड़ जायगा। जिस कामको लक्ष्यमें लेकर क्रोध किया जा रहा वह काम बिगड़ जायगा। क्रोध से कोई सिद्धि नहीं मिलती। अब अपनी गई बातों को भी विचार लो, जब कभी भी क्रोध किया तब कौन सा लाभ पाया? तो इतनी हिम्मत रखना है ज्ञानबल के द्वारा कि क्रोध उत्पन्न करनेकी घटना भी कितनी ही आये तो भी मेरेमें क्रोध मत जगे। क्रोधमें मेरे गुण फुक जायेंगे, क्रोधमें मेरा काम बिगड़ जायगा। अब दूसरे क्रोधसे अयस फैल जायगा। बड़ा

Digitized by eGangotri and sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

http://www.jainkosh.org

क्रोधी है, जरा जरा सी बातमें गुस्सा आ जाता है। लोगोंको विश्वास नहीं रहता है। प्रेम से हृदय खोलकर बोलनेकी हिम्मत नहीं होती क्रोधी पुरुषको। उसे कौन सा लाभ मिला क्रोधसे ? इसी तरह मान घमंड बिल्कुल व्यर्थकी चीज है। मानसे मान नहीं मिलता, घमंड करनेसे सम्मान नहीं मिलता। घमंड न हो, नम्रता हो, सब जीवोंके प्रति प्यार हो। नम्रता से चला जाय, दूसरोंको आदर दिया जाय, अपना आदर घटाया जाय, अपनेको एक नम्र बनाया जाय। मैं कुछ नहीं हूँ, इस तरह का नम्र पुरुष हो, ऐसी चेष्टा हो उसका सम्मान भी है, यश भी है, खुद भी प्रसन्न है, दूसरे भी प्रसन्न हैं। भला बतलाओ लोग बड़ा धन खर्च करके भी दूसरेको खुश रखना चाहते हैं। इसने माना कि धनका त्याग करें, दान दें ताकि दूसरे लोग खुश रहें और यदि आपके प्रिय वचन बोलनेसे, आपके नम्र रहनेसे, आपके शान्त रहनेसे कोई जीव सुखी हो जाता है तो यह तो भली बात हुई। इसमें तो आपका कुछ धन भी खर्च न करना पड़ा और देखो कितने ही लोग सुखी भी हो गए। तो फिर खुद भी शान्त हो जायें और दूसरे भी शान्त हो सकें, ऐसा उपाय क्यों नहीं किया जाता ? यह उपाय अभी तक नहीं कर पाये इसका कारण क्या है कि अज्ञानी जीवों का संग अधिक समय रहता है। ज्ञानी संतोंका संग थोड़े समयको मिलता है। तो जब अज्ञानी मोही जीवोंका, दुष्ट जीवों का, छली कपटी जीवोंका संग अधिक समय रहता है, दुकानमें, घरमें सर्वत्र जब असंग रहता है तो उसीमें दिलचस्पी भी बनती है, वैसे ही परिणाम बनते हैं तो फिर कहांसे शान्तिका उपाय बनाया जा सके ?

तत्त्वज्ञानके साधनभूत शास्त्राभ्यासका महत्व—पूजा करनेके बाद जो ७ बातें मांगी गई हैं भगवानसे ७ भावनायें जो बतायी है पूजकने वे कितनी कल्याणमयी भावनायें हैं:— शास्त्राभ्यासो जिनयतिनूतिः संगतिः सर्वदार्यैः। सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवदि च मौनयु। सर्वस्यापिप्रियहितक्चो भावना चात्मतत्त्वे। संपद्यंतां मम भवभवे भावदेतेउप बर्गः। अर्थात् हे प्रभो, जब तक मेरेको मोक्ष प्राप्त नहीं होता तब तक मुझे ७ बातें भव-भवमें मिलें। (१) शास्त्राभ्यास—आचार्य समंतभद्रमहाराजने शीतलनाथ भगवान की स्तुतिमें कहा है—न शीतलाश्चन्दन चन्द्ररश्मयो नगाङ्गमम्भोनच हारयष्टयः। यथा भुनेस्तेऽनघ-शान्त रश्मयो शआम्बुगर्भाः शिशिराः विपश्चिततामु—शीतलनाथकी स्तुतिमें बताया है कि शीतल न तो चन्द्र है, न चन्द्ररश्मि है, न गंगाका जल है, किन्तु क्या है ? हे प्रभो ! जैसे तुम्हारे वचन किरण पापरहित, निष्पाप, हितकारी जो आपकी वाणी है वही वास्तवमें शीतल है, अन्य कुछ शीतल नहीं। कोई मनुष्य इष्ट वियोग से दुःखी हो या किसी भी कारण दुःखी हो, उसे मधुर वचन, हितकारी वचन, तत्त्वज्ञान भरे वचन, सच्चे वचन—उसे सुनने को

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिलें तो उसके भीतर का आताप, भीतर का क्लेश दूर हो जाता है। वह बाहरी विचारसे दूर नहीं हो सकता। बहुत बड़े धनिक ऊंची फर्म वाले करोड़पती लोगोंके प्रायः करके हार्ट फेल हो जाता है अथवा वे बीमार बने रहा करते हैं तो उसका कारण क्या है? उसका कारण यही है कि पर पदार्थों में जो आत्मबुद्धि लगी है, जिन कारणोंसे बहुत व्यग्रता हो जाती है, शल्य हो जाती है। बीमारी हो जाती है। ऐसे पुरुषका रोग क्या कोई डाक्टर मेट सकेगा? वह डाक्टर दवा तो देता है पर औषधि नहीं दे पाता। देखिये—एक तो होती है औषधि और एक होती है दवा। दवाका काम तो है बीमारीको, रोगको दबा देना। वह मूल से रोगको खतम नहीं करती, वह अच्छी चीज नहीं, और औषधि अच्छी चीज है। क्योंकि औषधि से समय तो कुछ अधिक लग जाता है पर रोग मूलसे खतम हो जाता है। अंग्रेजी दवायें डाक्टर ने जो दवा दी उससे तुरन्त तो रोग दब जायगा, मगर बाद में फिर उभड़ जायगा, मगर आयुर्वेदिक औषधि से रोग मूलसे निकल जायगा। तो ऐसे ही समझिये कि हम अगर किसी कारण से दुःखी हैं, दिल घबड़ा गया है तो ऊपरी उपचार दवाका काम करेगा, मगर औषधि का काम तो तत्त्वज्ञान ही करेगा। कोई वीर पुरुष होता है तो वीर पुरुषकी युद्धमें तलवार चलाते चलाते कोई गर्दन भी काट ले तो भी उसके वेगके कारण हाथ चलते हैं, गर्दन कट जानेके बादभी हाथ के वेगसे चलनेसे दो चार सिपाही मार डालता है। हालांकि उसमें कुछ बात नहीं रही, मगर उसका जो वेग है, उसका जो असर है सिर कटेके बादभी उससे दो चार सिपाहियोके गर्दन कट जाते हैं। ऐसे ही समझिये—तत्त्वज्ञान का जिसके बल है वह तत्त्वज्ञानमें उपयुक्त न रहे तो भी संस्कार अनेक रोगों को तो यों ही मिटा देता है। किसीको कोई रोग हो और वह मनमें रखे कि मेरेको रोग हो गया है, क्या किया जाय? कहीं बढ़ न जाय, कुछ खराबी न हो जाय, तो वह रोग और बढ़ेगा, और जो तत्त्वज्ञान जगे कि मेरेको तो कोई रोग ही नहीं, मैं तो रोगरहित हूँ..... इस प्रकारकी बात अगर चित्तमें बनी रहे तो कितने ही रोग जो ऊपर-ऊपर तैरते हैं वे असर नहीं कर पाते। तत्त्वज्ञान ऐसी चीज है। अच्छा, और भी देखो-अगर मानो किसीको रोगरहित शरीर मिला, या कुछ मौजकी चीज मिल जाय तो उसमें भी उसके मिलनेका कारण है धर्म। जीवको शरण है तो धर्म है। धर्मके सिवाय मेरा कोई दूसरा शरण नहीं। कितने भी शरण ले लो। शरण मिलेगा आपको तो धर्म मिलेगा। यहां ऊपरसे करने वाले धर्मकी बात नहीं कह रहे हैं किन्तु आप का जो भावमें स्वभाव है शुद्ध विशुद्ध ज्ञातादृष्टा रहना, सहज ज्ञानमात्र ऐसा जो ज्ञानज्योति रूप स्वभाव है उसमें यह दृढ़ता आ जाय कि मैं तो यह हूँ, और कुछ नहीं। यह तत्त्वज्ञान शरण हो जायगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

तत्त्वज्ञान जगनेपर आत्मशौर्यका उत्साह—एक कुम्हारको जंगलमें एक शेरका बच्चा मिल गया। अब शेरका छोटा बच्चा हमला तो नहीं कर सकता। किसी पर वह क्या हमला करे? मान लो, शेरनी कहीं बाहर चली गई, उसका बच्चा कुम्हारने पा लिया और उसे ले जाकर अपने गधोंके बीच बांध दिया। वह बड़ा भी हो गया। अब गधों पर तो बोझ लादा जाता, कभी कभी उसे शेरके बच्चे पर भी कोई चीज लादी जाती। अब उस बच्चेको उन गधोंके बीच रहते हुए काफी समय हो गया। उसे अब यह ध्यान न रहा कि मैं शेर हूँ, वह तो यही समझ रहा कि मैं तो ऐसा ही हूँ जैसे ये (गधे) हैं। वह उन गधों के बीच उनकी ही भाँति दुःखी रहा करता था। एक बार उसे कहीं कोई सिंह दिख गया। उसकी गर्जना सुना। सोचा कि अरे यह तो मेरा ही जैसा है। ओह मैं गधा नहीं हूं। मैं तो सिंह हूं, लो, यह सोचकर छलांग लगाया और स्वतंत्र हो गया। तो मेरा स्वरूप तो प्रभुस्वरूप की तरह है। अगर अपने को क्रोध नहीं है तो जैसे सिंह अपने को गधा अनुभव करता था, ऐसे ही यह मैं अपनेको मनुष्य हूं, स्त्री हूं, व्यापारी हूं, फलानी जातिका हूं, फलाने बिरादरी का हूं। मैं रूपवान हूं, कुरूप हूं, सन्तान वाला हूं, यों कोई जब अपनेको मान लेगा तो उसकी वजहसे यह दुःखी होता रहता है। जिस समय यह ध्यान देगा कि यह मैं शुद्ध ज्ञानज्योतिमात्र हूं, मैं कुछ नहीं हूं और लक्ष्य हो जायगा, दृष्टिमें आ जायगा भीतर में, मैं तो यह ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व हूं, सारे संकट विदा हो जायेंगे। यहां कोई समझता है कि मैं बच्चोंको पालने वाला हूं, घरको मैं चलाने वाला हूं, स्त्री, बहिन, बुआ आदिक की मैं रक्षा करता हूं, तो यह बात उसकी झूठ है। वे जीव नहीं हैं क्या? उनके साथ कर्म नहीं लगे हैं क्या? और उनके जो कर्म बसे हुए हैं उनका उदय आता है तो वहां वह बात नहीं चल रही क्या? जैसी मेरे आत्मामें बात चल रही वैसे ही बच्चे बच्चेकी आत्मामें बात चलती है। उनका उदय है, हो रहा है, सारी बात चल रही है, कर्म चल रहा है तो घरमें जिन-जिनके भोगनेमें वह धन आ रहा है उन सबके पुण्यके कारण वह सब काम चल रहा है, न कि आपकी एक अपनी अकलके ऊपर चल रहा है। फिर चिन्ता क्या करना? जो होना है, सबका कैसा भाग्य है वैसा होता ही रहता है। काम बिगड़ गया तो मैं क्या करूं, सबका भाग्य ऐसा है। वह क्यों, वैसा क्यों। अपने ऊपर ही बात लादते कि मेरा भाग्य खराब हो गया। मेरे तो पापका उदय है? अरे आपके पापका उदय नहीं, आपके पापका उदय तो यह है कि जो आपका दिल इस बातमें लग रहा कि मेरे पापका उदय है। यह तो संसारका काम है। हो रहा है, वह पापका उदय नहीं है। पापका उदय यह है कि जो पर द्रव्यमें कुछ राग करता है, मोह करता है, लगाव रखता है, अज्ञानका अन्धेरा बना है भीतर

Version 1.1

में, वह है पापका उदय।

लोकोत्तम पदका मार्ग—जो पापरहित निर्विकल्प शिवनायक परमब्रह्म जो मेरा अपने आपका स्वरूप है सहज निरपेक्ष सत्त्व है उस रूप मानूं कि यह हूं में तो सारे संकट दूर हो जाते हैं। सारी बाधायें दूर हो जाती हैं। इतनी बात मानलें और भीतरमें श्रद्धान करें और उस कुटेबको छोड़ें, और बाहरमें पुत्र मित्रादिकके प्रति जो लगाव की गन्ध लगा रखा है, यही है सब मेरा सर्वस्व। इसके बिना मेरे प्राण नहीं, इससे ही मेरी शोभा है। ऐसा जो एक कुटेब बांध रखा है परद्रव्यके साथ उसको तो छोड़ दीजिए और अपने आप के भीतर अपना जो सहज ज्ञानप्रकाश है उस प्रकाशरूप अपनेको अनुभव करें। एक सेकेण्ड भी तो अनुभव करें, मुक्ति नियमसे मिलेगी, प्रभुता नियमसे प्राप्त होगी। भला लोग यह भी तो सोचते हैं कि मैं वैभव सम्पन्न हो जाऊं, मैं बड़ा कहलाऊं, मैं महान कहलाऊं तो बड़े महान की भी बात बतलाओ। जगतमें महान कौन है? आप तो यहां बतावेंगे किसी धनिकको कि फलाने साहूजी महान हैं। अरे उनकी चिन्ता। उनका शल्य वे जानते हैं। और वे दूसरेको महान सोचते हैं। देखिये अमरीका का जो सबसे बड़ा धनिक है फोर्ड, जिस जिसने फोर्ड नामकी कार निकाली है तो वह फोर्ड अपने यहाँ काम करने वाले मजदूरों को देखकर अपने मनमें यह ईर्ष्या करता था कि देखो ये मजदूर कितना सुखी हैं। ये काम करते हुए में भी गाते हैं, रास्तेमें चलते हुए में फालतू समयमें भी गाते हैं, रात भर खूब आराम से सोते हैं। कोई कहेगा कि राष्ट्रका जो प्रधानमंत्री हो गया वह है बड़ा। अरे उसमें भी क्या बड़प्पन की बात है। जब कभी कोई प्रधानमंत्री किसी कामके बिगड़ जानेसे गद्दीसे उतार दिया जाता है, जैसे कि अनेक लोग गिरफ्तार भी कर लिए जाते हैं, देखो क्या बड़प्पन रहा? कौन है महान संसारमें, देखो तो सही? कोई महान नहीं है संसार के अन्दर। अगर कोई महान है तो प्रभु है महान। अगर महान बनने की उत्सुकता हुई हो तो ऐसे वास्तविक महान बनो, झूठे महान बनने की बात तो कोई अच्छी बात नहीं है। तो वह माद्दा कैसे प्रकट होती? वह होता आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मरमणके प्रसादसे। इस निश्चयरत्नत्रय को बनाने के लिए क्या करना पड़ा? तत्त्वज्ञानका अभ्यास, चिन्तन, संयम, परसे हटने की बात, अभीष्ट ज्ञानोपयोग, यह काम उन्होंने करना पड़ा। तब प्रभुता पायी। यह ही काम करें उसी कामका यह प्रसंग चल रहा है। हम पदार्थका बोध कैसे करें? तत्त्वका बोध होता है प्रमाण और नयोंसे। प्रमाण है सर्वांश को जानने वाला। नय है एक अंशको जानने वाला।

जैनशासनकी तत्त्वज्ञान पद्धति—अब जरा फिर से सोचें—बताया था न, द्रव्य, गुण,

Report any errors at vikasnic@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर्याय। गुण तो शक्तिका नाम है, पर्याय वर्तमान दशाका नाम है, जो भी दशा होती हो। और द्रव्य गुण व पर्यायके समूहका नाम है वह पिण्डका नाम है, तो द्रव्य हुआ अंशी और गुण और पर्याय हुआ अंश, मगर जब इसका भी ज्ञान करने के लिए चलते हैं तो अंशी भी अकेला पड़के रह जाता है और अंश भी अकेला पड़कर रह जाता है। तब अंशी हुआ द्रव्यार्थिकनयका विषय और अंश हुआ पर्यायार्थिकनयका विषय। देखो ना, वह अंशी भी अखण्ड-स्वभाव, वह द्रव्यार्थिकनयका विषय है और गुणभेद और पर्यायकी बात, यह पर्यायार्थिकनय का विषय है। तो आखिर देखो–अंशी भी तो एक नयका विषय बन गया। प्रमाण कहां रहा ? एक यह शंका सामने आती है। अंशीका परिचय भी प्रमाण नहीं है, किन्तु नय और अंशीका परिचय भी नय है। फिर प्रमाणका बिषय क्या होगा सो बतलाओ। प्रमाणका विषय अंशी और अंश दोनों ही प्रधान रूप से जब परिचयमें आते हैं तो वह होता है प्रमाण का विषय। केवल अंशी प्रमाण का विषय नहीं, केवल अंश प्रमाणके विषय नहीं, किन्तु जहां अंशी और अंश दोनों प्रधान रहते है, परिचय में आते हैं वह है प्रमाणका विषय। अंशको गौण करके अंशीको जानता, द्रव्यार्थिकनयका विषय है। अंशीको गौण करके अंशको जानना वह पर्यायार्थिकनय का विषय है और अंश और अंशी इन दोनोंका सामान्यतया परिचय पाना प्रमाणका विषय है। अब उसका परिचय करें। देखिये एक अंशको जानना खराब नहीं, मगर श्रद्धा सही बनाकर जानें तो खराब नहीं। प्रमाणसे ग्रहण किए गए पदार्थमें अंशको जानने वालेको नय कहा गया है। बस यही भूल खाई अनेक दार्शनिकोंने। वे दार्शनिक जुदे–जुदे पड़ गए। कोई आदमी अगर ऐसा लड़े किसी को देखकर कि मानलो एक हरप्रसाद नाम है। अब कोई हरप्रसादका परिचय दे कि यह तो चुन्नीलालका लड़का है, कोई दूसरा बोला कि तुम गलत कहते हो, यह तो जीवनलाल का पिता है, तो देखिये यह एक बेवकूफी भरी लड़ाई बन जाती है न, ! अरे भाई सत्य तो देखो, किस दृष्टिसे कहा जा रहा है। वह भी सत्य है, यह भी सत्य है। झूठ कहां रहा ? बस यह लड़ाई चली दार्शनिकों की। वेदान्ती कहते हैं कि वस्तु नित्य एक सर्वव्यापक है। अपरिणामी है। तो बौद्ध कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु केवल सुलक्षण मात्र है। एक समयको ठहरती है, दूसरे समय नहीं ठहरती, उनमें हो गया जंग, तो स्याद्वादी उनका समाधान करते हैं।

जैन शासन की सर्वहितकारिता— जैन शासन कितना एक सर्वप्रिय शासन है कि जिसके माननेमें किसी को भी हिचक न करना चाहिए, लेकिन आज उल्टा काम चल रहा है। अन्य अन्य जो शासन हैं, धर्म हैं वे तो अपनी बड़ी प्रगतिको पा रहे हैं और जैन शासन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो है वह गिरता सा जा रहा है। तो इसके जिम्मेदार कौन हैं ? इसके जिम्मेदार हैं जैन शासन के मानने वाले जैनी लोग। उनके ही कारण जैन शासनका पतन हो रहा है। कोई समय था कि जैन को देखकर अदालत के लोग जज लोग बहुत प्रभावित होते थे। मानो कोई मुकदमा हुआ, उसमें अगर कोई जैन गवाही देने आ गया तो उस पर विश्वास करके जज उस जैन के माफिक फैसला कर देता था। खजान्ची भी प्रायः करके जैन होते थे। कभी इतना विश्वास जैनों पर किया जाता था, पर आज हम अपने कर्तव्यों को भूल गए। जैनों के ये चिन्ह थे—रात्रि को न खाना, जल छानकर पीना, देव दर्शन करना, मिथ्यात्व त्यागना, अन्याय त्यागना, अभक्ष्य न खाना आदि, उनको तो छोड़ दिया। कुछ समय पहले किसी की बारातमें कुछ जैन पहुंच जाते थे तो बारातमें खलभली मच जाती थी—अरे दिन से खाना बनाओ, बहुत शोध कर बनाओ। बारात के बाकी लोगों के लिए तो जो चाहे बन रहा। बैरा लोग परोस रहे। अब तो घरके लोगोंको परोसना न पड़े इसलिए कुछ बैरा लोग भोजन परोसने के लिए नियुक्त कर दिए जाते हैं। अगर घर के लोग परोसने लगे, बैरा लोग न परोसने वाले हों तो कहने लगते कि काहे की बरात। यों हम अपने आपके आचार विचार से गिरते चले जा रहे हैं। तत्त्वज्ञान न होने से, संकुचित विचार वाले होने से आज हम आप अपने आचार विचार से पतित होते जा रहे हैं। हमारे शास्त्र हमारे घर में रहें, हमारे मन्दिरोंमें रहें, दूसरों के यहां न जायें, हमारे मन्दिरोंमें दूसरे लोग दर्शन करने न जा सकें, यों कितने संकुचित विचार हैं हम आपके। अब आप यह समझें कि कभी समय था ऐसा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंमें परस्पर विवाह होता था और यहां जो इतनी लगन मिलाते हैं ना, उसमें वर्ण मिलाते हैं कि ये वैश्य ब्राह्मण मिले कि नहीं। था कोई समय, अब संकुचित हो गए। होते होते इतना बटवारा हो गया कि भाई तुम्हारा अमुक जातिका गोत्र है, अमुक जातिका है—जैसे मानलो अग्रवाल, खण्डेलवाल……, तो ये अपनी, अपनी जातिमें ही विवाह सम्बन्ध करेंगे, इस तरह के अपने संकुचित विचार बना लिया। तो यह हमारी एक संकुचित दृष्टि है, इससे हम अपने आप को गिराते चले जा रहे हैं। तो यह सब हम आपका दोष है जो हम सारे जीवोंके फायदे पर लात मार रहे हैं। नहीं तो जैन शासनका प्रचार होता।

ज्ञान और विरागतामें स्वात्मदया—तत्त्वज्ञान एक सर्वोपरि चीज है। सत्य समझें कि मैं क्या हूँ, मेरे में क्या है ? मैं हूँ एक शुद्ध ज्ञानज्योति मात्र। जो अपने आप हो सो ही तो मैं हूँ। दर्पण क्या है ? एक स्वच्छ प्रकाशमात्र। जैसे दर्पण है और उस पर कोई परका सम्बन्ध मिल गया, जो कोई चीज आ गई और उसमें छाया आ गई तो क्या वह छाया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दर्पणका स्वरूप है ? नहीं है। मगर शरीर संगमें जुटा हुआ है। शरीर और आत्मा का सम्बन्ध होनेके कारण जो बात गुजर रही है क्या वह मैं हूँ ? नहीं। जो मैं अपने आप हो सकता हूँ सो तो मैं हूँ और जो किसी पर पदार्थ के सम्बन्ध से बात होती हो वह मैं नहीं हूँ। सही बात है। मैं तो वह हूँ जो स्वतंत्र हूँ, स्वयं अपने आप शुद्ध हूँ। अपने आपके शुद्ध हूँ। अपने आपके शुद्ध से जो मैं हो सकता हूँ सो मैं हूँ। पर और कुछ नहीं हूँ कभी-कभी शानमें आकर लोग कहने लगते कि दूसरों की दया से अगर हमें आराम मिलता है तो वह आराम मुझे न चाहिए। मेरे में अपने आप जो कुछ हो वह मुझे चाहिए। अजी जैसे कोई खुद भी कह बैठता कि अजी मैं न होता तो आपका काम न बनता। जब ऐसी एहसान की बात कोई सुनता है तो वह सोचता है कि अच्छा, चाहे काम बिगड़ जाता मगर इससे काम न करवाता तो मैं अच्छा था। अभी किसी ने किसी को खूब भरपेट भोजन करा दिया और भोजन कराने के बाद वह कहे कि कहो जी अच्छा भोजन कराया ना, ऐसा भोजन तो तुमने कभी जिन्दगी में न खाया होगा। तो वह तो यही सोचेगा कि इससे तो मैं भूखा रहता तो अच्छा था। अब मैं इसे कैसे कय करदूँ ? मुझे ऐसा भोजन न चाहिए। तो ऐसा अपने आपमें क्यों नहीं सोचा जाता कि शरीर के सम्बन्ध से, कर्म के सम्बन्ध से, किसी की प्रतीक्षा से, अहसान से अगर मेरे को कोई सुख मिल रहा है, इज्जत मिल रही है, कुछ मिल रहा है तो यह मुझे न चाहिए। मैं तो अपने आप अकेला ही अपने आपमें जैसा हो सकता हूँ। जैसा रह सकता हूँ, जो मेरा स्वरूप है। बस वह स्वरूप मुझे चाहिए, वह स्वभाव मुझे चाहिए, मुझे परके सम्बन्ध से होने वाली बात न चाहिए।

ज्ञाता द्रष्टा रहनेका सन्देश—भैया ! जब भी आप अपने स्वरूपकी ओर आयेंगे, अपने आपमें खुद सन्तोष पायेंगे, तृप्त रहेंगे, यहां दृष्टि चलेगी। आपका मार्ग स्वच्छ हो जायगा। आपको अद्भुत आनन्द प्राप्त होगा, कल्याण होगा, मुक्ति प्राप्त होगी। सारे ही लाभ हैं और बाहरी पदार्थों पर लगाव करनेसे, मोह करनेसे राग करनेसे अपने चित्त से वहां नुकसान ही नुकसान है। बरबादी ही बरबादी है। उसमें लाभका कोई काम नहीं। फिर भी इतना विवेक रखना है कि जितना हमें करना पड़ता है बाहरीराग, बाहरीद्वेष, बाहरी विरोध, बाहरमें रहना, घरमें रहना, अच्छी प्रकार बोलना, काम करना, ये सब परिस्थिति के धर्म हैं, मेरे आत्माके धर्म नहीं हैं। रह रहे घरमें तो करना यह सब पड़ेगा, मगर मेरे आत्माका, ज्ञाता दृष्टा रहनेका, जाननहार रहनेका धर्म नहीं है। जानलो, समझने के लिए देखलो, बस जान लिया, देख लिया, इससे आगे न बढ़ें, रागमें न पड़ें तो कल्याण मिल सकेगा। एकछोटी सी कथा है कि एक सेठसे मुनि महाराजने कहा कि तुम देवदर्शन करनेका

Version 2

http://sahjanandvarnishastra.org/

नियम ले लो, तो उसने असमर्थता बतायी। मुनि महाराज ने पूछा कि तुम्हारे घरके सामने क्या है ? ···कुम्हार का घर। ···वहां पहले क्या दिखता है ? ···भैंसाका चांद। ···अच्छा तो चांदके दर्शनको ही नियम ले लो। सेठने यह नियम ले लिया। एक दिन बहुत ही सुबह कुम्हार भैंसा को खानपर ले गया, सेठ पूछता पूछता चांद देखने खानपर गया। जिस समय सेठने चांद देखा उसी समय खानमें असर्फियों का हंडा मिलनेसे संकित होकर कुम्हार ने ऊपर देखा। तब कुम्हार कहता है—सेठ जी सेठ जी। ·· सेठ कहता है बस देख लिया, देख लिया। ···अरे जरा सुनो तो। ···बस बस सब देख लिया। सेठ घर पहुंच गया। कुम्हार सारी असर्फिया लेकर सेठके घर पहुंचा और कहा—तुमने देख तो लिया इन असर्फियों में से आधी तुम ले लो। तब सेठ सोचता है कि मैंने चांद ही तो देखा। उसका ही तो नियम लिया, उससे तो यह लाभ। फिर देव दर्शन में न जाने कितना लाभ मिलेगा। उस का भी नियम ले लिया। तो देखो मात्र ज्ञाता दृष्टा रहने में कितना लाभ है ?

संसारके समस्त दुःखोंकी मुक्ति यदि अभीष्ट है तो मुक्तिके मार्गमें लगना चाहिए। मुक्तिका मार्ग है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। सम्यग्दर्शनका अर्थ है प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। और, निश्चयतः सम्यग्दर्शनका अर्थ है निज टंकोत्कीर्णवत् निश्चल शाश्वत प्रकाशमान जो एक ज्ञानमात्र स्वरूप है उस रूप ही अपने आपको अनुभव करना, श्रद्धान करना, प्रतीति करना सो सम्यग्दर्शन है, सम्यक्त्व की प्राप्तिके लिए बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ क्या करना चाहिए? वह पुरुषार्थ है ७ तत्त्वोंका यथार्थ श्रद्धान। श्रद्धान कब हो ? जब उसके बारेमें कुछ ज्ञान हो। यद्यपि सम्यक्त्व के होने पर ही ज्ञान सम्यक् कहलाता है फिर भी सम्यक्त्वका जो एक आधार बनता है ऐसा ज्ञान वह भी अनुरूप होता है, सही होता है, किन्तु अनुभव बिना ज्ञान है इसलिए उसे सम्यक्त्व कहते हैं। सम्यक् होते हुए भी सम्यक नहीं कहा जाता, क्योंकि वह अनुभव शून्य ज्ञान है, पर सम्यक्त्व उत्पन्न होने से पहले जो ज्ञानभाव चलता है वह मिथ्या नहीं है। है मन रूप यथार्थ समझने वाला, पर अनुभवरहित है, इतनी ही तो बात है। सम्यक्त्व हुआ कि वही सम्यक कहलाने लगता है। तो तत्त्वका अधिगम कैसे हो ? उसके लिए प्रमाणानयैरधिगमः इस सूत्रका वर्णन चल रहा है। प्रमाण और नयके द्वारा तत्त्वका, सम्यग्दर्शन आदिकका परिचय होता है। सकलग्राही जो अर्थ ज्ञान है सो प्रमाण है, याने सम्पूर्ण वस्तुको, सर्व अंशोंको, समग्र वस्तुको जानने वाला ज्ञान प्रमाण कहलाता है। और, प्रमाण से जाने हुए पदार्थमें प्रयोजनके वशसे किसी भी अंशका परिचय करना नय कहलाता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मतिज्ञान, अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञानमें नयत्वकी असंभवता—यह नयश्रुत ज्ञानका

http://www.jainkosh.org

अंश हैं। मतिज्ञानसे ज्ञातवस्तुमें नय नहीं बनता। अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञानसे जानी हुई वस्तुमें नय नहीं बनता। अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, ये चार ज्ञान निर्विकल्प हैं। इसमें तर्क नहीं उठता, कोई विकल्प नहीं उत्पन्न होता, श्रुत ज्ञान ही विकल्पात्मक है, उसमें तर्कवादी ज्ञान है, ऊहापोह है, विचार है, चिन्तन है, जैसे इन्द्रिय द्वारा देखा और देखनेपर क्या ज्ञात हुआ ? रूप। जो है सो ज्ञात हुआ। अब यह कहना कि यह हरा रूप है यह विकल्प मतिज्ञानका काम नहीं है, वह तो दिख गया, हरा ही दिख गया, पर यह हरा है, इस तरहका विकल्प नहीं लेता मतिज्ञान। हरा है, हरा ही दिख गया, बात तो मतिज्ञान में वही आयी मगर विकल्परूपसे नहीं आया। जब यह जाना कि यह हरा रंग है, और—और भी जाना गया, किससे यह बना है, किस तरह यह पोता गया है, गहरा है, हल्का है, उचित है, कुछ भी विचार करे वह सब श्रुतज्ञानकी बात है। मतिज्ञानने तो ज्ञान करा दिया उस वस्तुको साक्षात् इन्द्रिय और मन द्वारा, जैसेकि अवधिज्ञान भी ज्ञान करा देता है, इन्द्रिय मनकी सहायता बिना जहाँ जो कुछ है ज्ञात हो गया, किन्तु तत्संबंधी विकल्प नहीं होता। जैसे पुराणोंमें कथायें आती है कि किसीने मुनि महाराजसे पूछा कि मैं पहले भवमें क्या था ! तो उन्होंने अवधिज्ञान चलाया, जो था सो जान लिया, मगर जब बतानेका प्रकरण आयगा तो श्रुतज्ञानके सहारे बता सकेंगे कि यह अमुक था, ऐसा था। और उससे ही जाने हुए पदार्थ में अंशज्ञान होता है।

सकलज्ञ होनेपर भी केवलज्ञानमें नयत्वकी असंभवता—एक बात और समझनेकी है। मतिज्ञानसे जाना, जो है सो जाना, अवधिज्ञान मनः पर्यय ज्ञानसे जाना, ठीक है, न हो वहाँ श्रुत ज्ञानका अंशभूत नय, किन्तु एक बात जरा जाननेके लिए कही जा रही है कि केवल ज्ञानने तो अंशको जाना, अंशीको भी जाना, प्रत्येक पर्याय को जाना, गुण जाना, स्वभाव जाना, सब कुछ ज्ञात होता है, इतनी ही तो बात है कि वहां सापेक्षताका परिचय नहीं किया जाता किन्तु जो भी सत् है सबका परिचय होता है। तो वहां जब अंशका भी ज्ञान होता है तो क्यों नहीं यह कहा जा सकता कि केवल ज्ञानसे ही जाने हुए पदार्थमें नयकी प्रवृत्ति होती है। उत्तर कहते हैं कि सब कुछ जानकर भी केवलज्ञान निर्विकल्प है। उसमें नयकी प्रवृत्ति नहीं होती। श्रुतज्ञानका ही अंश नय है। श्रुतज्ञानसे ही नयकी प्रवृत्ति चलती है। यहां तक कुछ संक्षेपमें प्रमाण और नयकी बात कही।

प्रमाणके फलका विवरण—अब प्रमाणके फलकी बात सोचिये याने कुछ जानकर फल तो मिलनाही चाहिए। बिना फलके कैसे जानते रहें, बिना फलके कोई मनुष्य कुछ काम करता है क्या ? यह आत्मा बिना फलके जानता रहे ऐसी बात है क्या ? क्या उसे कोई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फल नहीं मिलता ? कोई सच्चा ज्ञान किया ,सम्यग्ज्ञान हुआ, प्रमाण हुआ तो उस प्रमाणसे कुछ जानता नहीं क्या ? फल न मिलेगा क्या ? फल तो मिलता है। क्या फल मिलता है, देखिये ज्ञानके ४ फल होते हैं। ज्ञान कहो, प्रमाण कहो एक ही बात है। प्रमाणके फल ४ होते हैं हान, उपादान, उपेक्षा और अज्ञाननिवृत्ति। देखो कोई भी बात हमने जाना तो जान-कर या तो उसे छोड़ेंगे या उसे ग्रहण करेंगे या उसकी उपेक्षा करेंगे ! तीन बातें तो ये करेंगे, और चौथी बात है अज्ञान दूर हो गया, यह भी ज्ञानको फल है। ज्ञानका फल अज्ञान दूर होना है। उसमें भी बड़ा आनन्द आता है। जैसे किसी बालकसे पूछा बताओ ८×७=कितने होते हैं ? तो अब वह सोच रहा है, जब तक उसको जवाब नहीं आता तब तक उसका चेहरा कितना शोकमग्न रहता है, फिकर कर रहा है, पढ़ रहा है, और जिस समयमें उत्तर आ गया—८×७=५६ तो उसकी सकल देखिये—कितनी आनन्दपूर्ण सकल रहती है, कितनी अच्छी मुद्रा रहती है कि जितनी मिठाई खानेपर भी नहीं रहती। तो यह अज्ञाननिवृत्ति भी तो एक फल है। तो प्रमाणके ४ फल होते हैं—अज्ञान दूर होना, छोड़ने योग्य चीजको छोड़ देना, ग्रहण करने योग्य चीजको ग्रहण कर लेना और उपेक्षा करने योग्य चीजकी उपेक्षा कर देना ये ४ फल हैं। अब इन फलोंके बारेमें यह सोचिये कि यह फल ज्ञानोंसे अभिन्न है या भिन्न है ? भिन्न अभिन्न तो आप समझते ही हैं। जैसे इस चौकीसे पुस्तक भिन्न है और चौकीसे रूप भिन्न है कि अभिन्न !! अभिन्न, अभिन्न माने वही एक रहता है। तो इसी तरह यहां पूछा जा रहा है कि प्रमाणके जो चार फल हैं—हान, उपादान, उपेक्षा और अज्ञाननिवृत्ति। ये ज्ञानसे अलग चीज हैं या ज्ञानरूप ही हैं ? थोड़ा दार्शनिक विषय चलकर फिर आत्माकी बात कहेंगे। यहभी सुनना चाहिए। आखिर पदार्थों में जैन शासनने क्या क्या खोज निकाला है, क्या क्या बताया। प्रभुकी वाणीमें क्या क्या दर्शाया गया है, कुछ तो इसका परिचय होना चाहिए, और यहां कोई दूसरी चीजका परिचय नहीं चल रहा है कि जैसे घड़ा या मकानकी कोई बात नहीं कही जा रही है। खुद ही यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है और यह निरन्तर ज्ञानवृत्तिका काम करता है, जाननका काम करता है, उस ही जाननकी बात कही जा रही है कि जो यह सच्चा जानना हो रहा है उसका फल क्या है ? जो भी फल है वह फल इस जाननसे अलग है या इसी जाननेमें सम्मिलित है ? यह बात कही जा रही है, उत्तरमें क्या होगा। सो देखिये एक सीधीसी कुन्जी आपको दे दिया कि जहां हैरान न होना पड़े। कोई पुरुष दो विकल्प रखे तो बहुत कुछ अंशोंमें यह उत्तर दे दिया जावे कि कथंचित् ऐसा भी है, कथंचित ऐसा भी है। आपकी कुछ समझमें न बैठे तो तुरन्त इतना तो ध्यान दें कि कथंचित् भिन्न है, कथंचित् अभिन्न। जब यह पूछा कि प्रमाणका फल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

प्रमाणसे भिन्न है कि अभिन्न ? तो किसी दृष्टिसे भिन्न व किसी दृष्टिसे अभिन्न। अच्छा जो अभिन्न हो उसमें भी कोई पूछे कि बोलो—ज्ञान आत्मासे भिन्न है कि अभिन्न ? तो जल्दी का उत्तर तो दे ही दो। किसी दृष्टिसे भिन्न है, किसी दृष्टिसे अभिन्न है। अभिन्न है यह तो बिल्कुल स्पष्ट है। ज्ञान आत्मासे अभिन्न है, यह ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानमय है। इसलिए ज्ञान और आत्मा एक ही बात है। अच्छा जरा यह बतलाओ कि भिन्न कैसे है ? अगर किसी तरह भिन्न न होता तो हम दो शब्द भी न बोल सकते थे। आत्मा और ज्ञान और आत्मा का ज्ञान। देखो, अपनी बुद्धिमें प्रयोजन आया कि नहीं, अपनी बुद्धिमें ऐसा आया कि नहीं कि ज्ञान तो स्वरूप है और आत्माका स्वरूप है। तो लक्षणके भेदसे, संख्याके भेदसे प्रयोजनके भेदसे, समझनेके भेदसे उसमें भेद भी है, हो गया ना व्यवहारदृष्टिसे भेद। तो अब प्रमाण की बात कह रहे कि प्रमाणसे प्रमाणके फल भिन्न हैं या अभिन्न ? तो देखो—एक दृष्टिसे तो अभिन्न हैं क्योंकि ज्ञान हुआ, उसी समय अज्ञान दूर हुआ तो अज्ञानका दूर होना कोई अलग बैठा रहता हो और ज्ञानका होना आत्मामें रहता हो, क्या ऐसा है ? अरे आत्मामें ज्ञान पर्याय हुआ तो उसीके मायने है अज्ञान दूर हो गया। तो अज्ञाननिवृत्ति आत्मासे, या प्रमाणसे या ज्ञानसे भिन्न चीज न रही। अब चलो त्याग, ग्रहण और उपेक्षा। तो निश्चयतः देखा जाय तो कोई भी मनुष्य परवस्तुका न त्याग करता है, न ग्रहण करता है, न उपेक्षा करता है। जैसे किसीको अपने पुत्रसे प्रीति है तो वह अपने पुत्रसे प्रीति नहीं करता, किन्तु पुत्रको ज्ञानका विषय बनाकर, विकल्प बनाकर यही विकल्पोंमें मौज ले रहा है। प्रीति बाहर नहीं कर रहा है। आपमें प्रीतिका परिणाम कर रहा है। इसी तरह यह समझें कि ज्ञानीने बाह्यवस्तुका त्याग किया तो बाह्यवस्तुका कुछ नहीं किया, वह तो भिन्न है,आत्म पदार्थसे जुदा पड़ा है, इसका मेरेमें सम्बन्ध ही नहीं है। त्याग करना किसका नाम है ? बाह्य वस्तुके बारेमें अज्ञानसे लगाव लगाये हुए थे। यह अच्छा है, मेरा है, बढ़िया है, इस प्रकारका जो लगाव लगा हुआ था, ज्ञान प्रकाश होते ही वह लगाव मिट गया, इसीके मायने है बाह्य वस्तुका त्याग कर दिया। तो निश्चयतः वह त्याग इस ज्ञानसे भिन्न रहा क्या ? नहीं रहा। अभिन्न रहा। अच्छा तो ग्रहण भी बतलावो। बाह्य वस्तुका ग्रहण करना यह व्यवहारसे कहा जा रहा है। व्यवहारसे तो बाह्य वस्तुके ग्रहणकी बात लगे या त्यागकी, उसमें तो समयभेद है और वह भिन्न है, मगर निश्चयतः ग्रहण भी क्या है ? बाह्य वस्तु कोई ग्रहण करता है क्या ? कोई बाह्य वस्तु मेरे आत्मामें आ सकता है क्या ? अरे जो एक क्षेत्रावगाह कर्मवर्गणायें हैं, जो मेरे साथ बन्धनको प्राप्त हैं, जो मरनेपर जायेंगी तो वे बांधे हुए कर्म साथ जायेंगे। इतना निकट जिसके साथ सम्पर्क लगा है उस कर्मवर्गणाका भी स्व-

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

रूप मेरेमें ग्रहण नहीं आया, वह भी जुदा पदार्थ है। मैं इस तरह भिन्न पदार्थ हूँ, फिर बाहरी पदार्थकी तो चर्चा ही क्या है ? कि बाहरी पदार्थ मेरे ग्रहणमें आ जाय। बाहरी पदार्थ क ।मैंने ग्रहण नहीं किया, किन्तु बाह्य पदार्थको ज्ञानका विषय बताकर उसके प्रति उसके सम्बन्धमें जो लगाव रखा जाता है उस विकल्पसे पकड़ा जाता है, यह ही कुछ चिन्तन किया जाता है वही तो ग्रहण कहलाया। तो वह ग्रहण ज्ञानसे अलग कहां रहा ? ज्ञानमें ज्ञानकी वृत्ति चलती है। ज्ञानमें ज्ञानका परिणमन चलता है। सो बाह्यवस्तुविषयक विकल्प उठा, उसीके मायने ग्रहण है। तो निश्चयतः ग्रहण भी भिन्न न रहा, उपेक्षा भी भिन्न न रही। उपेक्षा तो त्याग और ग्रहणसे बढ़कर चीज है। बाह्य वस्तुको हितकारी अहितकारी नहीं समझ रहा है इसलिए वह समता परिणाममें है। उपेक्षा कर दी गई है, ऐसा उपेक्षा-भाव ज्ञानसे भिन्न कैसे कहा जाता है। अभिन्न है फिर भी एक दृष्टिसे भिन्न है। कैसे कि जब हमने जाना सूक्ष्म दृष्टिसे देखा उस समय जीव त्याग नहीं करता, त्यागका समय अगला होता है। अभी तो जाना कि इसका यह नहीं है, चाहे कितना ही जल्दी उसका त्याग हो जाय, इसी तरह ग्रहण भी, इसी तरह उपेक्षा भी, तो इस दृष्टिसे भिन्न समयकी चीज होने के कारण भिन्न होनेसे अभिन्न होते हुए भी उसका प्रत्यभिज्ञान बराबर लग रहा है। इस को जिस मुझने जाना था उसने ही त्याग किया। इस वस्तुको जिस मुझने जाना था उसने ही बस्तुको ग्रहण किया। यहां प्रत्यभिज्ञान लग रहा है। इससे एकत्वका भी भान हो रहा है लेकिन समयभेद होनेसे और लक्षणभेद होनेसे यह कथंचित् भिन्न है। तो प्रमाणका फल प्रमाणसे कथंचित् भिन्न है और कथंचित् अभिन्न है। दृष्टियोंसेप्रमाणका फल प्रमाणसे कथंचित् भिन्न है, कथंचित् अभिन्न है। नयमें भी फल होता है, नयका भी फल, नयसे वह कथंचित् भिन्न है कथंचित् अभिन्न है। सीधी इतनी बात तो जाहिर हो ही रही है कि फलके जनक तो हैं प्रमाण और नय और प्रमाण और नयसे उत्पन्न हुआ है फल यों जन्यजनक-भेदसे भी भिन्न है। तब ही तो इस क्रियासे भी देख लो—"प्रमाणनयैः में तृतीया विभक्ति लिया और अधिगमः में प्रथमा विभक्ति लिया। यह भिन्नताको जाहिर कर रहा है। तो यों प्रमाणका फल प्रमाणसे भिन्न भी है, अभिन्न भी है। क्यों जाना जा रहा है, परिचय भी किसलिए किया जा रहा ? तो बस बात एक है कि जो मैं सहज निरपेक्ष अन्तस्तत्त्व स्वतः सिद्ध जिस भावरूप होऊं उस भाव रूपमें मैं अपनेको मानता रहूँ। देखो सारे संकट एकदम नष्ट हो जायेंगे। अज्ञानसे विकल्प करके, चिन्ता बनाकर बाह्य वस्तुको सामने लाकर हम व्यर्थ ही दुःखी होते हैं। इनसे तो हमारी उपेक्षा होनी चाहिए। ये तो सब नैमित्तिक भाव हैं ये तो हमें बरबाद करनेके लिए आये हैं। भला बतलाओ इस जीवनमें ही थोड़ा ज्ञानसे जी लिया,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अच्छे ढंगसे खूब मौजसे रह लिया, समाजमें जरा अपना ढंग बना लिया, इस तरहसे अपना जीवन बिता दिया इससे भी लाभ क्या मिला ? जिसे आत्मज्ञान नहीं, आत्मरुचि नहीं और जो सत्यस्वरूप है आत्माका शुद्ध सहज निरपेक्ष ज्ञानस्वरूप, उस रूप अपने आपको बनाये नहीं, परिणमाये नहीं, या उस रूप अनुभव नहीं करे, प्रतीतिमें न ले तो बाहरी उपाय अगर करते रहे मकान बनाया, दुकान बनाया···तो इसका फल क्या होगा ? कुछ भी फल न मिलेगा। यह तो सब मायाजाल है ! कुछ भी करें सब बेकार है। उन्हें तो समझें कि परिस्थितिवश करना पड़ रहा। एक कैदी भी तो यह सोच रहा कि परिस्थितिवश मुझे चक्की चलानी पड़ रही है, खेत खोदना पड़ रहा है, पर यह मेरा काम नहीं। इसे मैं नहीं करना चाहता। लेकिन यह तो उस कैदीसे भी जबरदस्त कैदी हो रहा है कि कर रहा है और उस करते हुए में मौज मान रहा है, लगाव रख रहा है कि यह तो मेरा ही काम है, मेरे ही करनेका काम है। यह मेरा नहीं तो और किसका है ? यह तो इन लौकिक कैदियों से भी भयंकर कैदी बन रहा है तो इसका फल क्या मिलेगा ? फल स्पष्ट है। संसार कारागारमें ही रहेगा। कोई ऐसे भी कैदी होते कि जब जेलसे छूटनेकी बात आती है तो वे दुःख मानते हैं कि मुझे यहां कितना बढ़िया आराम था, मगर अब जाना पड़ेगा। कोई कैदी ऐसे भी होते हैं कि यदि उन्हें कैदसे मुक्त कर दिया जाय तो वे फिर कोशिश करते हैं कि मैं फिर उसी जेलखानेमें पहुँच जाऊं। तो यह तो उससे भी भयंकर है कैदी, जो कि इस संसारके जेलखानेसे छूटनेकी बात ही मनमें नहीं लाता। यह ही सर्वस्व है, यह ही मेरा प्राण है, ये घरके दो चार प्राणी लड़के बच्चे, यह मिट्टीका घर, यही मेरा धाम है, यही मेरा सर्वस्व है, एक भयंकर कैदी बनकर इस जेलखानेमें यह रम रहा है। यह नहीं सोचता कि "राग त्यागि पहुंचूं निज धाम। आकुलताका फिर क्या काम ?" अगर मैं रागको छोड़कर अपने धाममें पहुंच लूं तो फिर आकुलताका काम नहीं रह सकता। इस संसारमें किसी का कोई सहाय नहीं, किसीका कोई शरण नहीं। किसीका कोई कुछ नहीं है। आपका ज्ञान सही है तो आपको मदद मिल जायगी। आपका ज्ञान बिगड़ गया, कुबुद्धि हो गई, विवेक खो दिया तो फिर चारा न रहा कि आप खुश रह सकें, या किसी ढंगसे रह सकें। तो आप का वैभव क्या हुआ ? ज्ञानका सही बनाये रहना। अपनी गलतीको गलती मानना, यह ही ज्ञानको सही बनानेका रूप है। मोही जन गल्तियोंपर गल्ती कर रहे हैं, पर कब मान पाता कि मैं गल्ती कर रहा हूँ। इसीको तो कहते हैं मिथ्यादृष्टि। गल्ती करके भी गल्तीको गल्ती न मान सकना, बस यही है मिथ्यात्वका रूप। अब राग ज्ञानी भी करता, अज्ञानी भी, सम्यग्दृष्टि भी घरमें रहता और राग करता, मगर सम्यग्दृष्टि तो समझता कि मैं गल्ती कर

Version

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा हूँ, पर मिथ्यादृष्टि समझ सकता है क्या कि मैं गल्ती कर रहा हूँ। वह मिथ्यादृष्टि तो अपना एकदम सारा उपयोग लगाकर बच्चोंको प्राणकी तरह मान खिलाता है, उसे छातीसे लगाता है, उस बच्चेकी मुस्कराहट देखनेके लिए उत्सुक रहता है, उसे उस समय क्या यह बात दृष्टिमें रहती है कि जो मैं इतना लगाव रख रहा हूँ यह मेरी चीज नहीं। इसका फल भयंकर है। आप देखो सब घर मरता है। ऐसायहां कोई नहीं जो मरता नहीं औरसब दुःखी भी होते, क्योंकि मोह लगा है।

ज्ञानपुत्रके जीवनसे चैतन्यकुलकी वृद्धि व शृङ्गार—एक बुढ़ियाका बच्चा मर गया, एक ही बच्चा था इकलौता। वह बच्चा मर गया तो बुढ़िया बहुत दुःखी हुई। वह बुढ़िया रोती-रोती एक साधु महाराजके पास गई और बोली महाराज मैं क्या करूं ? मेरा इकलौता बेटा गुजर गया, अब तो मेरे प्राण नहीं बच सकते। तो साधुने कहा—देख बुढ़िया, तू दुःखी मत हो, मैं तेरे बच्चेको जिन्दा कर दूंगा। बुढ़िया बहुत प्रसन्न हुई। ···देखो जो हम कहे सो करना होगा ···हाँ हां महाराज, आप जो कुछ कहेंगे वह सब करनेको हम तैयार हैं। —अच्छा जाबो किसी घरसे एक पाव सरसोके दाने ले आवो। ···हां महाराज अभी लाती हूँ। —अरे सुन तो सही, ऐसे घरसे लाना जिस घरमें कभी कोई मरा न हो। वह बुढ़िया तो बहुत खुश होकर चली। एक घर घर पहुँची बोली—मेरा बेटा गुजर गया, उसे जीवित करनेके लिए एक पाव सरसोके दाने चाहिए। ···अरे एक पाव क्या, किलो दो किलो १० किलो २० किलो ले जावो। ···मगर यह तो बताओ कि तुम्हारे घरमें कभी कोई मरा तो नहीं। ···अरे हमारे घरमें तो न जाने कितने लोग मरे। बाबा मरे, दादा मरे, भाई मरा आदि। तो फिर आपके घरसे न चाहिए। दूसरे घर गई तो वहां भी ऐसा ही जवाब मिला। यों बुढ़िया अनेकों घर गई, पर उसे कोई ऐसा घर न मिला जिस घरमें कभी कोई मरा न हो। बुढ़ियाको ज्ञान जगा कि सचमुच संसारकी यही स्थिति है। एक दिन सभीका मरण होता है। इतनी बात चित्तमें घर कर जानेसे बुढ़ियाका उस पुत्रके प्रति मोह गल गया, प्रसन्न हो गई,और साधु महाराजके पास जाकर बोली-महाराज मेरा पुत्र जिन्दा हो गया। यहां किसका कौन?उससमय बुढ़ियाको जो प्रसन्नता थी वह बच्चेके जीवित रहते हुएमें न थी। तो साधु महाराज बोले—क्या सचमुच तेरा बेटा जिन्दा हो गया ? ···हां महाराज—जिन्दा हो गया और मैं सदाके लिए कृतार्थ हो गई। अब मेरा बच्चा कभी मर नहीं सकता। जो मेरा ज्ञानपुत्र पहले मरा हुआ पड़ा था। अब यह ज्ञान जागृत हो गया तो अब सो अमर हो गया। तो भाई हर तरह प्रयत्न करके इस ज्ञानकी सम्हाल करें। इस ज्ञानमें दोष न आये, ज्ञानमें कलुषता न आये, ऐसा प्रयत्न करें तो जीवन सफल हो जायगा, और धन कितना हा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कमा लें तो भी उससे कुछ लाभ न होगा। अव्वल तो कमानेका भरोसा भी नहीं कि कल क्या होगा। आजके जमानेमें तो बिल्कुल ही भरोसा नहीं। कमाकर धर लिया और अगर कोई कानून बन गया कि इतने धनसे अधिक कोई नहीं रख सकता तो फिर उस अधिक धन से आपका फायदा क्या रहा ? यहां तो लोग समझते हैं कि जिनके पास कई मकान हैं, खूब किराया आता है, मजेमें रहते हैं, पर उनकी हालत तो देखो, ६५ परसेन्ट तो दे दिया टैक्स में, और और भी अनेक टैक्स दिया, जब उसने हिसाब लगाया तो बचा क्या ? चार आने सैकड़ा ब्याज भी नहीं मिल रहा। तो भाई इस धन वैभवमें दम क्या है ? इसे तो घास फूस की तरह समझो। वह आता है तो आये, जाता है तो जाये, बस मेरा ज्ञान जिन्दा हो गया।

ज्ञानभावमें ज्ञानमय परिणतियोंकी सृष्टि—एक सन्यासी ऐसा था जो ज्ञानमें बहुत तृप्त रहता था, ज्ञान उसे बहुत प्यारा था। ज्ञानमें इतनी धुन थी कि वह संध्या सामायिक भी भूल जाता था। तो उससे किसीने पूछा कि गुरुजी यह तो बतलाओ कि आप संध्या भी कभी कभी छोड़ देते हैं, क्या कारण है ? तो उसका उत्तर था कि सुनो भाई मेरे को दो सूतक लगे हैं। देखो किसीको सूतक लगा हो तो लोग कहते हैं कि भाई अब तुम जाप न करो, पूजा पाठ आदि न करो। तो भाई हमारे भी दो सूतक लगे हैं इसलिए हम कभी कभी संध्या भी छोड़ देते हैं।...अरे आपको सूतक कैसे लगे ? आप तो घर गृहस्थीसे दूर हैं। ...सुनो वे दो सूतक कौन हैं ? एक तो मेरी मोह रूपी माता मर गई है इसका सूतक है, और दूसरे ज्ञानरूपी बेटा पैदा हो गया है इसका सूतक है। सूतक तो मरनेमें भी लोग मानते और पैदा होनेमें भी लोग मानते। यह बात एक अलंकाररूपमें कही गई है। भाव उसका यह है कि जिसे किसी प्रकारकी ममता नहीं और जिसको एक ज्ञानतत्त्व जागृत हो गया है ऐसा पुरुष तो ज्ञानस्वभावमें हीरत रहा करता है। वहां ही तल्लीन रहा करता है। जिनकी समाधि निरन्तर चलती रहती है, जिनका आत्मबोध बिल्कुल स्पष्ट सामने रहता है उनको बाह्य क्रियायें कभी हो पातीं कभी नहीं, उनका दोष क्या है ? यह एक अलंकार की बात है। बातें दो होनी चाहिए—एक तो ममता मरे और दूसरे—ज्ञान पैदा हो। ये दो बातें जिसे मिल गईं उसे सदा प्रसन्नता है। ममता मरनेके मायने मिथ्यात्व मर गया। मिथ्यात्व कब होता है, जब अज्ञान रहता है और किसी पर वस्तुको अपना स्वरूप माना जाता है। ममता जिसकी मरी उसके स्वच्छ ज्ञानप्रकाश होगया। जिसे ज्ञान प्रकाश हुआ उसे स्पष्ट बोध है। प्रत्येक द्रव्य, प्रत्येक जीव अन्य समस्त जीवोंसे और समस्त पुद्गल आदिक द्रव्योंसे अत्यन्त भिन्न है। किसीका स्वरूप किसी दूसरी वस्तुमें नहीं जाता। किसीका द्रव्य क्षेत्र, काल भाव किसी दूसरे द्रव्यमें नहीं जाता। प्रत्येक पदार्थ अपना ही स्वरूप लिए हुए है, अपना ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एकत्व लिए हुए है और अपने आपमें अपनी पर्याय करता जाता है। किसी दूसरेको प्रवेश कराके पर्याय उत्पन्न नहीं करता। ऐसा वस्तुका स्वरूप है। ऐसी वस्तुकी स्वतन्त्रताका उसके प्रकट भान है, ऐसा ज्ञानी पुरुष अगर बाहरी क्रियाओंमें कभी कुछ भूल जाय तो बतलाओ उसका क्या दोष है ? यह संन्यासीका उत्तर था कि मेरे दो सूतक लग गए। तो ये दो बातें अपनेमें आनी चाहिए ममतासे दूर हों और ज्ञानप्रकाश प्रगट हो। ममता कई प्रकारकी होती है, घरकी, धनकी, कुटुम्बकी, शरीरकी, अपनी इज्जतकी, अपने वचनकी, अपनी शानकी यों अनेक प्रकारकी ममता होती हैं। जिसे मुक्ति चाहिए हो उसे सारी ममताओंको, छोड़कर यह अनुभव करना होगा कि मैं सबसे निराला एक ज्ञानमात्र अन्तः प्रभु हूँ। ऐसा अनुभव करें और यह विकल्प छोड़ दें, यह श्रद्धा छोड़ दें कि मैं अमुकका बाप हूँ, अमुकका बेटा हुं, अमुक जगहका रहने वाला हूँ, सारी बातोंका परित्याग करें, और एक चित्प्रकाशमात्र शुद्ध चैतन्य स्वरूप याने जिसमें किसी परवस्तुका प्रवेश नहीं, ऐसा सर्वसे निराला रहने वाला मैं चैतन्य-प्रभु हूँ, ऐसी श्रद्धा होगी तो उसके अनुरूप अपनी पर्याय बनेगी।

अज्ञानभावमें अज्ञानमय परिणतियोंकी सृष्टि— देखो लोहा है और लोहासे कोई चीज बनेगी तो लोहामय ही बनेगी और सोनासे जो चीज बनेगी वह सोनामय ही बनेगी। तो जब भीतरमें अज्ञान–भाव लगा लिया है तो जो भी चेष्टा होगी वह अज्ञानभरी चेष्टा होगी। बताते हैं ना अपभ्रंशमें कि पंडितः शत्रुर्भलो, न मूर्खो। हितकारकः, याने पंडित अगर शत्रु है तो उससे मेरेको खतरा नहीं और अगर मित्र मूर्ख है तो उससे मेरेको खतरा है, तो इसी तरह अगर अज्ञान भाव है तो जो भी चेष्टा करेगा, अगर धर्मके नाम पर भी कोई काम करेगा तो वहां भी अज्ञानचेष्टा है धर्मचेष्टा नहीं हो रही, और अगर भीतरमें ज्ञान प्रकाश है, अपने इस ज्ञान स्वरूपको मान लिया कि मैं यह हुं, ऐसी अगर ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी प्रतीति बन गई तो आपका चिन्तन, पूजन बन्दन आदिक सारी क्रियायें ज्ञान-मय होंगी, अज्ञानमय न होंगी। तो मेरा विवेक, विशुद्ध ज्ञानप्रकाश यही मेरा शरण है। यही मेरी मदद कर सकने वाला है। ज्ञानको छोड़कर मेरा कोई मददगार नहीं। चाहे आजसे शरण गह लें ज्ञानकी तो अभीसे सुखी हो गए। और अगर भवितव्य अच्छा है तो जबसे चाहो शरण गहो, दुःख मिटालो, पर दुःख मिटेगा एक अपने ज्ञनस्वरूपकी शरण गहनेसे, अन्य उपायसे दुःख न मिटेगा।

व्यवसायी ज्ञानमें प्रमाणत्व—जानकारीका परिचय कर लीजिए। जानकारीमें निर्णय हुआ करता है। जहां निर्णय नहीं, निश्चय नहीं उसे जानना तो नहीं कहते, लेकिन आप आश्चर्य करेंगे कि एक दार्शनिक ऐसा है कि जो जानको अनिश्चयात्मक कहता है याने

Reporting error: email to sahjanand@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जहां निश्चय न हो, निर्णय न हो वह तो कहलाता है सही जानना याने प्रमाण और जहां निश्चय बना उसे कहते हैं विकल्पज्ञान, अप्रमाण। आप सोच रहे होंगे कि यह बात कुछ आफत सी लग रही है कि जहां निश्चय हो, निर्णय हो उसे तो कहते हैं मिथ्याज्ञान, विकल्पज्ञान और जहां निश्चय नहीं हो पाता, निर्णय नहीं हो पाता ऐसे ज्ञानको कहते हैं प्रमाण ज्ञान। ऐसे कुछ दार्शनिक हैं, वे दार्शनिक हैं, क्षणिकवादी, क्षणिकवादके सिद्धान्तमें बताया है कि जिस समय ज्ञान किया जा रहा है उसी समय जो पदार्थ है सो पदार्थ भी उत्पन्न हो रहा है, उत्पन्न होते ही दूसरे क्षण रहता नहीं, क्योंकि क्षणिकवादियोंके यहां पदार्थ एक क्षण भरके लिए रहता है, दूसरे क्षणमें मिट जाता है। तो जिस क्षणमें पदार्थ उत्पन्न हो रहा, ज्ञान भी उसी क्षण बन रहा। तो उत्पन्न हो रहे पदार्थका निर्णय उत्पन्न हो रहा ज्ञान न कर सकेगा, इसलिए जो अध्यवसायी ज्ञान है, जहां निश्चय नहीं बस रहा है, ऐसी जो झलक है, ऐसी जो जानकारी है उसे कहते हैं प्रमाण और उसके बाद दूसरे समयमें एक निर्णय आता है, निश्चय आता है कि यह पदार्थ यह ही है। उस समय पदार्थ है नहीं सो असत्का विकल्पक विकल्पज्ञान एक मिथ्याज्ञान है। निर्विकल्प ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। किन्तु आचार्यदेव यहां यह बतला रहे हैं कि अधिगम व्यवसायात्मक होता है। जानना उसे कहते हैं और भले ही निर्णय मति श्रुत ज्ञानवाले जीवोंको अन्तर्मुहूर्तमें होता है, किन्तु जहां निश्चय पड़ा हुआ है वह तो है सम्यग्ज्ञान, प्रमाण और जहां निश्चय नहीं है वह है अप्रमाण।

आत्महितके लिये ज्ञानपौरुषकी भावना—देखो भैया! हमें अपने आपके लिए क्या सोचना है। हम अपने आपका सही ज्ञान करें और प्रमाणमें आ जाय, अनुभवमें उतर जाय, इस तरह ज्ञान करें। देखिये जैसे कहते हैं—शैलविहारी या स्वच्छन्द। हम जानने का तो काम करते रहते हैं मगर जिम्मेदारी के साथ एक आत्महितकी भावना के साथ हम जानकारी को काम नहीं करते, किन्तु जैसे मन स्वच्छन्द हुआ है, मन जिस विषयको ओर लगनेको होता हैं बस उस ओर ही हम जानकारी की रुचि लगाते हैं, लेकिन आत्मा के परिचय बिना कभी भी शान्ति नहीं हो सकती। अगर इस जीवनमें भी, इस लोकमें भी हम शान्ति चाहते हैं तो हमें आत्मज्ञान करना आवश्यक है। देखिये धन, यौवन सम्पदा, जीवन सब कुछ विनश्वर है। कुछ भी नहीं सदा टिकनेका, जीवन भी नहीं रहनेका, वैभव भी नहीं रहनेका। यह संग कुटुम्ब यह भी नहीं रहनेका, लेकिन मैं आत्मा, आप आत्मा सोच लीजिए, यह कभी मिट न सकेगा। यों तो जगतमें जो भी पदार्थ हैं वे मिटते नहीं। यह तो एक कहने की बात है कि धन विनश्वर है, मिट जायगा। धन कैसे

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिट जायगा ? यह पुद्गल परमाणुओंसे काग़ज बना, रूपया बना, सोना चाँदी बना वे परमाणु क्या मूलतः नष्ट हो जायेंगे ? अरे आपके पास न रहे तो आप उसे मिटा कहते हैं। जगतका कोई पदार्थ नहीं मिटता। सब बराबर बने हुए हैं। अनन्त काल तक रहेंगे। एक परमाणु न मिटेगा, एक भी जीव न मिटेगा। सब रहेंगे, पर यहाँ मोहमें यह कहते हैं कि लड़का उत्पन्न हो गया और वियोग हो गया तो कहते कि मर गया। तो वियोग की ही बात देखलो—जिन जिनका समागम हुआ है उनका वियोग नियमसे होगा। जिसका वियोग हो गया उसका संयोग हो अथवा न हो, दोनों ही बात है, लेकिन जिसका संयोग है उसका वियोग नियमसे है। इसमें जरा भी असत्य बात नहीं। ध्रुव सत्य है। जिस पर द्रव्यका संयोग है उसका वियोग अवश्य है। फिर बतलाओ धनके खातिर तो मायामय जीवोंकी प्रसन्नताके ही खातिर या अपने आपकी कल्पना से बड़ा समझ लिया जिस वैभवके प्रसंगसे उसके खातिर या कुटुम्बके खातिर व्यर्थका मोह लगाकर यह ही मेरा सर्वस्व है, उनको तो खूब ऊंचा करना चाहिए, इनको खूब पढ़ा लें, आप उन कुटुम्बियोंके लिए खूब धन कमाकर रख देना चाहते, देखो, कैसा आप उन कुटुम्बियोंके नौकर बने हुए हैं। उनके पुण्यका उदय है जिससे आपको उनकी नौकरी तो करनी ही पड़ेगी। तो कुछ भी चीज सदा रहनेकी नहीं है, यह बात तो निश्चित है, तब फिर देखो सब ज्ञान ही ज्ञानकी बात है। तपश्चरण करनेकी बात नहीं कह रहे। व्रत, संयम नियम की बात नहीं कह रहे, देखो चीज छोड़ो, यह कुछ नहीं बतला रहे। यहीं बैठे बैठे आपके भीतरमें जो आपका ज्ञान है उस ज्ञानका प्रयोग करनेके लिए कह रहे हैं। जरा उस ज्ञानके द्वारा भीतरमें यह तो जानो कि जो जानने वाला है वह ज्ञानस्वरूप है। और, वह अपने ज्ञानके द्वारा अपने आपको जानता है ऐसा मैं ज्ञानमय पदार्थ हूँ, सदा रहूँगा।

विषय कषायके परिहारमें ही ज्ञानकी वास्तविकता—ज्ञानमय निज पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ रंच भी सम्बन्ध नहीं किसी भी जीवके साथ। पर मोह और रागकी बलिहारी तो देखो, जितना परिचय हुआ है, जिसे अपना मान रखा है, ऐसा लगता है कि यह ही मेरा सर्वस्व है और है कुछ नहीं। अचानक वियोग हो जाता है, और देखो जहां दुःख है, जहां वियोग है, जहां कष्ट है वहां भलाई नहीं हो सकती। जहां कष्ट नहीं, जहां दुःख नहीं वहां भलाई नहीं हो सकती। सिद्धान्तके अनुसार देखो कर्मभूमिमें ये कष्ट हैं, वियोग है तो मोक्षमार्ग यहाँ से चलता है। योगभूमिमें कष्ट नहीं, वियोग नहीं। देवगतिमें कष्ट नहीं, वियोग नहीं, वहांसे मुक्ति नहीं होती। कष्टसे घबड़ाना क्या ? कष्ट आता है तो जरा भेद विज्ञान करलो—मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, मेरे में तो कुछ भी नहीं आया, यह बाहर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की बात है। बाहर ही रह गई है, इससे मेरा क्या ताल्लुक। जरा ज्ञान तो बनाओ, कष्ट रहता ? ज्ञान ही साथी है। चाहे आज आदर करलो ज्ञानका और जब मनमें आ जाय तब करना, मगर ज्ञानका आदर किए बिना शान्तिका रास्ता कभी नहीं पा सकते। कितनी सरल बात है, कितनी सुगम बात है, कितनी महान बात है। मेरा यह ज्ञानस्वरूप, यह भगवान आत्मा मेरे ज्ञानके द्वारा जाननेमें आता। यह भी तो मैं हूँ। सबसे निराला हूँ, अपने आपकी निधि वाला हूँ। ज्ञान करनेमें कोई कठिनाई तो नहीं आती। अगर मोह मिथ्यात्व विषका दमन करना चाहते, झट समझमें आ गया कि यह मैं ज्ञानमात्र आत्मा यही भगवान है, यही मैं सर्वस्व हूँ। देखिये ये भवरे कई तरहके होते हैं। कुछ तो ऐसे होते हैं जो अच्छी सुगन्ध पर ही रहते हैं और जो अच्छा पराग हो उस पर ही मंडराया करते हैं। और कुछ ऐसे देखा होगा कि गोबर की गोलियां बनाकर उसीको ही गोल-गोल करते रहते हैं, उसीमें खुश रहते हैं, और वे भी भंवरे हैं, उड़ने वाले हैं, मगर उन्हें गोबर की गोलियाँ ही पसन्द हैं। और कुछ भवरे ऐसे होते हैं कि जिनको वड़े अच्छे अच्छे पुष्पोंका सुगन्ध ही पसन्द है। आप देखिये—ऐसे ही मोही जीव हैं, उनको पर पदार्थका राग वाला ज्ञान ही पसंद है। ज्ञानी पुरुष कोई ऐसे विलक्षण नहीं होते कि उनके हाथ पैर और तरह के होते हों, सिर और तरहका होता हो। जैसे बारातमें दुल्हा अलगसे पहिचान लिया जाता है ऐसे ही ज्ञानी पुरुष कोई सकल सूरतसे अलग पहचान लिया जाता हो ऐसी बात नहीं। मनुष्य ही क्या, प्रत्येक मन वाले जीव जैसे पशु, पक्षी, ये भी ज्ञानी हो सकते हैं। जिसके मन है वह ज्ञानी हो सकता है। जिसको अपना ज्ञानस्वभाव रूच गया—मैं तो यह हूँ, उस ज्ञानस्वभावकी आराधना में ही मेरा कल्याण है। अब तक जितने जीव सिद्ध भगवान बने हैं वे ज्ञानस्वभावकी आराधनाके फलमें ही बने हैं। देखो भाई जैसे कोई पुरुष बूढ़े पिताकी वचनोंसे भक्ति करे, खानेसे भक्ति करे, कोई चीजसे भक्ति करे, सब कुछ करे पर एक उसकी आज्ञा न माने, उल्टा गालियां दे तो वह पिताका भक्त कहलायगा क्या ? ऐक रीति रिवाज है, कोई भाई बुरा न कह दे, कोई पड़ौसी यह न कहदे कि यह अपने आपको खिलाता भी नहीं इसलिए उसे खिलाता है, पर इसका कहना नहीं मानता, बल्कि उल्टा—उल्टा चलता है, उसके हृदयमें अपने आपके प्रति अनुराग भी नही है तो वह पिताकी भक्ति कहलाती है क्या ? ऐसे ही हम मन्दिर भी आते हैं, चावल भी चढ़ाते हैं, दो चार काम भी कर आते हैं पर भगवानका जो मार्ग है, मार्ग तो वही सच्चा है। ज्ञानस्वभाव को आराधनाके मार्गसे ही प्रभु सिद्ध हुए हैं। धन्य है उनकी वर्तमान निर्मल दशा और मेरेको यह ही कर्तव्य है तब ही मैं भगवानका सच्चा दास हूँ। इस प्रकार भगवानके स्वरुप

http://sahjanandvarnishastra.org/

में और भगवानने जो काम किया, जिस मार्गसे चले उस मार्गमें अनुराग नहीं और उस मार्ग पर चलनेकी अपनी भावना नहीं तो समझो कि सारी भक्ति उसकी उस प्रकार है जैसे कोई अपने बूढ़े बापको खाना तो दे मगर उसकी आज्ञा नहीं मानता, उसके प्रति हृदयमें अनुराग नहीं है। उस तरहकी बात है।

आत्मदयाके अर्थ ज्ञानोपासनाकी आवश्यकता—आत्मानुशासनमें लिखा है कि चित्त-साध्यान् कषायारीन्न जयेद्ययत्तदज्ञता। अर्थात् हे नवाब साहब, हे बड़े आरामकी धुन रखने वाले पुरुष, कुछ अगर तपस्या न बने तो न करो, कोई कष्ट न सहो, लेकिन कषाय बैरियों का जीतना केवल एक चित्तसाध्य है, ज्ञानसाध्य है और यह ज्ञान द्वारा जो बात बन सकती है, विचार द्वारा ही जो बात बन सकती है, महान कषाय अरिको जीतनेकी। सो यदि ऐसा ज्ञान न आये, अरिको न जीता ज्ञानबलसे तो तुम्हें मूढ़ कहेंगे। हम नहीं कहते कि तपस्या करो किन्तु शुद्ध ज्ञानकी कृपासे कषायपर विजय होती है उस शुद्ध ज्ञानके बलसे कषायपर विजय न प्राप्त करें तो वह मूढ़ता है। मोह बड़ा प्रबल है। कुछ तो सोचों अपने आप में। देखो दिन भर भी गल्ती करो मगर कभी एक मिनट भी एक इस भगवान आत्माकी दृष्टि बन जाय कि मैं तो यह हूँ। रात दिनके २४ घन्टेमें जो मैंने विकल्प किया, बाहरी पदार्थोंमें दृष्टि दी, उस ओर ही आकर्षण रहा, तो वह मेरा काम नहीं है। वह मेरे कुलके अनुरूप बात नहीं है। मेरा कुल तो चैतन्य है, मेरे अनुरूप तो बात यह है कि ज्ञातादृष्टा रहूँ, राग-द्वेषके विकल्पोंसे दूर रहूँ। यही मेरे कुलकी रीति है। बाकी जो कुछ किया है वह कर्मका विपाक है। यह मेरा काम नहीं। एक मिनट भी अगर अपने आपकी ओर दृष्टि जाय तो समझो कि वह जीवन धन्य है। एक कथानक आया है कि एक राजा पर किसी शत्रुने चढ़ाई कर दी तो राजा तो सेना सजाकर शत्रुपर विजय प्राप्त करने चला गया, इधर रानीको राज सिंहासन दे दिया कि रानी राज्य करे। इसी बीचमें मौका पाकर किसी दूसरे शत्रुने उस राज्यपर आक्रमण कर दिया तो रानीने सेनापतिको बुलाया, वह सेनापति जैन था। रानी बोली हे सेनापति देखो अमुक शत्रुने आक्रमण कर दिया है, तुम सेना सजाकर उसपर विजय करो। वह जैन सेनापति सेना सजाकर चल दिया, दूर स्थान था तो रास्तेमें साम हो गई। रातके ७ बज गए। तो उस समय उसे इतना मौका न मिला कि वह हाथीसे उतरकर नीचे सामयिक करे। सामयिक करनेका उसके नियम था। देखिये कुछ समय पहले युद्ध करनेका समय नियत रहा करता था कि इतने समय तक युद्ध चालू रहेगा, इसके बाद बन्द हो जायगा, तो वह सेनापति हाथीपर बैठा हुआ सामयिक करने लगा। सामयिक करते समय प्रतिक्रमण पाठमें वह एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदिक जीवोंसे अर्थात् पेड़ पौधा,

Regd. by email at [illegible]@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कीड़ा मकोड़ा, मक्खी मच्छर आदि जीवोंसे माफी मांग रहा था—किसीभी जीवको मेरे द्वारा बाधा पहुँची हो तो माफ करो किसी चुगलखोरने यह बात रानीके पास जाकर कह दी कि आपने तो ऐसा सेनापति भेजा कि जो पेड़ पौधा, कीड़ा मकोड़ा आदिकसे भी माफी मांगता है, वह क्या युद्धमें विजय प्राप्त करेगा। इधर हुआ क्या कि ७ ही दिनमें विजय प्राप्त करके वह सेनापति आ गया। तो रानी कहने लगी कि—हे सेनापति! मैंने सुना था कि तुम पेड़ पौधा, कीड़ा मकोड़ी, मक्खी मच्छर वगैरह छोटे छोटे जीवोंसे भी माफी मांग रहे थे, पर तुमने कैसे युद्धमें विजय प्राप्त कर लिया? तो सेनापति बोला—महारानी जी सुनो मैं आपका २३ घन्टेका सेवक हूँ। उतने समय तक आपका जी जान लगाकर काम करनेको तैयार रहता हूँ। रातको काम पड़ जाय, हर समय मैं आपका नौकर बना रहता हूँ, पर एक घन्टा मैंने अपने आपकी (आत्माकी) सेवा के लिए रखा है। मेरे आत्माकी सेवा इसी तरह होती है कि किसीभी आत्माको मेरे द्वारा कष्ट पहुंचा हो तो क्षमा करना, ऐसी भावना बनायें। तो वह मेरी आत्मसेवाका समय था इसलिये मैं सभी जीवोंसे माफी मांग रहा था, लेकिन जब आपके काममें कर्तव्यका समय आया तो मैंने पूर्ण बलके साथ युद्धका काम किया और विजय प्राप्त हुई। तो ऐसा हम आपभी समझलें कि हम २३ घन्टेतो औरोंके नौकर, कुटुम्बके नौकर, नौकरके नौकर बने रहें, मालिक मायने क्या? जो नोकरका नौकर हो। अरे उन नौकरोंको खिलाना, वेतन देना, उनकी गृहस्थी चलाना, यों नौकरोंकी भी नौकरी करनी पड़ती। उस मालिकको। तो २३ घन्टा तो हम सब कुछ करें मगर एक घन्टा तो अपने आपकी सेवामें लगायें, आत्माकी आराधनामें लगायें, ज्ञानस्वरूपकी उपासनामें लगायें। तब मेरा भला है, ऐसी धारणा बना लेवें और दुर्लभ इस मानव जीवनको सफल कर लेवें।

ज्ञान द्रष्टा रहनेका कर्तव्य—मेरा काम है ज्ञातादृष्टा रहना। रागद्वेष करना मेरा काम नहीं। जैसे कोई बुरा करता है ना तो भीतरसे उसका आत्मा गवाही दे देता है कि यह काम बुरा है और अगर करे तो वह उसके कर्मका तीव्र उदय है। काम कर भी बैठें तो भी भीतरमें एक आवाज आती है कि यह काम बुरा है जरा भी रागद्वेष करे। बाह्य पदार्थ से मोह करें, बाह्य पदार्थसे प्रीति करें, यह ही सब कुछ मेरा हितकारी है, ऐसी श्रद्धामें बात लावें तो झट गवाही देगा अपना आत्मा कि यह काम मेरा नहीं है। यह मेरा उचित काम नहीं है। मेरा उचित काम तो है ज्ञाता द्रष्टा रहना! ऐसी अपनी एक स्थिति बनानेकी सोचें। देखिये—बड़ा तो सब बनना चाहते। अच्छा—बड़े तो बनें आप, मगर ऐसे बड़े बने कि जिससे बड़ा और कुछ नहीं हो सकता। बड़े से बड़ा कौन? प्रभु, भगवान। अरहंत और सिद्ध। सशरीर परमात्मा और अशरीर परमात्मा। तो ऐसा ही बड़ा होने का मनमें

Jain Education International

http://sahjanandvarnishastra.org/

विचार आना चाहिए और वह विचार बनेगा। वह उपाय बनेगा धीरतासे, गम्भीरतासे, अपने आपमें गुप्त ही गुप्त। एक बड़ी सौम्यताके साथ, समताके साथ, जहां भावुकता न हो ऐसी वृत्तिके साथ जहां भावुकता न हो, क्षोभ न हो, ऐसी वृत्तिके साथ बनेगा अपने आत्माके कल्याणका उपाय। भाई बात बिल्कुल निश्चित है, कषायोंसे बरबादी है। कषाय न हो तो आत्माको शान्ति है। और शान्त पुरुष सदा प्रसन्न रहता है, सुखसे रहता है। सुख मिलेगा कषाय न करनेसे। कषाय करनेसे आज तक किसीने भी शान्ती नहीं पायी। पा नहीं सकते। कषायका अर्थ ही यह है जो आत्माको कसे अर्थात् दुःख दे। कषायसे विजय न मिलेगी। विजय मिलेगी तो अपने आपके मनपर विजय प्राप्त करनेसे मिलेगी। उसका अभ्यास कुछ तो होना चाहिए, उसकी कभी चर्चा भी तो कर लेना चाहिए। जब परस्पर मित्र मिलते हैं, जो पहलेसे मित्र बने हुए हैं उस मित्रताका ढांचा बदल लीजिए। मित्र तो वही रहें, पर ढाचा बदल दीजिए। कभी बैठकर परस्परमें आत्महितकी बात भी तो कर लिया करें। आप सच्चे मित्र बन जायेंगे। और आत्महित की बात तो कभी रंच करेंगे ही नहीं, और बस विषयोंके परिग्रहकी यहां वहां भी निन्दाकी और बात कर अनेक गप्प करके मित्रताका नाता निभा लें तो उसमें वास्तविक मित्रता नहीं। वास्तविक मित्रता तो इसमें है कि वहां आत्महितकी बात रखें, अपना कल्याण हो, मित्रका कल्याण हो, तो बस भेद विज्ञान की बात उसमें आ जाती है। भेदविज्ञानकी चर्चा करें उनसे मैं आत्मा हूँ, स्वयं हूँ: स्वतः सिद्ध हूँ, परिपूर्ण है, ज्ञानानन्दका निधान हूँ। मैं अपने आपमें अपने आप ही परिणमता रहता हूँ। मेरा किसी दूसरी वस्तुसे रंच भी सम्बन्ध नहीं। समग्रपर वस्तुओंका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उनका उनमें ही है। कोई परिणातियोंका लेन देन नहीं। मैं एक स्वतन्त्र जीव पदार्थ। ऐसी दृष्टि करो मित्र ऐसा मित्रको सम्बोधो, अपने आपको भी सम्बोधो और ऐसी मित्रता निभावो कि जहां संसारके संकट सदाके लिए दूर हो जायें, ऐसा उपाय बताओ। वह है मित्रता। आपको घरमें प्यार है, स्त्रीसे प्रीति है, पुत्रसे प्रीति है, तो वास्तविक प्रीति आपकी कब कहलायेगी कि जब मोक्षमार्गकी बातें सुनायें। समर्थन करें। उसमें उत्साह बनावें। जीवन क्षणभंगुर है, इसलिए जल्दी धर्मकी बात करलो। "जब तक न रोग जरा गहे, तब लों..... निज हित करो।" इस तरहसे स्त्रीको समझावो, बच्चोंको समझाओ, खुद भी वैसा जीवन बनाओ।

संयुक्ताको अविश्वास्य समझकर धर्मानुराग करनेका अनुरोध—जिन जिनका संयोग हुआ है। उनका वियोग अवश्य होगा। अगर आपको प्रीति उत्पन्न हुई है तो ऐसी प्रीति बनाओ कि जिससे भविष्यमें भी शान्ति मिले। प्रीति निभावो तो ऐसी कि जिससे सभी

Reprinted by jainelibrary.org at vidyasagar@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

चलें उस मार्गपर और बहुत-बहुत दिलमें जो यह बात कोई रखता हो कि मेरे को तो बहुत काम पड़ा है। कमाईका काम पड़ा है, व्यापारका काम पड़ा है, फुरसत नहीं मिलती तो यह भ्रम भी जरा छोड़ दीजिए। आपके पूर्वपुण्यका उदय है इसलिए कमाईका फल मिल जाता आपको। थोड़ा बहुत कमायी करते हैं, प्राप्ति होती है वह पूर्वकृत पुण्यका फल है। धर्मका फल है कि जिस धर्मसे, जिस पुण्यसे वर्तमान में एक माने हुए सुखके साधन मिल जाते हैं। वर्तमानमें भी अगर हम धर्म करें, पुण्य करें, समय निकालें और कुछ तत्त्वचर्चा हो, ज्ञान आराधनामें, सत्संगमें, गुरुसेवामें, अन्यअन्य कर्तव्योंमें अगर हम अपना समय लगायें तो हमारेमें कमी नहीं आयी। बल्कि पुण्यरस बढेगा। और बड़े बड़ें सेठ ऐसा ही करते हैं। जो बहुत ऊँचे धनिक हैं, प्रायः देखा होगा कि वे व्यापारके काममें २४ घन्टा समय नहीं लगाते, अगर वे २४ घन्टे उसकी धुनमें रहें तो उनका दिमाग फट जायेगा। तो उनको थोड़ा सत्संगमें भी समय लगाना पड़ता और अच्छे काममें भी समय लगाना पड़ता तब उनका दिमाग रह पाता, नहीं तो फट जायेगा। इतनी बड़ी उलझन रहती है बड़े पुरुषोंको और उनको देखो तो बराबर लाभ होता रहता है। दशलक्षणके दिनोंमें बहुत-बहुत धर्मसाधन करते हैं, फिर भी कमाईका काम चला करता है, हमें आप बतलाओ उन दश धर्मके दिनों में फर्ममें कोई घाटा पड़ा क्या ? बल्कि देखा होगा कि उनको उसमें कुछ हानि नहीं होती, किन्तु एक उत्कर्षका मार्ग और निकल आया। तो यह नौकरी कर रहे हैं। घरके जितने लोग हैं, परिवारके लोग उनकी नौकरी और फर्ममें जितने नौकर हैं उन सबकी नौकरी और खुदके लिए दो रोटी दो कपड़े, सिवाय इसके और क्या करते हैं एक लोक नातेसे ? बाकी तो सबके लिए ही किया जा रहा है। किया क्या जा रहा है, हो रहा है, उनका उनके योगानुसार आपके बिना तकलीफके होता है, होने दो, मगर चित्तमें तो बिल्कुल फक्कड़ सा होना चाहिए। मेरा कुछ नहीं है। जिसका जैसा भाग्य है वैसा होता है, उसके अनुसार चलता है। मेरा कुछ नहीं है, ऐसा अपने चित्तमें उपेक्षाभाव वाले अन्तः सन्यासी बना रहना चाहिए। उसमें एक शान्तिका मार्ग मिलेगा। जैसे कल्याण हो सकता है वे सब उपाय इससे प्राप्त होंगे।

अकर्त्तृत्वस्वभावकी उपासना—उपयोग ही मेरा स्वरूप है। जानना, लगना, समझना, विचारना, भीतर देखे वह जानन, प्रतिभास करना, विचार करना, सोचना विकल्प होना बस यह ही मेरेमें वृत्ति चल रही है। एक चक्की चला करती है। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं करता। बतलाओ बाहरमें मैं क्या करता ? किसीने मानो कोई उत्पादन किया, मानलो कपड़ा सिया तो बताओ इसमें इस आत्माने क्या किया ? उसने तो कल्पना

version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किया, विचार किया, तर्क विकल्प किया, फिर इसके बाहर निमित्त नैमित्तिक भावसे वह सारी बात चलने लगी, कपड़ा सिल गया। ज्ञान किया, इच्छा किया, आत्मामें योग परिस्पंद हुआ, उससे शरीरकी वायु चली, उसके अनुरूप अंग चले और उसके अनुरूप बात चली। लो कपड़ा सिल गया। जो भी काम होता है वह निमित्त नैमित्तिक भावपूर्वक होता है, उस में कोई कुछ नहीं करता। मैं तो अपने आपका कर्ता हूँ। परम विश्राम लें, अपने आपके निज अन्तः स्वरूपपर दृष्टि तो करें, यह है अपनी सच्ची दया। जैसे कभी होता है ना कि जो बुद्धिमान लोग हैं वे इसमें सन्तोष करते कि लो किसीका कुछ हो मैंने तो अपना काम बना लिया। मैंने तो इतना अपना फायदा कर लिया। जो भी उसके चित्तमें फायदेकी बात है तो ऐसे ही यह समझें कि इस प्रकार उस जीवका जो कुछ होता है हो, मैं तो अपना फायदा निकाल लूँ, अपनी अन्तः दृष्टि बनाकर अपने स्वरूपकी उपासना करके अपने आपके कल्याणका मार्ग तो बना लूँ, इस ओर अपनी दृष्टि होनी चाहिए। आत्महितका उपाय बना लेना एक बहुत बड़े महत्वकी बात है, इससे बढ़कर समस्या इस जीवनमें नहीं है। जो कोई समझता है कि घरमें तो बड़ी समस्या है धर्मके लिए हमें समय नहीं मिलता। अरे खास समस्या तो धर्म करनेकी है, क्योंकि आगे भव-भव में दुःखी होना पड़ेगा। यहाँ की समस्या क्या है? अगर कुछ काम ढीला पड़ गया तो पड़ गया, लोगोंके बन्धनसे क्या मेरा बिगड़ गया। कुछ नहीं बिगड़ गया। अगर एक धर्मसे न रहे, तत्त्वज्ञानमें न आये, आत्माकी चर्चा में न आ सके तो मेरा सब कुछ बिगड़ गया। बिगड़ा है अपने आपकी भूल करनेसे। बाहरी पदार्थोंका कितना ही संग्रह किया जाय, शृंगार किया जाय, बढ़ाया जाय, प्रगतिकी जाय उससे मेरा लाभ नहीं है। मेरा लाभ तो आकिञ्चन्य रहनेमें है। मेरा मात्र यह मैं ज्ञान-स्वरूप हूँ। बाहरमें मेरा कहीं कुछ नहीं है, ऐसा अपना परिणाम बने, ऐसी हमें जानकारी बने, उस जानकारीको पानेके लिए हमें जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष इन सबका स्वरूप समझना होता है, आंशिक स्वरूप, सर्वांश स्वरूप, वस्तुस्वरूप निश्चित हो, मोह दूर हो तो कल्याण होगा। दृश्यमान समागमको क्या उपयोगमें लेना?

स्नेहभावके हटते ही आनन्दविकासकी साहजिकता—एक खिलौना मेंढकका आता है, जिसमें नीचे एक पट्टी लगाते हैं उसमें चिपकाओ तो वह चिपकी चीज कब तक रहेगी? तो उसपर एक मेढक बना रहता है, आखिर वह चिपक जब छूटती है तो वह मेढक उछल जाता है। उछलने के लिए तो वह तत्पर ही रहता है, चिपका हुआ होनेके कारण नहीं उछल पाता, जहाँ वह चिपक छुटी कि झट उछल गया। कुछ किवाड़ भी इस तरहके स्प्रिंगदार आते हैं कि जिन्हें खोलकर पकड़े रहें तब तो खुले रहेंगे नहीं तो वे बन्द होनेके

Reporting Errors and Feedback: sahjanand@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिए सदा तत्पर रहते हैं। छोड़ा नहीं कि झट अपने आप बन्द हो जाते हैं। तो जैसे वह खिलौना तो मेढकको उछालनेके लिए ही तैयार है, अथवा वह किवाड़ स्वयमेवे बन्द होनेके लिए ही तैयार रहता है ऐसे ही समझिये कि हम अपने आपमें ऐसा ऊत्साह बनायें कि मैं तो ज्ञान और आनन्दके विपाकका स्वभाव लिए हुए हूँ, ऊसे हम छल करके, अन्याय करके, परलक्ष्य करके दबाये हैं। फल ऊसका यह है कि विपरीत काम कर रहे हैं। जरा ऊस विपरीत कामको छोड़ दे, फिर कल्याण और स्वच्छता पायेंगे। वह तो हमारे हाथमें है। वह ज्ञान बाहरी चीज नहीं है। जो लोग कुछ शास्त्र बांचते हैं, सुनते हैं, ध्यान करते हैं भक्ति करते हैं, धर्म करते हैं यह सब किसके लिए ? वह मामला तो सारा तैयार पड़ा है ऊसमें कमी कुछ नहीं है। बस इतना जबरदस्त व्यामोह बसाकर ऊसको पकड़ रखा है। इसकी पकड़ छोड़ें तो मामला हमारा अपने आप प्रकट हो जायगा। तो ऐसी हम अपने आपके विषयमें जानकारी की बात पहले बनायें और अबसे मित्रता का वातावरण ऐसा बनायें कि ऐसा सोचें कि मेरे मित्र विशेषकर धर्ममार्गमें लगें, तुमको पूजाकी रुचि हो, तुम को स्वाध्यायकी रुचि हो, तुमको सामायिक करनेकी रुचि हो, ये भगवानके नामपर जब कब चर्चायें करते रहें, एक दूसरेको धर्म कार्यमें लगावें तो यह हुई वास्तविक मित्रता। नहीं तो ऊसे शत्रुता कह लीजिए। अगर मानो विषयके साधनोंमें ही मन बदल बदलकर हमने दोस्ती निभाया। तो हमने दूसरेका भला क्या किया ? बल्कि बुरा ही किया। उसका उदय आयगा। जैसा उदय आयगा वैसा फल भोगेगा। तो बस बात इतनी है कि अपने आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण बने और ऊसके लिए तत्त्वज्ञानका अभ्यास बनायें। बड़ी नम्रतासे निष्पक्षभावसे। मेरेको केवल यही चाह है कि मेरेको मुक्ति प्राप्त हो। मेरी बात कोई माने, मेरा प्रभाव होने लगे, कुछ समझें। ये कोई विकल्प मुझे नहीं हैं। इस प्रकार धर्मकी भावना रखकर धर्म कार्यमें लगें तो हमारा जीवन सफल है।

मोक्षमार्ग पानेका प्रारम्भिक कदम अधिगम—संसारके समस्त संकटोंसे छूटनेका ऊपाय आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मरमण है। ज्ञानोंमें सर्वोपरि ज्ञान आत्मज्ञान है। शरण भी केवल एक यह आत्मतत्त्व ही है। जगतके लोग जो व्यर्थ दुःखी हो रहे हैं—व्यर्थ के मायने न लेना, न देना, न कुछ मतलब। केवल कल्पनायें करके भ्रम बनाकर व्यर्थमें ही दुःखी हो रहे हैं। कहीं परिवारको अपना माना, कहीं वैभव को अपना माना। कहीं अन्य जिस चाहे को अपना स्वरूप माना, इससे मुझे सुख होगा, यही मेरा प्राण है। अनेक प्रकार की भावनायें इस जीवने बनाया और यह दुःखी हुआ और यह ही हो रहा। इसको दुख की चोट तो पहुँच रही है रागसे तो दुखी हो रहा और दुःखकी चोट नहीं सह सकते, सो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऊपाय रागका ही कर रहे हैं। रागसे तो दुःखी हो रहे और उस दुःखको मेटनेका उपाय राग ही किया जा रहा है, तो ज्ञानसे उत्पन्न हुआ दुःख रागसे ही कैसे मेटा जा सकता है ? जैसे खूनका दाग खूनके धोनेसे नहीं मिट सकता इसी प्रकार रागसे उत्पन्न हुआ दुःख राग करके न मेटा जा सकेगा। औंधा औंधा काम उल्टा उल्टा काम जगतके जीव करते आ रहे हैं। इसको जब भी सुबुद्धि जग, जब इसका भवितव्य हो, जब मोक्ष निकट आये तब सत्य प्रकाश होता है। ओह मैं तो यह ज्ञानमात्र हूँ। मेरे में आनन्द स्वरूप स्वतः है। आनन्द कहीसे लाना नहीं होता। यह अपना ज्ञानानन्द निधान है, ऐसा प्रकाश आये तो उसको सम्यक्त्व कहेंगे। तो मोक्षका मार्ग क्या है ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। देखो मोक्षशास्त्रके पहले अध्यायमें प्रथम सूत्रके बाद सम्यग्दर्शनका लक्षण कहा। तो उसके बाद कहीं भी तो ज्ञानका लक्षण कहना चाहिए था। और, सम्यक्चारित्रका भी लक्षण कहना चाहिए था। जो लोग मोक्षशास्त्रका अर्थ जानते हैं उन्हें पता होगा कि पहले अध्यायमें सम्यग्दर्शनका तो लक्षण बनाया तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, पर सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका कोई लक्षण नहीं कहा। उसका कारण यह है कि सम्यग्ज्ञान शब्द तो बिल्कुल सीधा है, सच्चा ज्ञान करना, सम्यक्चारित्र भी सीधा है मगर सम्यग्दर्शनमें जो जो दर्शन शब्द है उसके अनेक अर्थ हैं देखते भी हैं, और जैसे कभी किसीको कहते हैं— अच्छा हम तुम्हें देख लेंगे। तब क्या अर्थ है ? कितने ही अर्थ हो जाते हैं। यों दर्शनका देखना भी अर्थ है, श्रद्धान भी अर्थ है। तो उसमें विवाद था, इसलिए उसका लक्षण कहा गया कि जो प्रयोजनभूत तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है। तो प्रयोजन भूत तत्त्व क्या है ? तो वे ७ तत्त्व बताये। फिर उनका व्यवहार कैसे होता तो निक्षप बताया। अब यह बताया जा रहा है—"प्रमाणनयै–रधिगमः" इस सूत्रमें कि तत्त्वका, सम्यग्दर्शनका, ज्ञानका सबका ज्ञान होता है प्रमाण और नयोंके द्वारा।

प्रमाणकी महत्त्वशालिता—देखो एक–एक अंशकी बात जानना तो नय है और सारी बात पूरी जानलें तो वह प्रमाण है। तो प्रमाणमें होता क्या है कि स्व और पर पदार्थका जो सामने आये उसका ज्ञान होता है। ज्ञानमें क्या होता है। स्व मायने पर पदार्थका देखो दोनोंका ज्ञान होता कि नहीं ? जैसे दीपक जले तो क्या होता है ? दो बातें होती हैं एक साथ/क्या, कि जो पासकी चीज हो वह भी प्रकाशमें आ जाय और दीपक खुदमें प्रकाशमय रहता ही है तो इसी प्रकार ज्ञान जब जानता है तो वहां दो बातें होती हैं—परपदार्थकी जानकारी होती है और स्वज्ञानकी भी जानकारी होती है। तो ज्ञानका ही लक्षण हुआ। स्व और अर्थका निश्चय करने वाला ज्ञान प्रमाण होता है। ध्यानसे सुनोगे तो आयेगा समझमें,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वैसे ही कठिन है विषय, और उपयोग न लगाओगे तो कुछ भी न रहेगा। बात सीधी कही जा रही, दूसरे की चर्चा नहीं है। अपने आत्मा की चर्चा है। अपनी कहानी है कि हम क्या कर रहे हैं ? और कितना हमारा बल है ? उस बातकी यहां भीतरमें कहानी चल रही है, हम क्या कर रहे हैं ? निरन्तर स्वका भी निश्चय रखते हैं और परपदार्थका निश्चय रखते हैं। सभी जीव देखो यहां स्वके मायने ज्ञान है आत्मा नहीं। जिस ज्ञानके द्वारा हम पर-पदार्थको जानते हैं तो उस समय जो हमें पक्का बोध होता है कि ऐसा ही है तो उस समय में दो बातें जगीह हैं—एक तो परपदार्थके बारेमें निर्णय और एक ज्ञानके बारेमें निर्णय। जैसे किसीने कहा कि यह पुस्तक ही है। तो यह बिल्कुल निश्चित बात है कि पुस्तक ही है तो पुस्तकका निर्णय हुआ तो उसके साथ यह भी निर्णय पड़ा है कि सन्देह हो जाय तो पुस्तकमें भी सन्देह हो जायेगा। दोनों जगह निर्णय हीता है—स्वका भी निर्णय होता और परका भी निर्णय होता। तो पर क्या कहलाता है ? भीतरकी बात देखो। यह भ्रम होता है कि मैं घर बनाता हूँ, फर्म बनाता हूँ, अमुकको यों करता हूँ। आप कुछ कर सकने वाले नहीं। आप तो अपने भीतर ही जो कुछ कर सकते, वह कर पायेंगे। बाहर एक इन्च मात्र भी कुछ करनेमें समर्थ नहीं। यह जीव जो कुछ करता है वह अपनेमें करता है, तो यह सोचता है कि जब हम अपनेमें ही कुछ कर पाते हैं, बाहरमें हम कुछ कर सकते नहीं, बाहरमें कोई चीज मेरी है नहीं, तब उसमें मोह क्यों करना ? अज्ञान क्यों बसाना ? देखो बात सुनकर बात मान लीजिए तो आनन्द मिलेगा और ऐसा समझ जायें कि यह शास्त्र हो रहा है, सुनना पड़ता है, अच्छा प्रोग्राम रखा है, सुन लिया, उससे बात न बनेगी। भीतरमें बिचारें कि हमारा कुछ बाहरमें है क्या ? फिर ये कितनी ही वासनायें बनी हुई हैं कि वाह मेरा ही तो यह घर है, मेरा ही तो यह लड़का है, मेरी ही तो यह स्त्री है, मेरा ही तो यह परिवार है, यह मित्र मेरा ही तो है, यह जो दृढ़ वासना बनी है, इसमें जब तक ढील न देंगे तब तक धर्मकी बात न मिलेगी। करना क्या है भीतरमें जिससे कि आनन्द आ जाय और धर्मका मार्ग मिल जाय। यह करना है कि उस मोहको ढीला करना है और उस संगकी वजहसे चोट भी सहते जाते, धोखे भी सहते जाते, दुःख भी सहते जाते और फिर भी उसीको अपनाते जाते, तो इसको कितना बड़ा व्यामोह कहेंगे ? मूर्खता कहेंगे, अज्ञान कहेंगे कि जिसके कारण दुःखी भी हो रहे फिर भी उन्हें अपनाते। समझते कि इसके बिना तो मेरा गुजारा ही न चलेगा। जगतमें कौनसा ऐसा पदार्थ है जिसके बिना जीवका कुछ चलेगा नहीं ? मरने पर तो चलता कि नहीं, अकेला जाता है, सब कुछ छूट जाता है फिर भी यह रहता कि नहीं ? क्या अस्तित्व मिट जाता ? तो ऐसे ही समझ लीजिए कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मेरा यहां कुछ नहीं है। और जो व्यामोह है उसमें सिथिलतजरुर करें। उसके बिना धर्म का रास्ता नहीं मिल सकता।

मोह और धर्म में से विवेक करके धर्ममार्ग पर ही चलनेमें भलाई—दो बातें एक साथ न बनेंगो कि मोह भी करें और धर्म भी करें। ये दोनों एक दूसरेके प्रतिपक्षी हैं। जहां मोह है वहां धर्म नहीं और जहां धर्म है वहां मोह नहीं। अब अपनी परीक्षा करें कि हमने कुछ मोहपर विजय पाया कि नहीं। अगर नहीं पाया तो उतनी जिन्दगी हमारी व्यर्थ गई। सोचते हैं कि हमने धर्म किया मगर कुछ नहीं किया, क्योंकि मोहमें तो फर्क ही नहीं पड़ा। आपने धर्म किया, आप बड़े धर्मात्मा कहलाते आप बहुत बहुत पूजा भी करते, स्वाधाय भी करते, जाप भी देते, संस्थां भी चलाते, पर एक बात यहां देखें कि मोहमें फर्क है कि नहीं! अगर धार्मिक नहीं है तो धर्म नहीं हुआ, जो हुआ वह ठीक है, थोड़ा अच्छा ही किया, मगर आपको अपने लिए मोक्षका मार्ग मिल जाय पहले कोई काम नहीं किया। तो अपने आपमें देखिये कि मेरे मोहमें अभी तक फर्क आया कि नहीं, अगर फर्क आया तो ठीक है, और अगर फर्क नहीं आया, जैसाका तैसा मोह है तो एक कहावत प्रसिद्ध है ना कि कहां गये थे ?.....क्या किया ?.....भाड़ झोंका ?..... अरे भाई यदि भाड़ ही झोकना था तो वहां जानेकी क्या जरुरत थी ? यहीं अपने गांवमें भी तो यह काम कर सकते थे। तो ऐसे हो कोई पूछे कि आप कहाँ गये थे ?.....मनुष्यभवमें।.....वहां कितने वर्ष रहे ?....५० वर्ष। .....क्या किया ?.....विषय कषाओंका भाड़ झोंका ?.....अरे भाई यदि यही काम करनाथा तो यह काम तो कुत्ता, बिल्ली, सूकर, गधा आदिक की योनियोंमें भी तो किया जा सकता था। तो भाई ऐसे दुर्लभ मनुष्य जीवका सदुपयोग करना है तो भाई अपने विचार सम्हालो. अपनी भीतरी बातका निर्णय करके मेरेमें तो केवल एक ही काम है। अपनेको समझें, मोहको दूर करें, इसमें कोई घरकी लड़ाईकी बात ही नहीं वह रहे लेकिन मोह जरुर छोड़ना चाहिए मोह छोड़ने पर भी चाहे कुछ समय तक घर नहीं छूटता, किन्तु मोह जन्य दुःख छूट जायेगा और घर तो यह राग छूटनेसे छूटेगा। मोह छूटने पर भी जब तक राग है तब तक यह सब बना रहेगा। उसको अधिक चिन्ता न करें, जैसे कि कोई भक्ति कर रहा—भगवान हमें मोक्ष दो, हमें मोक्ष चाहिए और कुछ नहीं, मानो उस समय कोई देव आ जाय और कहे कि चलो हम आपको मोक्ष पहुँचा दें। आप तैयार हैं न ?.....हाँ तैयार हैं ?...अच्छा चलो तुम्हें घर छोड़ना पड़ेगा, परिवार छोड़ना पड़ेगा, सब कुछ छोड़ना पड़ेगा।.....अरे हमें ऐसा मोक्ष न चाहिए। हमें तो ऐसा मोक्ष दिला दें कि जिससे हम घरमें बने रहें और मोक्ष हो जाय ? तो भाई इस तरहसे मोक्ष न मिलेगा।

Report any issues at vkasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अच्छिष्ट भोगकी आकांक्षा न करनेमें महत्त्व—देखो अनादीकाल से अब तक मोह वासना ही बनाये रहे, केवल आप विषय बदलते रहे। जिन जीवोंसे मोह किया वे पहले भी थे लेकिन कुछ विकल्प बदलते तो मानते कि हमें नई चीज मिली, पर नई चीज कुछ नहीं मिली, जोभी भोग साधन मिले हुए हैं वे सब झूठे हैं, जो एक बार भोजन कर लिया वह अगर मुखसे निकल आए तो उसे कोई खाता है क्या ? उसे कहते हैं कि यह तो कय किया हुआ है, ये ५ इन्द्रिय और मनके विषय भोग ये सब बमन को हुई चीजें हैं, ये कई बार भोगे और भोगकर जब पचा नहीं तो बमन किया हुआ है। मनुष्य तो यह चाहते हैं कि मैं सारी चीज खा जाऊँ मगर इतना बड़ा पेट कहां है ? छोड़ना पड़ता है विवश होकर। अगर बढ़िया हलुवा, रसगुल्ले बने हों तो कोई उन्हें छोड़ता है क्या ? जितना पेटमें भरता है उतना खाते जाते हैं। जब पेट भर गया तो जबरदस्ती छोड़ना पड़ता है, ऐसे ही ये जगतके सागम भव भवमें अनेक बार भोग भोगकर छोड़े हुए हैं, इन्हें छोड़ना नहीं चाहा पर विवश होकर छोड़ते आये हैं। इस जीवकी ऐसी प्रकृति बन गई है कि यह चाहता है कि मैं सब जगतको भोग लूं इतनी आशक्ति है उन भोग विषयोंके प्रति, लेकिन सोचो तो सही कि इसमें कौनसी तत्त्वकी बात है ? तत्त्वकी बात इसमें कुछ नहीं, अपने आपको पहचानें, अपने अलोकिक आत्मामें आयें तो आनन्द मिलेगा, शान्ति मिलेगी। बाहरमें सब जगह ढूंढा तो कहीं शान्ति नहीं। शान्ति मिली तो भीतरमें जो छुपा हुआ है यह चिन्मात्र यह छिप गया यहां पड़ा है। इस कोनेमें है। ज्ञानी पुरुष हैरान होकर उसे देखता है। जैसे कोई लड़का कही छुप गया और मां उसे बहुत बहुत बाहरमें सब जगह ढूंढती है। अन्तमें वह मिला अपने ही घरमें रसोईके एक कोनेमें छिपा हुआ, तो वहां वहमां झुझलाकर कहती है—प्ररे मनुआ तू यहां छिपा है। यहां बैठा है। तो जैसे झुझलाकर वह मां कहती है ऐसे ही कल्याणार्थी पुरुष अपने सुखके भण्डार की विधिको सब जगह देख देखकर बड़ी हैरान हो गयी दृष्टि और अन्तमें मिला अपने आपके भीतर तो यह कुछ हैरानी भरी दृष्टिसे निहारता है—अरे यहां हैं ये तो चिन्मूर्तियां। यह चैतन्यस्वरूप यहां बैठा है। यों उसे देखकर आनन्दमग्न होता है। तो भाई दुनियामें कहीं जाओ। कहीं आनन्द नहीं। सब भ्रम है। आनन्द मिलेगा तो एक अपने आपके स्वरूपमें मिलेगा। उसे पहचानें उसको जानें, उसमें आचरण करें। यह ही मोक्षका मार्ग है। जो इस तत्त्वका ज्ञान कैसे होता ? तो बतलाया—प्रमाणसे। व्यवहारसे स्व और पर पदार्थका निश्चय करनेवाला ज्ञान प्रमाण है। अब समझ लो, निश्चय करनेवाला ज्ञान प्रमाण है।

स्वपरनिश्चयायक ज्ञानमें प्रमाणता—आप सोचते होंगे कि यह बात तो बिल्कुल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सही है, आत्मा जानता है, जो निश्चय को वह ज्ञान प्रमाण है। अच्छा सुनिये क्षणिकवादका सिद्धान्त है कि जो निश्चय करे वह मिथ्या ज्ञान है और जहां निश्चय नहीं हो पाता वह सम्यग्ज्ञान है। आप सोचते होंगे कि ऐसा कौन होगा जो माने कि जो निश्चय करे वह ज्ञान मिथ्या है और जो प्रमाणभूत ज्ञान है उसमें निश्चय हो ? तो ऐसा मानने वाले हैं क्षणिक-वादी दार्शनिक उनका सिद्धान्त है कि प्रत्येक पदार्थ क्षण क्षणमें नया—नया बनता है। अब जिस समय पदार्थ है उसी समयमें ज्ञान हुआ कि पदार्थ, तो पदार्थको जानना शुरू किया उसी समयमें और दूसरे समयमें उसका निश्चय हुआ तो जिस समय निश्चय हुआ उस समय पदार्थ न रहा और निश्चय कर रहा तो वह मिथ्या हो गया, क्योंकि वह चीज ही नहीं है जिसका निश्चय कर रहे, तो उनका सिद्धान्त है कि जो निश्चय न करे वह प्रमाण है, इस-लिए उसका खण्डन करनेके लिए यह शब्द समर्थ है कि निश्चायकज्ञान प्रमाण है। किसका निश्चायक ? ...पदार्थका।...अरे पदार्थका तो निश्चय करता है सारा जगत। कौन ऐसा है जो यह कहता हो कि पदार्थ दुनियामें है ही नहीं। उसमें उनका निश्चय हुआ करता है। केवल स्वका ही निश्चय होना है, ब्रह्मका ही निश्चय होना है। ब्रह्मको छोड़ कर अन्य कुछ पदार्थ नहीं। तो पदार्थका निश्चय करनेवाला ज्ञान प्रमाण है। केवल ब्रह्म ही हो, अन्य पदार्थ न हो, केवल जीव हो, अन्य पदार्थ न हो, यह बात नहीं बन सकती। उसका न्याय शास्त्रमें बहुत वर्णन है। तो आया ध्यानमें। जो निजका और पदार्थका निश्चय करे वह ज्ञान प्रमाण है। समझे न, ? उसके साथ खुदका भी निश्चय है। अच्छा कोई दार्शनिक ऐसा है क्या जो मानता है कि यह ज्ञान खुदका निश्चय नहीं कर पाता ? हां है ऐसा। जैसे अस्वसम्वेदीज्ञान मानने वाले नैयायिक मीमांसक वगैरह हैं, उनका कथन है कि जिस ज्ञानसे हमने पदार्थ जाना उस ज्ञानको सही ज्ञान जाननेके लिए नया ज्ञान करना पड़ता है। तो देखो अपने आपका कैसा ज्ञान प्रकाश है कि ज्ञान हो तो खुदका भी प्रकाश हो और बाह्य पदार्थ का भी प्रकाश हो, भीतर की बात सोचें। आपके स्वरूप की बात कही जा रही है।

कषायों द्वारा पीड़ित होनेकी दुःसह वेदना—बाह्य पदार्थके लगावमें, मोहमें, ख्याल में कुछ भी न रखें, इसमें बुद्धिमानी मत मानें, किन्तु खेद होना चाहिए कि मुझे क्यों राग ? क्यों मुझे मोह होता ? क्यों मेरेमें इतने विकल्प उठते। क्यों मुझे इतना भ्रम होता, तरहका व होना चाहिए। कहाँ तो भगवानकी तरह मेरा स्वरूप, ज्ञान और आनन्दका निधान, जहां सौख्य पड़ा हुआ है। जहां कोई अपूर्णता नहीं, सब कुछ स्वतः सिद्ध बात है स्वरूपमें, और जहां ऐसी दशा हो रही है इन क्षणिक पदार्थोंको अपनेसे अत्यन्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भिन्न पदार्थोंको मान रहे हैं कि यह मैं हूँ। यह मेरा है। यह बहुत बड़ा अपराध है। जब तक यह अपराध रहेगा तब तक शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती। तो इस अपराधको दूर करनेके लिए यह जीवन है! पैसा बढ़ानेके लिए नहीं, कुटुम्ब बढ़ानेके लिए, इज्जत बढ़ाने के लिए यह जीवन नहीं है। और, ये सारी बातें बेकार भी हैं। यह मानव जीवन मिला है कि मेरे सारे संकट दूर हो जायें और मैं एक शुद्ध जो कुछ ज्योंका त्यों अपने आप हूँ अपनी सत्तासे, बस वही रह जाऊं। देखो भाई जैसे किसीके बड़ा दुःख आया, गरीबीका दुःख आया तो वह कहता है कि हमें तो बस इतना धन चाहिए, इससे आगे न चाहिए, ऐसे ही अपने आपको देखो, अभी तक दुःख ही दुःख भोगते आये हैं तो भीतरसे एक आवाज निकलनी चाहिए कि मैं तो इतना ही चाहता हूँ, और कुछ मैं नहीं चाहता। जब कभी किसीसे लड़ाई होती है तो कहते हैं कि भाई मेरी चीज मुझे मिल जाय, मुझे और कुछ न चाहिए, यही तो लोग कहते हैं। तो आप भी सोचें कि मैं जो कुछ हूँ असलमें मैं वह रह जाऊं, और कुछ न चाहिए। मुझे घर न चाहिए, लोग न चाहिए, समागम न चाहिए, परिवार न चाहिए, मौज न चाहिए। मुझे ये कुछ न चाहिए। और क्या चाहिए। जो मैं हूँ असलमें अपने आप स्वतः सिद्ध बस वही मैं रह जाऊं, यही मुझे चाहिए, और कुछ न चाहिए। इतनी बात अगर चित्तमें आयी है तब समझिये कि आप धर्ममें शुरू हुए हैं। इतनी बात जब तक चित्तमें नहीं है तब तक समझलें कि हमने अभी धर्म प्रारम्भ नहीं किया। अपना एक लक्ष्य होना चाहिए कि हमें तो यह चीज पानी चाहिए। नदीमें नावमें तो बैठ गए और लक्ष्य नहीं बनाया कि हमें तो इस घाटमें पहुंचना है तो कभी वह पूर्व दिशाकी ओर नाव खेवेगा, कभी पश्चिमको, कभी उत्तरकी ओर और कभी दक्षिणकी ओर। इस तरहसे वह किसी किनारे न लग पायगा, और यदि लक्ष्य बना लिया तो वह उस निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच जायगा। तो ऐसे ही इस जीवनमें आप एक लक्ष्य बना लीजिए कि मेरेको तो मेरे आत्मस्वरूपका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण चाहिए, मेरेको तो मेरा मैं चाहिए, और कुछ न चाहिए। यह लक्ष्य अगर बन जाय तो सब बात मिलती जायगी। धर्म होता जायगा और अगर यही बात न मिली तो धर्म न होगा। इसलिए भाई पौरुष करो। विषय कषायों की वासनाको छोड़ दो। ये क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक कषायोंमें यह जीव इस तरह पीडा जा रहा है कि जैसे मानो खल्लमें मूसरसे कूटी हुई कोई चीज। ये विषय आत्माको कूट रहे हैं। यह आत्मा दुःखी हो रहा है। अपने आप पर दया करो और कषायोंको छोड़ दो। ऐसी प्रकृति बनावें कि क्रोध न करें, शान्त रहें, नम्र रहें। जरा-जरा सी बातमें ऐंठ न जावें। जरा कषायोंको छोड़ें और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपने आपके स्वरूपके अन्दरमें दर्शन करें, उसकी धुन बनायें, इससे तो मिलेगा भाई मनुष्य भवका लाभ और अगर विषयकषायोंमें ही जकड़े रहे, मोहममतामें ही बने रहे तो इस जीवनका कोई लाभ नहीं है।

ज्ञानद्वारा ज्ञानमात्र स्वयंको जान लेनेकी सहजवृत्तिके विरुद्ध चलनेका पश्चात्ताप—हम आपमें सब जीव क्या हैं ? प्रत्येक ज्ञानमय पदार्थ। अर्थात् हम आप सबका यह स्वभाव है कि प्रति समय कुछ न कुछ जाननेमें आता ही रहे। अज्ञानी उसकाभी ज्ञान सदा रहता है और ज्ञानी है तो उसका भी ज्ञान सदा रहता है। कोई है तो उसका भी ज्ञान सदा रहता है। जानने बिना कोई जीव नहीं रहता। जो भी जीव हैं वह प्रति समय जानता ही रहता है, इसी कारण इसका नाम आत्मा है–अतति सततं गच्छति जानाति इति आत्मा; अ धातुका अर्थ है सतत जाना और जानना। प्रायः करके जानेके अर्थ वाली धातुओंका अर्थ जानना भी होता है। आदित्यका अर्थ है सूर्य। वह आदित्य तो निरन्तर जाता रहता है, कभी ठहरता नहीं है। आदित्यके मायने हैं सूर्य। सूर्य निरन्तर चलता ही रहता है। ढाई द्वीपके अन्दर कोई भी सूर्य एक समय रुक जाये ऐसा कभी होता नहीं। तो जो निरन्तर जाता रहे उसका नाम आदित्य है और जो निरन्तर जानता रहे उसका नाम आत्मा है। आत्माका कार्य है वह निरन्तर जानता रहे। तो देखो जब हम आप सबका स्वभाव जानते रहनेका है तो इस जानने को जरा ठीक बनालें तो बेड़ा पार हो जायगा। बैठे बैठे कल्पनायें किया और दुःखी हो गए। बैठे बैठे भावनायें बनाया, पर द्रव्यके बारेमें कुछ न कुछ सोंच रहे हैं और दुःखी हो रहे हैं। एक ज्ञानबल ऐसा मिले कि जिससे परवस्तुके बारेमें उपेक्षा जग जाय, कैसा ही परिणमन हो, जैसा परिणमें ठीक है, उसके प्रति ज्ञाता द्रष्टापनका भाव आ जाय और भीतरसे कषाय विष हट जाय तो आत्माको शान्ति मिल जायगी। आत्मा अशान्त है कषाय के कारण, पर मोहमें, मूढ़ रहते हुए यह जीव कषायका ही आदर करता है, कषायमें भुने रहते हैं। गुस्सा निरन्तर बनी रहती है। किस बातपर गुस्सा रहती है। बात कुछ नहीं है। क्रोध प्रकृतिका उदय है। यहाँ क्रोधकी ऐसी उद्दण्डता हो रही हैं और आत्माभी क्रोधी बन रहा है। बात कुछ नहीं है और इतनी बड़ी बात बन गई। मतलब कुछ नहीं है, पर इतना बड़ा भारी लगाव हो गया। यह सब मोहका प्रताप है। यहाँ बात चल रही है ज्ञान की, ज्ञान जानता रहता है। अरे जो निरन्तर जानता रहता है उसको जाननेका पौरुष करो, सर्वप्रकाश सामने आ जायगा। पर जानने वाला यह है, और बाहर–बाहर जानता रहता है। जैसे बैट्रीका उजेला करते हैं तो उजेला बाहर–बाहरमें पहुँचता रहता है पर वह उजेला उस बैट्रीके अन्दर नहीं पहुँचता बैट्री भी नहीं दिखाई देती, ऐसेही ये मोही जीव बैट्रीकी तरह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

काम कर रहे हैं। बाहर बाहर तो खूब जानते हैं पर स्वयं क्या हैं यह नहीं समझते ? यही कारण है कि सारा जीवन मोहमें बीतता और दुःखी होता। मोहमें खुदका बुरापन विदित नहीं होता। ऐसा ज्ञान होता कि हम चाहते हैं वही जो परस्पर मोह बनाये हैं, व्यवस्था करते हैं तो उत्तरदायी तो हम ही हैं, और कदाचित कभी कोई त्यागी, साधु, ज्ञानी दिखे तो ऐसे मोह वालेको धर्मकी बातके नाम पर कुछ बात तो आती है मगर भीतरमें यह बात आती है कि बेचारे दुःखी हैं। हम ही तो इनकी सेवा करते हैं, इनकी रक्षा करना चाहिए, यों साधुको बेचारेके रूपमें देखते हैं और स्वयंको तो सर्व कुछ समझते हैं।

मोहमें अपनी करतूतके अहंकारका दुर्दर्शन—कोई सांड धूरेको अपनी सींगोंसे बेझकर उसमें कुछ गड्ढा सा करदे और अपने चारों पैर पछाड़ कर पूछ उठाकर अपनी एक अहंकार भरी मुद्रा बनाये, और एक ऐसा गौरव अनुभव करे कि मैंने बहुत बड़ा काम किया, धूर उछाल दिया ऐसे ही मोही जीव किसी वैभवकी यहां वहाँ की कुछ व्यवस्था बनाते हैं तो वे ऐसा गौरव करते हैं कि मैं इतनी इतनी चीजें सम्हालता हूँ। अरे अपने अन्दर देखो कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानके विकल्प ही करता हूँ, इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं करता। घमंड किस बातका ? अपनेको पहचानें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। तो जब मेरा जाननेका स्वभाव है तो मैं सब कुछ न जान सकूं, और अपनेको न जान सकूं, ऐसी कौनसी अड़चन आयी है ? अड़चन यह है कि बाहरी पदार्थमें मेरा लगाव है। उसकी ही धुन बनी हुई है। बस यही कल्पना वह चीज है जो मेरे अधूरे पनका कारण है। तो जिसे अनादिसे करते आये जिसे जीवनमें बिना सिखाये किए चले जा रहे हैं उससे पूरा नहीं पड़नेका उस आत्मकल्याणका उपाय सोचना है। सभी जीवोंकी बात है। जो करेगा सो पायगा। सोचो — जो पदार्थ जिस तरहसे हैं। उसको उस तरहसे जानना। उसका उस प्रकारसे श्रद्धान करना बस यही संसार संकटोंसे छूटनेका उपाय है। जैसे सोते हुएमें कोई स्वप्न आ जाय कि मैं कहीं जा रहा हूँ। वहां बड़ा भयंकर जंगल है। सामने शेर खड़ा है पीछे से सांप दौड़ रहे हैं खानेके लिए, कोई ऐसा सोचले तो वह कितना दुःखी होता है। उसका दुःख दूर होनेकाकोई उपाय है क्या ? अथवा और भी देखिये। एक बड़ा सेठथा। वह अपने आरामके कमरेमें सो रहा था। सोते हुए में उसे एक ऐसा स्वप्न आया कि बड़ी तेज गर्मी हो रही है, विचार हुआ कि समुद्रकी सैर करने चलें। स्त्री पुत्रादिक बोल उठे कि हमें भी गर्मी लगती है हमभी समुद्रकी सैर करने चलेंगे। नौकर बोला—हमें भी बड़ी गर्मी लग रही। हम द्वारमें ताला लगा देंगे। हम भी समुद्रकी सैर करने चलेंगे। सो सेठ सपरिवार समुद्रकी सैर करने चला। (देखिये यह सब स्वप्नकी बात कही जा रही है) नावपर सभी लोग बैठ गए।

Version

http://sahjanandvarnishastra.org/

नाव कोई एक मील ही चली होगी कि समुद्रमें एक बड़ा तूफान आया, तो उस समय सेठ कहता है नाविकसे कि अरे हम तुम्हें १० हजार रुपये देंगे पर नाव डूबनेसे बचालो। तो नाविक बोला—सेठजी यह नाव किसी तरहसे भी डूबनेसे बच नहीं सकती।... अच्छा हम तुम्हें एक लाख रुपये इनाम देंगे पर नाव डूबनेसे बचालो।... अरे जब हमी नहीं रहेंगे तो उन एक लाख रुपयोंका क्या करेंगे ? आप बड़े दयालु हो, आप हमें इजाजत दो, हम तो किसी तरहसे नावसे कूद कर तैर कर निकल जायेंगे। नाविक कूद गया, नाव डगमगा रही है। वह सेठ बड़ा दुःखी हो रहा है। (ये सब स्वप्नकी बातें हैं) अब देखिये सेठ पड़ा तो था अपने आरामके कमरेमें, नौकर लोग पासमें खड़े थे। वे यह इन्तजार कर रहे थे कि सेठजी जगे तो इनकी सेवा करें। सब प्रकारके आरामके साधन मौजूद थे फिर भी वह सेठ कितना दुःखी हो रहा था। बताओ उसका दुःख दूर करनेका कोई उपाय भी था ?..... हां उपाय था। बस यही उपाय था कि सेठकी निद्रा भंग हो जाय, जग जाय, लो कोहेका दुःख। दुःख तो सारा स्वप्नमें हो रहा था। जग जाय तो वह समझ जाय कि अरे वह तो सब स्वप्नका था, यहां तो कुछ भी नहीं है। हम तो बड़े आरामसे पड़े हैं। यह ही बात मोही जीवकी है। मोहियोंको मोहका स्वप्न आ रहा है। यह मेरा है। यह मेरा है। यह मेरेको मिल जाय, यह इस तरह हो जाय, इसकी यह परिस्थिति बन जाय, यों नाना प्रकारके विकल्प कर रहा है और विकल्पोंमें दुःखी हो रहा है। नहीं तो बतलाओ दुःख क्या है ? हम सब यहाँ बैठे हैं। कोई दुःखका कारण नहीं है। मजेमें बैठे हैं,अकेले हैं। आपकाआत्माआपमें है,आपके पास है। किसीका उसमें प्रवेश नहीं। उसमें क्या कष्ट है। लेकिन कष्ट सभी मान बैठे हैं। और, हर एक कोई अपने आप कष्ट की जुदी-जुदी परिणति समझ रहे हैं। मेरेको कष्ट है, इस प्रकार अपनेको कष्टमें मान रहे, यह बड़ी विडम्बनाकी बात है।

सम्यग्ज्ञान सूर्यके उदित होने पर भ्रमाधकारका विलय—जिस समय सम्यग्ज्ञानका उदय होता है उस समय सारे संकट दूर हो जाते हैं। तो कुछ भी हो। संकट दूर करनेमें समर्थ यह ज्ञान है, यह प्रमाण है। उस प्रमाणकी चर्चा इस सूत्रमें की जा रही है कि प्रमाण से सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान, सम्यक्चारित्र, जीवादिक तत्त्व और-और सभी पदार्थोंका परिज्ञान प्रमाणके द्वारा होता है। देखिये—हम आप सब ज्ञानस्वरूप हैं, निरन्तर ज्ञानमय रहते हैं, किन्तु अब हालत आज क्या रही। कि हम कुछ नहीं जान पाते, थोड़ा जान पाते। कुछ जान पाते, ऐसा कर्मका आवरण है और वहभी हम जान पाते हैं इनइन्द्रियोंके द्वारा। ये नेत्रबिगड़ जाय रूप नहीं जान सकते,कान बिगड़ जायतो शब्दनहीं जान सकते। लकवा मारजाय तो स्पर्श नहींजानसकते।देखो इसजाननेपर आवरण हैऔर जितनाथोड़ा आवरणनहीं हैउतनाभी हमज्ञान जो

Report any errors at rikasrd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

करते हैं वह इन्द्रिय द्वारा करते हैं। इन्द्रियां ठीक हुई तो ज्ञान हो गया, न ठीक हुई तो न होगा ज्ञान। और, इतनेपर भी हम सब कुछ नहीं जान पाते हैं, थोड़ा जान पाते हैं, सामनेकी बात जान पाते हैं और इतनेपर भी स्मरणशक्ति नहीं है तो कुछ समझ नही पाते, याने कितनी दुर्दशा है। परमात्मस्वरूपके सदृश होनेपर भी हम आपकी यह दुर्दशा है। यह दुर्दशा स्वयंके अपराधके कारण है। दुर्दशामें ही पड़े हैं और दुर्दशामें ही मौज मान रहे हैं तो फिर कैसे दुर्दशासे छूटना हो सकेगा ?

कष्टोंका कारण अज्ञान व भ्रम—जितने भी कष्ट होते हैं उसका कारण है अज्ञान, भ्रम। अज्ञान और भ्रमका तात्पर्य है कि बात तो है कुछ और, और मान लिया जाय कुछ और, जैसे जगतके प्रत्येक पदार्थ अणु–अणु, प्रत्येक जीव स्वयं अपने स्वतः सिद्ध स्वरूप रखते हैं। किसीका स्वरूप किसी भी अन्यकी दयासे नही बनता है। है, तो वह अपने आप है। है, तो वह अनादि अनन्त है। है, तो वह द्रव्य, गुण, पर्यायमय है, और इसी तरह वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है। सभी पदार्थोंकी यही स्थिति है। कोई पदार्थ किसी दूसरेका न कर्ता न भोक्ता है, न उसका कुछ लगता है प्रत्येक पदार्थ अपनी परिणतिसे परिणमता चला जाता है। यह है समस्त पदार्थोंकी बात। फिर एक बात सामने आती है कि फिर ये विकार राग द्वेष किस तरह होते हैं ? जीव अनादिकालसे बद्ध है। यह बात तो यों स्पष्ट है ऐसा न होता तो आज हमारी यह संसारमें स्थिति क्यों होती ? न होती। तो चूंकि आज हम फसे हैं, बंधे हैं, संसारमें रुलते हैं, विकल्प उठाते हैं, तो ऐसा तो हो नहीं सकता कि हम शुद्ध हों पहले और पीछे ये विकार आये हों। विकार अनादिसे ही चले आ रहे हैं। परम्परा उनकी अनादि से ही चली आ रही, तो इसका कारण क्या है ? यदि कोई पदार्थ कोई विकारमें आता है तो उसमें कारण नियमसे परसंग होता है। जैसे स्फटिकमणि स्वच्छ है, वह अपने आपमें अनेक रंग बनानेका निमित्त नहीं है, इसलिए वह अपने आपकी ओरसे अपने आप ही निमित्त बनकर रंगरूप नहीं परिणमता। वह तो एक स्वच्छ पदार्थ है। अब जब उपाधिका सन्निधान लाल पीला कपड़ा सामने रख दिया तो कपड़ा लाल पीले रूप परिणम रहा है यह तो कपड़े का रंग है और जो दर्पणमें लाल प्रतिबिम्ब आया है वह दर्पणकी छाया है। अब वहां रंग दो जगह दीखा, कपड़ेमें भी और दर्पणमें भी। पर कपड़ेका रंग कपड़ा जैसा है और दर्पणका रंग केवल झलकमात्र है। तो दर्पणमें जो रंग आया है वह दर्पणकी परिणतिसे तो आया है पर दर्पणके इस रूप परिणमनमें दर्पण ही निमित्त हो, जैसेकि दर्पण ही उपादान है, यह बात नहीं बनती, अन्यथा नित्य कर्ता हो जायगा। सदा जीवमें विकार रहना चाहिये।

वस्तु स्वातन्त्र्य और निमित्तनैमित्तिकभावकी विधिसे तत्त्व विचारकी आवश्यकताका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण—देखिये—तत्त्वविचारकी बात सबको आवश्यक यों पड़ी है कि सर्व दुःखोंका मूल तो मोह है। यह मोह मिटे तो दुःख दूर होनेका उपाय बनेगा। मोह दूर करना कैसे हो? तो मोह दूर करनेके लिए दो बातें कही जाती हैं—वस्तुस्वतन्त्रता और निमित्तनैमित्तिक भाव इनदोनोंको यथार्थ समझना है और दोनोकी ही समझ मोहके विनाशमें सहयोग देती है। वस्तुस्वातन्त्र्यसे तो यह समझना चाहिए कि जीव और कर्म ये दो पदार्थ विलक्षण हैं जुदे जुदे हैं, जीवका परिणमन जीवमें ही चलता है, कर्मका परिणमन कर्ममें हो चलता है, एक का परिणमन दूसरेमें नहीं चलता है। कर्मजीवके परिणमनको न करेगा, जीव कर्मके परिमणन को न करेगा। जो परिणमता है वह कर्ता है, जो परिणाम है वह कर्म है। वस्तुस्वातंत्र्य न यह बतलाता है जैसे दर्पण और सामने रखो लाल कपड़ा तो वस्तु स्वातंत्र्य वहां यह दिखाता है कि कपड़ा कपड़ेमें है, कपड़ेके प्रदेशसे बाहर कपड़ेकी कोई चीज नहीं रहती। दर्पण दर्पणमें है, दर्पणकी कोई चीज दर्पणसे बाहर नहीं होती। तो कपड़ा दर्पणको लाल नहीं करता। दर्पण भी कपड़ेका कुछ नहीं करता। कपड़को झलकाता नहीं, किन्तु दर्पणके रंगका परिणमन दर्पणमें हो रहा। परमार्थसे बात कही जा रही है, और दर्पणमें जो प्रतिबिम्ब आया है उसमें लाल रंगी कपड़ेका सन्निधान पाकर जो दर्पणमें लाल प्रतिबिम्ब आया है वह दर्पणका है, दर्पणकी परिणतिसे है। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक योग है कि स्वच्छता का स्वभाव रखने वाला दर्पण यदि लाल पीले पदार्थका सन्निधान पाये तो यह दर्पण अपनी परिणतिसे अपने आपमें लाल पीले रंगको धारण कर लेता है इसी तरह यहां भी देखो। जीव और कर्म ये दो पदार्थ हैं। कर्ममें कर्मत्व आया। वह कर्मको दशा है। कर्म उदयमें आये तो वह उनकी दशा है। कर्मका क्षयोपशम होना कर्मकी दशा है। ऐसे दो विलक्षण पदार्थ हैं। सब अपनी अपनी परिणतिसे परिणमते हैं, पर उनका ऐसा सहज निमित्त नैमित्तिक योग है कि जीवमें जो विकार आता है वह पर उपाधिका निमित्त पाकर आता है, इसी कारण नैमित्तिक है, परभाव है, हमको इन दो बातोंसे क्या शिक्षा लेना है? एक मोह दूर करनेकी शिक्षा लेना है।

अन्तः उभयस्वातंत्र्यकी निरख—कषाय दो प्रकार की हैं। एक कर्ममें होने वाली कषाय और एक जीवमें होने वाली कषाय। जिसका क्रोधप्रकृति नाम रखा है उसका जब उदय आता है अनुभाग होता है तो उस प्रकृतिमें क्रोधन दशा होती है। चूंकि वह जड़ है इसलिए उसकी गुस्सा, उसका क्रोधन उसके अनुरूप है, अनुभवशून्य है, लेकिन ऐसी क्रोधन अवस्थाको प्राप्त हुआ पुद्गल कर्म जब उसके सन्निधानमें है तो जीवमें उस क्रोधन अवस्थारूप अंधकारकी झलक होती है। और, वह झलक हुई कि यह जीव उस शुद्धस्वभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

से च्युत होता है और उसका उपयोग झलककी ओर लग जाता है, और आगे बढ़कर कल्पनामेंएक आत्मसात् कर लेता है याने उसे अपना स्वरूप मान लेता है। इसतरह यहजीव संसारमें रुलता है, कषाय करता है और कषायका निमित्त पाकर नवीन कर्म कर्मत्व अवस्थाको प्राप्त होता है। तो कर्म और विकार ये अनादिपरम्परासे चले आ रहे है, इनका अब हमको करना है भेदविज्ञान। भेदविज्ञानमें क्या समझना कि मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ तथा ज्ञानकी वृत्तिको ही मैं करता हूँ, और जितने जो कुछ ये विकल्प हैं, विचार हैं, अंधकार हैं, ये सब क्या हैं ? आत्माकी परिणतिको देखें तो वह एक झलक है और कर्मकी परिणतिको देखें तो कर्मकी उस प्रकारकी एक लीला चलती है। उस निमित्तनैमित्तिक भावकी वृत्तिमें हम यह जानें कि ये औपाधिक हैं नैमित्तिक हैं, मेरे स्वरूप नहीं हैं। इसीको समयसारमें स्पष्ट कह दिया कि ये कषाय विकल्प गुणस्थान मार्गणायें सब पौद्गलिक हैं, क्योंकि ये पुद्गल कर्मसे निष्पन्न हुए हैं, तो नैमित्तिक परिचयमें एक बल मिलता है स्वभावदृष्टिका। यह मैं हूँ, ये परभाव हैं, मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, स्वच्छतामात्र हूँ। और, वस्तुस्वातंत्र्यकी दृष्टिसे देख यह ज्ञान होता है कि मैं आत्मा हूँ, मैं अपने आपसे परिणमता हूँ, कोई दूसरा पदार्थ मुझे नहीं परिणमता, अर्थात् कोई पदार्थ मेरे परिणमनरूप नहीं बनता। मैं सर्व पदार्थोंसे निराला केवल अपने आपके स्वरूपमात्र हूँ और अपने इस स्वरूपमें अपने ही नाना विकल्प करता रहता हूँ, इस प्रकार परपदार्थपर दृष्टि नहीं तो उसे अवकाश मिलता है कि वह अपने स्वभावकी परख करले।

जीवविकाराद्भवके प्रसंगमें त्रिविध कारणोंकी ज्ञातव्यता—इस प्रसंगमें एक बात खूब जाननेकी है कि जीवके विकार बननेमें तीन बातें समझनी पड़ेंगी—उपादान, निमित्त और आश्रयभूत। उपादान तो है यह जीव। निमित्त है कर्मकी दशा और आश्रयभूत हैं ये समस्त पदार्थ, जो कि इन्द्रिय द्वारा, मनके द्वारा भोग और उपभोगमें आते हों, जिन्हें हम उपचरित कहते हैं—ये आश्रयभूत बनते हैं। जैसे जीवमें राग उत्पन्न हुआ तो रागप्रकृतिक उदय तो निमित्त है और जीवमें जो राग झलका है, राग परिणमन है, विकल्प बन गया है, यह है उपादानकी चीज और कोई भी राग किसी परपदार्थका विषय किए बिनाव्यक्तनहीं हो पाता। मित्र पुत्र ख्यालमें हुआ, मकान ख्यालमें हुआ, लोग ख्यालमें हुए, इज्जत ख्याल में हुई, कोई भी बाह्य पदार्थ इसके विषयमें होता है, जिसके सम्बन्धमें राग चल रहा है वह सब आश्रयभूत कहलाता है। निमित्त केवल कर्मकी दशा है। बाहरी पदार्थ निमित्त नहीं होते और इसी कारण बाहरी पदार्थका आत्माके इस विकारके साथ नियत सम्बन्ध नहीं है कि यह पदार्थ हो तो नियमसे विकार हो। जैसे कोई एक वेश्या मरी और लोग उस

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

वेश्याके शरीरको जलानेके लिए जा रहे, रास्तेमें एक मुनि महाराजने देखा तो मुनि महाराजका यह विचार बना कि देखो इसने इस दुर्लभ मानव जीवनको व्यर्थ ही खो दिया, उसे देखकर एक कामी पुरुषका ऐसा विचार बना कि यदि यह वेश्या कुछ दिन और जीवत रहती तो मैं इससे और भी मिलता। वहां खड़े हुए कुत्ता स्याल आदिकने उस वेश्याके मृतक शरीरको देखकर यह विचार बनाया कि ये लोग यदि इसे यों ही बिना जलाये छोड़ जाते तो मेरा कुछ दिनोंका भोजन बनता। अब देखिये उस वेश्याके मृतक शरीरको देखकर भिन्न-भिन्न प्रकारके भाव बने। यदि वेश्याका शरीर निमित्त होता तो यहां सबके लिए एक समान निमित्त होता। यहां यह फर्क आया, क्योंकि मुनि महाराजके तो १२ कषायका आवरणका क्षयोपशम था इसलिए उनका उपादान इतना विशुद्ध है कि वह इस ही प्रकार से विचार करेगा। तो उसके इस प्रकार विचार करनेमें वेश्याका शरीर आश्रयभूत बना। निमित्त नहीं बना। निमित्त तो १२ कषाय प्रकृतियोंका क्षयोपशम है, जहां कि ऐसा विचार बना। यह आश्रयभूत मात्र रहा। और कामी पुरुषके वेदका उदय, कषायका उदय, यह तो निमित्त है, और वहां आश्रयभूत बना वेश्याका शरीर। और, स्याल, कुत्ता आदि के भी यही बात रही। तो बात यह समझना है कि जगतके जितने भी पदार्थ हैं, समागममें जो कुछ भी आया है धन वैभव इन्द्रियके विषय ये सभी आश्रयभूत कहलाते हैं, निमित्त नहीं कहलाते। निमित्त तो जीवके विकार बननेमें कर्मकी दशा है, तो कर्मदशाका, निमित्तका जीवविभावके साथ अन्वयव्यतिरेक है, आश्रयभूत पदार्थका विकारके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध नहीं बनता।

जीवविकारके त्रिविध कारणोंके परिचयसे एक शिक्षा—कर्मोदय आया तो जीवमें उस प्रकारकी झलक होना ही पड़ती है! मगर जिसे ज्ञान हुआ, जिसने जाना, भेदविज्ञानसे जिसने अपने आपके स्वरूपका अभ्यास किया तो वह झलक अपनायेगा नहीं। यद्यपि ज्ञान है तो भी वह झलक उस उपयोगको छोड़ेगी नहीं, झलक आये विना रहेगी नहीं। जैसे दर्पणके सामने कोई पदार्थ हो तो प्रतिविम्बित हुए विना रहता नहीं। तो भी यह तो मात्र हुई एक अनिवारित निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी बात। क्यों किन्तु यहां यह अन्वयव्यतिरेक है कि रागप्रकृतिका उदय होनेपर ही जीवमें राग आता है और रागप्रकृतिका उदय न हो तो जीवमें राग आ ही नहीं सकता। ऐसा कर्म निमित्तके साथ जीवविकारका अन्वय व्यतिरेक तो है, पर जगतके बाहरी पदार्थोंके साथ जीवविकारका अन्वय व्यतिरेक नहीं है। जैसे वेश्यादेह सामने हो तो खोटा भाव होना पड़े, ऐसा अन्वय व्यतिरेक नहीं बन गया। देखो मुनि महाराज में तो खोटेभाव नहीं होते। अथवा वेश्यादेह न हो तो खोटा भाव नहीं बने—अरे अन्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसीको आश्रय बनाकर कोई खोटा पुरुष खोटा भाव कर सकता है तो उस पदार्थको आश्रयभूत समझिये। हम इन पदार्थोंको अपने उपयोगमें विषयभूत करते हैं तो ये रागादिक विकार पनपते हैं तो ऐसी कोशिश करें कि ये ये पदार्थ मेरे आश्रयभूत नहीं बने, बस इसी प्रयोजनके लिए चरणानुयोगकी प्रक्रिया है। तो इन बाहरी पदार्थोंको त्याग दें तो एक ऐसा अवसर मिलेगा कि जब ये आश्रयभूत न बन सके तो वहां ज्ञानका अभ्युदय होगा आप अपने निरपेक्ष पारिणामिक स्वरूपकी सम्हाल कर सकेंगे। देखिये—सिद्धान्तमें जितनी बातें कही गई हैं वे सब इस जीवके लिए उपायभूत हैं, निमित्तनैमित्तिक भावसे तो हमें यह शिक्षा लेना पड़ती है कि यह कषाय नैमित्तिक है, कषाय होना मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप तो ज्ञान है, और मेरा व्यापार, प्रदेश, क्रिया, ज्ञानकी वृत्ति है, अन्यसे मेरा सम्बन्ध नहीं,उस का ज्ञाता दृष्टा रहना चाहिए उसमें हर्ष विषाद न करें। वस्तुस्वातंत्र्यकी दृष्टिसे यह शिक्षा लें कि क्योंकि मैं स्वतः सिद्ध हूँ और चूंकि मैं हूँ अतएव निरन्तर अपने आपमें अपनी परिणतियां करता रहता हूँ। इसकी दूसरे पदार्थसे लेनदेन होकर परिणति नहीं हुआ करती, लो वहां पर भी आश्रयभूत छूटनेका शिक्षण मिला।

भेदविज्ञानकी पुष्टिमें कर्तृकर्मत्वकी यथार्थताके परिचयका सहयोग—यहां भेदविज्ञान को शीघ्र और संक्षेप समयमें समझनेके लिए कर्ता कर्मका प्रकरण लीजिए ? कर्ता कहलाता है वह जो खुद परिणमन कर रहा हो। परमार्थसे कर्ता नहीं है, जीव विकल्प रूप परिणमता है तो विकल्पका कर्ता जीव है, कर्म अपनेमें उस अनुभागको बना रहा है, उसका कर्ता यह कर्महै। हाँ वहांपरस्पर परस्परका ऐसा निमित्तनैमित्तिक योग है कि कर्मउदयअवस्थाको प्राप्त कर रहा हो तो जीवमें उसके अनुरूप विचार विकार झलका, यह भेद है, इतनेपर भी निमित्त रहा यह कर्म। कर्मने अपना द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव नहीं दिया। कर्मने अपना कुछ नहीं दिया, इतने पर भी ऐसा नहीं हो सकता कि कर्म उदय न हो और वह विकार करले। जब कभी कोई यह चर्चा करता हो कि मैं ऐसा कैसे हो सकूंगा, वह तो जो कुछ होना होता है वह होता है, भगवान ने जाना है और उस समय यह होगा, बात यह भी ठीक है, अवधिज्ञानीने विशिष्ट ज्ञानीने प्रभुने जिस समय जो जाना उस समय वह होगा ही, इसमें सन्देहकी बात नहीं, लेकिन जाननाहोनेमें कारण नहीं होता,किन्तु उत्पत्तिविधिमें जिस प्रकारसे जो होना है, होता है, और वह विशिष्ट ज्ञानीको ज्ञात होता है। तब यहां दो दृष्टियाँ रखना चाहिए। ज्ञप्तिकी दृष्टिसे तो यह कह सकते हैं कि एक के बाद एक पर्याय जो कुछ होता है वह सब नियत है, यह ज्ञप्तिदृष्टिसे कही जाने वाली बात है, किन्तु जब उत्पत्तिविधिसे देखें तो यह कल्पनासी करते हुए आगे बढ़े कि कोई सर्वज्ञ नहीं है या नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जानता, उसे दृष्टि मत दें, क्योंकि नयको समझने की एक ऐसी ही पद्धति है कि जिस नयसे जो बात समझना हो उस नय की ही बात रखो और अन्य नय की बात मत रखो। जब हम उत्पत्ति विधान की दृष्टिसे निर्णय करना चाहते हैं तो यह बात चित्तमें न लायें कि सर्वज्ञ ने जाना सो होगा। मानलो सर्वज्ञ नहीं है, कोई जानने वाला नहीं है ऐसी एक कल्पना करके अब जरा उत्पत्ति विधिपर दृष्टि तो दीजिए। जीव अपने आप अपना निमित्त करके विकार करता हो तो जीव नित्य ही विकार का कर्ता बना रहेगा, उसकी कभी मुक्ति नहीं हो सकती। जीव तो प्रति समय एक संयुक्त है। प्रत्येक पदार्थ प्रति समय एक अखण्ड पर्यायसे संयुक्त रहता है। अब उसके बाद उसका क्या परिणमन होता तो वहजीव निरुपाधि है, उपाधिसे रहित है। तो उसका तो नियत परिणमन है कि बस शुद्ध ज्ञानवृत्तिका ही परिणमन होता रहेगा। अनादि काल तक, लेकिन जो जीव पर्यायमें अशुद्ध है उसकी वह विकृति इस विधानसे बनती कि जिस प्रकारका कर्मोदय हो उस प्रकारसे इस जीवकी बात चलती है। तो इसी तरह चिद्विलासमें एक-एक जगह में देखिये—यह कर्म रोता है, कर्म हंसता है, कर्म ही सब कुछ करता है, और यह जीव मानता है कि मैं रोता हूँ, मैं हंसता हूँ, तो इस सम्बन्धमें दो दृष्टियां और बनायें। सांख्य जैसी कि प्रकृति कर्म यह रोती हंसती है, यह सब कुछ करती हैं, जीव कुछ नहीं करता। मगर साँख्यके इस सिद्धान्तमें यह अन्तर आयगा कि कर्ममें कर्मके अनुरूप कर्मका उदय तो हुआ वह कर्मके अनुरूप कर्ममें हुआ, लेकिन उस कालमें उसका निमित्त पाकर जीवमें भी उसका प्रतिबिम्ब हुआ, झलक हुई, उसे अपनाया, उसमें उपयोग जुड़ा, तो उस जीवमें भी परिणति हुई। साँख्य तो जोवकी परिणति मानते ही नहीं। वे मानते कि जोवमें परिणमन कभी होता ही नहीं है, ऐसा अपरिणामी तत्त्व सांख्य स्वीकार करते है।

कर्मदशा और ज्ञानविकल्पमें अन्यता—यद्यपि कर्मदशा हुई, कर्मसे हुई किन्तु उसका निमित्त पाकर अशुद्ध उपादान वाले जीवमें उसका प्रतिबिम्ब हुआ। अब ज्ञानी पुरुष यह विवेक करता हैं कि मैं तो केवल ज्ञानवृत्ति को करता हूँ सहज और अशुद्ध अवस्थामें मैं अपने आपकी झलकको करता हूँ, विकल्प करता हूँ। विचार करता हूँ, पर कर्मका कुछ नहीं करता हूँ। मेरा कर्म मेरा परिणमन है। मेरा कर्म कर्मकी दशा नहीं है। तो यहां इस ज्ञानी ने यह तका कि मैं अपने आपके परिणमनके सिवाय अन्य कुछ कर सकनेमें समर्थ नहीं हूँ। बात कुछ इससे भी और आगे बढ़कर सोचना है कि विकल्प, विचार भी जो होता है सो यह एक कर्मकी लीला है, कर्मका प्रतिबिम्ब है, इसका भी करने वाला मैं नहीं हूँ। मैं तो केवल एक ज्ञान ज्योति स्वरूप हूँ, और ज्ञानकी वृत्ति को ही करता रहता हूँ। इस तरह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपने को अकर्ता मानें, अपनेको समस्त परभावोंसे निराला मानना यह हो गया निर्मोह बननेका उपाय। तो अपने को यह समझना पड़ेगा कि मैं सबसे निराला हूँ। अपने आपके परिणमनको करने वाला हूं, विकार आते हैं वे पुद्गल कर्मका निमित्त पाकर आते हैं। वह मेरा स्वरूप नहीं है मैं उनसे निराला ज्ञानस्वभावमात्र हूँ। इसतरह निमित्त नैमित्तिक भाव समझ कर उसका सदुपयोग करें और वस्तु स्वातंत्र्य समझकर उसका सदुपयोग करे। अपने आपको निर्मोह बनायें बिना अपने आपको शान्ति प्राप्त नहीं हो सकता। आनन्द कहीं बाहर नहीं रखा है कि बाहरके पदार्थसे हमको आनन्द प्राप्त हो। हमारा आनन्द एक गुण है और अपने ही आनन्द गुणके विकाससे स्वयं आनन्द प्राप्त करते हैं। किसी पर पदार्थ से आनन्द नहीं आता। किसी पर पदार्थ से ज्ञान नहीं होता। ज्ञान और आनन्दका निधान यही स्वयं आत्मा है। जब यह अपने आपको सम्हालता है तो ज्ञानानन्द प्रकट हो जाता है और जब पर पदार्थमें दृष्टि गड़ाता है तो इसके विकार उत्पन्न होता है। उन विकारोंसे हम अब तक परेशान हुए।

विकारविजयमें साधक दो करण—विकारो पर विजय प्राप्त करनेके लिए दो बातों की आवश्यकता है (१) एक तो तत्त्वज्ञान की और दूसरी—यथाशक्ति संयमकी। अब उन दोनोंमें हम किसको पहले बनायें और किसको बादमें बनायें, यह कोई निर्णय नहीं है सही। दोनों कीजिए, यथा शक्ति कीजिए। तत्त्वज्ञान और बाहरी वृत्ति। जैसे देखा होगा कि कोई योद्धा अगर युद्धमें लड़ने जाता है ती उसके पास दो चीजें होती हैं (१) तलवार और (२) ढाल। पहले जमानेमें तो ये ढाल तलवार और तरह के होते थे आजकल और तरहके होते हैं, मगर वे दोनों चीजें अब भी चल रही हैं। ढालका उपयोग योद्धा करता है अपने ऊपर आने वाले वारको रोकनेके लिए और तलवारका उपयोग करता है योद्धा शत्रुका संहार करनेके लिए। जब तक ये दोनों चीजें योद्धाके पास न होंगी तब तक न योद्धा की ही रक्षा है और न शत्रु पर बिजय ही प्राप्त कर सकेगा। यह बात तो बिल्कुल ही स्पष्ट है, इसी प्रकार हमारा यह बाह्य सदाचार, ब्रह्मचर्य, वृत रखना, भोजन भक्ष्य करना, रात्रिको न खाना, बारबार न खाना इनका कुछ नियम रखना, देव दर्शन आदिक जितने भी हमारे बाह्य काम हैं ये बाहरी काम हमारे व्यसन भावको रोकते हैं। व्यसन न उत्पन्न हो। आशक्ति न उत्पन्न हो, विषयोंके भाव, खोटे भाव होते हों तो वे भी हट जायें, इसके लिए तत्काल हम इस ढाल के उपयोग द्वारा काम बनाते हैं। पर अब दृष्टि द्वारा मेरे ज्ञानमें मेरा सहज ज्ञान स्वरूप समाया रहे, यह ज्ञानमें रहे, इस प्रकारकी जो एक अनुभूति हैं, तत्त्वज्ञान है यह ही एक वह शस्त्र है जिसके होने पर भव–भवके बांधे हुए कर्म झड़ जाते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। तो तत्त्वज्ञान और हमारा बाह्य सदाचार ये दोनों हमारे विकासमें सहयोगी हैं, इसलिए हम आप सबको इस ओर ध्यान देना चाहिए। हम आत्माका स्वरूप जानें, चिन्तन करें, मनन करें और अपने ज्ञानस्वरूपको जान जानकर इसीमें ही कुछ तृप्त हों तो हमारी भलाई है।

आशयकी स्वच्छताका प्रभाव—एक चुटकुला हैं कि बादशाह अकबर और बीरबल एक बार कहीं घूमने जा रहे थे, रास्तेमें अकबरने बीरबलको छकानेके लिए नीचा दिखानेके लिए कहा–बीरबल आजरातको हमें एक ऐसास्वप्न आया कि हमतुमदोनों कहीं घूमने जा रहे थे, रास्तेमें दो गड्ढे मिले, एक में भरा था गोबर विष्टा और एक में भरी थी शक्कर। पानी बरस जानेसे वह शक्कर भी गीली हो गई थी और गोबर विष्टा भी, सो हम तो गिर गए शक्करके गड्ढेमें और तुम गिर गए गोबर विष्टाके गढ्ढेमें। तो वहां बीरबल ने जवाब दिया—महाराज आप ठीक कहते है। अवश्य ऐसा स्वप्न देखा होगा परन्तु मैंने भी हूबहू वही स्वप्न देखा जो आपने देखा, मगर थोड़ा उससे आगे यह भी देखा कि हम तो आपको चाट रहे थे और आप हमें चाट रहे थे। अब भला बतलाओ—खुद ने क्या चाटा ? शक्कर और बादशाहको क्या चटाया ? गोबर विष्टा। तो यहां एक बात अपने आपमें भी लगायें कि यद्यपि यह गृहस्थावस्था है, और गृहस्थी एक कीचड़ की तरह है। विकल्पोंसे निवृत्त होनेमें एक बड़ा बाधक स्थिति है, ये विकल्प आते हैं रोजिगार करते हैं, कमाई करते हैं, बहुत सी बातें होती हैं तो वह एक पंक की तरह है। जैसे कीचड़ में रहने पर भी अगर भीतरकी दृष्टि लगी हो और अपने आपका जो सहज शुद्ध निरपेक्ष स्वरूप हो उसकी ओर दृष्टि जाय तो वह तत्त्वज्ञानका स्वाद लेता है। गृहस्थी में रहकर भी मनुष्य कर्मका उदय पा रहा है उसका भी सामना करता है और मोक्षमार्गमें चल रहा हैं। तो दृष्टि–निर्मलता होना एक बहुत आवश्यक चीज है उसे। जिस किसीको शान्ति प्राप्त करना हो ? मोटे रूप से भी देख लो—यहाँ जिसे जिस कालमें धन वैभव प्राप्त है उस कालमें भी वह शान्त रह पाता है क्या ? इस वैभवका, विषयका, विकल्पका विचार बनाकर यह असार है, मेरेकामका नहीं है, मुझे क्यों इसकी तृष्णा करना फिर इसमें क्यों आशक्ति बनाना, इसकोत्यागें औरफिर अपने आपके इस ज्ञान प्रकाशमें आयें तो आनन्द मिलेगा, संकट टलेंगे, और कभी जल्दी ही वह समय आयगा कि जन्म मरणकी बाधासे हम मुक्त हो जायेंगे।

जगवैभवकी तृष्णाकी अनर्थता—इस वैभवको जानें कि यह ऐसे ही मिल गया। यह ऐसे ही आया और ऐसे ही चला गया। एक कथानक है—एक बार किसी राजाके अश्व शालासें एक चोर एक घोड़ा चुरा ले गया, वह घोड़ा मैंगाली, ठिगना, बड़े सुन्दर डील डोल

Report at elementsof vaastu@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का था। तो उसे चुराकर किसी पशुओंके बाजारमें खड़ा कर दिया। वह था तो कोई ३०) की कीमत का, पर यह सोचकर कि कोई यह न समझ पाये कि यह चोरी का है उसकी कीमत बताया ६००)। अब ६००) में उसे कौन खरीदे? अनेक ग्राहक आये और लौट गए। एक बार कोई ऐसा भी ग्राहक आया जो कि बड़ा पुराना एक्सपर्ट (पक्ष) चोर था। उसने पूछा भाई घोड़ा बेचोगे? ··हां हां बेचेंगे। बेचने के लिए तो लाये ही हैं। ···कितने में दोगे? ···६००) में। उसकी आवाज ही सुनकर वह बूढ़ा व्यक्ति समझ गया कि यह तो घोड़ा चोरीका मालूम होता है। सो पूछा–भाई इसमें क्या खास बात है जो इसके ६००) बताते? ···अजी इसकी चाल बहुत ही सुन्दर है। ··अच्छा, (मिट्टीका हुक्का पकड़ाकर) भाई इस हुक्केको पकड़ लेना, मैं इस पर बैठकर इसकी चाल देखूंगा, यदि इसकी चाल पसन्द आ गई तो मैं तुम्हें ६००) दे दूँगा। सो उसने वह मिट्टीका हुक्का पकड़ा, था कोई चवन्नीकी कीमतका, और बूढ़ा उस घोड़े पर बैठा ही था कि ऐड़ मारकर उसे उड़ा ले गया। अब फिर वही ग्राहक वहां लौटकर आये—पूछा, तुम्हारा घोड़ा बिक गया क्या? हां बिक गया। ···कितनेमें बिक गया? ···जितनेमें लाये थे उतनेमें बिक गया। ···मुनाफा कुछ नहीं मिला? ···मुनाफा मिला यह चार आनेका मिट्टीका हुक्का।" तो देखिये चोरी की चीज चोरीमें गई। मुनाफा कुछ न मिला। यहां भी लोग अनेक प्रकारसे धनार्जन करते हैं, पर उसे भी समझो कि यह मुफ्त ही मिला है और मुफ्त ही जायगा। आत्माकी विचार-धाराका यह फल नहीं है। यह तो पूर्वबद्ध कर्मका विपाक है। तो आत्माकी ओरसे देखो तो चूंकि ये समस्त पर पदार्थ हैं ये पूर्व मिले समझें, और जब ये मरेंगे अर्थात् मनुष्य पर्याय बदलकर आगे जायेंगे तो ये मुफ्त ही चले जायेंगे। मुफ्त ही मिले और मुफ्त ही जायेंगे, पर कोई पूछे कि भाई हमने तो ५०-६० वर्ष तक बड़ी मेहनत की है, क्या सब कुछ मिट जायगा? कुछ न रहेगा क्या? हाँ कुछ न रहेगा आखिर फल मिलेगा पापका हुक्का। जिस को कि साथ ले जायगा, आगे उसका फल भोगेगा। इस संसारके समागमोंसे जिनकी रुचि नहीं हटी, इनसे उपेक्षा नहीं जगी, वह अपने आपके धर्म मार्गमें आयगा ही क्या? कैसे आयगा? तो इतना तो मोटे रूपसे समझ ही लेना चाहिए। जगतमें जितना भी समागम मिला है वह सारा समागम मेरे लिए बेकार है। मेरी हित परिणतिको करनेमें कोई दूसरा समर्थ नहीं। मैं ही अपने आपमें अपनी परिणति कर पाता हूँ। अच्छा चलें तो अच्छे बनेंगे, खोटा चलें तो खोटे बनेंगे। मेरा मैं ही जिम्मेदार हूँ, दूसरा कोई भी जीव मेरा जिम्मेदार नहीं है। यहां जो लोग परस्परमें प्रेमकी बात करते हैं तो कोई किसीसे प्रेम नहीं करता, किन्तु खुदको ही स्वार्थ होता है, कुछ खुद की ही विषयसाधना होती है, उसके लिए वह

Version 2

प्रेम करता है, न कि कोई किसीसे दूसरेसे प्रेम करता है।

अधिगमके उपायके मीमांसाके प्रसंगमें—कभी यह ज्ञान अपने प्रदेशोंको छोड़कर बाहरके प्रदेशोंमें घुसकर जाया नहीं करता, किन्तु अपने आपके प्रदेशोंमें रहता हुआ ही बाह्य पदार्थोंको विषय बनाकर अपने आपमें जानता है। देखो व्यवहारनयसे द्रव्यार्थिकनयसे ज्ञानी ७ तत्त्वोंकी व्यवस्था बनाती है और प्रमाण द्वारा ७ तत्त्वोंमें एकत्वको प्राप्त जो एक सहज-स्वरूप है उस स्वरूपका लक्ष्य बनाता है और प्रमाणनयके विकल्प छोड़कर शुद्ध अनुभव करता है। तो सम्यग्दर्शनके प्रकरणमें इस सूत्रमें यह बताया जा रहा है कि समस्त पदार्थों का निर्णय प्रमाण और नयोंके द्वारा होता है। देखिये जैसे कोई पुरुष सीढ़ियोंपर चढ़कर अगर महलमें पहुँच गया तो अब महलमें पहुंचा हुआ पुरुष नीचे खड़े रहनेवालेको कहता कि देखो सीढ़ियोंको पकड़कर ठहर गये तो वह योग्य नही है। सीढ़ियोंको छोड़कर ही महलमें पहुंचा करते हैं। तो नीचे रहनेवाला सीढ़ियोंका आश्रय न ल नो महल तक नहीं पहुंच सकता। और अगर कीई सीढ़ियोंको पकड़े और फिर छोड़े, फिर पकड़े फिर छोड़े इस पद्धति से वह महलमें पहुँच सकता है। ग्रहण किए बिना हो कोई छोड़े रहे तो वह महलमें नहीं पहुँच सकता। इसी तरह ६ तत्त्वोंका जो भेद विवरण है उनको पाया तो इस जीवने और ज्ञान किया और उन्हें समझ गया कि इन ६ तत्त्वोंमें रहने वाला तो अनादि अनन्त एक स्वरूप यह तत्त्व है। सब जाना और जानकर फिर भूतार्थका आश्रय किया तो उनको लाभ हुआ। तो जैसे सीढ़ियोंको ग्रहण करके छोड़ दिया तब महलमें पहुंचते हैं इसी प्रकार अभू-तार्थ नयसे ६ तत्त्वोंके भेद विवरण दृष्टिसे हटकर एक अभेद निज ज्ञानस्वभावमें पहुंचना यह पद्धति है अपने मोक्षमार्गमें चलने की। तो यह अभूतार्थनयसे कहा जानेके लिए पदार्थों का अधिगम किन बातोंसे होता है। यह कहा जा रहा है कि प्रमाणनयैरधिगमः प्रमाण और नयके द्वारा ६ तत्त्वोंका अधिगम होता है। यह ज्ञान इसके प्रयोजनभूतको जानकारीमें पहुं-चाता है। और जब यह ज्ञान शब्दरूपमें आता है मायने शब्दोंमें जब हम वर्णन करते हैं, समझाते हैं तो उसका प्रयोजन पर जीवोंके लिए भी होता है। इसलिए जब तक ज्ञान शब्दरूपताको स्पर्श नहीं करते, शब्द व्यवहार जब तक इनसे नही लिया जाता तब सभी ज्ञान स्वार्थ कहलाते हैं, याने अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं।

स्वपुरुषार्थकी साधनामें भलाई—देखो लोकमें स्वार्थीका नाम लोग बुरा समझते हैं-यह तो स्वार्थी है—देखो एक भजन है जिसमें चिद्रूप हमारा—इसका ही सहारा, इस भजन के अन्तर्गत बताया है कि 'वस्तु स्वरूप ही नहीं कि परसे कुछ मिले। खुदगर्ज भी किसको कहें, सब सत्त्वके भले ॥" याने वस्तुका स्वरूप नहीं है ऐसा कि पर पदार्थसे मेरेको कुछ

Report any errors at vikasnds@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

मिल जाय। मिलता है जो कुछ मुझे वह मेरेको मेरेसे मिलता है, पर जो बाह्य बातें हैं चाहे शुभ हों या अशुभ, उसमें हमारा आश्रयभूत पर पदार्थ विषय हुआ करता है तब यह विधि बनती है शुभ अशुभ भावकी कि पर पदार्थका आश्रय करते हुए हमारा शुभ अशुभ भाव बनता है, पर वस्तुतः किसी परवस्तुसे मेरेमें कुछ नहीं मिलता। लोग सोचते हैं कि मेरेको आनन्द घरसे मिलता है। अरे घरमें जो ईट पत्थर हैं उनमें आनन्द भरा है क्या? जो वहांसे मेरेको आनन्द मिल जाय? परिवारमें आनन्द मिलता है क्या? अरे परिवार पहिले अपने आनन्दसे ही तो सुख लेते। उनका सुख मेरेमें कैसे प्राप्त होगा? किसी भी पर पदार्थसे मेरेको आनन्द और ज्ञान प्राप्त नहीं होता। मैं ही खुद ज्ञानानन्द स्वरूपी हूं। सो मैं अपने आपका आश्रय करके विशुद्ध ज्ञान और आनन्द प्राप्त कर सकता हूं। देखो आनन्द चाहिए—धर्म चाहिए, मोक्षमार्ग चाहिए तो दिमाग बदल देना पड़ेगा। उस दिमाग से बात न बनेगी। तो जो विश्वास लिए हुए चले आये कि यह ही मेरे आत्माके लिए है, यह ही मेरा जीवन है, इससे ही मेरा बड़प्पन है। ऐसा जो भीतरमें विश्वास है यह विष है। इस विषका वमन करें—तब धर्म और आनन्दकी बात मिलेगी। घर भी पकड़े रहें, उनके लगाव और मोहमें परिवर्तन न लायें और चाहें कि मेरेको धर्म मिले, आनन्द मिले तो यों न मिलेगा। धर्म और आनन्द प्राप्त होंगा तो मोह छोड़कर ही प्राप्त होगा। मोहमें न प्राप्त होगा। और भी एक बात देखो—जैसे कहते हैं कि भाई तुम सीधे सादे बात मान लो नहीं तो टेढ़े तो मानना ही पड़ेगा। कभी कभी कहते हैं ना व्यवहारमें—अरे राजी खुशी से बात मानलो अन्यथा जबरदस्ती कोई मनवा लेगा। यों ही—भाई जिस परिवारसे, वैभव से, इज्जत प्रतिष्ठा आदिकसे इतना लगाव लगाया, मोह लगाया, उसे छोड़ दो, मरनेपर तो यह सब छूट ही जायगा न? भले ही अगले भवमें मिले मगर वहां तो नया विषय बनेगा, नई बात बनेगी! जिन पदार्थोंको विषय करके मोह बना रहे वे पदार्थ तो मिट ही जायेंगे। वे तो नहीं मिलनेके। राजी खुशीसे मोह छोड़ दो, नहीं छोड़ते तो छोड़ना पड़ेगा, काम तो आयेंगे नहीं? यह मोह आपकी मदद तो देगा नहीं। छोड़ना तो अवश्य ही पड़ेगा। अगर भले-भले ढंगसे छोड़ दें तो उसका आनन्द अब भी पा लेंगे, और आगे भी पायेंगे। और नहीं छोड़ते तो दुर्दशा होगी। उस भव सम्बन्धी बात मिली तो कोई उसका अच्छा नतीजा न मिलेगा।

निज ज्ञानस्वरूपके संवेदनमें श्रेयोलाभ—देखो–तुम ज्ञानमय हो, आनन्द चाहिते हो तो अपने आपके स्वरूपका भी ज्ञान करो, तो यह ज्ञान कामका है और बाहरी–बाहरी पदार्थोंका ही राग मोह करते रहे तो उससे कुछ नफा न मिलेगा तो कुछ तो सोचो। यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लोभ, यह तृष्णा, यह असन्तोष, यह मोह, यह ही विकट अँधकार है। इसमें सन्मार्ग नहीं सूझता। ये इस जीवको धोखा ही दिया करते हैं। तो भाई यह मानव पर्याय बड़ी दुर्लभ पर्याय है, इस पर्यायको पाकर हमको वास्तवमें कौन सा काम करना चाहिए। जिससे कि यहां भी वास्तविक प्रसन्न रहें और आगे भी प्रसन्न रहे और सदाके लिए संसार संकटोंसे छूट जायें। जरा आप हिसाब भी तो देखलो। सदाके लिए जन्ममरणके संकट छूट जायें, सदाके लिए अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान प्राप्त हो जाय, यह बात महत्वकी है कि आज जो बालबच्चे मिले हैं, दुबले पतले हड्डियां निकली, नाक बह रही है, परेशान कर रहे है फिरभी उनमें इतना मोह बनाये हुए हैं, यह बात महत्वकी है या अनन्त आनन्द प्राप्त करनेकी बात महत्वकी है ? कुछ तो सोचो जरा। संसारमें मोहियोंकी संख्या अत्यन्त अधिक है, और लोगोंकी यह प्रकृति पड़ी हुई है कि बहुतसे लोगोंको जिस कामको करते हुए देखा उस कामको करना, इससे यह जीव पराजित ही जाता है। बिरला ही पुरुष ऐसा है जिसका होनहार अच्छा है वह ही पुरुष ऐसा चिन्तन कर सकता कि अनन्त मोहियों की बातको देखकर हमें करनेका काम नहीं है, किन्तु जो बिरला ही ज्ञानी पुरुष हो या प्रभु भगवंतने जो किया है उसको जानकर करना। देखो ज्ञानपुञ्ज हैं, हम आप ज्ञान स्वरूप पदार्थ है। अगर अपने आपमें ज्ञानका बल लगाया तो अपने आपकी कोई कठिन बात नहीं है। पर आचरण तो यह पड़ा हुआ है कि हम अपनेको जाननेकी रुचि नहीं करते, बाहर-बाहर ही तकते हैं, बाहर–बाहर ही देखते हैं, वहां ही निर्णय बना हुआ है। दुःखी हो रहे हैं। ज्ञानस्वरूप होकर खुदके स्वरूपका ज्ञान न कर सके यह तो एक अचम्भेकी बात हो जायगी, और, है ही अचम्भा, नहीं कर पा रहा है यह मोही अपने आपका ज्ञान। कल्याण चाहिए तो यह ही निर्णय रखना होगा कि आत्मज्ञान और आत्मश्रद्धान व आत्मरमण हो तो कल्याण बनेगा। तभीं हम आगे बढ़ सकेंगे और मुक्तिको प्राप्त कर सकेंगे। जो ज्ञानी पुरुष है वह अपने आपको अपने आपमें यह स्पष्ट निहारता है कि जहां बराबर भेदविज्ञान स्पष्ट झलकता है। मैं तो यह हूँ जो ज्ञानस्वरूप है। जिसकी वृत्ति एक ज्ञानरूप है, चेतना को लिए हुए है, और यह कर्मका अनुभाग है, कर्मसे प्रकट हुआ है। जो कर्म अनुभाग मेरी झांकीमें आया है वह अन्धेरा मेरेमें छाया है। लो स्वभावसे च्युत हुएका कर्मराग अन्धेरेमें उपयोग जुड़ा और उसे अपना लिया, इसीसे जन्म मरण चल रहा है।

भ्रमविनाशमें अज्ञानवृत्तिकी अशक्यता—जिसके भ्रम मिट गया उसके भ्रम कैसे आ सकता है ? जैसे कोई कुछ अन्धेरे उजेरेमें सामने पड़ी है रस्सी और यह भ्रम बन गया कि यह तो सांप है, तो भय हुआ, आकुलता हुई, चिल्लाने लगा। हृदय भी काँपने लगा, शंका

Copyright by email-sahjanand@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और भय भी व्याप गया। अब न जाने क्या हाल होगा, कहो यह सर्प काट ले और मेरा मरण हो जाय, यों नाना बातें होती है। और, थोड़ा सोचा कि जरा मैं अच्छी तरहसे देखूं तो सही कि यह कैसा सांप है, कौन सांप है ? क्या बात है ? जब भली दृष्टिसे देखने लगा तो सोचा कि यह तो जरा भी हिलता नहीं है, यह कैसा सांप है ? कुछ हिम्मत बनाय? और पास जाकर देखा, यह तो बिल्कुल ही नहीं हिलता। और हिम्मत बनाया, जरा और पास जाकर देखा तो समझ लिया कि अरे यह तो रस्सी है, सांप नहीं है। उसे हाथोंसे उठाकर भली भांति निर्णय कर लिया कि यह तो रस्सी ही है। अब सही ज्ञान हो जानेसे भ्रम मिट गया ना ? अब उससे कोई कहे कि हम तुम्हें इतने हजार रूपये इनाम देंगे, तुम उसी तरहकी आकुलता, बेचैनी, भ्रम बनाकर दिखा दो, तो क्या वह दिखा सकेगा ? नहीं दिखा सकता। भलेहीं बनावटी करे पर जब भ्रम ही मिट गया तो वह आकुलता आयगी कहां से ? तो जैसे मोही पुरूषमें यह सामर्थ्य नहीं है कि वह ज्ञान प्रकाश की प्रसन्नता पाये इसीतरह ज्ञानी जीवमें, सम्यग्दृष्टि जीवमें भी वह पता नहीं है कि जो धन परिवार, घर इनमें मोह कर सके, तब तो कुछ सोचना होगा कि हम लोग ही।

संसारी जनोंकी मिथ्या सुभटता—संसारी जन बड़े सुभट है उनकी सारी धारणा है कि जो बल ज्ञानोमें नहीं वह बल हममें है। अरे देखो—भगवानसे बढ़कर मत चलो। कम स कम भगवानसे कुछ हल्के बनकर तों रहो, लेकिन यह मोही जीव तो भगवानसे बढ-कर चल रहा है। भगवान बेचारे तो जो पदार्थ जैसा है उसे उस प्रकार जान पाते है, लेकिन मोही जीव जैसा नहीं है वेसा भी जानकर दिखा देते हैं। देखिये—घर तो मिट्टीका है, वह अत्यन्त भिन्न पदार्थ है पर उसे ये मोही जीव मानते हैं कि यह मेंरा है। जहाँ भग-वानसे बढ़कर चलेंगें तो ऐसा गिरेंगे कि जैसे मानो हड्डी पसली सब टूट जायेंगी। याने इस का फल यह होगा कि अनन्त संसारमें जन्म मरणके घोर सकट सहने पड़ेंगे। तो जैसे भग-वान अधिक नहीं जानते। जो पदार्थ जितना है उतना ही जानते। मगर यहां ये मोही जीव भगवानसे भी अधिक जाननेकी कोशिश कर रहे हैं। लड़का मेरे, घर मेरे, इज्जत मेरी, ये मेरे, यों नाना प्रकारसे ये मोही जानते हैं, पर भगवान तो ऐसा नहीं जानते। भले ही आप का जो मिथ्यात्व विकल्प है वह जाननेमें आये मगर भगवान ऐसा नहीं जानते कि यह घर इस अमुक चंदका है, इस लालका है, इस प्रसादका है। मगर भगवान यह जान जाये तो आपकी पक्की रजिष्ट्री हो जायगी, फिर कभी आपका घर न मिटेगा। यहाँ म्यूनिसपिलटी की रजिष्ट्री तो फेल भी हो सकती मगर वह रजिष्ट्री फेल भी न हो सकगी। अगर भग-बान यह जानने लगें कि यह घर अमुकका है तो वह तो बड़ी बढ़िया रजिष्ट्री हो गई।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आप जानते हैं कि यह मकान मेरा है तो यह तो मोह भाव है, वह आपकी पर्याय है, जान जायेंगे, मगर उपचारकी भाषामें जो बोला जाता है वह तो सत्य नहीं है। जो सत्य नहीं है वह भगवानके ज्ञानमें ज्ञेय नहीं होता, आपकी असत्ता ज्ञेय हो जायगी। जो जरा बढ़कर न चलो। जो बात जैसी है वैसी मानकर चलो तो रास्ता मिलेगा। और अन्धाधुंध चला जाय तो रास्ता न मिलेगा। देह तक भी अपना नहीं है। और तो जाने दो, जो रागादिक भाव उत्पन्न होते हैं वे भी मेरे बनकर नहीं रह पाते। नये-नये राग बनते। जो नया-नया राग बन रहा वह दूसरे क्षण नहीं ठहरता। उसे भी मिटना पड़ेगा। वह भी मेरा बनकर नहीं रहता। तो मेरे अन्दर रहने वाला रागादिक विकल्प भी जब मेरा साथ नहीं देते, होकर मिट जाते हैं, तो भला बाहरमें रहने वाले पदार्थों पर जो ऐसा मिथ्या विश्वास बना रखा है तो इनसे कुछ आपको शरण मिलेगा क्या ?

बाहरी पदार्थोंके सम्पर्कमें आघातकी ही आशा—जैसे फुटबाल जहाँ जाय वहाँ ही उसे लात मिलेगी। जिस बच्चोंके पास फुटबाल पहुंचता है वह बच्चा उस फुटबालको लात मारकर वहांसे लौटा देता है, कोई बच्चा उसे हाथोंमें उठाकर हृदयसे तो नहीं लगाता। न उसे गोदमें लेता। आया और लात मारा। तो ऐसे ही फुटबालकी तरहसे मोही जीव जहां जाते हैं, जिसके पास जाते हैं वहींसे धोखा मिलता है, चोट मिलती हैं, वहींसे कष्ट मिलता है। शान्ति नहीं मिलती, खूब देखलो। जो अनिष्ट चीज हैं, जो अपनेको नहीं सुहाती है ऐसी चीजसे मेरेको चोट पहुंचती है, कष्ट होता है। यह तो हर एक की समझमें खूब बैठा हुआ है, मगर जो इष्ट चीज है, प्रिय चाज हैं। सुहावनी चोज है उससे मेरेको चोट पहुंचती है। इसका कोई परिचय नहीं किया जा रहा है। एक दफे यही तो कहा था कि वह ब्राह्मण भाई जब यहांसे जाने लगे तो बोला था न ? देखिये—बात तो वहाँ कुछ न थी, पर उसका भाव देखना है—सज्जन और दुर्जन ये दोनों दुःखदायी हैं। दुर्जन तो मिलते समय दुःखदायी है। और सज्जन बिछुड़ते समय दुःखदायी है। ऐसे ही इष्ट पदार्थ और अनिष्ट पदार्थ दोनों ही कष्टकारी हैं। अनिष्ट पदार्थ तो मिलते समय कष्टकारी है और इष्ट पदार्थ मिलते समय भी कष्टकारी है और बिछुड़ते समय भी कष्टकारी है। बिछुड़ते समय कष्टकारी है यह तो सबके अनुभवमें आ रहा होगा। घरमें जो बड़ा है, जो पालन हार है, जो किसी प्रकारका पोषण करने वाला है, वह अगर गुजर गया तो लोग कहते हैं कि बड़ी चोट पड़ी, बड़ी मार लगी, बड़ा क्लेश है। तो वियोगके समयमें इष्ट पदार्थ कष्टदायी होता है, यह तो सब मानते हैं, मगर स्वरूप बतला रहा है कि जिस समय संयोग है इष्ट पदार्थका, उस समयमें भी आकुलता रहती है, कष्ट रहता है, क्षोभ रहता है चित्तमें। तो बाह्य पदार्थ सब

For personal & private use only www.jainelibrary.org

http://www.jainkosh.org

हमारे अहितके कारण कारण बन रहे हैं, उस ओर तो दृष्टि नहीं देते, और हिसाब लगाते हते हैं बाहरी आय व्ययमें।

अनन्तानुबन्धी कषायके लक्षण—कहीं धर्मका हिसाब लगायेंगे, धर्ममें इतनाही देना , इतना कैसे दें ? वहां हिसाब लगायेंगे और घरमें तो हिसाब नहीं लगाते। अगर घरका ोई बीमार हो गया तो उसमें फिर हिसाब नहीं लगाते, चाहे कितना ही धन खर्च हो जाय उसमें फिर कमी नहीं करते। वहां तो सोचते हैं कि यह तो हमारा कर्तव्य है, करना ही चाहिए। और–कभी कोई धर्मकी बात आ जाय, वहां कुछ खर्च करनेकी जरूरत पड़ जाय तो वहां हिसाब लगाते हैं कि कितना खर्च करदें, कुछ थोड़ासा करदें। अनन्तानुबन्धी लोभ किसे कहते कि धर्म के प्रसंगमें भी हैं जहां लोभ कषाय हो उसे कहते हैं अनन्तानुबन्धी लोभ। यों तो घरमें रहते हैं तो लोभ बिना किसीका गुजारा नहीं चलता। जो कुछ धन है क्या वह उसे सड़कपर खड़ा होकर सबको बांट देगा ? अगर कोई ऐसा करने लगे तो उसे तो लोग पागल कहेंग। तो घरमें रहते हुए लोभ बिना घर नहीं चलता मगर धर्मके प्रसंगमें सामर्थ्य होते हुए भी लोभ कषाय बने उसे कहते हैं अनन्तानुबन्धी लोभ। यह उसका मुख्य बाहरी चिन्ह है। धर्मके प्रसंगमें अगर क्रोध आ जाय तो उसे कहते हैं अनन्तानुबन्धी क्रोध। गृहस्थीमें रहते हुए क्रोध तो सभीको आताही रहता है, मगरधर्मका वातावरण हो, उसप्रसंग में यदि क्रोध आ गया तो वह अनन्तानुबन्धी क्रोध बन गया। तो यह अनन्तानुबन्धी क्रोध का चिन्ह है। इज्जत, सम्मान प्रायः सभी चाहते हैं, मगर धर्मके प्रसंगमें आकर अगर कोई मान चाहे तो वह अनन्तानुबन्धी मान है। तब ही तो देखो उल्टी रीति चल रही है कि मन्दिरसे बाहर हुए या धर्मका प्रसंग न हो तो गलेसे गला मिलते हैं, एक दूसरेसे बड़ी मित्रता दिखाते हैं और जहां कोई धर्मका प्रसंग आया तो बस वहां वह मित्रता खत्म हो जाती है। ...वाह मैं यहीं बैठा हूँ। ये लोंग मेरेसे आगे बैठ गए, मैं क्यों इनसे पीछे रहूँ ? ...देखो ये सब बीती हुई बातें आप लोग समझ रहे होंगे, पर ऐसा भ्रम न करना कि यह तो हमपर बात कही जा रही है। ऐसा तो सभी लोग भ्रम कर सकते हैं। यह तो एक सामान्य बात है, अनन्तानुबन्धीके स्वरूपकी बात है। धर्मके प्रसँग में मायाचार हो तो वह अनन्तानुबन्धी माया है। वैसे माया गृहस्थीमें कुछ न कुछ हर समय आती रहती है। जैसे किसीने कहा सेठजी मुझे आपसे १०००) उधार चाहिए तो आप कह देते हैं कि मेरे पास रूपये तो नहीं हैं। अभी घरे होगे बीसों हजार मगर कहते हैं कि मेरेपास रूपये नहीं हैं, तो यह भी तो मायाचार है, मगर धर्मके प्रसंगमें अगर कोई मायाचारी करे तो वह अनन्तानुबन्धी माया है ? जैसे मन्दिरमें जब आये तो उस समय कोई न थे। अकेले आये

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

थे। वहां स्तुति पढ़ रहे हैं तो बड़ी जल्दी जल्दी पढ़ रहे हैं। मगर कोई अच्छे लोग दर्शन करने आ गए तो वहां वह पुरुष बड़ा सुरीला राग बनाकर स्तुति करने लगा। तो यह धर्म के प्रसंगमें मायाचार हैं ना, ऐसी अनेक बातें हैं। लेन देनके प्रसंगमें, व्यवस्थाके प्रसंगमें और बातोंमें धर्मके प्रसंगमें क्रोध, मान, माया, लोभ करे तो यह बहुत बुरी चीज होती है। तो ये विषय कषाय आत्माका अहित करने वाली चीजें हैं। विषय कषायोंसे छुटकारा मिले यह बात देखिये, यह प्रतीक्षा कीजिए। इससे ही भलाईका रास्ता मिलेगा।

आत्मज्ञान बिना विषयकषायके परिहारकी अशक्यता—विषयकषाय छोड़नेके प्रसंगमें एक बात और समझलो। विषय कषाय छोड़नेका कितना ही उद्यम करो, जब तक आत्म-ज्ञान नहीं है आत्माके एक शुद्ध निरपेक्ष सहज स्वरूपका परिचय नहीं है, जो अनुमानसे जो एक युक्तिसे हो गया, जो एक विचारसे हो गया। जब तक अपने आपके बारे में यह निर्णय न हो कि मैं सब पदार्थोंसे निराला, देहसे भी निराला, कर्मोंसे भी निराला, विकारसे भी निराला मैं एक ज्ञानमात्र तत्त्व हूँ, जब तक इस स्वरूपमें अपने आत्माकी प्रतीति न करेंगे तब तक अनेक उद्यम करने पर भी कषाय छोड़नेमें सफल न हो सकेंगे। और, अगर एक मूल मंत्र मिल गया, अपने आत्म-प्रतीतिकी बात आ गई तो सब आसान हो जायगा! इसलिए विषय कषायोंसे दिमाग बदलकर अब इस आत्मविज्ञानके प्रसंगमें अपना उद्यम करना चाहिए। आत्मज्ञान होना और सर्व वस्तुओंके बारेमें सम्यक्बोध होना एक साथ है। मिथ्या ज्ञानमें क्यों उलझन होती है? यों कि पदार्थ तो है और भाँति और यह जीव समझ बनाता है और भाँति, इस समझका और पदार्थका मेल नहीं बैठता, अत-एव इसे धक्का पहुंचता है और विकल्प होता है, जहां सत्य ज्ञान है वहां पदार्थकी कुछ भी स्थिति बने, पर वहाँ सत्य ज्ञान होनेपर इसको अब अनहोना पन सा नहीं लगता कि अन-होना हो गई। जैसे वस्तु तो नित्य है द्रव्य दृष्टिसे और अनित्य है पर्यायदृष्टिसे, पर यह पर्यायको ही सर्वस्व मानता हुआ वस्तुको नित्य समझ रहा है। यह चीज मेरे पास सदा रहेगी और रहता सो है नहीं, तब यह दुःख मानता है। यदि सत्य बोध हो जाता कि जितना समागम मिला है यह विनाशीक चीज है, मेरे पास न रहेगा, तो जब न रहेगा धन उस समय यह भी समझ लेंगे कि लो मैं जो जानता था सो हो गया ना? कष्ट न मानेगा। कुटुम्ब परिवार और और लोग मित्रजन, ये सब स्वतंत्र पदार्थ हैं, इनके साथ मेरा रंच मात्र सम्बन्ध नहीं, ऐसा जब बोध होवे तो इसकी परिणति किसी रूप चले, उससे यह खेद नहीं मानता, और जहां भ्रम बन गया कि लड़का मेरा ही तो है, परिवार मेरा ही तो है, इसपर मेरा ही तोअधिकार है, मैं जैसा कहूं, वैसा इसे चलना चाहिए, यह ही एक कानून है। जब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसा भ्रम बना लिया और चूंकि पदार्थ हैं स्वतंत्र, जैसा उनका परिणमन, जैसी उनकी कल्पना, जो उनकी चेष्ठा सो होग । तब यह दुःखी होता है । तो अनेक घटनाओंसे आप यह निर्णय करलें कि पदार्थका सच्चा बोध हुए बिना शान्तिका मार्ग मिल ही नहीं सकता ।

स्याद्वादसे वस्तुपरिचय करके परमविश्राममें एक स्वभिवक्त अन्तस्तत्त्वको अनुभवने का स्मरण—पदार्थका सच्चा बोध कैसे हो ? तो भाई आप लोगोंका बहुत ऊंचा भाग्य है । बड़ा सौभाग्य है कि वस्तुस्वरूपकी पहिचानका सच्चा उपाय बताने वाला शासन आपने पाया है । वहउपाय है अनेकान्त, स्याद्वाद । वस्तुसदा रहती है और बनती मिटती रहती है । द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टिसे पदार्थका सही निर्णय बनता है । कोई भी जीव मेरा नहीं है, क्योंकि उनका परिणमन उनके आधीन है, उनका उनमें है । और, सभी जीव स्वरूपदृष्टिसे एक समान हैं, एक हैं । अनेक दृष्टियोंसे वस्तुके बारेमें यथार्थ बोध होता है और नय दृष्टि को कोई अपनाये तो जितना भी अन्य शासनोंने बात कही है वह भी इसके चित्तमें सत्य उतर जायगी । कभी एक नयसे बात बन गई ? कभी दो तीन नय मिलकर बात बनती है, पर जिसने जो कुछ कहा हैं अन्य शासनोंने तो आखिर कुछ बुद्धि तो उन्होंने लगाया । कुछ समझसे ही तो उन्होंने कहा । बिल्कुल असत्य तो नहीं कहा जा सकता । दृष्टि परखो, किस दृष्टिसे कौन क्या कहता है, पर एक दृष्टिसे ही कथन वस्तुका पूरा नहीं बनता तो और भी दृष्टि उनके साथ अपनाना चाहिये था, और उनका वर्णन करना चाहिए था । वह समग्र वर्णन आपको इस आर्हत शासनमें मिल रहा है । एक शब्द रखो उसका वाच्य खोजो । वाच्य कहते हैं क्या कि उस शब्दके द्वारा क्या कहा गया ? क्या चीज बतायी गई ? उसे कहते हैं वाच्य । बतलाओ शब्द द्वारा वाच्य क्या होगा ? जैसे गौ कहा—तो गौ मायने गाय, सब जानते हैं । गौ कहा तो बताओ गौ शब्दका वाच्य क्या होता है ? याने गौ शब्दसे क्या चीज कही गई ? इस समय आप सोच रहे होंगे कि बहुत मामूली सी बात बता रहे हो कि गौ शब्दसे यहां गाय ही तो कहा गया लेकिन इसमें भी दार्शनिकोंके सिद्धान्तमें भेद है । क्षणिकवाद सिद्धान्त कहता है कि गौ शब्द गायको नहीं कहता किन्तु अगेनिवृत्ति याने जो गाय नही है उसकी निवृत्तिको कहता है गौ शब्द । तब वेदान्त कहता है कि शब्दका वाच्य विधि हैं, एक ब्रह्म है । दूसरा कुछ है नहीं, निषेधका कुछ काम ही नहीं । शब्दका विधि वाच्य होता है । तो देखो शब्दका वाच्य निषेध है, ऐसा कहनेवाला भी दार्शनिक है और शब्दका वाच्य विधि है ऐसा कहने वाला भी दार्शनिक है । क्या अर्थ निकला ? गौ शब्दसे कहा गया—अगोनिवृत्ति । मायने जो गाय नहीं है ऐसे बाकी सारे कुछ नहीं हैं,

http://sahjanandvarnishastra.org/

इतनी बात भर गौ शब्दने बताया। गाय को नहीं बताया। गौ शब्द के विषयमें जब दूसरा दार्शनिक कहताहै कि निषेध करनेका कोई अवकाश ही नहीं, गौ शब्दसे ठीक यहही बताया गया। स्याद्वाद कहता है कि तुम दानों सत्य कहते हो। गौ शब्दने दोनोको कहा है। गौके मायने क्या ? गाय के सिवाय अन्य कुछ नहीं। गौ के मायने क्या ? यह गाय। दोनों ही बातें आयी विधि भीऔर निषेध भी। तो जहां शब्द सेही प्रारम्भहै - दोधर्म, फिर बतलाओ अनेकान्त बिना किसीका गुजारा चला क्या ? खाना पीना व्यापार व्यवहार बोलचाल, सत्य प्रमाण सिद्ध करना, युक्ति, सही बात स्याद्वादके बिना नहीं बनती। सब लोग स्याद्वादका उपयोग कर रहे हैं, मगर उसकी कृतज्ञता चित्तमें नहीं है। किसीको हजार रूपया उधार दिया, व्याजपर, साल भरके बाद उससे हिसाब करना है, ब्याज भी लगाता है, रूपये भी लेता है, तो यह बात कब बन पाती है, जब चित्तमें यह बात है कि रूपये इसको ही दिए गए थे। और, चित्तमें यह बात बनी कि रूपये दिए हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया, अब एक क्षणका यह हिसाब है, और यह पुरुष भी वही एक वर्ष व्यतीत हो गया, अब एक वर्ष बाद भी यह पयाय बाला है, ऐसा कुछ उसके चित्तमें है, तब ही तो वह हिसाब बन सकता। अगर पुरूष नित्य ही हो तो हिसाब कैसा और अगर पुरूष अनित्य ही हो जाय तो हिसाब कैसा ?

व्यावहारिक घटनाओंकी भी स्याद्वादपोषकता—बताते है एक घटनामें कि एक कोई क्षणिकवादी सेठ था, एक ग्वाला उसकी गाय चराता था। तो जब एक महीना पूरा हो गया तो ग्वालाने सेठसे अपनी चराई मांगा। जो भी २, ४ अथवा ५) महीना बाँधा ही वह मांगा। तो वह सेठ कहत है कि जिसको मैंने गाय चरानेको दी थी वह तो अब है ही नहीं। तुम तो दूसरे जीव हो, तुमको चराई कैसे मिलेगी ? उनका कुछ सिद्धान्त ही ऐसा है कि आत्मा क्षण–क्षणमें नया-नया उत्पन्न होता है। तो जिसे मैंने गाय चरानेको दिया था वह तो उसी क्षण मर गया था, तुम तो नये आत्मा आये हो, कैसे तुमको चराई दी जायगी ? तो वह ग्वाला बेचारा हृदय मसोसकर रह गया। सोचा कि हमने तो महीनाभर इसकी गाय चराया और यह कहता कि चराई न देंगे तो दूसरे दिन उस ग्वालेने क्या किया कि उस गायको अपने घर बांध लिया। अब सेठको फिकर थी, ग्वालेके घर जाकर बोला तुमने आज हमारी गाय हमारे घर क्यों नहीं भेजा ? ·····अरे सेठजी, किसकी गाय ? किसने दी ? जिसकी गाय थी वह तो अब रहा नहीं, जिसने गाय दी थी वह तो उसी क्षण मिट गया था, तुम तो दूसरे आत्मा हो, तुम्हें गाय कैसे दी जायगी। वहां सेठने ग्वालेसे माफी मांगा, अपनी गल्ती समझा, ग्वालेको चराई दिया तब गाय पाया। तो व्यापार रोजगार

Recent Jain Sprakash Vidhyarthi Mandal@gmail.com

http://www.jainkosh.org

खान पान आदिका कुछभी व्यवहार स्याद्वादके बिना नहीं चलता। तो जहां शब्दका अर्थ ही बधि और निषेध दोनों है वहां समझें कि अनेकान्त स्याद्वाद तो प्रत्येक वाक्यमें, मूल मूलमें पड़ा हुआ है। तब ही तो देखिये—जैसे किस चीजकी सिद्धिकी जाय, मानो एक घड़ीको ही लक्ष्यमें लेकर कहा जाय, यह है और भी सिद्ध हो जाय कि यह नहीं है। इस घड़ीके बारेमें सामने रखकर बोल रहे कि यह है, यह बात सही है कि नहीं ? है, यह है ही है, और यह नहीं है यह बात भी सही है कि नहीं ? यह भी सही है। क्योंकि यह चौकी नहीं है, यह पुरुष नहीं है, यह चूल्हा चक्की नहीं है। यह सही है कि नहीं ? अगर यह घड़ी चूल्हा चक्की आदि हो जाय तो तुम समय कहांसे देख सकोगे ? तो यह है, यह अपने स्वरूप से है, इसको छोड़कर अन्य पदार्थके स्वरूपसे नहीं है। जीव है, जीव नहीं है, जीव अपने स्वरूपसे है और जीव पर पदार्थके स्वरूपसे नही है, जीव नित्य है, जीव नित्य नहीं है, ये दोनों बातें सही हैं ना ? द्रव्य दृष्टिसे जीव नित्य है, पर्याय दृष्टिसे जीव नित्य नहीं है। वस्तुमें परस्पर अनेक विरुद्ध धर्मोंकी सिद्धि स्याद्वादसे होती है। विरुद्ध धर्म क्यों कहलाते कि जिस धर्मको प्रतिपादित किया पहले वह, नहीं है दूसरा, इसलिए विरुद्ध धर्म है। जैसे एक आत्मामें ज्ञान दर्शन, चारित्र आदिक अनेक धर्म कहते। तो वे रहते हैं, उनका विरोध नहीं है। मगर ज्ञानका जो स्वरूप है सो दर्शनका नहीं, चारित्रका नहीं। तो एक गुणके सामने यह भी दूसरा धर्म विरुद्ध कहलाता है, ऐसे ही अस्तित्त्व नास्तित्त्व आदिक सभी की बात समझना है। तो स्याद्वादसे वस्तुस्वरूपका परिचय होता और इसीको प्रमाण कहते। प्रमाणके द्वारा हमें बस्तुका सही ज्ञान होता। जब तक सही ज्ञान नहीं होता, तब तक शांति उपाय न मिलेगा।

सत्य ज्ञानप्रकाश बिना आत्मरक्षाकी असंभवता—भ्रमसे ये जीव बरबाद हो रहे हैं। जन्म मरणके संकट सहे चले जा रहे हैं, अपने आपका घात किए जा रहे हैं। आत्म-पंसन ! कहकर अमृतचन्द्र सूरि महाराजने इन मोहियोंको कहां—ऐ आत्माका घात करने वाले पुरुष ऐ अपने आपकी हत्या करनेवाले पुरुष, इन हत्यारी इन्द्रियोंके वश होकर तुम क्यों अपना विनाश कर रहे हो ? किसीसे अगर द्वेष हो जाय तो यह ही तो गाली देते हैं हत्यारी, पापिनी, या मरी आदि अनेक विशेषण सो यही इन इन्द्रियोंके लिए हैं। जैसे कहते ना लोग गालीमें है कि नासकी मिटी, हत्यारी। तो इन इन्द्रियोंको हत्यारी समझे, नास की मिटी समझें अपने आपका अनुभव करनेके लिए घातक समझें। सूरदासकी कथा सुनायी थी एक पुरुषने कि सूरदास सन्यासी हो गए थे, तो भिक्षा मांगते मांगते एक घर पहुंचे तो उसी मकान की स्त्री सामने आयी, तो सूरदास कहते हैं कि भिक्षा दो, तो स्त्री कहती है—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या चाहिए ? तो वह सूरदास कहता है कि हमको तो तुम चाहिए। याने खोंटी भावना प्रदर्शित की। तो उस स्त्रीने कहा–कुछ हर्ज नहीं, मैं अपने पतिसे पूछ आऊँ, पतिसे पूछने गई, कहा कि एक अतिथि आया है और वह हमें चाहता है तो पति कहता है कि जावो अगर अतिथि आया है, तुम्हें चाहता है तो तुम्हें सौंपा जावो, वह स्त्री आयी सूरदासके पास और कहा—हम सामने हाजिर हैं, लीजिए। तो सूरदास कहते है कि तुमने पहले ऐसी बात क्यों नहीं कहा ? तो स्त्रीने कहा—देखो हमारा पतिव्रत धर्म है, पतिको आज्ञा लेना बहुत आवश्यक है। अब पतिने कह दिया। इतनी बात सुनकर सूरदासको वैराग्य हुआ। सूरदास ने पूछा—अच्छा जो हम मागेंगे सो दोगी ? ....हाँ देंगे। ....अच्छा जावो कहीसे दो सुजा ले आवो। कहाँ तो क्या चाहता था और कहां क्या मांगता है कि मुझे दो सूजा लावो। वह स्त्री दो सूजा लाई और दोनों सूजोंसे सूरदासने अपनी दोनों आंखें फोड़ ली। तबसे वह सूरदास कहलाये। तो इस आत्माके बड़े विचित्र परिणाम होते हैं। यद्यपि हम यह प्रशंसाकी बात न कहेंगे कि आंखें फोड़ ली, पर कुछ अंशोंमें प्रशँसा की भी बात तो हुई। तो वह ज्ञान जगना, ज्ञान प्रकाश होना, वैराग्य होना, वास्तविक मायनेमें परमार्थ ढंग से उसीके सम्भव हो सकती है कि जिसको सत्य ज्ञानका प्रकाश हुआ है। और वह सत्य ज्ञानका प्रकाश होता है नय और प्रमाणके द्वारा। देखो ज्ञान प्रकाश करें।

निज ध्रुवभावमें आत्मत्व प्रतीतिमें आनन्दलाभ—भैया ! अपने आपकी ओर आवो और जानो, बतलावो जो मकान खड़ा है बाहर यह आपके आत्माका कुछ लगता है क्या ? आपका आत्मा आपके पास है, मकान मकानकी जगह खड़ा है, न आप साथ लाये न साथ ले जायेंगे। धन वैभव जो जमा कर रखा है वह कुछ आपका है क्या ? आत्मा पर दृष्टि देकर बोलो, नहीं है। जो कुटुम्ब परिवारके लोग हैं वे जीव आपके हैं" अरे आ गए, ये न आते, कोई दूसरे आते तो क्या ऐसा हो न सकता था ? मोहीको तो मोह करनेकी आदत है, जो जीव आपके घर आ गया उसीको अपना मान लेते। कोई जानकर थोड़े ही मानता कि इस जोवको मानें कि यह मेरा है। इसको मोहकी आदत पड़ी है। जो जीव घरमें आते हैं उसीको मान बैठते हैं कि यह मेरा है। है कुछ नहीं इसका। यह देह जिसमें इतनी प्रीति बनी हुई है यह क्या आपका है ? आत्मा ज्ञानमात्र है, यह देहको छोड़कर चला जाने वाला है। इसका यह देह नहीं है। इसके साथ कर्म जगे रहते। क्या कर्म इसके हैं ? अरे कर्म जड़ हैं, अचेतन हैं, बाह्य वस्तु हैं, भले ही बन्धन है। स्वरूप निराला है, कर्म मेरे नहीं। और, ये कर्म जब बन्धे थे उसी समय इन कर्म वर्गणाओंमें अनुभाग पड़ गया था, और स्थिति पूरी होते ही अनुभाग खिर जाय, ऐसा वहां निर्णीत था। जो जब यह कर्मका उदय

Reddanyasahsrikkendra@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होता है अथवा उदरीणा हो जाय तो अनुभाग खिला और उस कालमें चूंकि आत्माके एक क्षेत्रावगाह बन्धनमें है वह सब उस अन्धेरेका यह झलक हुआ और ऐसी चोट पहुँची उसी समय उस झलकके साथ ही यह अपने स्वभावसे च्युत हुआ और अपने आपके इस झलकमें उपयोग गया। और, फिर यह इसे अपना मानने लगा। माननेका मोह जीवमें है, पर कर्म का विपाक कर्ममें है, कर्मका काम कर्ममें होने दो, अपना निरपेक्ष काम अपनेमें होने दो। ऐसा साहस अज्ञानीके नहीं बन पाता। कर्म विपाक भी मेरा नहीं है और कर्मविपाककी जो झलक है या उसकी ओर उड़ान है, जुड़ान है, लगता है, इस प्रकारका जो परिणाम है क्या वह मेरा है ? मैं तो एक अनादि अनन्त अचल ध्रुव ज्ञायकस्वरूप हूँ। स्वरूपकी दृष्टिकी जा रही है। जो मिट जायगा वह मैं नहीं। इतनी बात तो हर एकको ही समझना चाहिए। जो मिट जाय ऐसा मैंनहीं बनना चाहता। एकखोंमचा फेरकर गुजारा करनेवाले पुरुषकोकोई कहे कि हमतुमको दोदिनके लिये लखपतिबनाये देतेहैं और दो दिन बाद आपके खोमचाकी थाली वगैरह भी छूड़ा ली जायगीऔरआपको यहांसेभगा दिया जायगा तो वहकहता है कि मैं ऐसालखपतीनहींबननाचाहता। मैंतो वहरहना चाहता हूँ जोसदारह सकता हो। वहअपनी बुद्धिकेमाफिक ऐसा सोचता है ना ? तो हर एक जीव ऐसा अपने आपमें समझना चाहता है कि मैं तो वह हूँ जो सदा रह सकता हूँ ! जो मिट जाय ऐसा मैं नहीं बनना चाहता। तो इसी पद्धतिसे अपने आपमें अपना स्वरूप देखे। ये रागादिक विकार मेरे नहीं हैं। ये औपाधिक हैं, नैमित्तिक हैं, क्षणिक हैं, मैं स्वयं हूँ और ध्रुव हूँ। अपने आपके निरपेक्ष स्वरूपकी ओर उन्मुख होंगे।

अपनेमें अपनी गवेषणासे बाह्य उपद्रवका विनाश—अच्छा: जगतके ये सारे पदार्थ मेरे ज्ञानमें प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। इन सबकी जानकारी बन रही है, जानकारी बिना तो मैं कहीं रह नहीं पाता। कुछ न कुछ तो जानकारी रहेगी ही मुझमें आपमें, सभीमें जिसकी जितनी योग्यता है, जिसका जितना उपादान है, जानकारी सबके चलती है। तो ऐसा जो प्रतिभास है पदार्थकी जो झलक है, जो जानकारी है यह भी हुई और मिटी। यह तो हम आप निरन्तर जानते ही रहते हैं–सुबह जो जान रहे थे वह अब नहीं है। तो ऐसी जो जानकारी है, ऐसी जो झलक है, ऐसा जो प्रतिभास है, जिसके बिना ज्ञान रह नहीं पाता। न रह पाये ज्ञान, कुछ न कुछ प्रतिभास कर रहा, फिर भी जो प्रतिभास है जो अक्स पड़ा है, जो प्रतिबिम्ब हुआ है, जो जानकारी हुई है वह मेरा स्वरूप है क्या ? मैं तो उससे भी निराला केवल ज्ञानाकार मात्र हूँ, जैसे आप समझलो, दर्पणके आगे कोई चीज रखी, मान लो एक कबूतर खड़ा है तो कबूतरमें तो कबूतर है, कबूतरसे बाहर कबूतर नहीं गया, पर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उस कबूतरका सन्निधान पाकर दर्पणमें जो कबूतरका प्रतिबिम्ब है वह तो कबूतरकी चीज नहीं। कबूतरका निमित्त पाकर हुआ मगर प्रतिबिम्ब तो दर्पणका है। प्रतिबिम्ब तो दर्पण की चीज है, कबूतरकी चीज नहीं। तो ऐसे ही प्रतिबिम्ब भी जो दर्पणका उस कालमें परिणमन है वही प्रतिबिम्ब क्या दर्पणका स्वरूप है ? नहीं। प्रतिबिम्बसे निराला है। दर्पणका स्वरूप क्या ? स्वच्छतामात्र। यह बात झट समझमें आ जाती है क्योंकि थोड़ीदेरमें देखते हैं कि प्रतिबिम्ब न रहे, समझ गए कि वह दर्पणका स्वरूप न था। दर्पणका स्वरूप तो दर्पण की निजी स्वच्छता है। इसी प्रकार मुझ आत्माका स्वरूप स्वच्छ ज्ञानाकार। मुझ आत्मा की सहज स्वच्छतासे ज्ञान प्रकाश एक ऐसा उपादान है, एक ऐसा स्वरूप है कि जो ऐसी स्वच्छताको लिए हुए है कि जिस पर प्रतिबिम्ब पड़ सकता। प्रतिबिम्ब मैं नहीं, किन्तु जिस पर प्रतिबिम्ब पड़ सकता है, जिसमें प्रतिबिम्ब पड़नेकी योग्यता है, ऐसा जो एक ज्ञानस्वभाव है वह मैं हूँ। देखिये कहां मैं मैं चिल्ला रहे हैं लोग ? यह मैं हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं अमुक हूँ, तमुक हूँ। मैं बलवान हूँ, सुखी हूँ, दुःखी हूँ, राजा हूँ, रंक हूँ। व्यापारी हूँ, सर्विस वाला हूँ, अमुकका पिता हूँ। अरे जब अपने आपको खोजा तो यहां कुछ न रहा। भला जो कुछ मेरेमें प्रतिभास हो रहा, जानकारी हो रही, ऐसा पुरुष पर्याय वह भी मैं न रहा, किन्तु मैं तो एक ध्रुव ज्ञान स्वभाव मात्र हूं, यह समझमें आया। ऐसा भीतरमें प्रकाशमान जो यह आत्मतत्त्व है इसका ज्ञान किए बिना यह जीव संसारमें परिभ्रमण कर रहा है।

देहाध्यासका फल संसरण—देहात्मबुद्धि वश यह जीव कैसीकैसी योनियोंको भोगता, कैसे कैसे जीव दिख रहे हैं, कीड़े मकोड़े वगैरह सब ये क्या हैं ? और हमारी भी तो कभी ऐसी ही हालत थी। और न चेते तो फिर वही हाल होगा कि कीड़ा मकोड़ा जैसी पर्यायें धारण करनी पड़ेगी। तो तुम्हें ऐसा कीड़ा मकोड़ा बनते रहना मन्जूर हैं क्या ? या हमारा जन्म मरण छूट जाय और केवल मैं ज्ञानमात्र रहूं, परमात्मस्वरूप होऊं, अनन्त आनन्दमय रहूँ, यह मंजूर है ? इसका उत्तर देनेमें कुछ कठिनाई क्यों महसूस कर रहे ? जैसे कहते हैं कि ऐसा बोलने लायक मुख कहां है ? जब हमारी करनी विपरीत चल रही हैं, प्रतिकूल चल रही है तो एक ठसकके साथ मैं कैसे कहूँ कि मुझे तो केवल ज्ञान स्वरूप रहना है और कीड़ा मकोड़ाकी जैसी पर्यायोंमें जन्म मरण मुझे नहीं करना है। अगर जन्म मरण नहीं करना है तो उसका उपाय देखिये—जन्ममें होता क्या ? देह मिलता। जन्म न चाहिए, अगर जन्म न चाहिए तो मुझे देह न चाहिए यह बात पहले सामने रखें। आपको देह चाहिए और यह सोचो कि जन्म मरण न चाहिए तो यह बात कैसे हो सकती ? आपको देहमें आसक्ति है, देहमें रुचि है, देहसे प्रीति है तो उसका फल है कि जन्म उसके होते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

रहेंगे। जब कि आखिर हम ईश्वर है। अगर हम देह चाहें तो हमें हर भव में मिलते रहेंगे। जैसे कोई बड़ा बर्तन होता है और बड़े बर्तन में खिचड़ी पकाया, सबको खिला दिया और सब भी नहीं बची, इतने पर भी एक आदमी अगर आ जाय तो उसके लायक खुदेर खुदेर भर खिचड़ी तो निकल ही आयगी। जैसे कहते हैं ना कि बड़े बर्तन का तो झरावन बहुत होता है। तो हम आप सब जो एक ईश्वर स्वरुप हैं, अनन्त निधि है, अनन्त शक्ति है तो उस शक्ति का अगर इतनीखुड़बन मिलती रहें कि देह चाहें तो देह मिलती रहे तो यह भी तो हमारा एश्वर्य है, लेकिन इस एश्वर्य से लाभ नहीं है। जन्म मरण सब संकटों की जड़ है अगर जन्म मरण न चाहिए तो इस देह से प्रीति छोड़ें। यह देह मैं नही हूँ। ऐसा भाव बनायें तो जन्म मरण मिटेगा। यह देह मैं हुं भाव रहेगातो जन्म मरण बराबर चलेगा। ठीक समझ करके एक दृष्टि में यह बात समा जाना चाहिए कि मैंकेवल ज्ञानस्वच्छता मात्र हूं अन्य कुछ मैं नहीं। सारे संकट मोह से हो रहे हैं।

अन्तरमें उलझनको समझने वालेमें सुलझनेकी शक्यता—देखो भाई कोई मोह पर वस्तु में नहीं कर सकता। यह अंगुली अगर कुछ टेढ़ा मेढ़ी हो गई, कहीं अंगूठा तो नहीं टेढा हो गया। जो जैसा है उसका उसमें ही काम बनेगा, उससे बाहर न बनेगा। तो मैं आत्मा हूं, तो मेरा जो कुछ भी काम बनेगा—मोह करें तो, ज्ञान करे तो शान्ति करें तो, दुःखी हों तो, सुखी हो तो, जो कुछ भी मेरेमें बात होगी वह मेरे प्रदेशसे बाहर नहीं हो सकती। तो कोई भी पुरुष कोई भी जीव पुत्रमें, मित्रमें, स्त्रीमें, घरमें, धनमें किसीमें मोह करनेमें समर्थ है ही नहीं। हो ही नहीं सकता। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है। तो लोग कहते क्यों हैं ऐसा ? कहते यों हैं कि पुत्र, मित्र, धन धान्य आदिकको विषय बनाकर, उसकी जानकारी बना करके यहां जो कुछ हमने समझा है उसमें हम मोहका परिणाम बनाते हैं। यहाँ बनाया मोहका परिणाम ? पुत्रमें कोई मोह नहीं कर सकता। यहां बनाता है यह जीव प्रेम। बाहरमें कोई प्रेम नहीं करता। तो बाहरमें हम कुछ कर सकते हैं नहीं और बात हुई समझमें कि हम बाहरमें कुछ नहीं कर पाते तो भी एक मार्ग मिल गया। हम अपनेमें करते हैं हम अपने घरमें अपनी उलझन बनाते हैं तो इसी घरमें बैठे-बैठे हम उलझन भी बना सकते हैं। अगर हमने विकल्पकी उलझन बना रखी है तो हम सुलझनभी बना सकते हैं। यह काम करनेको पड़ा है, इस जीवनमें, बाकी सब बेकार काम है। पारस्थिति वश करना पड़ता है, ऐसा ज्ञानमें रखें। इन बाहरी पदार्थोंको महत्व मत दीजिए कि मेरा जीवन ऐसे काम बना देनेके लिये है मेरा जीवन इसकी बात उठा देनेके लिए है। इन बाह्य वस्तुओंके लिए महत्व मत दें, महत्व दें इसको कि मेरा जीवन इसलिए है कि मैं आत्माके स्वरूपको पहचानूं और उस ही स्वरूपको देख देखकर उसमें ही मग्न रहूँ, इसी

http://sahjanandvarnishastra.org/

में तृप्त रहूँ, इसीमें संतुष्ट रहूँ इसके लिए यह मेरा मनुष्य जोवन है। अरे जहां अनन्त भव बिता डाला, विषयोंमें, कषायोंमें, मोहमें, एक भवको अगर इन विषय कषायोंमें न बितायें तो क्या कोई टोटा पड़ता है ? एक यह भव ज्ञान ध्यानमें बिता डालें। एक इस ही भवमें मोह न कीजिए तो आनन्द मिल जायगा। मार्ग मिल जायगा। और, एक आत्मतत्त्वके निरखनेकी एक अद्भुत प्रसन्नता प्राप्त हो जायगी। इससे भाई अगर आनन्द चाहिते हो तो उसका उपाय हैं सम्यग्ज्ञान। सम्यग्ज्ञानका उपाय बताता है-यह स्याद्वाद शासन अनेकान्त-वाद इस स्याद्वादशासनको ठीक समझिये और वस्तुके स्वरूपका ठीक परिचय प्राप्त कीजिए और अपने आपके जीवन को सफल कीजिये।

स्याद्वादसे सकल पक्षोंका निर्णय कर निष्पक्ष ज्ञानस्वरूप रहनेमें कल्याण—आत्मा की भलाई सम्यग्ज्ञानमें है। जब तक मिथ्याज्ञान होगा तब तक जीव अशान्त रहेगा, कर्म-बन्धन होगा और विपाक समयमें यह दुःखी रहेगा। जन्म मरण होते रहेंगे। जहां मिथ्या-ज्ञान दूर हुआ वहां जीवको सम्यकबोध होता है। तो सम्यग्ज्ञान क्या है ? सम्यग्ज्ञान है प्रमाण। सभी नयोंमें सब कुछ परखिये-और यथावत् वस्तुका ज्ञान करना सो प्रमाण है। सम्यक बोध प्रकाणसे भी होता, नयसे भी होता, किन्तु प्रमाण आवश्यक है। प्रमाणसे जाने गए पदार्थमें फिर किसी भी नयसे ज्ञान करें, उसमें हानि नहीं, किन्तु कोई प्रमाणको तो मानते ही न हों, और किसी नयका एकान्त हो तो उसे मिथ्याज्ञान कहते हैं। प्रमाणसे परखो सब बातोंका हल निकलेगा, फिर प्रयोजनवश किसी भी नयको मुख्य करके समझें, यह तो है एक सम्यक्बोधकी पद्धति, किन्तु प्रमाणसे स्वीकार किए बिना प्रमाणके विषयको माने बिना केवल नयका एकान्तवाद हो तो उसे मिथ्या कहते हैं। और, वह स्याद्वादसे दूर है। जैसे प्रत्येक पदार्थ द्रव्यपर्यायात्मक है। केवल द्रव्यरूप नहीं, केवल पर्यायरूप नहीं, केवल द्रव्यरूप मानने वाले हैं वेदान्ती केवल पर्यायरूप मानने वाले हैं बौद्ध। जीवके बारेमें देखो-एक है कि अनेक? स्वरुप तो एकहै और व्यक्ति अनेक हैं। स्वरुपतः एकहै। ऐसी बात सुनकर एकान्त मानने वाले हो गए अद्वैत एक वादी, सामान्याद्वैतवादी और अनेक हैंऐसा ही सुनकर अनेकता में बह गए 'ऐसे है क्षणिक वादो। जो एक आत्मामें भी अनेकपन का परिचय करते हैं। किसी भी बात को लोग स्याद्वाद से सम्मत करलें। कोई सा भी प्रश्न रखें सामने नयसे उसकी परख बनावें, जैसे बतलाओ कि जब जो होन है तब वहाँ वही होता है, उसमें कोई फेर फार नहीं होता है और उस पदार्थ की योग्यता से वह होता चला जाता हैं। यह बात सही है यामिथ्या? सही है किस नयसे? ज्ञाप्तिनयसे ज्ञाप्ति नयका मतलब है प्रभु ने सर्वज्ञ ने जाना, विशिष्ट ज्ञानियोने जाना, जब जो होगा प्रत्यय वह ज्ञानमें आ गया। ज्ञान तो निरपराध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है जो होगा सत् वह ज्ञानमें झलक गया। इस दृष्टि से देखें तो जब जो होना है तब वही होता है। और उसमें फेर फार नहीं। माने जिस प्रकार जो होना है, जो भी हो वह ज्ञान में आया है तो जो ज्ञान में आया है सो अब इस ओर से हम परखें तो अब ज्ञप्तिनय से तो यह विधान हैं और उत्पत्ति नय से क्या विधान है उत्पत्तिनय का यह विधान है कि प्रत्येक पदार्थ जब भी देखा तब एक परिणमन युक्त है, उसमें है एक वर्तमान पर्याय और, वह द्रव्य पूरा वर्तमान पर्याय में है उस काल में। अब वह पदार्थ यदि अशुद्ध उपादान वाला है तो वह जैसा सांनध्य पायगा, परसंग पायगा उसके अनुरुप वह अपने आप में विकार परिणमन करने लगेगा। है विकार परिणमन उसी का उसी में परिणमन मगर यह विकार परिणमन यदि परसंग बिना हो तो वह स्वभाव बन जायगा।

दृष्टान्तपूर्वक निमित्तनैमित्तकभाव होनेपर भी वस्तुस्वातन्त्र्यका दर्शन—एक मोटा दृष्टान्त लो, रेलगाड़ी जाती. इंजन जाता, इंजनका काम तो केवल जाना जाना है। उसका काम मुड़ना नहीं है। किस पटरी पर जाय, किस पर न जाय, और न ऐसा कोई इंजनमें पुर्जा है कि इंजन अपने आप उस पुर्जेको मोड़कर पटरी बदल दे। इस तरफ नहीं जाना, इस तरफ जाना। इंजनका काम तो केवल जाना ही जाना है। इंजनकी ओरसे तो केवल जाना जाना ही काम है और वह अपने काममें स्वतंत्र है। अब पैट मैन जिस दिशामें इंजन को ले जाना चाहता है वह पटरी बदलता है। इंजन चल रहा है। उसका काम केवल जाना है। पटरी बदलना उसका काम नहीं, केवल पटरी बदलनेका निमित्त पाकर इंजन अब इस ओर चला है, तो इंजनकी ओरसे देखें तो गमनमें स्वतंत्र है। पटरी गमन नहीं कराता। पटरीने उसका गमन नहीं कराया। यह एक दृष्टान्त है। जितने अंशमें दिया गया सो समझना, पर पटरीके बदलनेका सन्निधान पाकर जिस जिस तरह पटरी है उस तरहसे इँजन चल गया। इसमें इंजनको परतंत्रता नहीं आयी, पर इस प्रकारका जो जुड़ाव है वह प्रसंग बिना नहीं होता। इसीप्रकार द्रव्यका अपना एक व्रत है परिणमन, परिणमन एक समय भी रुकता नहीं। प्रति समय परिणमन होता है। उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत् परिणमनका व्रत लिए हुए है पदार्थ। चलता रहता है। अब जो पदार्थ शुद्ध है, जैसे जिस इंजनको सीधा ही जाना है, बदलनेका काम ही नहीं, उसको कहां बदलदा। जैसे जो सीधी पर्याय है, स्वभावभाव है, विकास है, शुद्ध पदार्थ है वह अपने स्वभावके अनुरूप परिणमता चला जायगा। वहां विषमताका काम नहीं, किन्तु जो अशुद्ध उपादान है जो अपनी विषमतायें बनाता है। विभिन्न प्रकारके परिणमन विकार बनाता है तो वह विकार परिणमन अनुकूल निमित्तके सन्निधानमें होता है। प्रसंग बिना, अनुकूल निमित्त सन्निधान बिना वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विकार परिणाम नहीं होता। इतना होने पर भी कभी जीव पर रंच नहीं हो गया परका परिणमन या जीवका परमें परिणमन, परिणमन, जीव तो अपनी परिणमन शक्तिसे परिणमता ही चला जा रहा। बस जैसा निमित्त योग हुआ उसमें उस अनुरूप अपना विकार परिणमन कर लिया।

वस्तुस्वातन्त्र्य व निमित्तनैमित्तिकभावके परिचयसे स्वभाव दर्शनकी प्रेरणा—वस्तुस्वातंत्र्य व निमित्तनैमित्तिकभावकी समर्थता निरखनेपर अपनेको क्या शिक्षा मिलती है कि अहो मेरा स्वरूप तो टंकोत्कीर्ण वत् निश्चल ज्ञायकस्वभाव है। ज्ञानमात्र है। मेरे स्वरूपमें विकार नहीं। मेरे स्वरूपमें कष्ट नहीं। मेरे स्वरूपमें अधूरापन नहीं, जो है सो है, और यह अपने ही व्रतसे अपनेमें अपनी परिणति बनाये चला जा रहा है, किन्तु जो विरुद्ध परिणाम आया, विकार परिणाम आया सो वह उपाधि संग पाकर आया। जैसे सामने स्पष्ट है कि दर्पण है उस दर्पणमें जो लाल पीला प्रतिबिम्ब आया सो आया वह दर्पणमें, उस कालमें दर्पण उस रूप परिणमा है। किन्तु उसका वह परिणमन विलक्षण है। न परिणमा होकर भी परिणमा है। लाल पीले स्वरूपमें न बनकर भी लाल पीला दर्पण हो रहा है। तो जैसे बाहरी वस्तु प्रतिविम्बित है दर्पणमें, दर्पण अचेतन है, वह उसको ग्रहण नहीं करता, अथवा जैसे दर्पणके पीछे लाल मसाला लगा है वह दर्पण प्रतिबिम्बको कैसे ग्रहण कर लेता है? और, जिस काचमें लाल मसाल नहीं लगा है वह कांच भी यद्यपि प्रतिबिम्ब तो करता है मगर उसका प्रतिबिम्ब इतना फीका होता है कि मानो उस पर प्रतिबिम्ब आया ही न हो। इसी प्रकार जीव भी विविध प्रकारके अशुद्ध होते हैं। कोई ऐसे अशुद्ध है कि ये कर्म विपाक को जो कि इसमें झलका है उसको दृढ़तासे पकड़ता है। कोई इतना ही अशुद्ध है कि कर्म विपाक झलका और उपयोगमात्र हुआ। उसे ग्रहण नहीं करता। कोई ऐसा अशुद्ध है कि जो उपयोग भी उस पर नहीं ले जाता, अबुद्धि पूर्वक उसका प्रतिबिम्ब है वह इसको उपयोग में नहीं लेता। जैसे ऊंची श्रेणीमें पहुंचे हुए मुनिराज। तो इस तरह प्रमाण द्वारा हम पदार्थका स्वरूप ठीक निर्णीत करले। काम करना है क्या? स्वभावदर्शनका। इतनी बात सदा चित्तमें रहना चाहिए, अगर मेरे आत्मानुभवमें बाधा आती है किसी प्रसंगमें तो वह प्रसंग हेय है। मेरे आत्महितमें बाधा, रागद्वेषका अवसर आता है तो वह धर्म चर्चा भी हमारे लिए त्याज्य है। क्या करना? जिसमें अपना आत्महित होता हो। कषाय जगती हो उसमें हमको लाभ क्या? आत्महित तो समता भावमें है। प्रभुके शासनका सही–सही निर्णय बनायें जिससे कि आत्मबोध हो और वहां हमको केवल अपने ज्ञानस्वभावको ग्रहण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

करनेकी बात रहे। बस मैं ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानस्वभावरूपमें निरखते जावो,

http://www.jainkosh.org

अनुभव करते जावो तो कोई समय ऐसा एक अपूर्व आता है कि ज्ञानमें वह ज्ञानस्वरूप–मात्र ज्ञय रहता है और उस समय इसको जो उसका सम्वेदन है वही एक स्वाधीन आनन्द है। वह आनन्द एक समताका आनन्द है। ऐसे ही आनन्दमें सामर्थ्य है कि भव भवके बांधे हुए कर्म अपने आप खिर जाते हैं। कर्म विपाक तो महिमान है। इसको हम आदर दे तो वह हममें घर करने लगा, करता ही है, करते ही आये, हम उनका आदर न रखें तो वे महिमान कब तक मेरे घरमें टिक पायेंगे ? वे तो अपने आप भागते चले जायेंगे।

ज्ञानमात्र आत्मका पात्र होनेका अनुरोध—भावुक भाव्य की सरदताका परिहार करो। जो भाव्यकानि मत्त है उसे कहते हैभावक, औरभाव्यक्या होता है? आत्मामें जो उसप्रकारकी अनुवृत्ति हुई और एक झाँकी और उपयोग का उस ओर लगना शुद्ध स्वभाव से च्युत होना, ज्ञान का अज्ञान रूप से परिणमना यह सब है अन्य कोई ज्ञान करता है, केवल जानन हार मात्र रहता है तो वह कहलाता है ज्ञान का ज्ञान रूप से परिणमन। और, इसके विपरिन अगर कुछ भी यहाँ तरंग विकल्प विचार कुछ भी चलता है तो यह कहलाता है ज्ञान का अज्ञान रूप से परिणमन। तो ज्ञान जब ज्ञान रूपसे परिणमें बस वही तो मोक्ष मार्ग है। अब ऐसा बनने के लिए हम अनादि दूषित आत्माओं को आचार्य संतों ने व्यवहार व्यवस्था बतायी है तुम त्याग करो, संयम करो कुछ अपने आपकी ओर ध्यान दो, चिन्तन करो, जाप सामायिक, स्वाध्याय, सब प्रकार के व्यवहार मार्ग बताये, किस लिए बताय, अरे उसमें उपयोग लगायेंगे वह तो अवसर मिलेगा कि इस आत्मा कीसुध बनेगी और ज्ञान ज्ञान रूप से परिणमन का काम कर सकेगा। इसके लिए व्यवहार मार्ग है, और साध्य तो वह निश्चय तत्व है भूतार्थ का आश्रय और प्रमाण से परखना प्रमाण से जो पदार्थ का अधिगम होता है उससे फिर हमको मार्ग मिलता है एकान्त वाद से इसका मार्ग नहीं मिलता, स्पष्ट ज्ञान भी नहीं होता। आत्मा के स्वभाव की बराबर धुन रहे, यह ज्ञान संसारार्थ बिना रहे, यह ज्ञान स्वंय भी सुध लेता रहे। यह ज्ञान एक बहुत स्वाधीन संतोष पाया करे। इस प्रकार की पद्धति : इसको अपनी कदम रखनीं चाहिए। तो प्रमाण और नय दोनों के द्वाए वस्तु का अधिगम होता है' और ऐसा परिचय पाकर फिर करे क्या? धुन बने अपने आप में रमने की। इसी को कहते हैं चारित्र। ऐसा पाने के लिए कोई विरूद्ध बर्ताव करे तो पा लेगा क्या? कोई हिंसा कर रहा, झूठ बोल रहा, चोरी कर रहा, कुशील सेवन कर रहा, लालच कर रहा तो क्या वह आत्मा में मग्न हो सकेगा ? अरे जो आत्मा मेंमग्न होने की वाञ्छा रखता है वह तो पाप को छोड़कर आगे बढताहै पाप को छोड़ना इसीके मायनेहै व्रत। तो यह व्रत आत्मसाधक बना इसका सहयोगी बना। इसमें मेरे को अवसर दिया कि मैं अपने आत्मा की सुध करूँ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मतत्व में मग्न होउ यह जब बीतती है खुद पर तब उसका परिचय सही होता है।

चरणानुयोगका विराधक होनेमें ज्ञानके जीवनकी शुष्कता—बाहर जितने हमको परमेष्ठीभक्ति, सत्संग, गुरू उपासना और जाप सामायिक, ध्यान संयम आदिक जो जो कुछ बात कही गई समय समय पर तपश्चरण, अनशन आदिक जो जो भी व्रत कहे गए इन सब से हम दूर रहें और केवल हम ज्ञान–ज्ञानकी बात करें तो वह ऐसा शुष्क हो जाता है कि इस ज्ञानको फिर कोई डर नहीं रहता है। चाहे कुछ भी भीतर गुजर रहा हो, उसकी इसे कुछ भी आशंका ही नही रहती है। जैसेकि पीपलका बर्तन बनाने वाले की दुकानमें कोई कबूतर रहता हो उस कबूतरको अब इसकी क्या शँका है ? एक आदत बन गई है, सुनता रहता है, ठन ठनकी आवाज। वह तो नहीं उड़ पाता। तो ऐसे ही इस अपने व्यवहार मार्गसे अगर पतित हो जाय। जो चरणानुयोगकी विधिमें बताया है उससे हम स्थिगित हो जायें तो हमारा यह ज्ञान कब तक काम देगा ? हमारी इस स्थितिमें केवल ज्ञानका आश्रय लें, अन्य व्यवहारका आश्रय मत लें, ऐसा तो बड़े—बड़े साधु जन ही कर पाते है। ऐसे गृहस्थजनोंको तो जहाँ इतने रोजिगार करते हैं ना, जैसे तैसे धनोपार्जन करते हैं, कितने–कितने विकल्प बनाते है, ऐसे अनेक विकल्पोंमें रहने वाले गृहस्थ केवल ऐक थोड़े ज्ञानकी कथनी चर्चा मुखसे बोलने मात्रमे अपनी पवित्रता बना सके यह तो बड़ा कठिन मालूम होता है, उन्हें तो उपयोग लगाना चाहिए शुभकी ओर, और ज्ञानमें तो ऐसा ही है कि यह शुभभाव है यह भी हेय है मगर शुभ भावमें चलकर उसे हेय बनाकर आगे बढ़ तो उसमें तो सफलता है ? और पहलेसे ही अशुभभाव भी हेय है, शुभ भाव भी हेय हैं, दोनोंको छोड़ दें। शुभको छोड़नेमें तो कोई हिम्मत नहीं है। अशुभ छूट नही पाता, तो क्या स्थिति हो जाती है ? बड़ी विडम्बना। अपने ज्ञानको सम्हाले, अपना समाधान अपनेमे लावें, आगे–आगेकी दृष्टि बनावें, आगे आगे बढ़े चले जावें और अपने आपके उस सहज ज्ञान स्वभावका एक अनुभव बने, धुन बनावें वैसा ख्याल तो रहता है, प्रतीतिमें तो रहता है कि मेरेको अपने आत्मस्वरूपमें रमण करना और कुछ चेष्टायें ऐसी हो जाती, कुछ परिणतियाँ ऐसी हो जाती कि हम उसमें अमल नहीं कर पाते, तो इसका स्मरण भी एक बहुत बड़ा सहायक होता है हमको उस मार्गमें पहुंचनेमें।

नयोंमें अशयकी पहिचानसे समीचीनताकी निर्विवादता—द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिकनय इन नयोंको विषय करने वाला जो नय है वह नय असत्य नहीं हो सकता, क्योंकि द्रव्य पर्यायात्मक वस्तुका स्वरूप है। वस्तुका द्रव्यांश्य, उसका वर्णन किया निश्चयने, वस्तुका पर्यायाँश उसका वर्णन किया व्यवहारने, यहां तक तो मिथ्याकी बात नहीं, किन्तु

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जहां उपचार बोल दिया जाता है। उपचार कथनमें एक वस्तु दूसरेका स्वामी है। एक पदार्थ दूसरेका कर्ता है, एक पदार्थ दूसरेका भोक्ता है, एक पदार्थ दूसरे रूप परिणम जाता है आदिक रूपसे जो वर्णन चलता है, उसका अगर भाव ठींक सही ध्यानमें लावें कि बोलने में आये नही, किन्तु जैसा उपचार कहता वैसा ही ठीक सीधा समझ ले तो यह मिथ्या है। जैसे कहा घीका डिब्बा उठा लावो तो वह पुरुष जाता है और शीघ्र ही घींका डिब्बा उठा लाता है। वहां कहने वाला भी समझता है और लाने वाला भी समझता है और वहाँ बैठा कोई अज्ञानी पुरुष यह समझे कि इसने घीका डिब्बा कहा तो जैसे टीनका डिब्बा कहते, चीनी मिट्टीका डिब्बा होता, इसी तरह घीका डिब्बाभी होता होगा, ऐसाकोई अज्ञानीसमझले तो उसकी समझ मिथ्या हैं। भावोंमें जैसे स्तुतियोंका वर्णन बहुत आता है, अंजनसे चोरतर गये पापी महा अधम। हे भगवन ! आपने अंजन जैसे कितने ही पतितोंको तार दिया। ऐसा सुनकर अगर कोई पुरुष ऐसा ही समझे कि कोई अँजन नामका चोर था और भगवान आये और हाथ पकड़कर ले गए मोक्षमें, यों तार दिया, यह कोई समझें तो वह मिथ्या है। और, इसे यो समझें कि अंजन चोरने भगवानकी भक्ति को, भगवानके गुणोंका स्मरण किया और उस स्मरण करते हुए में अपने आत्माकी सुध लिया, अपने आत्माकी ओर लगे और उसमें अपना उद्धार पा लिया तो विषय होनेके कारण, गुणस्मरणका विषय, भक्तिका विषय होनेके कारण इस प्रकार कहा गया है ऐसा कोई सही समझे तो उसको ऐसा बोलनेमें क्या दोष हैं ? जितने प्रवर्तन होते है वे भावोंसे होते हैं और भावोसे ही सारी चेष्टायें होती हैं। इसलिए चेष्टाओंको निरखकर भावोंका अनुमान किय जाता है, मगर चेष्टा या वाणी को देखकर कैसा ही भाव हो, ऐसा नियम नहीं बनाया जाता। अवसर करके ऐसा लगता है मगर नियम नहीं बनता, चेष्टा कुछ है आशय कुछ है।

संसारमें संसरणका साधन शरीराध्यास—हम लोग जो संसारमें जन्म मरण करते चले जा रहे है, अचानक कुछ समागम मिल गए है, कुछ लोग मिल गए हैं, कुछ वैभव मिल गया है, यह कितने दिन ठहरनेका ? बाहरी पदार्थ हैं, ये हमारे प्रभु नहीं हैं। इनसे मेरा कोई भविष्य निर्भर नहीं है। यहांके लोगो को निरखकर कुछ से कुछ विकल बनाना, कषाय बनाना यह तो अपना घात करना है, यह सब माया जाल है' ये कोई मेरे प्रभु नही है, कोई मेरे ईश्वर नही है। मेरेको तो अपने आपमें आत्महित करना है। वह दृष्टि जगाना है, ऐसा चलकर जो अपने आपमें अपना हित करनेका प्रयोग करने लगे उसका तो भला है, नहीं तो एक अच्छा समागम पाया, उसको भी यों ही व्यर्थ खो दिया, यह स्थिति रहती है। जो कुछ हमारी दुर्गति हो रही वह किस प्रकार हो रही, क्या हो रही, किस ढंगसे बात चल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रही। तो अब इस सम्बन्ध की बात नहीं बतलाते। एक-एक जीवकी बात लें। जीवने मूल में गल्ती की, अध्यास किया अध्याससे हुआ अन्यवसान। अध्यास होनेसे इसने किया उसका ग्रहण, अटपट रूप माना और आत्मरूप, आत्मसात्कार करनेसे फ़िर यह अपनी बुरी चेष्टायें करने लगा और उपयोगको बहुत बाहर-बाहर घुमाने लगा और इस तरह यह परिपाटी चलती हैं। अध्यास किया। आत्मा और कर्ममें एकत्वका अभिप्राय होनेका नाम अध्यास है। यहां दो पदार्थ हैं—स्वतंत्र दो चीजें है-कर्म और जीव। पूर्वबद्ध कर्म भी अपनी स्वतंत्रतासे बस रहे हैं। निमित्त नैमित्तिक भाव हो सो साथ नही छूटता, मगर परिणमनकी दृष्टिसे कर्म अपने आपमें स्वतंत्रतासे बस रहे हैं। जीव भी अपने आपके स्वरूपमें अपने आपकी कुछ भी परिणति करता हुआ स्वतंत्रतासे चल रहा है, उसका अस्तित्त्व पृथक् है, इसका अस्तित्त्व पृथक है। पूर्वबद्ध कर्म जब विपाकक लमें आता है तो यहाँ आत्मामे उनका प्रतिफलन हुआ, वेदन हुआ और झलक हुई, झाकी हुई, कुछ समझ गया तब क्या किया इस आत्माने, इस अशुद्ध जीवने अपने आपमें और कर्मने कर्ममें कर्म किया। एक प्रतिबिम्बन हुआ, उसमें एकत्वका आशय कर दिया। यह एक ऐसा विवरण है कि किसी मोही अज्ञानीको यह विवरण न आयगा और न उसके ऐसे लक्ष्यमें आयगा कि कर्म यह है, मैं यह हूँ और मैंने इस कर्मके साथ एकत्व अपनाया है, इसकी सुध नहीं होती। वह तो ऐसा एकत्व निरत है कि जैसे घोड़ा और घोड़ेके रूपमें भेद नहीं किया जा सकता, घोड़ा और घोड़ेके आकारमें भेद नहीं किया जा सकता, इसीप्रकारसे अज्ञानी जीवमें आत्मा और कर्ममें भेद न कर पानेकी बात बनी हुई है। ऐसा आत्मा और कर्मके एकत्वका अभिप्राय है, लेकिन यह तो है अध्यास, इस अध्याससे क्या हुआ? क्या इसका बना? अध्यवसान। यह मैं हूँ, यह आशय और उसका व्यक्त रूप यह ही मैं हूँ, जो झलक है रागद्वेष, क्रोध, मान, माया लोभ और प्रतिविम्बत है यह मैं हूँ, यह हुआ अध्यवसान। अध्यवसानके बाद क्या हुआ? रागद्वेष विपाक। यह रागद्वेष विपाक हमें तब मालूम पड़ता है जब हम किसी आश्रयभूत पदार्थको विषयमें लेते हैं तब इसका व्यक्त रूप बनता है।

अन्तर्मेदावबोधसे भविष्यकी उज्ज्वलता—हमको मूल में क्या करना? ओह यह कर्मलीला है, यह कर्म-विपाक है,मैं तो ज्ञाता ही रहूँगा। में इसको ग्रहण नहीं करता हूँ। मैं मैं तो अपने ज्ञान स्वरूप मात्र हूँ। इस प्रकार विकार से हटकर, कर्मविपाक से हटकर इस माया जाल से अपने उपयोग को हटाकर माया का तिरस्कार करके एक अपने ज्ञानस्वरुप का आदर करें तो यह भावक अपने आप निवृत्त हो जाता है। यों अपने आप में एक अन्तज्ञान बनाना, अन्तर्दृष्टि करना, जिसके प्रताप से परमात्म-स्वरुप से मिलन होताहैं। यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है अंतः विशुद्ध स्वाधीन आनन्दका प्रकरण। और, यह प्राप्त होता है कब ? जब हम प्रमाण से वस्तु स्वरूपका सही निर्णय कर निःशंक हो जाते हैं। कोई शंका, कोई सन्देह, कोई शल्य कोई अन्धेरा वहां नहीं ठहर पाता, ऐसा यह एक प्रमाणका प्रताप है। हमको किसका छेदन करना है ? कर्म विपाकका। ये क्रोध, मान, माया, लोभ एक अचेतन भाव, और इनका निमित्त पाकर होने वाले जीवमें चेतन क्रोध, चेतन मान, चेतन माया, चेतन लोभ याने एक यह मैं हूँ, इस प्रकार मानना और फिर उसके अनुरूप अपनी वृत्ति बनना, विकल्प होना, ऐसा जो भाव हैं, इसमें भेद विज्ञान करे, सन्देह निवारण करे, पदार्थ अलग है, यह अलग है, चित् अचित् का भी संग्रह विग्रह करदे, यह कर्मविपाक कर्मका है और इसे जो हम अपनाते हैं यह अजीबकी वृत्ति है, क्यों अपनाया जाय ? वह तो पर पदार्थ है। पर घरमें तो कोई नहीं घुसता। जो कोई जायगा वह अपने घरमें जायगा। सो जब वहां व्यवहारमें भी व्यवहार ढंगसे लोग पर घरमें विश्वास नहीं करते, पर घरमें बिश्वास नहीं पाते, पर घरमें गमन नहीं किया करते, पर घरमें निवास नहीं बनाते, तो मैं आत्मा क्यों इस पर घरमें, इस प्रेम लगावमें निवास करूं ? मैं तो अपने ज्ञानरूप रहूँगा। प्रतिज्ञा कहो, सँकल्प कहो, निर्णय कहो, ऊंचा रखना चाहिए। ऊंचा निर्णय हो जाय, ऊंचा उद्देश्य हो जाय, ऊंचा भाव हो जाय तो हम इसमें कुछ अब भी सफल होंगे और जल्दी उसे पा भी लेंगे। ऐसा ज्ञान जिसके प्रकट हुआ है, यह पुरुष परिस्थितिवश कर्मविपाकवश किसी बाध्य व्यवसाय, व्यापार बाह्यवृत्तिमें भी पहुंच रहा हो, लग रहा हो तो भी वह प्रतीति नहीं छोड़ता, अपने आपके स्वरूपकी। मैं तो यह ही हूँ। करना पड़ रहा है। स्थिति है उसकी ऐसी, पर मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। मेरा काम तो ज्ञानरूपसे परिणमना है। मेरा परमपद अपने आपमें निस्तरंग होकरके सदाके लिए निराकुल शान्त पवित्र बनना, यह मेरा काम हैं। यह करना पड़ रहा। गुजारा नहीं चलता। शरीर ऐसा ही है। घरमें रहना पड़ता, भूख प्यास लगती है, उसके लिए सारे काम करने होते हैं, मगर ये सब काम मेरे करनेके लिए नहीं हैं। ये तो सब परिस्थितिवश करने पड़ रहे हैं। मेरा नर जन्म तो इसलिए है कि मैं अपने आत्मामें अपने ज्ञानको बसा कर निस्तरंग होनेका उपाय पाऊं। एक मुनीम जैसी वृत्ति रखें। सेठके यहां मुनीम काम करता है, मगर मुनीमको ममता नहीं है कि यह मेरी चीज है। रक्षा पूरी करता और उसके लिए वह इतना बड़ा परिश्रम करता, योगदान देता है, लेकिन भीतरमें उसका आशय यह है कि यह मेरा नहीं है। इसी प्रकार जो ज्ञानी पुरुष है वह बाह्य परिवार समागम वैभव, कमाई अन्य अन्य बातें इनमें रहते हुए भी वह जानता है कि ये मेरे कुछ नहीं। मेरा तो मात्र एक यह ज्ञान भाव है। ज्ञानस्वरूप यह ही मेरा सर्वस्व है, ऐसा

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

उसकी प्रतीतिमें रहता है। यहां इतनी धुन हो, दृष्टि हो तो हम अपना भविष्य उत्तम पायेंगे।

आत्महित साधना करके दुर्लभ नरभवसे अलौकिक लाभ लेनेका अनुरोध—यह मानुष पर्याय समझो अनादि कालसे रूलते रूलते अब बड़ी दुर्लभतासे प्राप्त हुआ। उस भव में एक यही विचार होना चाहिए कि मेरे आत्माका हित कैसे हो? दुनियामें जो लोग दिखते हैं, जिनका समागम हुआ, ये तो सब मायास्वरूप हैं, ये मेरे कोई सर्वस्व नहीं हैं। इन कुछ जीवोंके पीछे मित्र बन्धु या जिसे अपना कुछ माना हो, उनके पीछे अपना यह दुर्लभ मानव जीवन खो देना तह कितनी बड़ी मूढ़ता की बात है। आत्महितका अवसर अब न छोड़ें, आत्महित किसमें है? आत्महित स्वभावके आश्रयमें है। अपने आपका जो एक विशुद्ध जीवत्वभाव है, जो कि हम बुद्धि युक्ति अनुभूतिके द्वारा परखते हैं, भले ही पर्याय हमारी विकारमें चल रही है, विकारमें स्थिति चलते हुएमें भी हम जब विशिष्ट ज्ञानबल को जोड़ते हैं तो हम भीतरसे स्वभावकी परख भी कर लेते हैं। जैसे पानी गर्म हुआ, उस गर्म पानीमें अगर हम पूछे कि बताओ इस पानीका स्वभाव क्या है? तो गर्म कोई न कहेगा। गर्म होते हुए भी स्वभाव ठंढाका ही कहा जायगा। अगर स्वभाव ठंढा है इतनी ही बात सुनकर कोई पानीको पी डाले तो उसकी जीभ जलेगी। और तो पर्यायमें उस पर्यायकी बात है। स्वभाव अनादि अनन्त अहेतुक ध्रुव है, उसके परिज्ञानकी आवश्यकता है। जैसे जब ज्ञानकी उपासना करनेका उपदेश दिया तो प्रश्न हुआ कि ज्ञानभाव यह आत्मा है ही, उसकी उपासनाका उपदेश क्यों दिया जाता? ऐसा है ज्ञानमय, लेकिन जब अपने ज्ञानमय स्वरूप पर दृष्टि तो नहीं दी गई है इसलिए उपासनाका उपदेश किया जाता है। अब देखिये—हम आपपर विपदा है तो एक यह विपदा है कि हमारा उपयोग बाहरीपदार्थों में जाता है और रमता है और उस समय हम अपने आत्माकी सुध भूलते हैं, ऐसी जो स्थिति हम पर गुजरती है तब उसे छोड़कर आपत्ति हम कुछ नहीं कह सकते। जैसे किसी पुरुषको फांसी लग रही हो तो वह जानता है कि अब फांसी लगेगी, मरेंगे और उससे कोई कहे कि बोलो तुम्हें क्या खाना है? रसगुल्ले खाना है, या पेड़े खाना है या क्या करना है? तो उसको कोई इच्छा नही होती। क्या क्या करे कुछ खाकर, आखिर अभी मरना ही है। तो जिसे मरणका भय हो उसे इन विषयोंमें मौज नहीं लगती, इसी तरह ज्ञानी पुरुषको इस तरहका मान है कि मेरा उपयोग बाहरी पदार्थोंमें क्यों जाता है? मेरा वह समय व्यर्थ गया कि बाह्य पदार्थोंमें उपयोग जाय, उसमें रमे। उसकी चिन्ता करें, उसकी धुनमें रहें और अपने आत्माकी सुध भूल जायें, ऐसा जो एक विचित्र अन्धकार हुआ, यह सबसे बड़ी भारी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विपत्ति है। चित्तमें यह भाव होना चाहिए कि मेरा बाह्य पदार्थों में उपयोग मत रमें और अविकारी अपने आपके उस विशुद्ध ज्ञान स्वरूपकी दृष्टि बना सकूं। मैं अन्दरमें यह धुन बना सकूं कि ऐ प्रियतम ज्ञान, तू ज्ञानरूप हो परिणम। अज्ञानरूपसे मत परिणम।

http://www.jainkosh.org

विद्याभास व प्रकृतिविपाकका विश्लेषण—देखो एक बहुत स्पष्ट और सरल भेद विज्ञान पानेके लिए कूञ्जी रखी जा रही है। देखो जिसे कहते हैं हम विकार, वह विकार दो जगह है—कर्ममें है और जीवमें है। ऐसा नहीं है कि कर्ममें विकार न हो और जीवमें विकार आता हो, इसी कारण समयसारमें चेतन और अचेतन दो प्रकारके मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग विकार ये सब दो दो प्रकारके कहे गए हैं। कर्मकी परिणति क्या है? जिस कालमें कर्मबन्धन हुआ था उस ही कालमें कर्ममें अनुभाग प्रकृति, स्थिति, प्रदेश सब निश्चित हो गये थे। उसमें कितना अनुभाग हुआ। कैसी कर्म प्रकृति हुई कितने दिन वह प्रकृति बैंठी रहेगी। कितने स्पर्धकमें कितने परमाणु है, यह सब चीज उस ही समय निश्चित हो जाती है। तो अब देखो—जब उन प्रकृति प्रदेशमय कर्म पुद्गलोंमें स्थिति और अनुभाग दोनों स्थित हो गए तो इसी कारण यह निश्चित है कि यह निषेक ऐसी प्रकृति रखती है जैसे क्रोध प्रकृतिकी कर्म वर्गणायें क्रोधनकी प्रकृति रखती हैं और अनुभाग में तीव्र बन्ध भी। तब और जब स्थिति पूरी होती है, कर्मका विपाक काल आता है तो कर्म में कर्मकी परिणतिसे एक स्फोट होता है जो जीव स्वरूपसे बाहर होता है। स्थिति पूरी होनेके बाद ऐसा ही हुआ करता है। जैसे चूनेका डला रखा है, उसकी म्याद जैसे तीन माह की है तो तीन माहकी स्थितिके बाद वह अपने आप फूल जायगा। उसमें शक्ति हट जायगी और बाहर भी कुछ उसका स्पर्श होता, उस पर उसका आक्रमण होता है। और, कदाचित कोई उस चूना को डलो पर पहले ही पानी डाल दे तो वह उदीरणा कहलाती है, वह पहले ही फूल जाता है, ऐसे ही कर्मविपाक जब अपनी स्थितिको पूरी करता है तो उन में अनुभाग और प्रकृतिका अभ्युदय प्रकट होता है, तब ही तो बतलाया है कि क्रोध प्रकृति में क्रोधन है, मान प्रकृतिमें मान है, माया और लोभमें लोभ है। कर्ममें उस अपने नामके अनुरूप विकार होता है, लेकिन वह अचेतन हैं, उस विकारका वह भी ज्ञान नहीं करता और विकार हो जाता है। अचेतनमें विकार अचेतन जैसा है अन्यथा बतलाओ कि सत्ता और असत्तामें फर्क क्या है? जैसे कर्म सत्तामें रहे तब तक वह फलदान समर्थ नहीं है, ऐसे ही सत्ता हो जैसे धीरे-धीरे चुपचाप बिना अपनेमें विकार स्फोट किए निकले, उदयमें आये तो वहां भी फल क्यों मिले? तो सत्तामें और विपाकमें अन्तर है। विपाककालमें कर्ममें स्वयँ विकार होता है। अब हुआ क्या कि अपने इस जीवके साथ बन्धे हुए कर्म जब विकृत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हुए तो वही तो हुआ कर्मविपाक। अब यह वेदन बिना तो न रहेगा। यह भी नरका वेदन ऐसा बिलक्षण वेदन है कि जिसे कहा करते स्वानुभव प्रत्यक्ष स्वसम्वेदन, वह इन्द्रियसे होता क्या? मनसे होता क्या? इन्द्रिय और मनके बिना जहाँ आत्मामें स्वसम्वेदन स्वका अनुभवरूप प्रत्यक्ष होता है वहाँ मन और इन्द्रिय काम नहीं करते और फिर भी वेदन होता है। तो जहाँ शुद्ध स्वसम्वेदन नहीं वहां एक अज्ञानी जीवको या जो विकाररूप परिणम रहा है संसारी जीवको विपाक कालमें वहां जैसा वर्त रहा वैसा स्वका वेदन होता है। उस वेदन में वह कर्म पर लक्ष्य तो नही देता, मगर एक कर्माक्रमण कहलाता है तो वहां एक अंधकार रूप वेदन हुआ और उस अंधकार वेदनके समयमें यह जीव अपने शुद्ध स्वभावसे च्युत हुआ और इसने अपना उपयोग फिर कहाँ रमाया? उसके नोकर्ममें। याने कर्मका उदय कब फलवान होता है? जब नोकर्मका विषय किया जा रहा हो। नोकर्मका विषय न बन पावे तो वह अबुद्धि पूर्वक फल देकर झड़ जाता है और नोकर्म आश्रयभूत वस्तु जब विषयमें आता है तो बुद्धिपूर्वक वह फल कहलाता है।

कर्माक्रमणकालमें चरणानुयोगकी आत्मरक्षामें सहयोगिताका अङ्कन—कर्मफलके उक्त विधानमें चरणानुयोगकी उपादेयता की स्पष्ट झलक है। जैसे—बतलाया वत्थु पडुच्चजं पुण अज्झवसाणं सु होइ जीवाणं। बाह्य वस्तुका आश्रय किए बिना अध्यवसान, विकार अपने स्वरुपको प्राप्त नहीं कर पाता। इसीलिए बतलाया है कि किमर्थं बाह्यवस्तुप्रतिषेधः अध्यवसान परिहारार्थम्। बाह्यवस्तुका त्याग किसलिए बतलाया? अध्यवसानभाव के परिहारके लिये बतलाया है। चरणानुयोगकी झलक है यहां। कहते हैं बाह्यवाद का त्याग अध्यवसानके निषेधके लिए बतलाया। यद्यपि यह नियम नही है कि बाह्यवस्तुका त्याग करने पर अध्यवसान हट जाय, लेकिन अध्यवसानका रंग जमानेका साधन तो बाह्य वस्तुका आश्रय है। तो भले ही कभी बाह्यवस्तुका त्याग करने पर भी मन द्वारा कुछ ख्याल रह जाये, किन्तु कुछ समय बाद जब बराबर सामने नहीं है तो एक अवसर मिलता है कि वह अध्यवसान भी हट जायगा तो बात क्या चल रही कि कर्मविपाक हुआ उस समयमें जो कर्माक्रमण है वह एक विलक्षण अंधकार है। जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है तो वहां कुम्हार तो अपनी चेष्टा करता है, मिट्टीका परिणमन नहीं करता, पर देखने वाले जानते है कि उस चाक पर जो मिट्टी पड़ी है उस मिट्टीपर कुम्हारका कैसा व्यापार चल रहा, दबोच रहा है, पतली मिट्टी करता है तो अधिक दबोच भीतर हाथ डाला तो वह एक तरहका आक्रमण है। यद्यपि कुम्हारका वह आक्रमण भी कुम्हारकी चेष्टामें है, मगर ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है कि ऐसा आक्रमण करते हुए कुम्हारके व्यापारका निमित्त पाकर मिट्टी अपने आपमें

Report any errors at vikash@jainelibrary.org

http://www.jainkosh.org

अपनी शक्तिमें घड़ा रूप परिणम जाती हैं। यहाँ भी देखिये कि जब कर्मका ऐसा आक्रमण हुआ, आक्रमण क्या हुआ, कर्मका विपाक हुआ और वह विपाक आत्मामें झलका। जैसे दर्पणमें अन्धेरा झलका तो झलका कैसे ? जैसे रात्रिके समयमें दर्पण खुला रखा जाय तो दर्पणमें कुछ दिखता नहीं, मगर अन्धेरा तो उसमें आया ही है, और अन्धेरा झलका तब ही दर्पण नहीं दिखता तो एक ऐसा विचित्र अन्धकार है, उस समय कर्मकी बाँधी हुई कर्ममें, अब उसका निमित्त पाकर यह जीव शुद्ध स्वभावसे च्युत हुआ। अब उसकी परिणति चली, और इसका उपयोग नोकर्ममें हो गया और उस माध्यमसे उस कर्मके उदयके अनुरूप इसने अपने विकारको व्यक्त किया। दोनों जगह स्वतँत्रता है और निमित्त नैमित्तिक योग है।

आत्मस्वातंत्र्यके परिचयसे आत्मशुद्धत का अभ्युदय—स्वतंत्रताके परिचयसे तो यह लाभ उठाना चाहिए कि मेरेको कोई दूसरा नहीं परिणमाता। अगर कोई दूसरा मेरेको परिणमाता होता तो मैं विवश हो जाता। उसकी मर्जी, उसकी कृपा, वह छोड़े न छोड़े। हम कोई पौरुष कर सकने लायक नहीं रहते, अगर कोई दूसरा मेरेको परिणमाता। यहाँ एक पौरुष जगता है, मैं अपनी ही परिणतिसे परिणमता हूँ। "वस्तु स्वभावहीं नहीं कि परसे कुछ मिले। तब-खुद गर्ज भी किसको कहें सब सत्त्व के भले।" तो यह तो हमने वस्तु स्वातंत्र्यसे स्वभाव दृष्टिको एक प्रेरणा पायी। अब निमित्त नैमित्तिक भावके दर्शनसे प्रेरणा क्यापायी ? जैसे जीवाजीवाधिकारमें इसका विशेष वर्णन है कि यह वर्ण, रस, गंध, स्पर्श विकार मेरा स्वरूप नहीं, मेरा स्वभाव नहीं, किन्तु वे पुद्गल कर्मसे निष्पन्न हैं। पुद्गल कर्मका निमित्त पाकर कोई निर्माण होता है। मेरे स्वभाव से ये दूर हैं। मेरा स्वभाव तो शुद्ध स्वच्छ ज्ञानाकार रूप है। ऐसा यह अपनेको अपने शुद्ध स्वभावकी ओर ले जाता है। यही है जीवत्व भावकी दृष्टि। तो अपने आपमें यह विचार करें कि मेरेको सर्व आनन्द है, कोई कष्ट नहीं है। कष्ट तो यही है मात्र कि हम पर द्रव्योंको अपने ध्यानमें लेते हैं, उसमें रमते हैं, और उस समयमें हम अपनी विचारधारामें डूब जाते हैं। यह है हमपर विपत्ति। जिस विपत्तिके परिणाममें कर्म बन्ध होता, संसारमें परिभ्रमण होता और चतुर्गतियोंमें चक्कर लगाते। न जाने कैसा कौन भव मिले ? देखते ही हैं-कीड़ा मकोड़ा वनस्पति इनमें क्या करनेकी बात है ? बोल भी क्या सकते हैं। ऐसीपर्याय मिलेगी तो मैं क्याकर सकूंगा। आप स्वयं सत् हैं, मन मिला है। मनकी बात दूसरेसे कह सकते हैं, समझ सकते हैं। ऐसी इस सुविधामें हम विषयोंकी प्रीति छोड़कर, कषायोंका हठ छोड़कर केवल एक मेरे आत्माका हित कैसे हो, केवल इसी भावनासे हम धर्मध्यानमें आयें, तत्त्वज्ञानमें आयें, चिन्तनमें आयें, विचारमें आयें और कषायोंको मन्द करें, ऐसी एक अपनी स्थिति बनाकर चलें और अन-

Version 1

दृष्टिका अधिकाधिक प्रयोग करें।

http://sanjanandvanishastra.org/

ज्ञानस्वरूपकी अनुभूतिमें विडम्बनाओंका विलय—जिसे थोड़ी सुध होनेकी पात्रता आये, झट अपने आपके भीतर प्रवेश करें कि मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। कैसे विकार हो गया यह ? मैं जब ज्ञानमात्र हूँ। ज्ञान-ज्ञान ही मेरा कार्य है, ज्ञानवृत्ति ही मेरा कर्तव्य है। यहाँ जानना रहता, जानना जानना ही इसमें बना रहता फिर कैसे यह बिकार हो गया ? जैसे दर्पण स्वच्छ है तो दर्पण जब स्वच्छ है तो वह स्वच्छता स्वच्छतारूप ही बनी रहे। जैसे दर्पणमें लाल पीला प्रतिबिम्ब आ गया दर्पणकी ओरसे तो दर्पणकी गांठकी चीज तो नहीं है। वह तो स्वच्छता रूप ही परिणमता है। उसका आश्चर्य करना चाहिए कि दर्पणके स्वभावके विपरीत दर्पणकी श्रान बानके विरूद्ध यह प्रतिबिम्ब हुआ, यह विकार हुआ यह लाल पीला परिणमन कैसे हुआ ? समयप्राभृतमें कहा है— जह फलिहमणी सुद्धो ण सयँ परिणमदू राय-मादीहिं ? रंगिज्जदि अण्णेहिंदु सो रत्तादीहि दोसेहि। तह णाणीवि य सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमादीहिं। रंगिज्जदि अण्णेहिं य सो रत्तादीहि दव्वेहिं। अर्थात् यह आत्मा स्वयं अपने रागादिक भावका निमित्त नहीं बनता। खुद ही यह उपादान, खुद ही अपने विकारका अगर निमित्त बन जाय तो उपादान और निमित्त दोनों सदा हाजिर हैं फिर क्यों विकार मिटेगा ? वह तो विकार स्वभाव बन जायगा। नित्यकतापन आ जायगा। तो वहां आचार्य कहते हैं कि विकार भावमें निमित्त परप्रसंग ही है, यह वस्तुका स्वभाव उदित होता है। हम हर बातसे शिक्षा लें स्वभावदर्शनकी। स्वभावदर्शनका वहां हमें किस तरह मौका मिल जायगा? शरण है कुछ तो अपनी स्वभावभावना, स्वभाव-आराधना, ज्ञानाकार, केवल ज्ञानस्वरूप मात्र स्वच्छ ज्ञान, ऐसे अपने आपकी भावना करें तो जैसे बताया है कि कोई पुरुष यदि ऐसा विचार बनाता है कि मैं हिंसा करूं तो वह अपने विचारसे अपनेको हिंसक बना डालता है। कोई विचार करता है शुभ भावका तो वह अपने विचारसे अपनेको पुण्य रूप बना लेता है। अशुभ भावका चिन्तन हो तो वह अपने ही विचारसे अपनेको पापरूप बना डालता है, इसी प्रकार विवक्ष्यमान में जो नारकादिक भव हैं इनमें अगर वह प्रतीति रखता है कि मैं नारकी हूँ तो वह अपने विचारसे नारकी बना। देखो यहां द्रव्य और भाव दो की बात चल रही है। द्रव्यसे बाहर द्रव्याकार या उसकी व्यञ्जन पर्याय वह नारक पर्याय है, लेकिन वह जीव अगर अपने उपयोगको विशुद्ध ज्ञानस्वभावमें ले जाय और वहां अनुभव करें इसे स्वानुभूति कहते हैं। अनुभव करनेमें ज्ञानमात्र हो तो इस अनुभूतिके माध्यममें देखें तो वह नारकी नहीं है। जैसेकि वह विचार कर रहा, उस विचारमें जो आया सो वह है इसी प्रकार जब जगतमें जो चीज आता है और उसका हम विकल्प बनाते हैं तो हमने अपने विकल्पसे अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

को ज्ञेयरूप बना डाला किन्तु इस ज्ञेयरूप विकल्पमें न अटकें और एक अपने इस ज्ञायक स्वभाव अन्तस्तत्त्व याने ज्ञानप्रकाशको ही ज्ञानका विषय बनायें तो उस समय हम ज्ञानस्वरूप ही हैं, उपयोगमें जो आया, स्वाद उसका आता है इसलिए अपना उपयोग निर्मल रखना, भेद कषायरूप रखना और वीतराग जिनशासन परम्परामें जो हमें आचार्योंने देन दी है, हम उस परम्पराकी पंक्तिमें ही रहकर अपनेको छुपा दें, जिसे कहते हैं कि बिहत्तोको पचा दें।

गर्वतरंग तोड़कर शान्त सुधासागरमें स्नात होनेकी भावना—अगर हम बुद्धिमान हैं तो अपनी बुद्धिमत्ताको पचा डालें, अपनेको उस भारसे पृथक दुनियामें देखनेका इस मनमें भावन लावें; किन्तु क्या करना ? जब यह सब जगत मायाजाल है तो किसको क्यों अपना कुछ दिखाना ? जब अनन्तानन्त जीव हैं तो उनमें से दो, चार, पांच सौ, हजार, दस हजार को अपना क्या गुण दिखाना ? याने अपने आपमें क्यों यशकी भावना रखना ? काल अनादि अनन्त है। अनादि अनन्त काल तक किसका यश रह सकती हैं ? अतीत चौबीसीका तो प्रायः कोई नाम भी नहीं जानता। कहां अनन्त काल तक यश रहता है ? फिर १०–५ बर्ष के लिए अपनेमें विकला बनाकर क्यों अपनेको बरबाद करना ? इसी प्रकार अन्य भी कुछ क्या चाहिए ? कौनसी यश, कौन सी बात ऐसी है जो चाही जाय ? बल्कि कुछ न चाहा जाय, केवल एक यह भावना रहे कि मेरे ज्ञानमें मेरा ज्ञानस्वरूप ही विषय रहे और ऐसे धीरे प्रयोग बलसे, अन्तः प्रयोगसे मेरे ज्ञानमें वह ज्ञानस्वरूप समाये और एकमेक हो जावे याने वही हम कुछ चिन्तन ही न करें, ज्ञानमें ज्ञेय इस प्रकार आये याने यह ज्ञानस्वरूप ज्ञान में ऐसी सौम्य पद्धतिसे आये तो हमारा ख्याल सब भूल जायगा। कुछ भी चिन्तन न चले ऐसी स्थिति पानेकी धुन रहना चाहिए। यह बात इस समय बड़ी कठिन लग रही, मगर एक बात जब सोचते हैं तो अचरज कुछ नहीं होता है। जब हम आगे अनन्त काल तक ज्ञानस्वरूपमें बसे रह सकते हैं, भगवान हो गए इसके मायने क्या है कि ज्ञानमें ज्ञा स्वरूप ज्ञान ज्ञेय सब मानो अभेद बन गया है, निज ज्ञेय, निज ज्ञान अभेद हो गया हैं, ज्ञानमें ज्ञान प्रकाशका ही अनुभव चल रहा है, ऐसी बात अनन्त काल तक होतीं कि नहीं, कुछ वर्ष भी नहीं, भगवान हो गए, अरहन्त हो गए, सिद्ध हो गए, अनन्त काल तक उनका ऐसा शुद्ध परिणमन चलता ही रहेगा। यह हमारी ही तो कथा है, हम आज नहीं ऐसा बन पा रहे, मगर ऐसा हो तो सकता हूँ। ऐसा जब मैं होऊंगा तो अनन्त काल तक मैं अपने ज्ञानस्वरूप में निस्तरंग बसता रहूँगा। कहां तो अनन्त काल तक मैं बसता रहूँगा और कहीं आज एक क्षण भी बस पाते। नहीं बस पाते हैं और विविध चेष्टायें होती हैं तो हो जायें चेष्टायें, किन्तु इसपर तो खेद करना चाहिए, और साइस बनाना चाहिये कि हम अपने ज्ञानस्वरूपमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स सकते हैं, कोई अत्युक्ति नहीं, कोई अजब गजब की बात नहीं, क्योंकि हम अनन्त काल क रहेंगे। कुछ दिन हैं यहां ऐसे जहां हम स्थिर नहीं रह पाते हैं, प्रयत्न करते हैं, मुश्किल ड़ती है, बाहर-बाहरकी बात ही समायी रहती है ध्यान वहाँ जाता है जहां खुदकी सुध हीं होती। कठिन पड़ रहा है। पड़ रहा है तो पड़े कठिन, मगर सही प्रतीति तो नहीं छोड़े ए हैं। धुन तो हमारी उस ही तरफ है। जैसे किसीका कोई इष्ट आ जाय और वह अनेक ार्यों में लग रहा हो तो वह कामोंमें लगा हुआ भी अपने इष्टको तो नहीं भूलता। अथवा कोई अनिष्ट प्रसंग लग गया हो, कोई इष्ट गुजर गया तो बहुतसे लोग आते हैं, काम भी करते हैं, मन्दिर भी आते हैं, बैठ भी गए। सब कुछ काम करते हुए भी उसकी सुध तो हीं भूलती। इसी तरहसे ज्ञानी पुरुष न रम पाये अपने आत्मस्वरूपमें और बाहर पदार्थों विकल्प भी मचाये तो भी वह अपनी सुधको क्षण भर भी नहीं भूलता। उसकी धुन हती है, लगन रहती हैं, मेरेको तो वह होना चाहिए और हो पाता नहीं, आत्मानुभव अथवा ज्ञान प्रकाशमें ज्ञानका समा जाना यह बात हो पा नहीं रही, मगर धुन इसीकी ही है। हो चुकी है एक बात एक बार, तब तो धुन बनती ही है। जैसे जिसने कोई मिठाई खी है और अब नहीं मिल रही तो उसका स्मरण तब ही तो आयगा जब उसका एक बार स्वाद लिया हो। इसी प्रकार मैं अपने ज्ञान प्रकाशमें ही ज्ञानको समाये रहूँ, इसमें कोई अन्य द्रव्य विषय न हो, किसी अन्य बातमें उसका उपयोग न रमे, ऐसी भीतरमें प्रेरणा तब ही तो हो सकती है जब हमने उसकी अनुभूति की हो। लिया है स्वाद तब ही तो ख्याल बन रहा, तब ही तो प्रतीति बन रही। अनुभूतिके बिना प्रतीति नही रह सकती। प्रतीति के समय अनुभूति हो या न हो, मगर अनुभूतिके बिना प्रतीति नहीं हो सकती।

बाहरसे हटकर निजधाममें विश्राम पानेका उद्यम—भैया अब तो अपनी ओर आवो। बाहरसे हटकर अपनी ओर प्रवेश करो। पहले बाहरसे हटो। जैसे कोई इस गाँवका मनुष्य विलायतमें गया। विलायतसे घर आना चाहता है तो वहाँ कोई पूछता कि भाई आप कहां जायेंगे? तो वह कहता कि हम इण्डिया जायेंगे, भारत जायेंगे। आया भारतके किसी बन्दरगाह पर। ...कहां जावोगे? अमुक प्रान्तमें जायेंगे। जब प्रांतके किनारे आया तो किसीने पूछा कहां जावोगे? ...अमुक जिले जायेंगे। जब जिलेके किनारे आया, पूछा कहां जावोगे? ...अमुक गांव जायेंगे। जब गांवमें आया तो पूछा कहां जावोगे? ...अमुक नम्बरके घरमें जायेंगे। अब घर आ गए तो अपने किसी कमरेमें आकर विश्राम करने लगा। इसी तरह यह उपयोग बहुत दूर तक पहुंच गया, पर द्रव्यमें, चेतनमें अचेतनमे पहुँच गया, अब वहांसे लोटकर अपनेमें विश्राम लेना है तो अचेतनसे हटा, चेतन तक आया, अन्य

Report any errors to sahjanand@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चेतनसे हटा, निज चेतन तक आया। अपने विकारसे हटे, अपने विकल्पके किनारे तक आये, विचार और चिन्तन से भी हटे तो कहाँ पहुंचेंगे ? अपने धाममें। जिन, शिव, ईश्वर, ब्रह्मा, राम, विष्णु, बुद्ध, हरि आदि जिसके नाम दिये जायें, ऐसा निज धाम है। ये आत्माके ही नाम हैं। जो रागादिकको जीते सो जिन, वह कौन है ? ऐसी शक्ति कहां है ? यह मैं आत्मा निज धाम हूँ। जो कल्याणमय हो सो शिव। ऐसा कौन है ? यह मैं आत्मा। जो अपने आपके ऐश्वर्यका स्वामी हो सो ईश्वर है। वह कौन है ? मेरा जो ऐश्वर्य है, स्वरूप है, स्वभाव है, अनादि अनन्त है, मेरा तो मैं प्रभु हूँ। उसे कोई छीन सकता है क्या ? फिर तो मैं स्वतंत्र हूँ। मेरा ही तो निज स्वरूप है, मेरा ही तो मैं रचनहार हुं, ऐसा वह कौन है ? यह मैं अन्तस्तत्त्व। ब्रह्मा जो सृष्टियोंको रचा करे सो ब्रह्मा। कौन रचता है इन सृष्टियोंको ? उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत्। मैं किसी दूसरे पदार्थकी स्थितिको कैसे रची सकता हूँ ? कदाचित कोई ईश्वर इस जगतको रचता होता तो बहुत बहुत गड़बड़ियां होतीं। कभी किसीको भूल जाता। यह परिणमें बिना रह जाता, कहां कहां जाकर सम्हालता ? तो वह ब्रह्मा कौन ? अपनी सृष्टियोंको रचने वाला कौन ? यह अन्तस्तत्त्व। निज धाम। राम जहाँ योगीजन रमण करें वह राम। वह कौन ? सर्व साधुवोंका, सर्व योगियों का सर्व सन्यासियोंका एक व्रत है, एक लक्ष्य है—एक इस ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्वमें रमना। विकारसे हटें, परद्रव्यसे हटें, पर और प्रभाव इनसे हटकर जो आत्माका स्वभाव मात्र है उसे कहते हैं भुतार्थ। भूतार्थका अर्थ है जो स्वयं सहज हो उसे भूतार्थ कहते हैं। वह जीवत्व भाव, वह परिणामिक भाव, यह है-भूतार्थ। और अभूतार्थके मायने क्या ? जो स्वयं सहज न हो तो अभूतार्थ। अभूतार्थके मायने असत्य नहीं। जैसे ७ तत्त्व ९ पदार्थकी जो कथन है क्या यह असत्य है। ७ तत्त्व ९ पदार्थ अभूतार्थनयका विषय है। भूतार्थका विषय तो केवल एक अखण्ड रूप है। वचनागोचर एक शुद्ध ज्ञानस्वभाव वह है भूतार्थ, अर्थात् जिसमें ९ तत्त्वोंका भेद न बने, भेद बनानेमें अशुद्ध कर डाला, क्या यह भेद नहीं है क्या इस तरह की परिणति नहीं है ? क्या जीवमें शक्ति नहीं है, लेकिन उनका जब वर्णन करने बैठते हैं तो वह कहलाता है अभूतार्थ। अभूतार्थका अर्थ असत्य नहीं किन्तु सहज स्वतः सिद्ध जो अनादिसे हो उसे कहते हैं अभूतार्थ। शाश्वत अखण्डका नाम है भूत र्थ और अशाश्वत अखण्डका नाम है अभूतार्थ। अभूतार्थकी तो बहुत साखा प्रसाखायें हैं। भूतार्थकी साखा प्रसाखायें नहीं हैं। वह तो एक परमार्थ सत् है। तो उसका आश्रय लेते हैं योगीजन। उसमें योगीजन रमण करते हैं वह कहलाता है राम। विष्णु—जो व्यापक हो सो विष्णु। ऐसा कौन है ? यह ज्ञानस्वरूप आत्मा। यह ज्ञानस्वरूप आत्मा इस सारे लोकालोकको भी व्याप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लेता है कि सारे लोकालोकको जान लिया, तिस पर भी यह ज्ञान ऐसा है कि ऐसे ही असंख्यात लोक और होते तो वह भी ज्ञानसे बाहर न रहता, अवश्य ज्ञानमें आता। ऐसा ही विष्णु है। बुद्ध कौन ? जो ज्ञानस्वरूप हो सो बुद्ध। ऐसा कौन है ? यह मैं आत्मा। हरि वह जो पापोंको हरे। देखो जो अपने ज्ञानस्वरूपको पहिचानता, वह जानता है कि यह समस्त विकारोंसे हटे रहनेका स्वभाव ही रख रहा है। होता है विकार, वह नैमित्तिकभाव, औपाधिक भाव, प्रसंगकी बात, लेकिन ज्ञानस्वभावका जो स्वभाव है, जो विकारसे हटता हुआ अपना स्वभाव रखे तो वही है स्वभावतः। तो यह चीज कौन है ? यही आत्मा। ऐसे निज धाम में मैं राग त्यागकर पहुँचूं तो फिर वहां आकुलताका कोई काम नहीं रहता।

अन्तस्तत्वकी आराधनासे जीवनक्षणोंका सदुपयोग करनेकी भावना—यह अन्तस्तत्व यह परमात्मस्वरूप इसकी शरण गहना यह हमारा कर्तव्य है, उसकी दृष्टि होती है इस समस्त आगमसे, इस समस्त धर्मोपदेशसे। उससे हमको एक ही शिक्षा मिलती है कि हम अपने स्वभावका आश्रय करें, बाह्य वस्तुओंका आलम्बन छोड़ें और अपने विकल्पमें लिपटें मत, विकार की भी उपेक्षा करें। ये मेरे नहीं, ये मेरी बरबादीके लिए हैं। यह कर्म की लीला है। ये कर्मसे होते हैं, होने दो, झलक आती है, मैं उसे क्यों अपनाऊं, ऐसा अपना भाव बना करके उससे हटकर रहें और अपना स्वभाव दृष्टि पौरुष अपना बनायें, यह काम करनेका है न कि और कुछ कषायभाव करना, या कुछ बात मनमें रखना, या कोई विकल्प चित्तमें रखना, या कोई शल्य चित्तमें रखना, ये कर्तव्य नहीं हैं। बड़ी कठिनाई से मनुष्य जन्म मिला तो इसमें केवल एक आत्महितका ही ध्यान रखें। अपनी भलाई का काम मुझे करना है। मेरा आवागमन मिटे, जन्म, जरा मरण मिटे। परद्रव्योंके विषयमें जो आकुलता होती है, क्षोभ होता है, ये मिटें इनसे मेरा हित नहीं है, ऐसा भाव रखकर अपने आपको धर्म-साधनामें आगे बढ़ाना चाहिए।

तत्त्वार्थाधिगमकी उपयोगिता—इस मोक्षशास्त्र ग्रन्थमें संसारसंकटोंसे छुटकारा पानेका उपाय बताया है। संसारमें जीव मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्रके वश होकर जन्म मरण का संकट सहते हैं। सुयोगतः मिथ्यात्वका विजय हो, सम्यक्त्वका उत्पाद हो तो तभी अनन्तसंसारका विच्छेद हो जाता है। अब यह सम्यग्दृष्टि जीव कदाचित् सम्यक्त्वसे च्युत हो जाये और मिथ्यात्वमें आ जाये तो भी यह अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकालसे अधिक संसारमें नहीं रहता है। इतना अधिक काल तो किसी विरले जीव के ही होता। सम्यक्त्व पानेके बाद प्रायः संख्यात भवोंमें ही मुक्ति पा लेता है। सम्यक्त्व उत्पन्न होता है भूतार्थ नयसे जीवादि तत्त्वोंके ज्ञाताको। ये तत्त्व सात है उन सबका परिचय व सम्या-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दर्शनादिका न्यास अर्थात् व्यवहार नाम स्थापना द्रव्य भाव इन चार निक्षेपोसे होता है। इन सबका अधिगम प्रमाण व नयोंसे होता है। प्रमाणसे तो सर्व अपेक्षाओंसे जो धर्म होते हैं उन सबका परिचय होता है। किन्तु नयों से एक एक धर्मका परिचय होता है। फिर भी प्रमाणसे जाने हुए तत्त्व के बारेमें एक एक नयसे परिचय हो तो वह सम्यक्नय है। इन सब उपायोंके विषयमें वर्णन किया जा चुका है। आत्महित चाहने वालोंका कर्तव्य है कि उन सब उपायोंसे तत्त्वोंका परिचय करे और शुद्धनयके बलसे उनके स्रोतभूत एकत्व का परिचय पाकर ज्ञानानुभूतिका पौरुष करें।

॥ समाप्त ॥

★ आत्मरमण ★

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूँ, मैं सहजानन्द स्वरूपी हूँ ॥ टेक ॥
हूँ ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूँ सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण ॥
हूँ सत्य सहज आनन्दधाम; मैं सहजानन्द. । मैं दर्शन. ॥१॥
हूँ खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं ॥
परका न प्रवेश न कार्य यहां, मैं सहजानन्द. । मैं दर्शन. ॥२॥
आऊं उतरूं रमलूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या ॥
निज अनुभवरससे सहजतृप्त, मैं सहजानन्द. । मैं दर्शन. ॥३॥

★ आत्मभक्ति ★

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे ।
तेरी भक्ति में क्षण जाय सारे ॥ टेक ॥
ज्ञानसे ज्ञानमें ज्ञान ही हो, कल्पनाओंका इकदम विलय हो ।
भ्रान्तिका नाश हो, शान्तिका वास हो, ब्रह्म प्यारे । तेरी ॥१॥
सर्व गतियोंमें रह गतिसे न्यारे, सर्व भावोंमें रह उनसे न्यारे ।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाहीं विरत, ब्रह्म प्यारे । तेरी ॥२॥
सिद्धि जिनने भी अब तक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई ।
मेरे संकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे । तेरी ॥३॥
देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्ययके भेदोंसे पारे ।
नित्य अन्तः अचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे । तेरी ॥४॥
आपका आप ही ध्येय तू है, सर्व श्रेयोंमें नित श्रेय तू है ।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे । तेरी ॥५॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

।। आत्म कीर्तन ।।

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ।। टेक ।।
मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान ।।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान ।।१।।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।
सुख दुख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।३।।
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।। ४ ।।
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ।। ५ ।।

।। परमात्म आरती ।।

ॐ जय जय अविकारी

जय जय अविकारी, स्वामी-जय जय जय अविकारी ।
हितकारी भयहारो, शाश्वत स्वविहारी । ॐ ... ।। टेक ।।
काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी । स्वामी सम....
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी । ॐ जय ... ।। १ ।।
हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव संतति टारी । स्वामी भव....
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी । ॐ जय ... ।।२।।
परसम्बन्ध बन्ध दुख कारण, करत अहित भारी । स्वामी करत...
परम ब्रह्मका दर्शन, चहुँगति दुखहारी । ॐ जय ... ।। ३ ।।
ज्ञानमूर्ति है सत्य सनातन, मुनिमन संचारी । स्वामी मुनि ...
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भंडारी । ॐ जय ... ।। ४ ।।
बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शान्तिचारी । स्वामी सहज...
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी । ॐ जय ... ।। ५ ।।

Report any errors at vikasvd@gmail.com